GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY

CLASS ______

CALL NO. 891.43109 Rat

D.G.A. 79.

१६वीं शती के

हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि

Solahavīn Śatī ke Hindī
aura Bengālī Vaishṇava kavi
(Tulnatamaka adhyayan)
by
Ratnakumari.
Bharati sahitya Mandir
Delhi

१६वीं शती के

हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि

(तुलनात्मक अध्ययन)

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए
स्वीकृत प्रबन्ध

लेखक

रत्नकुमारी, एम० ए०, डी० फिल०

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
New Delhi

भारती साहित्य मंदिर
फव्वारा, दिल्ली

प्रकाशक
भारती साहित्य मंदिर
फव्वारा, दिल्ली।

एस. चंद एण्ड कम्पनी
फव्वारा–दिल्ली
माई हीरा–जालन्धर
लालबाग़–लखनऊ

मूल्य १०)

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY, NEW DELHI.
Acc. No 29130
Date 21-2-61
Call No 891.43109
Rat

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली।

परिचय

अपने देश के जितने भी बड़े सांस्कृतिक आंदोलन हुए हैं वे प्राय: देशव्यापी रहे हैं। कुछ का प्रभाव तो भारत के बाहर पड़ोस के देशों पर भी पड़ा, उदाहरणार्थ बौद्ध सुधार आंदोलन का उल्लेख किया जा सकता है। १५वीं–१६वीं शताब्दी की वैष्णव भक्ति-भावना इस प्रकार के आंदोलनों में से मुख्य है। ११वीं–१२वीं शताब्दियों के आसपास दक्षिण भारत से प्रारंभ होकर धीरे-धीरे यह विचारधारा समस्त देश में व्याप्त हो गई।

भारतीय सांस्कृतिक आंदोलनों की एक अन्य विशेषता यह रही है कि यद्यपि उनके पीछे कुछ मौलिक व्यापक सिद्धांत रहते ह किंतु भिन्न-भिन्न प्रदेशों में पहुंच कर उन में कुछ प्रादेशिक विशेषताएं भी विकसित हो जाती हैं। काल के अनुसार भी उनमें परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे वैष्णव भक्ति के जो रूप बंगाल, ब्रज, गुजरात अथवा महाराष्ट्र में मिलते हैं, उनमें से प्रत्येक में कुछ प्रादेशिक छापें भी हैं यद्यपि सब में तात्त्विक समानता भी है।

वास्तव में देश के इन सांस्कृतिक आंदोलनों का पूर्ण चित्रण हमारे सामने तब तक नहीं उपस्थित किया जा सकता है जब तक प्रत्येक आंदोलन का ऐतिहासिक और तुलनात्मक विस्तृत अध्ययन न हो जावे। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए प्रयाग विश्वविद्यालय के कुछ अनुसंधान-प्रेमी विद्यार्थियों को अनेक विषय दिए गए थे। इस योजना में डा. जगदीश गुप्त गुजराती और ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति साहित्य का सफल अध्ययन कर चुके हैं। डा. रत्नकुमारी ने १६ वीं शताब्दी के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवियों का यह तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। कुछ अन्य अनुसंधानकर्त्ता विद्यार्थी वैष्णव आंदोलन के अन्य तुलनात्मक अध्ययनों में लगे हुए हैं।

डा. रत्नकुमारी ने अपने इस प्रबंध में बंगाली वैष्णव कवियों और पदकर्त्ताओं, उनकी रचनाओं तथा विचारधाराओं का हिन्दी के पाठकों को पहली बार विस्तृत परिचय दिया है तथा हिन्दी के कवियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरान्त अनेक रोचक और महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। यह तुलनात्मक अध्ययन आध्यात्मिक सिद्धांतों, साहित्यिक विशेषताओं, ऐतिहासिक उपादानों तथा भाषागत तत्त्वों से संबंध रखता है, अत: अत्यन्त व्यापक है।

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि डा. रत्नकुमारी का यह अनेक वर्षों का परिश्रम अब पुस्तक रूप में हिन्दी प्रेमियों के सन्मुख पहुंच रहा है। विश्वास है कि वे इससे पूर्ण लाभ उ वेंगे तथा इसका स्वागत करेंगे।

हिन्दी विभाग, धीरेन्द्र वर्मा
विश्वविद्यालय, प्रयाग १६-४-१९५६

भूमिका

भक्ति की परम्परा इस देश में अति प्राचीन है। श्रीमद्भागवत ने कृष्ण-भक्ति को विशेष प्रोत्साहन दिया और उसी के समानांतर राम-भक्ति ने भी स्थान पाया। सोलहवीं शती से पूर्व ही यह भक्ति-आंदोलन देश-व्यापी बन चुका था। अन्य प्रवृत्तियों और आंदोलनों के समान इस भक्ति-आंदोलन ने भी भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य को अनुप्राणित किया। यदि किसी भी प्रवृत्ति को हमें ठीक से समझना है, तो उसके लिए नितांत आवश्यक है कि न केवल किसी एक भाषा के प्रादेशिक साहित्य में ही इसका अध्ययन किया जाय, लगभग उन्हीं परिस्थितियों में और उसी समय में रचे गए सभी साहित्यों का अनुशीलन किया जाय। इसी दृष्टिकोण से आचार्य डा. धीरेन्द्र वर्मा जी के परामर्श से प्रस्तुत प्रबंध की यह सामग्री संकलित की गई है। भारतवर्ष की विशेष राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में वैष्णव-भक्ति-आंदोलन ब्रज-भूमि में सोलहवीं शती में चरम सीमा तक पहुंचा। यहां यह वल्लभ, विट्ठल और सूरदास के समान व्यक्तियों के द्वारा परिपुष्ट हुआ। लगभग ऐसी ही परिस्थितियों में गौड़ीय-वैष्णव-समाज में श्रीचैतन्य के समान अद्वितीय विभूति का आविर्भाव हुआ। यह विभूति न केवल भक्ति-मार्ग का प्रवर्त्तक ही बनी, वरन् स्वयं इष्टदेव बन गई। इष्टदेव चाहे कृष्ण हों, या राम, या चैतन्य, भक्ति से परिप्लावित व्यक्तियों ने इनके प्रति एक सी ही प्रशस्तियां, विनय, और लीला-पदावलियां रचीं। इस दृष्टि से सोलहवीं शती के विभिन्न प्रादेशिक भक्ति-साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयत्न किया जा रहा है। डा. धीरेन्द्र वर्मा के परामर्श से अन्य छात्र लगभग इसी युग के अन्य वैष्णव साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं।

प्रस्तुत प्रबंध की इस सामग्री को लेखिका ने कलकत्ते की बंगीय साहित्य परिषद्, एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों और राष्ट्रीय (पुरानी इम्पीरियल) लाइब्रेरी से संकलन किया है। वहां के प्रसिद्ध गौड़ीय मठ एवं कीर्त्तन-साहित्य से संबंध रखने वाले प्रमुख व्यक्तियों के परामर्श से भी लाभ उठाया गया है, जिनमें श्रीमती अपर्णा देवी और डा. खगेन्द्र नाथ मित्र उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत प्रबंध सात अध्यायों में विभक्त किया गया है :—

पहले अध्याय में सोलहवीं शती की वह पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है जिससे अनुप्राणित होकर वैष्णव-साहित्य की रचना हुई। इस स्थान पर साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक तीनों प्रकार की पृष्ठभूमियों का परिचय सोलहवीं शती के प्राप्त साहित्य के आधार पर ही देने की चेष्टा की गई है। हिन्दी और बंगाली ही नहीं, संस्कृत के पूर्ववर्त्ती साहित्य का भी उल्लेख कर दिया गया है, और उन ग्रंथों की चर्चा कर दी गई है जिन्होंने आगे के वैष्णव साहित्य को प्रभावित किया था।

दूसरे अध्याय में सोलहवीं शती के कवियों और लेखकों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसमें एक सौ आठ बंगाली और छिहत्तर हिन्दी के लेखकों एवं कवियों को लिया

गया है। इन समस्त कवियों की सम्पूर्ण जीवनी न तो प्राप्त ही है और न इसे देने का प्रयत्न ही किया गया है। प्राप्त परिचय में से आवश्यक अंश ही दिया गया है। इस परिचय का आधार मुख्यतया प्राचीन जीवनी साहित्य है जिनमें चैतन्यचरितामृत, चैतन्यभागवत, वैष्णव-वंदना, भक्तमाल, अष्टछाप, भक्ति-रत्नाकर एवं प्रेम-विलास प्रमुख हैं। इस परिचय में वे व्यक्ति तो ले ही लिए गए हैं जो कवि या लेखक के रूप में शीर्षस्थानीय हैं, साथ ही वे भी सम्मिलित कर लिए गए हैं जिनके नाम से कुछ पद-मात्र ही प्राप्त हैं।

तीसरे अध्याय में सोलहवीं शती में रचित साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसमें समस्त साहित्य, जो मुख्यतया धार्मिक साहित्य है, सम्मिलित किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस साहित्य को 'दर्शन और सिद्धान्त', 'काव्य', 'नाटक', 'पदावली', जीवनी', 'भाष्य-टीका-अनुवादादि', 'विविध', इन विभागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक विभाग की कुछ प्रमुख रचनाओं का सूक्ष्म परिचय देने की भी चेष्टा की गई है।

चौथे अध्याय में दोनों साहित्यों में प्राप्त आध्यात्मिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सोलहवीं शती का प्रायः समस्त साहित्य धार्मिक है। दोनों ही साहित्यों को श्रीमद्भागवत से विशेष प्रेरणा मिली। हिन्दी साहित्य के भक्त कवियों ने अपने आध्यात्मिक विचारों का स्रोत वल्लभाचार्य के 'अणुभाष्य', 'तत्त्व-दीप-निबंध', 'षोडष ग्रंथ', 'सुबोधिनी' आदि में पाया। बंगाली भक्त कवियों को अपने आध्यात्मिक विचारों की यह प्रेरणा रूप गोस्वामी के 'उज्ज्वल-नील-मणि', 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' आदि ग्रंथों से, एवं जीव गोस्वामी के 'षट् संदर्भ' से मिली। हिन्दी के कवियों के आध्यात्मिक विचार उनके पदों में ओत-प्रोत पाए जाते हैं। उनकी किसी भी रचना में इन विचारों की शास्त्रीय पद्धति पर विवेचना नहीं की गई है।

'चैतन्यचरितामृत' में, जो प्रधानतया चैतन्य संबंधी महाकाव्य है, कम से कम गौण रूप में इन आध्यात्मिक विचारों की शृंखला का बहुत कुछ शास्त्रीय विवेचन पाया जाता है। इस ग्रंथ के रचयिता ने अपने विचारों की पुष्टि में यत्र-तत्र श्रीमद्भागवत से भी श्लोक उद्धृत किए हैं, जैसा कि साधारणतया अन्य महाकाव्यों में नहीं पाया जाता। आध्यात्मिक विचारों की मीमांसा करने की आवश्यकता कृष्णदास के चैतन्यचरितामृत में हिन्दी कवियों की अपेक्षा अधिक कदाचित् इसलिए पड़ गई कि गौड़ीय वैष्णव समाज में चैतन्य को इष्टदेव माना गया है। भागवत के कृष्ण इष्टदेव के रूप में चले ही आ रहे थे। उन्हें अमान्य नहीं किया जा सकता था। दोनों का समन्वय करना ही एकमात्र रास्ता था। अतः चैतन्य की भगवत्ता सिद्ध करने के लिए तर्क आवश्यक थे और शृंखलापूर्ण विवेचना भी आवश्यक थी। एक नए इष्टदेव की स्थापना की जा रही थी अतः इसके लिए श्रुति प्रमाण आवश्यक थे। चैतन्य-चरितामृत में इसीलिए श्रुति प्रमाण अधिक हैं। हिन्दी कवियों के सामने ऐसी कोई समस्या नहीं थी। राम-कृष्ण इष्टदेव के रूप में प्रतिष्ठित थे ही। उनके परिचय की कोई आवश्यकता नहीं थी। अतः प्रसंगानुसार कुछ निर्देश कर देना काफी था। ये आध्यात्मिक विचार इष्टदेव, अवतार, जीव, माया, संसार, एवं भक्ति संबंधी हैं।

जीव के स्वरूप के संबंध में हिन्दी के कवि जहां शांकरिक अद्वैत अथवा रामानुज के

विशिष्टाद्वैत से अधिक प्रभावित हैं, वहां बंगाली कवि 'अचिंत्य भेदाभेद' सिद्धान्त में आस्था रखते प्रतीत होते हैं।

पांचवें अध्याय में पद साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह पद साहित्य एक प्रकार से आध्यात्मिक विचारों (मुख्यतया भक्ति संबंधी) का प्रतिबिम्ब है। पद साहित्य सोलहवीं शती की विशेषता रही है। न केवल हिन्दी भाषा में ही पद लिखे गए, वरन् बंगीय भाषा में भी यह युग अपने पदों के लिए विशेष महत्व का रहा है। गोविंददास, ज्ञानदास, रायशेखर, बलरामदास, इत्यादि के पद बंगला में, और सूर, तुलसी, परमानंददास, इत्यादि कवियों के पद हिन्दी में अत्यन्त सुन्दर हैं। गौड़ीय वैष्णव पदावली केवल 'स्वांतः सुखाय' की भावना अथवा भक्त्यावेश से ही प्रभावित नहीं है। वह वैष्णव भक्ति-रस-शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुरूप शास्त्रीय पद्धति पर भी लिखी गई है। वहां की आराध्य ब्रज-स्थित किशोर-कृष्ण की गोप-मूर्ति है जो मधुर-लीलाकारी है, असुर-संहारक नहीं। अतः गौड़ीय वैष्णव-पदावली मुख्यतया राधाकृष्ण लीला संबंधी ही है, कृष्ण की असुर संहारक लीला प्रायः अवर्णित ही है। शृंगार अधिक है, वात्सल्य अथवा दास्य भावना अपेक्षाकृत कम है। हिन्दी पदावली साहित्य में वात्सल्य और दास्य भावना अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होती है।

छठे अध्याय में तत्कालीन जीवनी साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्राप्त जीवनी साहित्य केवल ऐतिहासिकता की दृष्टि से रचा गया नहीं प्रतीत होता। उसमें अलौकिक घटनाओं का समावेश अच्छी मात्रा में है। परन्तु इतने पर भी ऐतिहासिक मूल्य में कमी नहीं आती। बंगाली साहित्य में जीवनी साहित्य अपेक्षाकृत अधिक है; इसमें कुछ व्यक्तियों (जैसे चैतन्यदेव और अद्वैत) के विशद परिचय, कुछ के अल्प परिचय और कुछ के नामोल्लेख मात्र मिलते हैं। कुछ प्रमुख घटनाओं और महत्वपूर्ण तिथियों के भी उल्लेख मिल जाते हैं।

सातवें अध्याय में इस साहित्य में प्रयुक्त तत्कालीन भाषाओं का अध्ययन अत्यंत संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी वैष्णव साहित्य और गौड़ीय वैष्णव साहित्य की भाषाओं का पारस्परिक प्रभाव देखने की चेष्टा की गई है। बंगाली पदों में कुछ हिन्दी के पद प्राप्त हैं। कुछ पदों की भाषा मुख्यतया ब्रजभाषा मिश्रित है। गौड़ीय पदों में हिन्दी के शब्द भी मिलते हैं। इन शब्दों का हिन्दी पदों में प्रयोग भी साथ ही दे दिया गया है। ब्रजबुलि के व्याकरण तथा अवधी और ब्रजभाषा के व्याकरणों की संक्षिप्त तुलना की गई है। ब्रजबुलि के शब्दों और शब्द-रूपों का अवधी के शब्दों और शब्द-रूपों से कुछ अधिक साम्य दृष्टिगोचर होता है।

यह प्रबंध प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा. धीरेन्द्र वर्मा, एम. ए., डी. लिट. (पेरिस), के निरीक्षण में लिखा गया है। प्रत्येक स्थल पर उन्होंने जो परामर्श दिए हैं, उनके लिए लेखिका अत्यन्त अनुगृहीत है। अन्य छात्रों की भांति इस लेखिका को भी उनसे अन्वेषण कार्यों में बराबर मूल्यवान प्रेरणायें मिलती रही हैं।

—रत्नकुमारी

बेली एवेन्यू, प्रयाग

रामनवमी, सं० २०१३ वि०

संक्षेप और संकेत

अ.	अध्याय
अष्ट.	अष्टछाप
अष्ट. व. स.	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय
कर्णा.	कर्णानन्द
क. व.	कवितावली
की. र.	कीर्तन रत्नाकर
की. सं.	कीर्तन संग्रह
कृ. प. सि.	कृष्णपदामृतसिंधु
क्ष. गी. चि.	क्षणदागीतचिन्तामणि
गो. तुलसी.	गोस्वामी तुलसीदास (ले० श्यामसुन्दर दास)
गौ. प. त.	गौरपदतरंगिणी
गौ. वै. सा.	गौड़ीय वैष्णव साहित्य
गी. व.	गीतावली
चै. च.	चैतन्यचरितामृत
चै. भा.	चैतन्यभागवत
चै. मं.	चैतन्य-मंगल
त. सं.	तत्त्व-संदर्भ
तुलसी.	तुलसीदास (ले० माता प्रसाद गुप्त)
तुलसी. कवि.	तुलसीदास और उनकी कविता (ले० राम नरेश त्रिपाठी)
तु. ग्रंथ.	तुलसी ग्रंथावली
दोहा.	दोहावली
न. वि.	नरोत्तमविलास
प. क. त.	पदकल्पतरु
परि.	परिछेद
प. स.	पदामृतसमुद्र
प्रे. वि.	प्रेमविलास
पृ.	पृष्ठ
बां. सा. इ.	बांगला साहित्येर इतिहास
बृ. भा.	बृहद्भागवतामृत
भ. बं.	भक्तमाल बंगला
भ. हिन्दी	भक्तमाल हिन्दी

भ. र.	भक्ति-रत्नाकर
भ. र. सि.	भक्तिरसामृतसिन्धु
मि. बं. वि.	मिश्रबन्धु विनोद
मु. च.	मुक्ताचरित
रा. च. मा.	रामचरितमानस [बा. बालकांड,अ. अयोध्या-कांड, अर. अरण्य कांड, उ. उत्तर कांड, लं. लंकाकांड, सु. सुन्दरकांड, कि. किष्किधाकांड]
रा. क. द्रु.	रागकल्पद्रुम
ल. मा.	ललित माधव
व. ध.	वसंत, धमार (कीर्तन संग्रह)
वं. सा. प.	वंगीय साहित्य परिषद्
वं. सा. प. प.	वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका
वि.	विलास
वि. प.	विनय पत्रिका (तुलसी)
वै. तो.	वैष्णव तोषिणी
वै. द.	वैष्णवाचार-दर्पण
वै. व.	वैष्णववंदना
शा. नि.	शाखानिर्णय
सू. सा.	सूरसागर
ह. भ. वि.	हरिभक्ति-विलास
हि. सा. आ. इ.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
हि. ब्र. बु.	हिस्ट्री आव् ब्रजबुलि लिट्रेचर
B. R. (बी.आर.)	Bengali Ramayana.
Brajbuli	History of Brajbuli Literature.
B. L. L.	Bengali Language and Literature.
O. R. C.	Obscure Religious Cults as Back-gound of Bengali Literature
V. F. M.	Vaishnava Faith and Movement in Bengal.

विषय सूची

१. परिचय—डा० धीरेन्द्र वर्मा लिखित

२. भूमिका

३. विषय सूची

४. संक्षेप और संकेत

प्रथम अध्याय पृष्ठभूमि १–२९

१. साहित्यिक पृष्ठभूमि ३

(क) हिन्दी का पूर्ववर्त्ती साहित्य ४—संत साहित्य ४, सूफी साहित्य ४, भक्ति साहित्य ४।

(ख) बंगाली का पूर्ववर्त्ती साहित्य ४—गीत ४, मंगल साहित्य ५, मसनवी ८, अन्य भक्तिकाव्य ८।

(ग) संस्कृत का पूर्ववर्त्ती साहित्य ९—पुराण साहित्य १०, भक्ति दर्शन साहित्य ११, लीला एवं गीत साहित्य १४।

उद्धरण ग्रंथ १५।

२. राजनीतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि १८

३. धार्मिक पृष्ठभूमि २१।

द्वितीय अध्याय कवि और पदकर्त्ता ३१–१२०

(१) नामावली—चैतन्यचरितामृत की नामावली ३१

चैतन्य-भागवत की नामावली ३२

वैष्णव-वंदना की नामावली ३३

दीनेशचन्द्र सेन की नामावली ३३

जगद्बंधु भद्र की नामावली ३४

सतीशचन्द्र राय की नामावली ३५

सुकुमार सेन की नामावली ३६

हिन्दी भक्तमाल की नामावली ३७

बंगला भक्तमाल की नामावली ३८

(२) समयनिर्धारण के आधारभूत सिद्धान्त ३८

(३) कवि परिचय, बंगला विभाग ४१, हिन्दी विभाग ८७

तृतीय अध्याय सोलहवीं शती के वैष्णव साहित्य की अनुक्रमणिका १२२—१६०

दर्शन और सिद्धान्त ग्रंथ १२३, बंगला विभाग १२६, हिन्दी विभाग १३०।

रस ग्रंथ, बंगला विभाग १३१, हिन्दी विभाग १३२।

काव्य १३२, बंगला विभाग १३४, हिन्दी विभाग १३६ ।
महाकाव्य १३७, बंगला विभाग १३७, हिन्दी विभाग १३७ ।
नाटक १३८, बंगला विभाग १३८, हिन्दी विभाग १३९ ।
पदावली १३९, बंगला विभाग १४०, हिन्दी विभाग १४० ।
पदावली संग्रह ग्रंथ १४२ ।
जीवनी १४३, बंगाली विभाग १४४, हिन्दी विभाग १५० ।
भाष्य, टीका, और अनुवाद १५१, बंगाली विभाग १५२, हिन्दी विभाग १५४ ।
विविध १५४, बंगला विभाग १५७, हिन्दी विभाग १५९ ।

चतुर्थ अध्याय—तुलनात्मक अध्ययन (१) आध्यात्मिक विचार १६२—२८१

१. तर्क, श्रद्धा, और शब्द प्रमाण १६२ ।
२. इष्टदेव १७०
३. इष्टदेव —चैतन्य और वल्लभ १७२,
चैतन्य परतत्व हैं १७३,
चैतन्य विष्णु हैं १७४,
चैतन्य ने सब ही अवतार लिए १७४,
चैतन्य कृष्ण हैं १७५, वल्लभ पूर्ण ब्रह्म हैं १७७,
वल्लभ विष्णु हैं १७८,
वल्लभ कृष्ण हैं १७८,
४. चैतन्य और वल्लभ के अवतारों के कारण १८० ।
५. इष्टदेव—कृष्ण और राम १८८ ।
कृष्ण १८८, इष्टदेव परब्रह्म हैं १९७, इष्टदेव अद्वैत या अद्वय हैं १९८, इष्टदेव सगुण हैं या निर्गुण २००, इष्टदेव नारायण हैं २०४, इष्टदेव विष्णु हैं २०५, इष्टदेव अवतारी हैं या अवतार २०७, इष्टदेव का स्वरूप २१४, इष्टदेव की सहचरी २१८ ।
६. जीव २२४.
७. माया २३३, माया इष्टदेव की है २३३, माया क्या है २३४, माया के कार्य २३५.
८. भक्ति भावना २३९, भक्ति क्या है २४०, भक्ति की महिमा २४३, भक्ति का स्वरूप २४९, भक्ति की प्राप्ति २५२, भक्ति के प्रकार २५२.
९. भक्ति रस २६२ : कृष्ण भक्ति रस का स्थायी भाव २६४, विभाव २६५, विभाव के आलंबन—कृष्ण २६५, गोपी २७२, भाव २७४,
१०. रूप गोस्वामी की भक्ति भावना २७६, भक्ति रस २७९.

पंचम अध्याय—तुलनात्मक अध्ययन (२) पदावली : विनय, वंदनायें और लीलागान २८३-४२५

१. वर्ण्य विषय २८३, वर्ण्य विषय की भिन्नता २८३.
२. विनय (कृष्ण-राम संबंधी) २८९, नाम स्मरण २८९, दीनता वर्णन २९२,

इष्टदेव की महत्ता २९५, पश्चात्ताप ३०९, भय प्रदर्शन ३१४, उद्धार की प्रार्थना ३१७, वंदना ३२०, आश्वासन ३२३, मनोराज्य ३२५.

३. विनय (चैतन्य-वल्लभ-विट्ठल संबंधी) ३३१, वंदना ३३१, चैतन्य एवं वल्लभ की महत्ता ३३४, रूप और सौंदर्य ३४२, दीनता प्रदर्शन और पश्चात्ताप ३४५, उद्धार की प्रार्थना ३४६, आश्वासन तथा अनन्याश्रयता ३४९, मनोराज्य ३५०.

४. गुरु बन्दना ३५३.

५. लीला गान ३६२, जन्म लीला (राम-कृष्ण संबंधी) ३६२, जन्म लीला (चैतन्य-विट्ठल-वल्लभ संबंधी) ३६५, बाल लीला ३६६, गोवर्द्धन लीला ३८३,

६. राधा-कृष्ण लीला ३८७, रस मीमांसा ३८७, नायिका ३८९, पूर्व्वराग ३९०, संक्षिप्त संभोग ३९३, मान ३९४, संकीर्ण संभोग ३९६, संपन्न संभोग ४०१, प्रवास ४०७, समृद्धिमान संभोग ४१९, प्रेम वैचित्त्य ४२०.

षष्ठ अध्याय—तुलनात्मक अध्ययन (३)—चरित साहित्य में ऐतिहासिक उपादान ४२७-४४६

जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि संबंधी सामग्री ४२९, जन्म स्थान या निवास स्थान का उल्लेख ४३०, भक्तों, पार्षदों, शिष्यों एवं लेखकों के नामोल्लेख ४३० विशेष परिचय ४३१, तत्कालीन प्रमुख व्यक्तियों के परस्पर मिलन का उल्लेख ४३२, कुछ घटनाओं के उल्लेख ४३४, रचनाओं के नाम ४४१, आत्मीयों एवं गुरुओं के उल्लेख ४४३, भ्रमण एवं तीर्थयात्रा ४४४.

सप्तम अध्याय—तुलनात्मक अध्ययन (४)—भाषा ४४८-४८०

प्रयुक्त भाषायें ४४८, पारस्परिक प्रभाव ४४८.

१. गौड़ीय वैष्णव पदावली में हिन्दी शब्द ४४८.

२. गौड़ीय वैष्णव पदावली में हिन्दी-वाक्य-विन्यास ४५७.

३. बंगाली पद संग्रहों में हिन्दी मिश्रित पद ४५९.

४. मिश्रित भाषा ब्रजबुलि ४६७, वचन ४६८, कारक ४६८, सर्वनाम ४७०, क्रिया ४७५.

परिशिष्ट, छंद ४८१.

सहायक ग्रन्थों की सूची ४८३

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य सोलहवीं शती के बंगाली और हिन्दी वैष्णव साहित्य की तुलनात्मक समीक्षा करना है। यों तो साधारणतया भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में विभिन्न भाषाओं के साहित्यिकों ने प्रत्येक शती में अलग अलग साहित्य की सृष्टि की, पर इस देश की एकता इस प्रकार की रही है कि किसी भी प्रदेश के साहित्य का अध्ययन परिच्छिन्न रूप से नहीं किया जा सकता। प्रत्येक शती में एक स्पष्ट वातावरण था जिसका प्रभाव लगभग समानतया इस देश की समस्त भाषाओं के साहित्य पर पड़ा। इसी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक वातावरण की पृष्ठभूमि में सोलहवीं शती के वैष्णव साहित्य की रचना हुई। उस काल की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में प्राप्त-वैष्णव साहित्य में मिलता है। यद्यपि यह विवरण विशद नहीं है, तथापि जितना भी है वह उस समय की स्थिति का परिचय देने के लिए पर्य्याप्त है।

१. साहित्यिक पृष्ठभूमि

सोलहवीं शती का समस्त वैष्णव साहित्य भक्तिप्रधान है। धर्मसंस्था- पकों ने धर्म के सिद्धान्त इत्यादि का विवेचन करते हुए सिद्धान्त-ग्रन्थ रचे थे जिनमे ब्रजप्रांत के वल्लभाचार्य और गौड़ीय वैष्णव समाज के ब्रजस्थित रूप सनातन, और जीव गोसाईं प्रमुख हैं। शेष वैष्णव कवियों ने कृष्ण-राधा लीला, रामचरित और गुरु वंदना एवं भक्त-वंदना पर रचनाएं कीं। यह कहना उचित नहीं है कि सोलहवीं शती का यह भक्ति-साहित्य केवल उसी काल की स्वतंत्र विशेष रचनाएं हैं। भक्ति संबंधी कुछ-न-कुछ रचनाएं सोलहवीं शती से पहले भी पाई जाती हैं। इष्टदेव निर्गुण ईश्वर भी रहे और अवतारी ईश्वर भी रहे। इस प्रकार का भक्ति-साहित्य संस्कृत और भाषा दोनों में पाया जाता है।

विषय जिस प्रकार तत्कालीन शती की ही उपज नहीं है उसी प्रकार काव्यों की रचना-शैलियां भी अपनी उपज नहीं हैं। पहले से ही पदों की शैली में और लम्बे आख्यानक काव्यों की दोहा-चौपाई की शैली में रचनाएं होती चली आई हैं। सहजिया सिद्ध, संत कवि और विद्यापति ने पदों में रचनाएं की थीं। जायसी ने दोहे-चौपाई में 'पद्मावत' रचा था। इसमें सन्देह नहीं कि सोलहवीं शती के रचनाकारों ने इन शैलियों को अत्यन्त परिष्कृत साहित्यिक रूप दिया। वैष्णव काव्य की पद्य शैली पीछे से चली आई हुई पद्य शैली से अधिक परिष्कृत, तथा कला-एवं संगीतपूर्ण है। तुलसीदास की रचना 'रामचरितमानस' की रचना शैली में जो परिपक्वता और कलात्मकता है, वह सूफी कवियों की दोहा चौपाई शैली से कहीं अधिक परिमार्जित है। यहां पर सोलहवीं शती से पहले के साहित्य और रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(क) हिन्दी का पूर्ववर्ती साहित्य

गोस्वामी तुलसीदास अपनी रचना दोहावली में कहते हैं—

साखी, सबदी, दोहरा, कहि, किहनी, उपखान ।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निन्दहिं वेद पुरान ।।

अर्थात् कलियुग में भक्त लोग साखी, शब्द, दोहे और कहानी और उपाख्यान कह कर भक्ति का निरूपण करते हैं। इस दोहे में बड़े स्पष्ट रूप से तुलसीदास ने उस साहित्य का निर्देश किया है जो वैष्णव भक्ति प्रधान साहित्य तो नहीं था परन्तु अन्य रूप से भक्ति का निरूपण अवश्य करता था। यद्यपि उस भक्ति का निरूपण करने वाले साहित्य की ओर उपेक्षा भाव इस दोहे में निहित है तब भी उन साहित्यकारों को 'भगत' का नाम वे दे ही देते हैं।

ऊपर दिए गए दोहे के अनुसार दो प्रकार का भक्ति-साहित्य तत्कालीन कवियों के सम्मुख था। एक तो 'साखी सबदी दोहरा' वाला संत-साहित्य और दूसरा 'किहनी उपखान' सम्बन्धी सूफी-साहित्य ।

१. संत साहित्य—संत साहित्य प्रधानतया मुक्तक साहित्य ही है। इसकी परम्परा गुरु गोरखनाथ से चलकर गुरु नानक तक आती है। इस परम्परा के मुख्य कवि गोरखनाथ और रामानन्द के शिष्य हैं। महाराष्ट्र के दो कवि त्रिलोचन और नामदेव भी इसी परम्परा में आते हैं। स्वामी रामानन्द के शिष्यों में से प्रमुख पीपा, सेवा, धना, रैदास और कबीर हैं जो वैष्णवों से पहले के कवि हैं। सन्तों के काव्य में भक्ति और साधना की परम अभिव्यक्ति तो है पर काव्य-कला उच्च कोटि की नहीं है। सन्त काव्य के प्रमुख विषय वैराग्य, संसार की असारता, गुरुभक्ति, नाम महिमा, सदाचार, प्रेम, विरह, मन को चेतावनी इत्यादि हैं।

२. सूफी साहित्य—सोलहवीं शती से पहले सूफी साहित्य की परम्परा में रचे गए दो आख्यानक काव्यों का उल्लेख मिलता है। एक तो दामो कवि की रची हुई 'लक्ष्मण-सेन पद्मावती' नामक प्रेम कहानी और दूसरी मुल्ला दाऊद की कृति 'नूरक चन्दा की कहानी'। इन प्रेम गाथाओं की भाषा अवधी है। जायसी का पद्मावत इसके बाद की रचना है।

३. भक्ति साहित्य—मिश्रबन्धु-विनोद में[१] रायबरेली निवासी एक लालचदास हलवाई का और उसकी दोहा-चौपाई में रची भागवत का उल्लेख है। यह भागवत भाषा में है; संस्कृत में नहीं। कृष्ण-लीला सम्बन्धी मैथिल कवि विद्यापति की सुन्दर पदावली भी सोलहवीं शती से पहले की रचना है। विद्यापति का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में है।[२]

(ख) बंगाली का पूर्ववर्ती साहित्य

१. गीत—सोलहवीं शती से पहले का बंगाली साहित्य जो भक्तिपरक है मुख्यतया महाभारत, रामायण और कुछ लौकिक नये देवता संबंधी है। चैतन्य-चरितामृत

---

१. मि. बं. वि., भाग १, पृ० २८९

२. चंडीदास विद्यापति, रायेर नाटक गीति ।
स्वरूप रामानन्द सने, महाप्रभु रात्रि दिने, गाये शुने परम आनन्दे ।

और चैतन्य-भागवत में जिन स्थलों पर तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का कुछ विवरण दिया है, वहीं पर कुछ उल्लेख उस समय के प्राप्त साहित्य का मिलता है। वृन्दावनदास चैतन्य देव के जन्म से पहले की धार्मिक दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

धर्म कर्म लोक सबे एइ मात्र जाने। मंगल चंडीर गीत करे जागरणे॥

(चै. भा., आदि खंड, अ. २, पृ. १५)

एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं :—

योगीपाल, भोगीपाल, महीपालेर गीत ।
इहा शुनिवारे सर्व्वलोक आनंदित ।

वृन्दावनदास ने ठाकुर हरिदास के आख्यान में एक सर्पपूजक (डंका) का उल्लेख किया है। वह डंका उच्च स्वर में कालीय दमन के गीत गा रहा था, उसे सुन कर वे मूर्छित हो गए। वह उद्धरण निम्न है :—

कालि बहे करिलेन जे नाट्य ईश्वरे ।
सेइ गीत गायेन कारुण्य उच्चैः स्वरे ॥

(चै. भा., आदि खंड, अ. १४, पृ. ९१)

जयानन्द ने अपने 'चैतन्य-मंगल' काव्य में जगाई-मधाई के म्लेच्छाचार का वर्णन करते हुए कहा है कि वे 'मसनवी' काव्य पढ़ते थे। इस प्रकार इन कवियों के काव्यों से उस समय के प्राप्त साहित्य का परोक्ष रूप से कुछ आभास मिल जाता है। इनके अनुसार 'मंगल-चंडी गीत', योगीपाल इत्यादि के गीत, कृष्ण-लीला सम्बन्धी गीत और मसनवी साहित्य की विद्यमानता ज्ञात होती है।

'मंगल-चंडी गीत' सम्बन्धित मंगल-साहित्य तो अच्छी संख्या में उपलब्ध है। उसका विवरण आगे दिया जा रहा है। 'योगीपाल, भोगीपाल, महीपालेर गीत' क्या थे, इसका पता नहीं चलता। सुकुमार सेन का विचार है कि कदाचित् यह साहित्यपाल राजाओं की प्रशस्ति में लिखा गया था[1] क्योंकि पाल राजाओं में कुछ राजा बड़े धर्मात्मा और न्यायनिष्ठ हुए थे।

२. मंगल साहित्य—मंगल काव्य वे काव्य हैं जिनमें केवल देवता का माहात्म्य वर्णित रहता है। यह मंगल काव्य श्रीकृष्ण संबंधी और मनसा और चंडी संबंधी हैं। 'मनसा' पौराणिक देवी नहीं है। इनका नाम महाभारत में भी नहीं है। इनकी उपासना कबसे चल पड़ी, कहा नहीं जा सकता। सुकुमार सेन ने अपने बंगला साहित्य के इतिहास में पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल द्वारा संपादित 'गोरखबानी' में से एक उद्धरण दिया है जिसमें 'मनसा' का नाम आया है।[2] मनसा मंगल काव्यों में यह देवी शिव की पुत्री बताई गई है। पार्वती इससे अत्यन्त ईर्ष्या करती हैं और घर से निकाल देती हैं। मनसा लोक में पार्वती के समान ही पूजित होना चाहती है। उसी के लिए प्रयत्न करती है। मनसा मंगल काव्यों में मनसा

---

१. बां. सा. इ., पृ० १५६
२. माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरंजन निराकार ।
(बां. सा. इ., पृ. १०९)

का माहात्म्य बताया गया है और जिन लोगों ने उनकी पूजा नहीं की उनका दुर्दशा दिखाई गई है। अन्त में मनसा की पूजा करके ही वे सुखी हो सके हैं। मनसा का एक नाम 'विषहरी' भी प्रचलित है। 'मनसा' की शक्ति भी बहुत दिखाई गई है। विषपान करने पर मूर्छित शिव को 'मनसा' ने ही नारद के अनुरोध से स्वस्थ किया था। यह कथा विप्रदास रचित 'मनसा विजय' में है। यह मनसा मंगल काव्य अपौराणिक होते हुए भी पुराणों की भावना पर ही आश्रित है। श्री शशिभूषण दास गुप्त ने अपनी थीसिस की भूमिका में मंगल काव्यों पर जो कहा है वह नीचे दिया जाता है :—[1]

"The Sanskrit *Puranas are sometimes* infused with a spirit of propaganda on behalf of some half-indigenous and half-traditional religious cult and there is the spirit of glorifying some of the gods and goddesses. With the help of a huge net-work of stories which bear testimony to their irresistible divine power and thus make them acceptable to the Brahmanical people. The same spirit is found in Mangal Kavyas of Bengal, which launched vigorous and continual propaganda on behalf of some god or goddess in question with reference to various episodes where he or she had the supreme power to save the devotee from all sorts of dangers and difficulties and to bring destruction to all who opposed his or her supremacy. These gods and goddesses of the Mangal Kavyas inspite of their Puranic garb are often indigenous in nature."

इन नए देवताओं की पूजा प्रायः निम्न स्तर के लोगों ने ही प्रारम्भ की थी। निम्न स्तर का अर्थ ब्राह्मण धर्म को न मानने वाले लोगों से है। अपनी देवी की पूजा प्रचलित करने के लिए उन लोगों ने उनकी शक्ति और श्रेष्ठता दिखाई। इस प्रकार मंगल काव्यों की रचनाएं प्रारम्भ हुईं। आगे चलकर अर्थात् सत्रहवीं-अट्ठारहवीं शती में जो मंगल काव्य रचे गए वे मनसा के उपासकों द्वारा ही रचे गए, यह कहना समीचीन नहीं। उस काल के कवियों के सामने मंगल काव्य की भी साहित्यिक परम्परा थी और उन्होंने उस साहित्य विशेष की परम्परा में अपनी रचना की कड़ियां जोड़ दीं, उपासना में नहीं। कुछ मंगल काव्यों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१. मनसा मंगल—मनसा मंगल काव्यों में जो सर्वप्रथम रचना प्राप्त है वह 'विप्रदास' का 'मनसा विजय' काव्य है। इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम परिचय हरिप्रसाद शास्त्री ने दिया। यह परिचय उन्होंने उन हस्तलिखित ग्रन्थों को देख कर दिया था जो रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं। काव्य के आरम्भ में कवि ने आत्म-परिचय दिया है।[2] इसके अनुसार वे नादुउया वटग्राम निवासी मुकुंद पंडित के पुत्र थे। आगे चलकर उन्होंने ग्रन्थ रचना का शक संवत् यों दिया है :—

सिंधु इन्दु वेद मही शक परिमाण।
नृपति हुसेन शाहा गौड़ेर प्रधान॥

१. O. R. C., Introduction, p. XLVI.
२. मुकुन्द पंडित सुत विप्रदास नाम
चिरकाल बसति नादुउया बटग्राम
वात्सल्य गोत्र पिपिलाई पंच प्रवर
सामवेद कौथुम शाखा चारि सहोदर (बां. सा. इ., पृ. ११७)

इसके अनुसार १४१७ शकाब्द अथवा १४९५-९६ ई० 'मनसा विजय' का रचना-काल है। इस कथा के शिव, गंगा, निरंजन, धर्म, ठाकुर, पार्वती, नारद, मनसा इत्यादि पात्र हैं। लौकिक पात्र चांद सौदागर है जो मनसा का कोपभाजन होकर दुःख उठाता है।

दूसरी प्राप्त प्रति जो खंडित है कवि विजयगुप्त रचित 'मनसा मंगल' है। इसको रामचरण शिरोरत्न ने सम्पादित करके १८९६ ई. में मुद्रित किया था। इस छपी प्रति में कवि का परिचय दिया है।[1] इसके अनुसार कवि सनातन और रुक्मिणी के पुत्र थे और फुल्लश्री ग्राम में रहते थे। सेन[2] ने कुछ खंडित प्रतियों के आधार पर 'वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका' में उल्लिखित रचना काल दिया है परन्तु वे उसे प्रामाणिक नहीं मानते।[3]

तीसरी एक खंडित प्रति प्राप्त है, वह हरिदास रचित 'मनसा मंगल' है। यह प्रति रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

२. **कृष्ण मंगल**—मनसा मंगल काव्य के साथ-साथ कुछ कृष्ण मंगल काव्य भी हैं। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

इस साहित्य की पहली उल्लेखनीय रचना 'श्रीकृष्णविजय' है। इसके 'गोविन्द-विजय', 'गोविन्द मंगल' इत्यादि नामांतर हैं। इसके लेखक मालाधर वसु या गुणराजखान हैं। इस ग्रन्थ का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में चैतन्य देव द्वारा करवाया गया है। वे पंक्तियां निम्न हैं :—

गुणराज खान कैल श्री कृष्ण विजय।
तांहा एक काव्य तांर आछे प्रेममय।

(चै. च., मध्यलीला, परि. १५, पृ. २१३)

श्रीकृष्णविजय की रचना मुख्यतया भागवत के आधार पर हुई है। इसका उल्लेख कवि ने भी किया है।[4] ग्रन्थ में कवि ने उसका रचना काल भी दिया है।

तेरश पचानह शके ग्रंथ आरम्भन
चतुर्दश दुइ शके हैल समापन

(बां. सा. इ., पृ. १०८)

हुसैनशाह के दरबारी कवि 'यशोराजखान' ने एक कृष्ण मंगल काव्य लिखा है, जिसका उल्लेख सत्रहवीं शती की रचना रसमंजरी में मिलता है। इसके लेखक पीता-

---

१. सनातन तनय रुक्मिणी गर्भजात
पश्चिमे घाघर नदी पूर्वे घंटेश्वर
मध्ये फुल्लश्री ग्राम पंडित नगर
हेन फुल्लश्री ग्रामे वसति विजय (बां. सा. इ., पृ. १५०)

२. ऋतु शशी वेद शशी परिमित शक
सुलतान होसेन शाहा नृपति तिलक (बां. सा. इ., पृ. १५०)

३. बां. सा. इ., पृ. १५०

४. भागवत अर्थ जत पयारे बांधिया
लोक निस्तारिते जाइ पांचाली रचिया (बां. सा. इ., पृ. १०८)

म्बरदास ने इस काव्य में से कुछ अंश उद्धृत किए हैं। परन्तु इस काव्य की एक भी प्रति प्राप्त नहीं है। सेन का अनुमान है कि गोविन्ददास के मातामह 'दामोदर' ही 'यशोराज-खान'[1] हैं।

कृष्ण मंगल काव्यों की रचना सोलहवीं शती में ही अधिक हुई।

३. **मसनवी**—मसनवी काव्यों की पद्धति पर रची लौकिक प्रेमगाथाएं भी पाई जाती हैं। यह सूफी सिद्धान्तों से प्रमाणित हैं। दो कवियों द्वारा रची दो प्रेमगाथाएं हैं जिनके दोनों के ही नाम 'विद्यासुन्दर' हैं। एक के लेखक 'श्रीधर' हिन्दू हैं और दूसरे के लेखक 'शाविरिद खां' मुसलमान हैं। हिन्दी पद्मावत के आधार पर रचा 'पद्मावती पांचाली' बाद की रचना है। इसके रचयिता 'आला ओल' थे।

४. **अन्य भक्ति काव्य**—जयानन्द द्वारा उल्लेख किए गए साहित्य के अतिरिक्त अन्य भक्ति संबंधी रचनाएं भी उपलब्ध हैं। कुछ कवियों ने महाभारत की कथाएं लेकर भी रचनाएं की थीं। राजसभाओं में महाभारत का पाठ हुआ करता था। कुछ राजाओं ने अपने आश्रित कवियों से महाभारत के आधार पर स्वतंत्र रचनाएं करवाई थीं। यह रचनाएं जो गेय गाथा काव्य हैं 'भारत-पांचाली' कहलाती हैं। पांचाली पदावली-भिन्न अन्य गेय काव्यों को कहते हैं।

सर्व-प्राचीन-प्राप्त भारत-पांचाली काव्य कवीन्द्र परमेश्वरदास रचित 'पांडव-विजय' है। परमेश्वरदास हुसेनशाह के कर्मचारी 'लश्कर परागल खान' के आश्रित थे। श्री गौरीनाथ शास्त्री द्वारा संपादित मुद्रित प्रति में इस बात का स्पष्ट उल्लेख कवि ने स्वयं किया है।[2] इन परागल खान ने कवि को आदेश देकर 'पांडव-विजय' पांचाली की रचना करवाई। इसका भी उल्लेख है।[3] यह काव्य महाभारत के समान ही अठारह पर्वों में विभक्त है परन्तु आकार उतना नहीं है, जितना महाभारत का।

भारत-पांचाली सम्बन्धी दूसरी रचना 'अश्वमेध पर्व' है। परागल के पुत्र नुसरत खां थे जो 'छुटि खां' के नाम से भी विख्यात थे। ये भी हुसेन शाह के प्रिय कर्मचारी थे और साहित्य में रुचिसम्पन्न थे। ये भी महाभारत की कथा में रुचि रखते थे। इन्होंने अपने सभाकवि श्रीधर नंदी से महाभारत के अश्वमेध पर्व को भाषान्तरित करवाया। काव्य के आरम्भ में कवि ने इन बातों का उल्लेख किया है।

---

१. बां. सा. इ., पृ. २०४।

२. नृपति होसेन शाहा गौड़ेर ईश्वर
तान एक सेनापति
लस्कर परागल-खान महामति
सुवर्ण बसन पाइल अश्व वायुगति
लस्करि विषय पाइ आइलन्त चलिया
चाटिग्रामे चलि आइल [हरषित हइया] (बां. सा. इ., पृ. २२५)

३. तांहार आदेश माला मस्तके धरिल
कवीन्द्र परमेश्वरदास पांचाली रचिल (बां. सा. इ., प. २२६)

लस्कर परागॅल-खानेर तनय
समरे निर्भय छुटि-खान महाशय (बां. सा. इ., पृ. २२७)
संस्कृत भारत ना बूझे सर्व्वजन
मोर निवेदन किछु-शुन कविगण
देशि भाषे एहि कथा करिया प्रचार (बां. सा. इ., पृ. २२९)
ताहान आदेशमाल्य माथे आरोपिया
श्रीकर-नंदी ए कहे पांचाली रचिया (बां. सा. इ., पृ. २२९)

अश्वमेध पर्व का मुद्रित संस्करण श्री दीनेशचन्द्र सेन ने संपादित करके बंगीय साहित्य परिषद् से प्रकाशित किया है।

इन भारत-पांचाली काव्यों के अतिरिक्त एक 'राम-पांचाली' भी प्राप्त है। इसके रचयिता कृतिवास ओझा हैं। यह राम-पांचाली रामायण भी कहलाती है। दीनेशचन्द्र सेन का मत है कि कृतिवास ने इसकी रचना चौदहवीं शती में की थी।[१] सुकुमार सेन इन्हें पंद्रहवीं शती के अन्तिम भाग का व्यक्ति मानते हैं।[२] अनेक हस्तलिखित प्रतियों में कृतिवास की आत्म-जीवन कहानी मिलती है, परन्तु वे सब सर्वांश में समान नहीं हैं। इन सब का संक्षिप्त विवेचन सुकुमार सेन ने किया है।[३] कृतिवासी रामायण सर्वप्रथम मिशन प्रेस से १९०२-३ ई. में मुद्रित हुई। द्वितीय संस्करण का संशोधन जयगोपाल तर्कालंकार ने किया था। कृतिवास की रामायण के बराबर आदर अन्य किसी भी राम-पांचाली ने अब तक नहीं पाया।

पांचाली साहित्य के अतिरिक्त एक रचना 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' है जिसके रचयिता चंडीदास हैं। राधाकृष्ण लीला संबंधी इस रचना ने आगे के साहित्य को बहुत प्रभावित किया चंडीदास की निश्चित जन्मतिथि के विषय में मतभेद हैं। श्री हरिदास इन्हें १३०९ शक अर्थात् १३८४ ईसवी में उत्पन्न बताते हैं।[४] श्रीकृष्ण-कीर्तन न तो सम्पूर्ण रूप से पांचाली काव्य ही है और न महाकाव्य। यह पांचाली काव्य और यात्रा (नाट्य गीत) का मिश्रण सा है। पदों में रची हुई होते हुए भी इनमें प्रबंधात्मकता है। इसमें तीन पात्र कृष्ण, राधा और बड़ायी हैं। 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' काव्य का सर्वप्रथम परिचय हमें बसंत रंजन राय की खोज से प्राप्त हुआ। उन्हें एक खंडित हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी जिसको संपादन करके उन्होंने प्रकाशित किया। प्रकाशित ग्रंथ में बारह खंड और अन्त में राधा-विरह नाम का अंश है। इसके दान खंड और नौका खंड का उल्लेख सनातन गोस्वामी ने किया है। (वै. तो., पृ. २६)।

(ग) संस्कृत का पूर्ववर्ती साहित्य

सोलहवीं शती से पूर्व के प्राप्त साहित्य में भाषा साहित्य की अपेक्षा संस्कृत साहित्य अधिक है। इस साहित्य की कुछ रचनाओं ने हिन्दी और बंगाली दोनों के भाषा

१. बी. आर., पृ. १३३
२. बां. सा. इ., पृ. ९८
३. बां. सा. इ., पृ. ९५
४. गो. वै. सा., पृ. ३०

साहित्यों को समान रूप से प्रभावित किया है। कुछ रचनाएं अवश्य ऐसी हैं जिन्होंने केवल गौड़ीय वैष्णव समाज में ही आदर पाया। यहां उन रचनाओं का उल्लेख किया जा रहा है जो भक्तिधर्म की परम्परा को लेकर चलीं और हिन्दी वैष्णव साहित्य और बंगला वैष्णव साहित्य दोनों की पृष्ठभूमि रहीं। निम्नांकित पांच पुराण, रामायण और गीतगोविन्द ने दोनों स्थानों के साहित्यों पर प्रभाव डाला। शेष ग्रंथ केवल गौड़ देश में समादृत हुए।

पुराण साहित्य

१. **हरिवंश पुराण**—कदाचित् हरिवंश पुराण ही श्रीकृष्ण लीला संबंधी ऐसी सर्वप्रथम रचना है जिसमें श्रीकृष्ण की ब्रज-लीला क्रम-बद्ध रूप में पाई जाती है। इसमें शकटभंग, पूतना वध, दाम बंध, यमलार्जुन भंग, वक्र दर्शन, वृन्दावन प्रवेश, कालीय दमन, धेनुक वध, प्रलम्ब वध, गोवर्धन धारण, गोविंदाभिषेक, हल्लीश क्रीड़ा, वृषभासुर वध, और केशी वध इत्यादि प्रकरण कृष्णलीला संबंधी हैं।

२. **विष्णु पुराण**—विष्णु पुराण ने कृष्ण लीला वर्णन में प्रायः हरिवंश पुराण का ही अनुकरण किया है। परन्तु कुछ नये प्रकरण भी पाए जाते हैं। गर्ग मुनि द्वारा कृष्ण का नामकरण, गोपी प्रेम, गोपी विरह इत्यादि वर्णन विष्णु पुराण में ही पाए जाते हैं। यद्यपि नाम नहीं दिया है पर इसी पुराण में एक गोपी का कृष्ण की विशेष प्रीतिभाजन बताकर उल्लेख किया है।

३. **पद्म पुराण**—पद्म पुराण में कृष्ण लीला का वैसा वर्णन नहीं है जैसा ऊपर दिए गए दोनों ग्रन्थों में। इसमें कृष्ण राधा की नित्य लीला वर्णित है। वृंदावन की स्थिति, रासमंडल की स्थिति, राधा कृष्ण के सखी-सखाओं की उस रास मंडल में स्थिति, इत्यादि का विवरण इस ग्रंथ में मिलता है।

४. **ब्रह्मवैवर्त्त पुराण**—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में प्रमुख गोप-गोपियों की वंशावली और इतिहास ही अधिक दिया गया है। इसमें वर्णित ब्रजलीला में क्रमबद्धता का अभाव-सा है।

५. **भागवत पुराण**—वैष्णव साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव डालने वाली रचना भागवत पुराण है। चैतन्यदेव, वल्लभाचार्य तथा अन्य वैष्णव आचार्यों ने भागवत पुराण के आधार पर अपने मत विशेष के दार्शनिक सिद्धांत, पूजा, उपासना, इष्टदेव इत्यादि लिए। यह ठीक है कि प्रत्येक ने अपने दृष्टिकोण से भागवत को देखा और उसके भाष्य किये। इस ग्रंथ की टीकाएँ 'लघु वैष्णव-तोषिणी', और 'बृहद् भागवतामृत' नाम से रूप गोस्वामी ने कीं। श्रीधर स्वामी की भी एक टीका प्राप्त है। केवल एक स्कंध की टीका भी 'दशम स्कंध टीका' के नाम से प्राप्त है। यह अत्यन्त विख्यात रचना है। इसमें पीछे की रचनाओं की अपेक्षा कृष्ण की किशोर लीला में कुछ नये प्रसंग भी जोड़ दिए गए हैं। तृणासुर वध, गोवत्स हरण, दावाग्नि मोचन, दावानल पान, वस्त्र-हरण, ब्राह्मण पत्नियों को उपदेश, सुदर्शन मोक्ष, शंख चूड़, और व्योमासुर वध लीला के साथ कृष्ण की रासलीला संबंधी पांच अध्याय हैं। इनमें कृष्ण का गोपियों के साथ विहार वर्णित है। इस ग्रंथ में कृष्ण के सखाओं के नाम भी दिए हैं। इस पुराण के उद्धरण कृष्णदास ने 'चैतन्यचरितामृत' और वन्दावनदास ने 'चैतन्य-भागवत' में दिए हैं।

रामायण---वाल्मीकीय रामायण---सोलहवीं शती के पूर्व के भक्ति साहित्य में कृष्ण लीला संबंधी रचनाएँ ही अधिक हैं। राम साहित्य अपेक्षाकृत कम है। वाल्मीकीय रामायण राम-कथा की प्राचीनतम प्रसिद्ध रचना है। रामकथा संबंधी भाषा रचनाओं को इस ग्रंथ का आभार मानना ही पड़ता है।

भक्ति दर्शन साहित्य

१. **श्री ब्रह्म-संहिता**---श्री चैतन्य देव ने यात्रा में दो ग्रंथ देखे थे[१], और वे उन दोनों ग्रंथों को वहां से बंगाल लाए थे। उनमें से एक ग्रंथ ब्रह्म संहिता है[२]। उनकी शिक्षायें इन दोनों ग्रंथों में से ली गई थीं। कहा जाता है कि वे जब राय रामानन्द से तत्त्व-ज्ञान और भक्ति संबंधी चर्चा कर रहे थे, तब अपनी भक्ति-भावना बताते हुए उन्होंने ये दोनों ग्रंथ उन्हें दिखा कर कहा था कि सब कुछ इसमें दिया है[३]। ब्रह्म-संहिता तत्त्व-सिद्धांत संबंधी संस्कृत-ग्रंथ है। श्री जीव गोस्वामी ने इसकी एक टीका की थी। कहा जाता है कि विश्वनाथ चक्रवर्ती ने भी इसकी एक टीका की। परन्तु अब वह अप्राप्य है। इस ग्रंथ में संक्षेप में भक्ति-सिद्धांतों की विवेचना की गई है। इसके सब अध्याय अब नहीं मिलते[४]। इसमें प्रधानतः धाम तत्त्व, कामबीज, काम गायत्री तात्पर्य, चतुर्व्यूह, माया, योगमाया, शब्द ब्रह्म, गायत्री, नारायण, माधुर्यमय श्रीकृष्ण आदि तत्त्व, कर्मज्ञान-योग विचार, श्रुति स्मृति विचार, शक्ति तत्त्व, स्वकीय, पारकीय, ध्यानयोग, पंचोपासना---सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णु,---निर्विशेष ब्रह्म, विधि महेन्द्र, नित्य मुक्त और नित्यबद्ध जीव, विष्णु तत्त्व और अवतार, लीला वैचित्र्य, देवलोकों का संबंध, कर्मफल, भजन, शरणागति, भक्ति इत्यादि की सुन्दर व्याख्या की गई है। "ब्रह्मसंहिता" का नाम देकर इसमें से उद्धरण कृष्णदास कविराज ने अपनी रचना "चैतन्यचरितामृत" में दिए हैं।[५]

२. **कर्णामृत**---यह दूसरा ग्रंथ है जिसे चैतन्य देव दक्षिण से लाए थे। उनकी भजन, शिक्षा और कीर्तन इत्यादि का आधारभूत यही ग्रंथ है। इसके रचयिता दक्षिण भारत वासी श्री बिल्वमंगल हैं। यह ग्रंथ संस्कृत में है और इसके भाव अत्यंत सरल और ऊँचे हैं। भाषा सुललित और मधुर है। कविराज कृष्णदास ने अपने ग्रंथ "चैतन्यचरितामृत" में इसका उल्लेख किया है।

---

१. ब्रह्म संहिता, कर्णामृत दुइ पुंथि पाआ। (चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६१)

२. महाभक्तगण सह तांहा गोष्ठी कैल। ब्रह्मसंहिताध्याय पूंथि तांहा पाइल ॥
बहुयत्ने सेइ पुंथि लइल लिखिया। (चै. च. मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६५)

३. तीर्थ यात्रा कथा प्रभु सकल कहिला। कर्णामृत ब्रह्मसंहिता दुइ पुंथि दिला ॥
प्रभु कहे तुमि जे प्रेम सिद्धान्त कहिले। एइ दुइ पुस्तके सेइ सब साक्षी दिले ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६८)

४. श्री हरिदास के कथनानुसार। उन्होंने इसके पंचम और चतुर्दश अध्याय मात्र देख पाए हैं। उनका कथन है कि इसके शताध्यायों में से केवल ये ही दो अध्याय दृष्टिगोचर हैं (गौ. वै. सा., पृ. १६)

५. चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११ और १६।

कर्णामृत सम वस्तु नाहि त्रिभुवने ।
जाते हैते हय शद्ध कृष्ण प्रेम ज्ञाने ।।
सौन्दर्य माधुर्य कृष्ण लीलार अवधि ।
से जाने जे कर्णामृत पड़े निरवधि ॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६८)

चैतन्यदेव इसका पाठ करते थे, इस बात का भी उल्लेख चैतन्यचरितामृत में है। कृष्णदास कविराज ने "सारंगरंगदा" नाम से इसकी टीका की थी। इसके अतिरिक्त दो अन्य टीकाएं हैं। एक तो श्री गोपाल भट्ट की "कृष्णवल्लभा" टीका और दूसरी चैतन्यदास की "सुबोधिनी" टीका। यह दोनों ढाका विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुई हैं। श्री यदुनन्दन राय का पद्यानुवाद भी राधारमण यंत्रालय बरहमपुर से प्रकाशित हुआ है।

कृष्णदास कविराज की टीका के अनुसार इस ग्रंथ के निम्न विषय हैं :—

१. श्लोक—मंगलाचरण
२. श्लोक—वस्तु निर्देश
३. श्लोक—लीला का आत्मप्रवेशानुभव
४— २१. श्लोक—स्फूर्ति प्रार्थना
२२. श्लोक—आत्म निश्चय
२३— ५५. श्लोक—दर्शन, प्रार्थना
५६— ६०. श्लोक—साक्षात्कार भ्रम
६१— ६७. श्लोक—पुन: दर्शन की उत्कंठा
६८— ९५. श्लोक—साक्षात्कार के अनन्तर भगवद्‌रूप एवं मन की स्थिति वर्णन
९६—११२. श्लोक—श्रीकृष्ण से उक्ति-प्रत्युक्ति ।

स्तोत्र ग्रंथों में कर्णामृत का स्थान सर्वोच्च है। इसके श्रीकृष्ण माधुर्य रस के आश्रय हैं। वे शृंगार रस के सर्वस्व, शिखि-पुच्छ-विभूषित अंशावतार हैं। वे गोपियों से केलि करने वाले हैं। गोपीवस्त्रहरण का भी इसमें वर्णन है।

३. **मुक्ताफल**—महाराष्ट्र देशवासी वोपदेव ने "मुक्ताफल" की रचना १३वीं शती में की। सब मिला कर इसमें प्राय: ८०० श्लोक हैं। परन्तु ये श्लोक कवि की अपनी रचना नहीं हैं। इन्होंने "विष्णु-भक्ति" का विवेचन और उल्लेख करने वाले भागवत के श्लोक लेकर शृंखलाबद्ध कर दिए हैं। प्रारम्भ में ५ और अन्त में ६ श्लोक इनकी अपनी रचनाएं हैं। भागवत के समस्त श्लोक मुख्यत: तीन भागों में रक्खे गए हैं :—(१) उपास्य, (२) ससाधनोपास्ति, (३) उपासक। इन तीनों मुख्य विभागों को फिर चार चार प्रकरणों में बांटा है।

१. विष्णु प्रकरण—१ से ४ अध्याय तक। इसमें विष्णु के लक्षण, विष्णु का रूप, अवतार, अधिष्ठान इत्यादि का वर्णन है।

२. विष्णुभक्ति प्रकरण—५ से ६ अध्याय तक। इसमें विष्णु-भक्ति के लक्षण, भेद और महिमा का वर्णन है।

३. विष्णु भक्त्यंग वर्ण प्रकरण—७ से १० अध्याय तक। इसमें भक्ति के अंग सदाचार, श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि का वर्णन है।

४. विष्णु भक्त प्रकरण—११ से १९ अध्याय तक। इसमें विष्णुभक्तों के लक्षण, भेद, और भक्ति रस का विवेचन है।

मुक्ताफल का उल्लेख वंगीय गौड़ीय वैष्णव समाज में बहुत हुआ है। श्री सनातन गोस्वामी ने भागवत की वैष्णव-तोषिणी टीका में मुक्ताफल की बोपदेव कृत टीका का उल्लेख किया है।[1] श्री हरिभक्ति-विलास में भी इसका उल्लेख आया है।[2] श्री जीव गोस्वामी ने भी तत्त्व-संदर्भ में इस ग्रंथ का उल्लेख किया है।[3] इस प्रकार मुक्ताफल ने गौड़ीय वैष्णव धर्म पर प्रभाव डाला था, ऐसा ज्ञात होता है। सनातन और जीव गौड़ीय वैष्णव धर्म के आचार्य थे।

४. विष्णुभक्ति-रत्नावली—विष्णुभक्ति-रत्नावली संग्रह ग्रंथ है। श्री विष्णुपुरी ने भागवत से श्लोकों का संग्रह करके विष्णु भक्ति को दर्शाया है। आरम्भ में और अन्त में कुल मिला कर ८ श्लोक इनकी अपनी रचना हैं। इन्हें छोड़ कर २ श्लोक (३।३२, ५।४५) हरिभक्ति सुधोदय ग्रंथ के हैं और ४ श्लोक (१।८१, १।१०५, ४।२९, ५।५०) अन्य पुराणों के हैं। इसमें सब मिला कर १३ विरचन हैं जिनका विवरण निम्न है :—

प्रथम विरचन—मंगलाचरण, ग्रंथ प्रयोजनादि निर्देश, भक्ति के सामान्य लक्षण।

द्वितीय विरचन—सत्संग।

तृतीय विरचन—नवविध भक्ति।

चतुर्थ से बारह विरचन—श्रवण, आत्मनिवेदन इत्यादि भक्ति के प्रकार।

तेरहवां विरचन—शरणागति एवं ग्रंथकर्त्ता का निवेदन।

ग्रंथकार ने इस संग्रह ग्रंथ की टीका स्वयं ही "कांतिमाना" नाम से की है। इस ग्रंथ का उल्लेख कई पीछे के वैष्णव कवियों ने किया है।

१. वैष्णव-वन्दना—देवकीनन्दन कृत।

विष्णुपुरी गोसाईं बन्दो करिया जतन
विष्णु भक्ति . . . . रत्नावली जांहार ग्रंथन।

२. श्री गौर-गणोद्देश-दीपिका—कवि कर्णपुर कृत।

श्रीमद् विष्णुपुरी यस्य भक्तिरत्नावली कृतिः ॥२२॥

३. भक्ति-रत्नाकर—श्री नरहरि चक्रवर्ती कृत।

जय धर्म मुनि तांर अद्भुत चरित। इंहार गणेते विष्णुपुरी शिष्य हैल।
भक्तिरत्नावली ग्रंथ प्रकाश करिल।५।२१४४।

४. तत्त्वसंदर्भ—श्री जीव कृत। इसके २३वें अनुच्छेद में इस ग्रंथ को निबन्ध ग्रंथों में रक्खा गया है।

---

१. वै. तो. १०।३१।१
२. ह. भ. वि., ११।२३६।३७९, ३८०
३. त. सं., २३–२६।

५. **श्रीमद्भागवत टीका**—श्रीधर स्वामी ने समस्त भागवत की टीका की थी। श्री चैतन्य देव का भागवत से परिचय इसी टीका के द्वारा हुआ था। आगे चल कर उन्होंने केवल उन्हीं टीकाओं को प्रामाणिक माना जो इस टीका के अनुकूल थीं। अतः सनातन और जीव गोस्वामी ने इसी के अनुरूप ही भागवत की व्याख्यायें की थीं। चैतन्य-चरितामृत में उल्लेख है—

श्रीधरस्वामी प्रसादे ते भागवत जानि। जगद्गरु श्रीधर स्वामी गुरु करि मानि॥
श्रीधरेर अनुगत जे करे लिखन। सब लोक मान्य करि करये ग्रहण॥

(चै. च., अन्त्यलीला, परि. ७, पृ. ३७४)

इस टीका से विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की भावनायें प्रकट होती हैं। इसमें भक्ति, भगवान और भक्त की अनित्यता, जीव ईश्वर का पार्थक्य, मुक्ति, चेतन अचेतन के प्रसंग से परमात्मा का अपादानत्व, निर्भेद मुक्ति की निन्दा और श्रवण कीर्त्तन इत्यादि की विवेचना की गई है।

६. **नामकौमुदी**—इसके रचयिता लक्ष्मीधर हैं। इस ग्रंथ में तीन परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में मीमांसा का अवलम्बन लेकर नाम के माहात्म्य को बताने वाले पुराणों के वचनों पर विचार करके 'नाम' को पापक्षय के लिए संपूर्ण रूप से समर्थ बताया है। केवल नाम-संकीर्त्तन पापों का नाश करने वाला है अथवा यह भी अन्य कर्मकांड का एक अंग होकर पापों से मुक्ति दिलाने वाला है। इसकी विवेचना करके केवल नाम-संकीर्त्तन की स्वतंत्रता मुक्ति दिलाने में द्वितीय परिच्छेद में बताई गई है। तीसरे परिच्छेद में मुक्ति की विवेचना की गई है। साधन भक्ति अथवा रागानुगा भक्ति इन दोनों में से कौन वरेण्य है इसका उल्लेख किया गया है। भक्ति के आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, सब की व्याख्या की गई है और नाम संकीर्त्तन को सर्वश्रेष्ठ बताया है। चैतन्य देव के "नाम संकीर्त्तन" प्रचार को इस 'नाम कौमुदी' से बहुत प्रेरणा मिली। नाम संकीर्त्तन के माहात्म्य को दर्शाने वाले ग्रंथों ने 'नामकौमुदी' के प्रमाण दिए हैं।

लीला एवं गीत साहित्य

१. **श्रीकृष्णलीलामृत**—इसके रचयिता ईश्वरपुरी हैं। "श्रीकृष्णलीलामृत" के विभिन्न नाम मिलते हैं। "श्री श्री राधाकृष्ण लीला" कर के मराठी गाथा सप्तशती में और "रुक्मिणी स्वयंवर" करके उज्ज्वल-नीलमणि में उल्लेख है। श्री रूप गोस्वामी ने दो श्लोक उज्ज्वल-नीलमणि में दिए हैं और ग्रंथ का नाम "रुक्मिणी स्वयंवर" दिया है। सात्विक प्रकरण (१२।१२, १७) में मधुर भाव की भक्ति को ही प्रधानता दी गई है। वृन्दावनदास ने चैतन्य-भागवत में ईश्वरपुरी का उल्लेख करके कहा है कि उन्होंने अपनी रचना श्रीकृष्णलीलामृत गदाधर पंडित को पढ़ाई थी। वह उद्धरण निम्न है—

गदाधर पंडितेर आपनार कृत।
पुथि पढ़ायेन नाम कृष्णलीलामृत।

२. **गीतगोविंद**—इस प्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता जयदेव हैं। यह गीतकाव्य कृष्ण-राधा की मधुर लीला संबंधी रचना है। इसकी कोमलकांत पदावली सुरताल से संयुक्त है। इसके बारह सर्ग हैं।

प्रथम सर्ग "सामोद दामोदर" में वसंत काल की सुषमा का वर्णन है और विरहिणी राधा की वसंत में दशा का वर्णन है।

द्वितीय सर्ग "अक्लेश केशव" में विरह-क्षीणा अपितु मर्यादाशीला राधा का वर्णन है। गोपियों के साथ रास में लीन कृष्ण का वे गुणगान करती हैं।

तृतीय सर्ग 'मुग्ध मधुसूदन' में राधा के लिए श्रीकृष्ण की उत्कंठा का वर्णन है। वे पश्चात्ताप करते हुए राधा का गुणगान करते हैं।

चतुर्थ सर्ग 'स्निग्ध मधुसूदन' में कुंज के अन्दर बैठे श्रीकृष्ण से राधा की सखी राधा की विरह दशा वर्णन करके उन्हें राधा से मिलने की प्रेरणा करती है।

पंचम सर्ग 'साकांक्ष पुंडरीकाक्ष' में सखी कृष्ण का संदेश राधा के पास ले जाती है।

छठे सर्ग 'धृष्ठवैकुंठ' में राधा की वासकसज्जा नायिका की दशा का वर्णन है।

सप्तम सर्ग 'नागर नारायण' में राधा को विप्रलम्भा नायिका के रूप में दिखाया गया है।

अष्टम सर्ग 'विलक्षम लक्ष्मी' में राधा की खंडिता नायिका की दशा का वर्णन है।

नवम सर्ग 'मुग्ध मुकुन्द' में कलहांतरिता नायिका के रूप में राधा का वर्णन है।

दशम सर्ग 'मुग्ध माधव' में मानिनी राधा का और कृष्ण की अनुनय विनय का वर्णन है।

एकादश सर्ग 'सानंद गोविंद' में राधा का चित्रण अभिसारिका के रूप में है।

द्वादश सर्ग 'सुप्रीति पीताम्बर' में राधा-कृष्ण की क्रीड़ा और मिलन का वर्णन है।

जयदेव कृत गीत-गोविन्द अत्यन्त प्रसिद्ध संस्कृत गीति-काव्य है। इसका इतना विवरण देने का प्रयोजन विशेष है। बंगला पदावली में "द्वादश अंग" नाम से प्राप्त जो विभिन्न रस-विभाजन हैं, वे इन्हीं सर्गों के वस्तुविन्यास के अनुकरणरूप हैं। 'रूपानुराग', 'स्वयं दौत्य', 'दुर्जय मान', 'वासक सज्जा', 'कलहांतरिता', 'खंडिता' इत्यादि समस्त शीर्षकों में राधा-कृष्ण सम्बन्धी पदावली मिलती हैं। इसके अतिरिक्त गीतगोविन्द के अनुकरण पर गीत काव्यों की रचना भी हुई, जिनमें निम्न मुख्य हैं[1]:—

१. पुरी के अधिपति प्रतापरुद्र कृत 'अभिनव-गीतगोविन्द'

२. प्रकाशानन्द सरस्वती कृत 'संगीत-माधव'

३. चतुर्भुज कृत 'गीत-गोपाल'

राम-काव्य में भी 'गीत-गोविन्द' के अनुकरण पर रचनाएं हुईं। कुछ मुख्य कृतियों के नाम निम्न हैं :—

१. श्री हरि आचार्य कृत 'जानकी-गीत'

२. श्री हरि शंकर कृत 'गीत-राघव'

३. गयादीन कृत 'रामगीत-गोविन्द'

४. प्रभाकर कृत 'गीत-राघव'

उद्धरण ग्रंथ—यहां पर कुछ ऐसे ग्रंथों की नामावली दे देना भी समीचीन जान पड़ता

---

१. गौ. वै० सा०, पृ. २१.

है जिनका नाम देकर या तो उनसे प्रमाण-वाक्य उद्धृत किए गए हैं अथवा कुछ अन्य उद्धरण लिए गए हैं। किसी सिद्धांत को रख कर उसे सिद्ध करने के लिए अपने से पहले रचे धर्म-ग्रंथों से प्रमाण-वाक्य देना बंगाली वैष्णव समाज की प्रथा-सी जान पड़ती है। "चैतन्यभागवत", "चैतन्यचरितामृत" और रूप गोस्वामी की रचनाओं में इस प्रकार के उल्लेख और ग्रंथों के नाम भी पाए जाते हैं।

१. **केशव-चरित**—रूप गोस्वामी कृत 'नाटक चन्द्रिका' में पृष्ठ १२ पर उसका उद्धरण नाम देकर दिया है।

२. **हरि-विलास**—रूप गोस्वामी कृत "नाटक चन्द्रिका' में पृष्ठ ११ पर नाम देकर उद्धरण दिया है।

३. **गोविन्द-विलास**—रूप गोस्वामी कृत 'उज्ज्वल-नीलमणि' में स्थायिभाव प्रकरण में नाम देकर उद्धरण दिया है।

४. **पद्मपुराण**—वृंदावन दास कृत "चैतन्य-भागवत" में आदिखंड, अ० २, पृष्ठ १८ पर उद्धृत।

५. **वाराह पुराण**—वृंदावन दास कृत "चैतन्य-भावगत" में आदिखंड, अ० १४, पृष्ठ ९४ पर उद्धरण है।

६. **गीता**—वृंदावनदास कृत "चैतन्य-भागवत" में आदिखंड, अ० १५, पृष्ठ ९५ पर नाम और उद्धरण।

७. **जैमिनी-भारत**—वृंदावन कृत "चैतन्य-भागवत" में मध्यखंड, अ० १, पृष्ठ १०५ पर नाम और उद्धरण।

८. **अनंत-संहिता**—वृंदावनदास कृत "चैतन्य-भागवत" में आदिखंड, अ० १, पृष्ठ ९ पर नाम और उद्धरण।

९. **श्रीधर स्वामी कृत भागवत-व्याख्या**—कृष्णदास कृत "चैतन्य-चरितामृत" में आदिलीला, परि० २, पृष्ठ १३ पर नाम और उद्धरण।

१०. **भावार्थ-दीपिका**—कृष्णदास कृत "चैतन्य-चरितामृत" में आदिलीला, परि० ३, पृष्ठ १६ पर नाम और उद्धरण।

११. **हरिभक्ति-विलास**—कृष्णदास कृत "चैतन्य-चरितामृत" में आदिलीला, परि० ४, पृष्ठ २० पर नाम और उद्धरण।

१२. **गोविंद-लीलामृत**—कृष्णदास कृत "चैतन्य-चरितामृत" में आदिलीला, परि० ४, पृष्ठ २६ पर नाम और उद्धरण।

इन अत्यन्त प्राचीन प्रख्यात रचनाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी रचनाएँ भी प्राप्त हैं जो पंद्रहवीं शती में रची गयीं। श्री सुकुमार सेन ने इस रचनाओं की नामावली दी है,[1] जो नीचे दी जाती है।

१. श्रीधर स्वामी कृत **व्रजविहारी**

२. वेदांत देशिक कृत **यादवाभ्युदय**, रचनाकाल १२६८–१३६६ ई.

३. रामचन्द्र भट्ट कृत **गोपाल लीला**, पन्द्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध

1. **Brajbuli, P. 485.**

४. **हरि-विलास**

५. श्रीराम कृत **कंस-निधन** महाकाव्य

६. चतुर्भुज कृत "**हरिचरित काव्य**", १४९३ ई.

७. शंकराचार्य कृत **कृष्णविजय**

८. व्रज-लोलिम्ब-राज्य कृत "**हरि-विलास काव्य**"

९. पद्मनाभ कृत "**गोपाल-चरित**"

१०. कृष्ण भट्ट कृत "**मुरारि-विजय**" नाटक

गौड़ीय वैष्णव साहित्य की परंपरा में सोलहवीं शती से पहले का जो संस्कृत साहित्य प्राप्त है वह सब का सब बंगालियों द्वारा ही रचा नहीं है। जयदेव को बंगाली सिद्ध किया जाता है। दो संग्रह ग्रंथ हैं जिनमें बंगाली रचयिताओं के स्फुट काव्यों का संग्रह है।[१] इन संग्रह ग्रंथों के नाम और उन कवियों के नाम जिन्हें वे बंगाली बताते हैं दिए जा रहे हैं :—

१. सदुक्ति कर्णामृत (१२०४ ई.)—इसके संग्रहकार श्रीधर दास हैं। इसमें जिन संस्कृत के कवियों की रचनाएँ संगृहीत हैं उनमें से दिवाकर दत्त, उमापति धर, भट्टपालीय पीताम्बर, केशरकोलीय, नाथोक और शरण बंगाली बताए गए हैं।

२. पद्यावली—इसके संग्रहकार श्री रूप गोस्वामी हैं। इसमें जिन संस्कृत कवियों की रचनाएँ दी हैं उनमें से पुरुषोत्तम आचार्य, माधव, चक्रवर्त्तिन्, जगन्नाथ सेन, गोवर्धनाचार्य, जगदानंद राय, संजय कविशेखर, केशव भट्टाचार्य, षष्ठीवरदास, रामचन्द्रदास, मुकुंद भट्टाचार्य, केशव छत्रिन्, और गोविन्द भट्ट बंगाली हैं।

---

1. Brajbuli, P. 486.
2. Brajbuli, P. 486.

२. राजनीतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि

सोलहवीं शती की एक रचना "चैतन्य-मंगल" है। इसके लेखक जयानंद हैं। इन्होंने अपनी रचना में चैतन्य के जन्म के समय की नदिया की दुर्दशा का थोड़ा-सा परिचय दिया है। उस समय डाके और चोरी बढ़ गए थे। हिंदुओं पर यवनों के अत्याचार भी बहुत हो रहे थे। राजा हुसेन शाह ब्राह्मणों को पकड़ कर उनकी जाति और प्राण दोनों ले लेता था। जिसके घर से शंख की ध्वनि आती सुनी जाती थी उसके धन और प्राण दोनों का अपहरण कर लिया जाता था और जाति ले ली जाती थी। जिसके माथे पर तिलक और कंधे पर जनेऊ देखा जाता था उसका घर-द्वार लूटकर उसे लौह-पाश में बांध दिया जाता था। मंदिर तोड़े जाते थे और तुलसी के वृक्ष उखाड़े जाते थे। गंगा स्नान का भी विरोध किया जाता था। अश्वत्थ और पनस के वृक्ष काट दिए जाते थे[1]। इस प्रकार की अराजकता और राजा की अनीतियों का कुछ दिग्दर्शन तुलसी ने भी कराया है। राज समाज में प्रतिदिन नई नई कुचालों और कलुष की कल्पनायें की जाती थीं।[2]

तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में कलियुग का जो विवरण दिया है वह उनके समय की सामाजिक दशा ही है। उत्तरकांड में कागभुशुंडि गरुड़ से कलियुग का विवरण देते हैं। वे कहते हैं कि कलियुग में वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जाता है। सब स्त्री पुरुष श्रुति-विरोधी हैं। ब्राह्मण श्रुति के बेचने वाले हो गए हैं, राजा प्रजा में भेद नहीं है। कोई भी शास्त्रों की व्यवस्था नहीं मानता। जिसको जो अच्छा लगता है वह उसे ही श्रेष्ठ मार्ग मानता है। केवल बकवाद करने वाला ज्ञानी माना जाता है। संत नहीं रह गए। मिथ्यावादी और दंभी को संत माना जाता है। जो आकारहीन और श्रुति-पथ का त्याग करने वाला है वह कलियुग में ज्ञानी और वैरागी कहलाता है। ब्रह्म ज्ञान का दुरुपयोग किया जाता है। साधारण जनता ब्रह्म ज्ञान को छोड़ कर अन्य कोई बात ही नहीं करती। लोग थोड़े से धन के लिए ब्राह्मण और गुरु को धोखा देते हैं। शूद्र बाह्मणों की बराबरी करते हैं। वास्तविक

---

१. निरवधि डाका चुरि अरिष्ट देखिञा। नाना देशे सर्व्वलोक गेल पलाइञा।
आचम्बिते नवदीपे हैल राज-भय। ब्राह्मण धरिञा राजा जाति प्राण लय।।
नवद्वीपे शंखध्वनि शुने जार घरे। धन प्राण लय तार जाति-नाश करे।।
कपाले तिलक देखे यज्ञसूत्र कांधे। घर-द्वार लोटे तार लौह-पाशे बांधे।।
देउल देहरा भांगे उपाड़े तुलसी। प्राण-भये स्थिर नहे नवद्वीप वासी।।
गंगा स्नान निरोधिल हाट घाट जत। अश्वथ पनस वृक्ष काटे शत शत।।
चै. मं. (वं. सा. प., पृ. ११६४)

२. राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति हेतु वाद हठि हेरि हई है।
(तु. ग्रंथ, खंड २, वि. प., पृ. ५३३)

संन्यासी कोई नहीं है। नीच जाति के लोग, अथवा जिनकी पत्नियां मर गई हैं अथवा धन नष्ट हो गया है, सिर मुड़ा कर संन्यासी हो जाते हैं और यह संन्यासी ब्राह्मणों से अपनी पूजा करवाते हैं। इस प्रकार के संन्यासी का वेश अमंगलकारी और बीभत्स होता था[१]। वे भक्ष्य अभक्ष्य सब खाते थे और सब जगह खाते थे[२]।

समाज में भौतिकता और विलासिता बढ़ गई थी। व्यक्तिगत आचरण दूषित हो गए थे।[३] लोग अपना समय केवल ऊपरी व्यवहारों और देवताओं की पूजा में लगाते थे[४]।

---

१. बरन धर्म नहिं आस्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहुं जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुं संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी सो बिरागी॥
ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि मोह बस, करहिं विप्र गुर घात॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि दिखावहिं डांटि॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह सम्पति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥
ते विप्रन्ह सनु आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
असुभ भेस भूषन धरे, भक्ष्याभक्ष्य जे खाहिं।
तेइ योगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं। (रा. च. मा., उ. ४३-४४, पृ. ५४२)

२. माधो या घर बहुत धरी।
बारह बरस कै भयो दिगम्बर ज्ञानहीन संन्यासी।
खान पान घर घर सब ही के, भसम लगाय उदासी॥ (परमानंद दास का एक पद)

३ (क) कलि काल बिहाल किये मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा।
नहिं तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मंगता॥
इरिषा परुषोच्छर लोलुपता। भरिपूरि रही समता विगता॥
(रा. च. मा., उ. १०२, पृ. ५४४)

(ख) गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी विभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना॥
(रा. च. मा., उ. ९९, पृ. ५४३)

४. (क) रमादृष्टि पाते सर्व्वलोक सुखे वसे। व्यर्थ काल जाय मात्र व्यवहार रसे॥
(ख) वाशुली पूजये केह नाना उपहारे। मद्य मांस दिया केह यज्ञ पूजा करे॥
(चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

उनकी प्रतिमा बनाने और पुत्र कन्या के विवाह में धन को व्यर्थ खर्च करते थे।[१] ब्राह्मणों और अध्यापकों में ज्ञान और अध्ययन की नितान्त कमी थी।[२] लोग ऊंचे नीचे सब प्रकार के कर्म केवल पेट भरने के लिए करते थे।[३] देश में डाके-चोरी बहुत हो रहे थे।[४] कुछ उद्धरण यहां दिए जा रहे हैं।

---

१. दंभ करि विषहरी पूजे कोन जन। पुत्तलि करये केह दिया बहुधन।
धन नष्ट करे पुत्र कन्यार विभाय। एह मत जगतेर व्यर्थ काल जाय।
(चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

२. (क) जेवा भट्टाचार्य चक्रवर्ती मिश्र सब। ताहारह ना जानये ग्रंथ अनुभव।
शास्त्र पड़ाइया सबे एह कर्म्म करे। (चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

(ख) विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषलो स्वामी॥
(रा. च. मा., उ. १००, पृ. ५४४)

(ग) माधो या घर बहुत धरी।
पाखंड दंभ बढ़्यो कलियुग में, श्रद्धा धर्म भयो लोप॥
परमानंद वेद पढ़ि बिगरयो, का पर कीजे क्रोध॥
(परमानन्द दास का एक पद) (अष्ट. व. स., पृ. ३६)

३. ऊंचे नीचे करम धरम अधरम करि
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी॥ (तु. ग्रंथ, खंड २, क. व., उ. ९६, पृ. २२५.)

४. निरवधि डाका चुरि अरिष्ट देखिञा।
नाना देशे सर्व्व लोक गेल पराइयञा। (ब. सा. प., चै. मं., पृ. ११६५)

३. धार्मिक पृष्ठभूमि

सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध की रचनाओं जैसे "चैतन्य-मंगल" और "चैतन्य-भागवत" में तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण है। वह वास्तव में समस्त बंगाल और उत्तर प्रदेश अर्थात् बंगाली और हिन्दी वैष्णव समाज के धर्म और उस समय प्रचलित अन्य धर्मों का, जिन्हें वास्तव में 'मत' कहना चाहिए, चित्रण है। हिन्दीभाषा-भाषी वैष्णव समाज में जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें उतना अधिक विवरण तो नहीं मिलता परंतु कुछ झलक मिल जाती है।

सोलहवीं शता से पहले उत्तर प्रदेश में भक्ति धर्म का स्वरूप कदाचित् अवैष्णवीय अधिक मात्रा में था। धर्म ने लोक-धर्म का रूप छोड़ कर व्यक्तिगत साधना का रूप ले लिया था। कदाचित् इसीलिए उसमें दिखावा बहुत आ गया था। जो पंथ चल रहा था, उसमें अनेक वाद मिले थे। वल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथ कृष्णाश्रय में कहा है :—

नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु।
पाषंडैक-प्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥

अर्थात् नाना प्रकार के वादों के कारण संपूर्ण कर्म और व्रत इत्यादि विनष्ट हो गए हैं। केवल पाखंड के लिए तमाम धर्म-कर्म किए जाते हैं। ऐसे समय में कृष्ण ही मेरी गति हैं।

इस श्लोक से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य के समय तक जो धार्मिकता चली आ रही थी वह अधिकांशतः वैष्णवों की धार्मिक भावना से भिन्न थी। जभी वे लोग उन मतावलंबियों के व्रत-कर्म इत्यादि को पाखंड बताते हैं; इसमें प्रच्छन्न रूप से इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि कृष्ण इष्टदेव के रूप में कम लोगों को ही मान्य थे। वैसे यह 'पाखंड'-संयुक्त धर्म क्या था इसका विस्तृत विवरण उन्होंने नहीं दिया है।

परमानंददास ने अपने एकपद में कुछ अधिक स्पष्ट करके इस 'पाखंड' की रूप-रेखा बताई है। वह पद निम्न है :—

माधो या घर बहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन को प्रेम न हो तो, अरु भागवत पुरान।
तो सब औघड़पंथहि हो तो, कथत गमैया ज्ञान॥
बारह बरस कौ भयो दिगम्बर, ज्ञानहीन संन्यासी।
खान पान घर घर सब हिन के, भसम लगाय उदासी॥
पाखंड दम्भ बढ़यो कलियुग में, श्रद्धा धर्म भयो लोप।
परमानंद वेद पढ़ि बिगरचो, का पर कीजै कोप॥

इस पद में परमानंददास स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कलियुग में पाखंड दम्भ बढ़ा है और 'श्रद्धा धर्म' लोप हो गया है। श्रद्धा धर्म से उनका तात्पर्य भक्ति-प्रधान धर्म से है। ज्ञान- और कर्म-प्रधान धर्म के फलस्वरूप लोगों में संन्यास लेने की प्रवृत्ति खूब थी, इसका भी

निर्देश मिल जाता है। बारह बरस के बालक भसम लगाकर उदासी और ज्ञानहीन संन्यासी बन जाते थे। परमानंद यह कहकर चुप हो जाते हैं कि सब लोग वेद पढ़कर बिगड़े हैं, क्रोध किस पर किया जाय :—

तुलसीदास की रचनाओं में तत्कालीन अवैष्णवीय मतों का अधिक स्पष्ट रूप में उल्लेख है। विनय पत्रिका में वे कहते हैं :—

राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु-बाद हठि हेरि हई है ॥
आश्रम-बरन-धरम-बिरहित जग लोक-बेद-मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप रत अपने अपने रंग रई है ॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥ इत्यादि ॥

(तु. ग्रं., खंड २, वि. प., पद १३९, पृ. ५३३)

इसमें तुलसीदास भी यही कहते हैं कि देश आश्रम-धर्म-विहीन हो गया है और वेद की मर्यादा चली गई है। बारह बरस के बालक का संन्यास लेना आश्रम धर्म की व्यवस्था के प्रतिकूल ही चलना है।

दूसरी बात जो इन दोनों कवियों की ऊपर दी पंक्तियों से ज्ञात होती है वह यह है कि उस समय जो वाद या मत चल रहे थे वे इन दोनों की दृष्टि में अवैदिक थे। अवैदिक होने से इनका क्या तात्पर्य था, यह कहना कठिन है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तर कांड में जहां कागभुशुंडि से कलि-धर्म कहलाया है उसमें तात्कालीन धार्मिक दशा का चित्रण है। उस समस्त विवरण में दी कलियुग में प्रचलित धर्म की रूप-रेखा कुछ इस प्रकार है—

१. कलियुग में चारों आश्रमों की व्यवस्था नष्ट हो गई है। सब स्त्री-पुरुष श्रुति-विरोधी कार्य करते हैं। वर्णाश्रम धर्म की हानि यहां तक हुई है कि शूद्र जनेऊ पहन कर दान लेते हैं। केवल इतने से ही संतुष्ट न होकर ब्राह्मणों को यह कह कर आंख दिखाते हैं कि हम तुमसे कुछ घट कर नहीं हैं।[1]

२. जैसा आभास वल्लभाचार्य के श्लोक में था कि धर्म व्यक्तिगत धर्म के रूप में चल पड़ा था, वैसा ही आभास तुलसीदास की निम्न पंक्तियों में मिलता है :—

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि, प्रगट किये बहुत पंथ ॥

(रा. च. मा., उ. ९७, पृ. ५४२)

अथवा

---

१. **बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। स्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥ · · · ·**
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥ · · · ·
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम से कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो बिप्रबर, आंखि देखावहिं डांटि ॥
(रा. च. मा., उ. ९८, ९९, पृ. ५४२-५४३)

मारग सोई जाकहृ जोंहि भावा। पंडित सोई जो गाल बजावा।

(रा. च. मा., उ. ९७, पृ. ५४२)

इसमें दो बातें स्पष्ट हैं। एक तो यह कि लोगों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार "कल्प" करके बहुत से "पंथ" प्रगट कर लिए थे। दूसरी यह कि धर्म का कोई ऐ ा एक निश्चित मार्ग नहीं था जो सर्वमान्य हो, बल्कि 'मारग' वही था जो जिसको अच्छा लगे। अर्थात् उस काल के पंथ और मत सार्वजनीन तो कम मात्रा में थे, व्यक्तिगत अधिकांश रूप में थे।

गौड़ीय वैष्णव साहित्य में भी तत्कालीन धर्मों की कुछ रूप-रेखा पाई जाती है। परन्तु उससे जो आभास मिलते हैं वे ऊपर दी गई दोनों बातों को छोड़ कर अन्य कुछ बातों में हिन्दी-वैष्णव-साहित्य से प्राप्त रूप-रेखा के समान हैं। वृन्दावनदास अथवा जयानंद, अथवा कृष्णदास कोई भी यह कहकर दुःख नहीं प्रगट करते कि कलियुग में वर्णाश्रम नष्ट हो गया है। शूद्र ब्राह्मणों से ऊंचे बनते हैं, कह कर शूद्रों का ऐसा उल्लेख जो सुरुचि-सम्पन्न न हो उन्होंने नहीं किया है। कारण कदाचित् भावनाओं के अन्तर का है। मर्यादा की ओर तुलसीदास का अधिक ध्यान था। उनके इष्टदेव राम ही मर्यादापुरुषोत्तम थे जो ब्राह्मण का आदर करते थे और शूद्र-तपस्वी के हंता थे। परन्तु चैतन्यदेव के जीवनी-कार व्यवस्था इत्यादि की ओर अधिक उन्मुख नहीं थे, अतः उन्होंने वर्णाश्रम धर्म की हानि पर कुछ अधिक नहीं लिखा। उन्हें इस बात का अधिक दुःख था कि संसार भक्ति-शून्य है।

संत मत—तुलसीदास ने प्रच्छन्न रूप से तात्कालीन सन्त मत का उल्लेख किया है, ऐसा रामचरितमानस की कुछ पंक्तियों से ज्ञात होता है। वे पंक्तियां निम्न हैं :—

१. सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।

२. जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।

नारि मुई गृह सम्पति नासी। मूंड मुड़ाइ होहिं संन्यासी।

३. नहिं मान पुरान न बेदहिं जो, हरि सेवक सन्त सही कलि सों।

(रा. च. मा., उ. १००-१०१, पृ. ५४४)

तुलसीदास ने अपने समय के उन शूद्रों का उल्लेख किया है जो श्वपच, तेली, कुम्हार इत्यादि जाति के थे और जप, तप, व्रत इत्यादि करते थे। संतों की परंपरा में ही ऐसी बात सम्भव थी। संत प्रायः नीची जाति के ही थे और उपदेश किया करते थे तथा वैरागी भी हुआ करते थे। आगे चल कर नीची जाति के कुछ व्यक्ति भी वैष्णवों में गिने गए थे, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु तुलसीदास जिस निरादार और उदासीनता से इन व्रत, जप-तप करने वालों का नाम लेते हैं उससे यह वैष्णव संत महात्मा नहीं ज्ञात होते। तीसरी पंक्ति में तुलसीदास स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जो वेद-पुराण को नहीं मानता वह कलियुग में हरि-सेवक संत है। वेद-पुराण के विरोध में संतों ही ने बहुत कुछ कहा है। अतः तुलसी के काल तक संत मत चला आ रहा था इसमें संदेह नहीं। इस संत मत की रूप-रेखा क्या थी यह तुलसीदास विस्तार से तो नहीं बताते। संकेत रूप से जो कुछ ज्ञात होता है वह यही है कि नीची जाति के व्यक्ति जप-तप करते थे और उपदेश देते थे, वेद-पुराण की निन्दा करते थे और अपने को संत कहते थे।

तामस धर्म—तुलसी इसी प्रसंग में कहते हैं :—

तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख व्रत दान।[1]

यह तामस धर्म क्या था और इसकी रूप-रेखा क्या थी, इसके विषय में और कुछ वे नहीं कहते। मनुष्य तामस धर्म करते थे जिसमें जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान इत्यादि थे। यह तामस धर्म शक्तिपूजा के समान ही कोई मत ज्ञात होता है, जैसा कि "तामस" शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है।

इस धर्म में हिंसा का स्थान रहा होगा। बलिदान और अन्य तामसी वस्तुओं जैसे मदिरा इत्यादि का प्रयोग पूजा में होता रहा होगा। आज भी जनता में एक प्रकार का तामस धर्म चल रहा है जिसमें अनेक ऐसे देवी-देवता हैं जो पशु-बलि से और मदिरा से संतुष्ट हुए बताए जाते हैं। बंगाल की शक्ति-पूजा जिसकी देवी दुर्गा हैं जितने व्यापक रूप में प्रचलित थी, उतने व्यापक रूप में कदाचित् वह तामस धर्म उत्तर प्रदेश में प्रचलित नहीं था—तभी तुलसीदास एक बार ही कह कर रह गए जब कि शूद्रों के संत धर्म का उल्लेख उन्होंने बार-बार किया है।

वृन्दावनदास ने चैतन्य-भागवत में चैतन्य देव के समय में प्रचलित देवी पूजा का उल्लेख किया है।

> **धर्म कर्म लोक सबे एइ मात्र जाने।**
> **मंगल चंडीर गीत करे जागरणे॥**
> **दंभ करि बिषहरी पूजे कोन जन।**
> **पुत्तलि करये केह दिया बहु धन॥**
> .. ..
> **वाशुली पूजये केह नाना उपहारे।**
> **मद्य मांस दिया केह यज्ञ पूजा करे॥**

(चै. भा., आदिखंड, अ० २, पृ. १५)

अर्थात् सब लोग इतना ही धर्म कर्म जानते थे। मंगल चंडी के गीतों को गाकर देवी को जगाते थे। कोई-कोई अत्यन्त दंभपूर्वक विषहरी का पूजन करते थे। बहुत धन लगाकर प्रतिमा बनाते थे। कोई-कोई अनेक पूजोपहार देकर वाशुली की पूजा करते थे। कोई मद्य-मांस देकर यज्ञ करते थे।

इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि चंडी, विषहरी और वाशुली नाम की देवियों की पूजा उस समय प्रचलित थी। इन देवियों की प्रतिमाएं भी बनती थीं और गीत गाए जाते थे। वाशुली और विषहरी एक ही देवी के दो नाम हैं। इनके मनसा और बेहुला ये दो नाम भी पाए जाते हैं। ये देवी कौन थीं इसका कुछ संक्षिप्त विवरण बंगाल के "मनसा मंगल" साहित्य के परिचय के साथ पीछे दिया जा चुका है।

इन देवियों की पूजा उपासना की क्या सामग्री थी इसका थोड़ा-सा उल्लेख कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में दिया है। चापाल गोपाल नाम का एक व्यक्ति था, वह वैष्णवों का विरोधी था। चैतन्य देव के अनन्य भक्त श्रीवास पंडित अपने घर में नित्य-

---

१. रा. च. मा., उ. १०१, पृ. ५४५

प्रति संकीर्त्तन करते थे। उन्हें वैष्णवों की दृष्टि में गिराने के लिए चापाल गोपाल ने उनके द्वार पर रात्रि में भवानी पूजा की सामग्री रक्खी। इसी प्रसंग में कृष्णदास ने पूजा की वस्तुओं के नाम बताए हैं।

भवानी पूजार सब सामग्री लइया।
रात्रे श्रीवासेर द्वारे स्थान लेपिया॥
कलार पातेर परे थोय उड़फूल।
हरिद्रा सिन्दूर रक्त चन्दन तंडुल॥
मद्य भांड पाशे धरि निज घरे गेला। इत्यादि

(चै. च., आदिखंड, परि. १७, पृ. ८०, ८१)

अर्थात् भवानी पूजा की सब सामग्री लेकर और रात्रि में श्रीवास का द्वार लीप कर केले के पत्ते पर उड़ फूल अर्थात् गुड़हल का फूल, हल्दी, सिन्दूर, रक्त, चन्दन और चावल रक्खे। पास ही मद्य का पात्र रख कर घर चला गया।

इससे ज्ञात होता है कि "भवानी पूजा" में मद्य-मांस इत्यादि सामग्री पूजा की सामग्री थी। मद्य-मांस देकर यज्ञ भी किए जाते थे। यह एक प्रकार का शाक्त तांत्रिक मत था जिसे वाममार्गी साधना का नाम दिया जा सकता है। विषहरी की पूजा नाच-गा कर भी की जाती थी। इस प्रकार की उपासनाओं को दीन कृष्णदास ने तंत्र धर्म कह कर सम्बोधित किया है।[1]

कर्मकांडी मायावादी धर्म

तुलसीदास ने तो कम, पर वृन्दावनदास और कृष्णदास ने स्थान-स्थान पर इस बात का उल्लेख किया है कि चैतन्य देव के भक्ति प्रचार में सबसे अधिक बाधा पहुंचाने वाले थे वे ब्राह्मण जो कर्मकाण्डी थे और वे संन्यासी जो मायावादी अर्थात् अद्वैतवादी शांकरी सिद्धान्त को मानने वाले थे। शंकर के ब्रह्मज्ञान का स्वरूप क्या था इसका स्पष्ट उल्लेख न कर के तुलसी कहते हैं :—

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि मोह बस, करहिं विप्र गुरु घात॥

(रा. च. मा., उ. ९९, पृ. ५४३)

इससे ज्ञात होता है कि शंकर के ब्रह्म-ज्ञान का प्रचार उस समय बहुत था, यद्यपि ज्ञात ऐसा होता है कि उसका अर्थ बहुत कम ही लोग समझते थे। मामूली से मामूली व्यक्ति भी ब्रह्मज्ञान के बिना दूसरी बात नहीं कहते थे। परन्तु इन्हीं ब्रह्मज्ञानियों को कौड़ी अर्थात् नाममात्र के धन के लिए भी ब्राह्मण या गुरु की हत्या करने में संकोच नहीं था। इन अद्वैतवादियों का चरित्र अच्छा नहीं था यह वे एक अन्य स्थान पर भी कहते हैं :—

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर। देखा म चरित्र कलिजुग कर॥

(रा. च. मा., उ. १००, पृ. ५४३)

---

१. सुरापान, अत्याचार, भ्रूण हत्या, व्यभिचार, तन्त्र धर्म्मे भारत व्यापिल यक्ष रक्ष विषहरि, नाना उपहार करि, बीच सबे पूजते लागिल।" (गौ. प. त. १।१।२५, पृ. १४)

कहने का तात्पर्य यह कि तुलसीदास के समय से पहले से चला आया हुआ अद्वैतवादी ब्रह्मज्ञान उनके समय तक आते आते अत्यन्त विकृत हो गया था। जनता उसकी आड़ में अनुचित कर्म करती थी। "ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर कहहिं न दूसरि बात" से यह अनुमान लगाना सर्वथा अनुचित न होगा कि चाहे इसकी आड़ में कुछ करें जनता में यह ब्रह्मज्ञान ऊंची दृष्टि से देखा अवश्य जाता था। कदाचित् विद्वत्ता का भी चिह्न समझा जाता था। तभी सब के सब ब्रह्मज्ञान पर बात करने की चेष्टा किया करते थे।

हरिदास के आख्यान में चैतन्य-भागवतकार वृन्दावनदास ने बताया है कि यवन हरिदास का वैष्णव होने पर ब्राह्मणों ने अत्यन्त विरोध किया था। उनकी और वैष्णवों की कीर्त्तन पद्धति का वे मज़ाक उड़ाते थे। ये ब्राह्मण गीता-भागवत भी पढ़ते थे परन्तु कृष्ण-संकीर्त्तन नहीं करते थे। नीचे एक उद्धरण दिया जा रहा है :—

गीता भागवत का पड़ाय जे-जे जन।
ताहाराओ ना बलये कृष्ण संकीर्त्तन॥
ताहाते ओ उपहास करये सबारे।
इहारा कि कार्य डाक छाड़े उच्चः स्वरे॥
आमि ब्रह्म, आमातेइ, बसे निरंजन।
दास प्रभु भेद वा करये कि कारण॥ (चै. भा., आदिखंड, अ. १४, पृ. ८६)

अर्थात् जो व्यक्ति गीता भागवत पढ़ते थे वे भी कृष्ण संकीर्त्तन नहीं करते थे। वे भी सब का यह कह कर उपहास करते थे कि यह कौन-सी पूजा है कि ऊंचे स्वर से चिल्लाते हैं। हम ब्रह्म हैं और हममें भी निरंजन (आत्मा) है तब दास प्रभु का भेद किस लिए करते हैं?

यह उसी अद्वैतवाद की रूप-रेखा है जिसका उल्लेख "ब्रह्मज्ञान" कह के तुलसी ने किया है। वैष्णव धर्म में तो भक्त और भगवान दोनों ही अलग-अलग सत्ता हैं। द्वैत की भावना भक्ति धर्म के लिए वे लोग आवश्यक मानते हैं। उपास्य है तो उपासक होना ही चाहिए। परन्तु ब्राह्मण कहते हैं कि हम ही ब्रह्म हैं, हम ही आत्मा हैं, तब दास कौन हुआ और प्रभु कौन हुआ (वैष्णव जीव को दास और ईश्वर को प्रभु मानते हैं)। इस प्रकार के ब्राह्मणों को जो चैतन्य के विरोधी थे वृन्दावनदास ने राक्षस तक कह डाला है।

ये कर्मकाण्डी ब्राह्मण चैतन्य के धर्म के विरोधी थे। नदिया के काज़ी ने जो यवन था कीर्त्तन को बन्द करने की आज्ञा दी। परन्तु गौरांग देव ने कीर्त्तन बन्द नहीं किया। कुछ विद्वान् ब्राह्मण जिन्हें वृन्दावनदास "पाखंडी हिन्दू" कहते हैं काज़ी के पास गए और उन्होंने चैतन्य के कीर्त्तन को अहिन्दू पद्धति बताई। इसी प्रसंग में वे ईश्वर को हिन्दू धर्म का महामंत्र बताकर कृष्ण को छोटा बताते हैं। वे पंक्तियां निम्न हैं :—

आसि कहे हिन्दु धर्म भांगिल निमाइ।
जे कीर्त्तन प्रवर्त्तील कभु शुनि नाइ॥
मंगल चंडी विषहरी करि जागरण।
ताते नृत्य गीत वाद्य योग्य आचरण॥ . . .
हिन्दुर धर्म नष्ट हैल पाखंड संचारि॥
कृष्णेर कीर्त्तन करे नीच बार बार।

एइ पापे नवद्वीप हइबे उजाड़ ।।
हिन्दु शास्त्रे ईश्वर नाम महामंत्र जानि । इत्यादि
(चै. च., आदिलीला, परि० १७, पृ. ८६)

अर्थात् वे लोग काज़ी के पास जाकर कहते हैं कि निमाई ने हिन्दू धर्म नष्ट कर दिया है। जो संकीर्त्तन उन्होंने प्रचारित किया है वह कभी सुना नहीं। मंगल चंडी और विषहरी का जागरण करते हैं तब नृत्य, गीत और वाद्य उसके उपयुक्त होते हैं . . . . हिन्दू धर्म पाखंड बढ़ा कर नष्ट कर रहे हैं। नीच बार-बार कृष्ण का कीर्त्तन करते हैं। इस पाप से नवद्वीप उजाड़ हो जायगा। हिन्दू शास्त्र में "ईश्वर" का नाम ही महामंत्र है।

यद्यपि वृंदावनदास इस प्रकार की शिकायत करने वाले व्यक्तियों को अच्छा नहीं मानते हैं परन्तु उनके लिखने से ज्ञात होता है कि चैतन्य देव के समय तक भी कृष्ण नीचे देवता माने जाते थे, उन्हें "स्वयम् भगवान' का स्थान नहीं प्राप्त हुआ था। निर्गुण ईश्वर को मानने वाले अपने को अधिक ऊंचा मानते थे। कुछ स्थानों पर उन्होंने यह और भी कहा है कि लोग कृष्ण का नाम नहीं लेते थे। जनता में भी कृष्ण भक्ति का अधिक प्रचार नहीं था। जो लोग गीता-भागवत पढ़ते थे वे भी कृष्ण नाम नहीं लेते थे। वे पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं :

(१) कृष्ण राम भक्ति शून्य सकल संसार ।
प्रथम कलिते हैल भविष्य आचार ।।
(चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

(२) कोथाओ न शुने केह कृष्णेर कीर्त्तन ।
(चै. भा., आदिखंड, अ. ६, पृ. ३५)

(३) गीता भागवत जे-जे जने बा पड़ाय ।
कृष्ण भक्ति व्याख्या कार ना आइसे जिह्वाय ।।
(चै. भा., आदिखंड, अ. ६, पृ. ३५)

अर्थात् (१) कृष्ण-राम की भक्ति से संसार शून्य था। (२) कहीं भी कोई कृष्ण का कीर्त्तन नहीं सुनता था। (३) गीता भागवत जो लोग पढ़ते थे वे भी कृष्ण-भक्ति की व्याख्या नहीं करते थे।

तीसरे उद्धरण में इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि उस भागवती धर्म की रूप-रेखा जिस में कृष्ण स्वयं भगवान बताए गए हैं, उस समय तक नहीं बनी थी। लोग भागवत पढ़ते थे पर उसमें से कृष्ण-भक्ति की व्याख्या नहीं करते थे। वास्तव में भागवत में सोलहवीं शती में अत्यधिक प्रचलित कृष्ण-भक्ति का यह स्वरूप उतना स्पष्ट और प्रमुख नहीं है जो वल्लभ और चैतन्य मानते थे। इसकी पुष्टि एक अन्य स्थल पर दी हुई पंक्तियों से भी होती है। चैतन्य के पार्षदों द्वारा किया संकीर्त्तन सुन कर जनता में नाना प्रकार की बातें होती थीं। एक जन कहता है :—

केह बले कतरूप पड़िल भागवत ।
नाचिब कांदिब हेन ना देखिल पथ ।।
(चै. भा., आदिखंड, अ. ९, पृ. ५८)

अर्थात् कोई कहता है कि कितनी ही भागवत पढ़ी पर नाचना-रोना (भक्ति) पथ है यह तो नहीं देखा ।

इस प्रकार के दार्शनिकता प्रधान विचारों को मानने वाले संन्यासी भी थे। कृष्णदास और वृंदावनदास उन्हें 'मायावादी' कह कर उनका उल्लेख करते हैं। इन संन्यासियों का प्रमुख गढ़ काशी था। इनके मुखिया "प्रकाशानंद" थे। अपनी प्रथम काशी यात्रा में चैतन्य देव को इन मायावादियों से विरोध मिला था। दूसरी यात्रा में प्रकाशानन्द से तर्क करके चैतन्य ने उन्हें अपने धर्म से प्रभावित अवश्य कर लिया था। संन्यासियों का प्रभाव जनता पर काफी था। चैतन्य के संन्यास लेने का एक कारण वृन्दावनदास ने यह भी बताया है। चैतन्य ने संन्यास इसलिए लिया था कि लोग संन्यासी होने के कारण मेरी बात सुनेंगे।

इन मायावादी सन्यासियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के संन्यासी भी थे। तुलसीदास ने इनका उल्लेख किया है। परन्तु वे उन सन्यासियों के भक्त नहीं थे वरन् उनका उल्लेख कुछ निरादर की भावना से ही करते हैं। ये कहते हैं :—

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ज्ञानी सो बिरागी ॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
असुभ बेश भूषन धरे, भक्षाभक्ष जो खाहिं ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं। (रा.च.मा., उ. ९८, पृ.५४३)

कदाचित् ये नाथपंथी सिद्ध या योगी हैं। ये लम्बे नख और जटा धारण करते थे। अशुभ वेश वनाए फिरते थे और भक्ष्याभक्ष्य 'मांस' इत्यादि खाते थे। जनता में इनका आतंक था।

भक्ति धर्म—चैतन्य देव के आविर्भाव से पहले बंगाल में एक प्रकार का भक्ति-धर्म प्रचलित था इसका उल्लेख कृष्णदास कविराज के चैतन्यचरितामृत में मिलता है। वृंदावनदास ने भी कई बार इसका उल्लेख किया है। परन्तु हिन्दी की वैष्णव रचनाओं में ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं है। कृष्णदास और वृंदावनदास की रचनाओं के अनुसार एक भक्ति-प्रधान धर्म की विद्यमानता ज्ञात होती है, यद्यपि इसका प्रचार बहुत कम था। जो लोग इसे मानते भी थे वे बहुत डरते-डरते इसका पालन करते थे। ऐसा ज्ञात होता है कि इस धर्म के इष्टदेव कृष्ण न होकर 'विष्णु' थे। अधिकांशतया उल्लेखों से कृष्ण और विष्णु एक ही ज्ञात होते हैं। वृन्दावनदास कहते हैं :—

अधम कुलेते जदि विष्णु भक्त हय ।
तथापि सेह पूज्य हय सर्वशास्त्रे कय ॥
उत्तम कुलेते जन्म श्रीकृष्ण ना भजे। इत्यादि (चै. भा., मध्य खंड)

अर्थात् अधम कुल में भी विष्णु भक्त उत्पन्न हो तो वह पूज्य है ऐसा सब शास्त्र कहते हैं। यदि उत्तम कुल में जन्म है और कृष्ण को नहीं भजते इत्यादि।

धर्म विरोधी यवनों को वे 'विष्णुद्रोही' यवन कहते हैं। चैतन्य देव का 'विष्णु जैन अवतारि' कह कर महत्व बताते हैं।[१] संसार को 'विष्णु भक्ति शून्य' बताते हैं।[२]

---

१. चै. भा., आदिखंड, अ० ३
२. चै. भा., आदिखंड, अ० २

कृष्णदास ने भी चैतन्यचरितामृत में विष्णु का उल्लेख कई बार किया है। चैतन्य के पिता पुरन्दर मिश्र इनके भक्त ही थे। उन्होंने पुत्र के लिए "आराधिता विष्णु चरण" अर्थात् विष्णु चरण की आराधना की। 'विष्णु प्रीते" द्विजों को दान दिया।[1]

चैतन्य के जन्म से पहले कुछ लोग थे जिन्हें वृंदावनदास भागवत और कृष्णदास वैष्णव कहते हैं और जो विष्णु पूजा या कृष्ण पूजा किया करते थे। स्पष्ट कथन से तो नहीं परन्तु कहने की भावना से प्रतीत होता है कि वैष्णवगण कृष्ण और विष्णु को अभिन्न ही मानते थे। 'कृष्ण पूजा', 'विष्णु पूजा', 'कृष्ण भक्ति', 'विष्णु भक्ति' सब का अर्थ एक ही सा है।[2]

ये भागवत-गण छिपा कर अपनी पूजा-उपासना किया करते थे। पूजा की पद्धति विशेष क्या थी इसका विस्तृत विवरण तो नहीं है पर वृंदावनदास और कृष्णदास दोनों ने जहां अद्वैत आचार्य और पुरन्दर मिश्र की कृष्ण पूजाओं का उल्लेख किया है वहां तुलसी-मंजरी सहित गंगाजल देना ही लिखा है।[3] गंगा स्नान करना भी वैष्णवों का आचार था।[4] यह भागवत गंगा स्नान करके "गोविन्द पुंडरीक" का नाम लेते थे। एकादशी का व्रत ये लोग भी रखते थे और अन्य लोग भी। पुरन्दर मिश्र कृष्ण भक्त या विष्णु भक्त थे और "शालग्राम" की पूजा करते थे।

चैतन्य के जन्म के दिन चंद्रग्रहण लगा था। इस बात का उल्लेख कृष्णदास ने किया है। उस समय लोग "हरि-हरि' कह रहे थे। बालक चैतन्य को रोते से चुप करने के लिए स्त्रियां ताली बजा कर स्वर से हरि-हरि कहती थीं। चैतन्य देव के संगठित कीर्तन का आदि स्वरूप इस प्रकार के उच्च स्वर से हरि-हरि उच्चारण में निहित है। भागवत-गण उच्च स्वर से कृष्ण नाम लेते थे।

आस्तिकता, हरि-कृष्ण नाम उच्चारण, और श्रद्धा से युक्त एक भक्ति-प्रधान धर्म चैतन्य देव के जन्म के पहले से चला आ रहा था। चैतन्य देव ने उसी धर्म का पुनरुत्थान किया। उन्होंने विष्णु को स्वयं भगवान बताया, यद्यपि उससे पहले केवल भागवत-गण कृष्ण के उपासक थे। उनके अतिरिक्त और सब लोग कृष्ण-विमुख थे। इस बात का उल्लेख कृष्णदास और वृंदावनदास दोनों ने ही बड़े परिताप से किया है कि चैतन्य के जन्म से पहले संसार कृष्ण या विष्णु-भक्ति शून्य था।

---

१. चै. च., आदिलीला, परि० १३

२. "कृष्णपूजा विष्णुभक्ति कारो नाहि वासे।" (चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

३. क. तुलसीर मंजरी सहित गंगाजले।
निरवधि सेवे कृष्ण महा कुतूहले॥ (चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)
ख. कृष्ण पूजा करे तुलसी गंगाजल दिया। (चै. च., आदिलीला, परि. १३, पृ. ८६)

४. स्वकार्य करेन सब भागवतगण। कृष्णपूजा गंगास्नान कृष्णेर कथन॥
(चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

द्वितीय अध्याय
कवि और पदकर्त्ता

सोलहवीं शती का बंगाली और हिन्दी साहित्य प्रधानतया वैष्णव भक्त कवियों की देन है। इन कवियों का जो परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है उसका आधार सोलहवीं शती में रचित चरित साहित्य की दी हुई नामावलियों, अल्प अथवा विशद परिचय और इस पर खोज करने वाले आधुनिक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया गया परिचय है। इन लेखकों अथवा कवियों के उल्लेख सत्रहवीं और अठारहवीं शती की कुछ रचनाओं[1] में भी मिलते हैं। इसका निर्देश यथास्थान दिया गया है। बंगाली कवियों और पदकर्ताओं के नाम, परिचय इत्यादि सोलहवीं शती में रचित चैतन्यचरितामृत, चैतन्यभागवत और वैष्णव-वंदना में प्राप्त हैं। हिन्दी कवियों और लेखकों के नाम भक्तमाल और वार्त्ताओं में मिलते हैं।

चैतन्य-चरितामृत की नामावली

बंगाल में जो जीवनी साहित्य सोलहवीं शती में रचा गया, वह मुख्यतया चैतन्यदेव संबंधी है। लम्बे आख्यानक काव्य भी हैं और छोटे काव्य भी। लम्बे काव्यों में जयानंद का "चैतन्य-मंगल", वृंदावनदास का "चैतन्य-भागवत" और कृष्णदास कविराज का "चैतन्य-चरितामृत" प्रमुख है। इन तीनों में भी "चैतन्य-चरितामृत" का सर्वोच्च स्थान है। इस विशाल ग्रंथ में बहुत अधिक नाम हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख चैतन्य देव के पार्षदों में, और कुछ का भक्तों में है। नित्यानंद, अद्वैताचार्य, और गदाधर पंडित के शिष्यों का भी नामोल्लेख है। प्रत्येक के विस्तृत परिचय का न तो स्थान है और न लेखक की इच्छा ही ऐसा करने की है। वे तो चैतन्य देव का मानव चरित्र लिखने वैठे थे। उसी में प्रसंगानुसार उनके सहचरों, शिष्यों, प्रशिष्यों आदि का नाम आया है। उनमें से जो कवि थे उनके नाम नीचे दिए जा रहे हैं :—

अनंत आचार्य	कामदेव
अनंतदास	कालाकृष्णदास
ईशान	कुमुद
उद्धारणदत्त	कृष्णदास १
उद्धारणदास	कृष्णदास २
कर्णपूर	गदाधर
कविचन्द्र	गदाधरदास २
कानु ठाकुर	गोकुलदास
कानु पंडित	गोपाल

१. भक्तिरत्नाकर, प्रेमविलास, नरोत्तमविलास, भक्तमाल (बंगाली), भक्त नामावली, कर्णानन्द, रसिक मंगल, वैष्णवाभिधान, बंशी विलास, बंशी शिक्षा, इत्यादि।

गोपालदास
गोपीकांत
गोपीनाथ
गोविन्द घोष
गौरीदास
चन्द्रशेखर आचार्य
चन्द्रशेखर वैद्य
चैतन्यदास १
चैतन्यदास २
चैतन्यदास ३
चैतन्यदास ४
जगदानंद
जगन्नाथ
जगन्नाथदास
जानकीनाथ
ज्ञानदास
नरहरि
नृसिंह
परमानंद
परमानंद गुप्त
परमानंद पुरी
परमेश्वरदास
पीताम्बर
पुरुषोत्तम
पुरुषोत्तम पंडित
पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी
बलराम दास
भागवताचार्य
मनोहर
माधव आचार्य
माधव घोष
मुकुंददत्त
मुरारि
मुरारि पंडित
यदुनंदन
यदुनाथ
रघुनाथ १
रघुनाथ २
रघुनाथदास
रामचन्द्र कविराज
रामदास
रामानन्द बसु
वल्लभ १, २
बसंत
वासुदेव घोष
वासुदेव दत्त
विष्णुदास
वृंदावनदास
शिवानन्द
सत्यराज
स्वरूप दामोदर
हरिचरण
हरिदास १, २, ३, ४

चैतन्य-भागवत की नामावली

चैतन्य-भागवत में अपेक्षाकृत कम नाम हैं। कुछ नाम यहां दिए जा रहे हैं।

१. कृष्णदास
२. गदाधर
३. गोविंददास
४. गौरीदास
५. चन्द्रशेखर
६. जगदानन्द
७. माधव घोष
८. मुकुंद
९. मुरारि
१०. वासुदेव
११. हरिदास

वैष्णव-वंदना की नामावली

देवकीनंदन ने अपनी रचना वैष्णव-वंदना में बहुत से भक्तों की वंदना की है। उनमें से जो लेखक अथवा पदकर्त्ता हैं उनकी सूची यहां दी जा रही है।

१. अनंत
२. उद्धारणदत्त
३. कृष्णदास (कालिया)
४. कृष्णदास ब्राह्मण
५. गदाधरदास
६. गोविंद आचार्य
७. गौरीदास पंडित
८. जगदानंद
९. जगन्नाथदास
१०. नरहरि सरकार
११. पुरुषोत्तमदास
१२. बलरामदास
१३. माधव आचार्य
१४. मुकुंददास
१५. मुरारि
१६. यदुनाथ
१७. रामानंद वसु
१८. वासुदेव दत्त
१९. वीरचन्द्र (वीर भद्र)
२०. वृन्दावनदास
२१. शिवानंद सेन
२२. हरिदास ठाकुर

सोलहवीं, सत्रहवीं, और अठारहवीं शती में प्राप्त जीवनी साहित्य और अन्य ग्रंथों के आधार पर अथवा, लेखकों द्वारा दिए आत्म-परिचय को लेकर जिन आधुनिक विद्वानों ने छानबीन की है और सुव्यवस्थित परिचय प्रस्तुत किया है उनमें दीनेशचन्द्र सेन, जगद्बन्धु भद्र, सतीशचन्द्र राय और सुकुमार सेन प्रमुख हैं। इनके प्रस्तुत किए कवि परिचय के कवियों की नामावलियां यहां दी जा रही हैं।

१. दीनेशचन्द्र सेन की नामावली

दीनेशचंद्र सेन ने वैष्णवों और वैष्णव साहित्य पर कई एक पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से 'चैतन्य एंड हिज़ कम्पेनियन्स', 'वैष्णव लिट्रेचर आफ मिडिवल बंगाल', 'बंगाली रामायन्स' यह तीनों अंग्रेज़ी में लिखी गई हैं। इन पुस्तकों में कुछ प्रमुख वैष्णव भक्तों का परिचय दिया गया है। इनकी एक अन्य रचना जो प्राचीन साहित्य के अंशों का संकलन है 'बंग-साहित्य-परिचय' बंगला में लिखी गई है। इसमें तो सोलहवीं शती से भी पहले की रचनाओं के अंश और रचयिताओं का सूक्ष्म परिचय है। दीनेशचन्द्र की पुस्तकों में से सोलहवीं शती के वैष्णव भक्तों की नामावली नीचे दी जा रही है :—

१. ईशान नागर
२. कृष्णदास कविराज
३. गोविंददास
४. गौरीदास
५. जयानंद
६. नरहरि चक्रवर्ती
७. नरोत्तम
८. परमानंद सेन
९. मुरारि गुप्त
१०. यदुनन्दनदास
११. रघुनाथ
१२. लोचनदास
१३. वंशीवंदन
१४. वासुदेव घोष
१५. वीरचन्द्र
१६. वृन्दावनदास

१७. शचीनंदन
१८. हरिदास

ये सब लेखक प्रायः कृष्ण भक्त कवि हैं और उन्हीं की लीला का गान करते हैं। सेन ने कुछ बंगाली रामायण कर्ताओं के भी नाम दिए हैं परन्तु उनकी रचनायें अप्राप्य बताते हैं। ये नाम नीचे दिए जा रहे हैं :

१. कविचन्द्र
२. गंगादास
३. चन्द्रावती
४. द्विजमधुकुंठ
५. षष्ठीवर

जगद्बंधु भद्र की नामावली

जगद्बंधु भद्र ने 'गौर-पदतरंगिणी' के नाम से गौरांग देव सम्बन्धी लगभग एक हजार पदों का संग्रह किया है। इसमें उन्होंने पदकर्त्ताओं की जीवनी और परिचय पर खोजपूर्ण प्रकाश डाला है। इस ग्रंथ की प्रस्तावना में उन्होंने सब पदकर्त्ताओं का परिचय दिया है। इन सब ने केवल गौरांग देव संबंधी पद ही नहीं लिखे हैं; कृष्ण लीला का गान भी किया है। बंगाली वैष्णव धर्म में चैतन्य देव का स्थान कृष्ण का ही था। अतः प्रत्येक कवि कृष्ण लीला के साथ-साथ गौरांग लीला पर भी रचना करता था। अतः जगद्बंधु बाबू ने जिन पदकर्ताओं का परिचय दिया है वे सतीशचन्द्र इत्यादि के परिचय दिए पदकर्ताओं से भिन्न नहीं हैं। गौर-पदतरंगिणी की भूमिका में दी हुई सोलहवीं शती के कवियों की नामावली निम्न है :—

१. अनंतदास
२. अभिरामदास
३. आत्मारामदास
४. ईशान
५. उद्धारण दत्त (उद्धव दास)
६. कवि कर्णपूर, परमानंद सेन
७. कानुराम
८. कृष्णदास
९. गतिगोविन्द
१०. गोविंद घोष
११. गोविन्द चक्रवर्ती
१२. गोविंददास
१३. गोविंददास कविराज
१४. चंडीदास
१५. चैतन्यदास
१६. जगदानंददास
१७. जगन्नाथदास
१८. ज्ञानदास
१९. देवकीनंदनदास
२०. धनंजयदास
२१. नयनानंददास
२२. नरहरिदास
२३. नरोत्तमदास
२४. परमेश्वरदास
२५. पुरुषोत्तमदास
२६. प्रसाददास
२७. बलरामदास
२८. बल्लभदास
२९. भारतचन्द्र
३०. वंशीवदन
३१. वासुदेव घोष
३२. वृन्दावनदास
३३. वैष्णवदास
३४. मनोहरदास
३५. माधवदास

३६. माधवीदास
३७. मुकुंददास
३८. मुरारि गुप्त
३९. मोहनदास
४०. यदुनाथदास
४१. राधावल्लभदास
४२. रामचन्द्रदास
४३. रामानंद वसु
४४. रायअनंत
४५. लक्ष्मीकांतदास
४६. लोचनदास
४७. शंकरदास
४८. शचीनन्दनदास
४९. शिवरामदास
५०. शिवानंद सेन
५१. श्यामदास
५२. स्वरूपदास
५३. हरिदास (१)
५४. हरिदास (२)

सतीशचन्द्र राय की नामावली

सतीशचन्द्र राय ने वृंदावनदास द्वारा संकलित वृहद्-पद-संग्रह 'पदकल्पतरु' का संपादन किया है। इस 'पदकल्पतरु' के चार भागों में तो पद संग्रह हैं, पांचवां भाग भूमिका के रूप में है। इस भूमिका में उन समस्त कवियों के नाम और परिचय हैं जिनके पद इसमें संगृहीत हैं। सतीशचन्द्र राय ने भी अत्यन्त परिश्रम और खोजपूर्ण अध्ययन के द्वारा ये परिचय प्रस्तुत किए हैं। वे कई स्थानों पर जगद्बंधु बाबू से असहमत हैं। इसके कारण भी उन्होंने दिए हैं। पदकल्पतरु की भूमिका में से सोलहवीं शती के वैष्णव कवियों की नामावली निम्न है :—

१. अनंत
२. अनंत आचार्य
३. अनंतदास
४. अनंतराय
५. आत्माराम दास
६. उद्धवदास
७. कवि बल्लभ
८. कवि भूपति
९. कविरंजन
१०. कवि शेखर
११. कानुदास
१२. कानुराम दास
१३. कृष्णदास
१४. कृष्णदास कविराज
१५. गतिगोविन्द
१६. गुप्तदास
१७. गोकुलदास
१८. गोपालदास (गोपाल भट्ट)
१९. गोपीरमण
२०. गोविन्द घोष
२१. गोविंददास
२२. गोविन्ददास चक्रवर्ती
२३. गौरीदास
२४. चंडीदास
२५. चन्द्रशेखर
२६. चम्पति
२७. चैतन्यदास
२८. जगदानंद
२९. ज्ञानदास
३०. देवकीनंदन
३१. धरणी
३२. नरहरि
३३. नरोत्तम
३४. नृसिंह देव

३५. परमानन्द	५२. मोहन
३६. परमेश्वरदास	५३. यदुनंदन
३७. पुरुषोत्तम	५४. राधावल्लभ
३८. प्रसाददास	५५. रामानंद राय
३९. बलरामदास	५६. रामानंद वसु
४०. बल्लभदास	५७. लक्ष्मीकांतदास
४१. भूपति	५८. लोचनदास
४२. वंशीवदन	५९. शंकरदास
४३. वसंतराय	६०. शचीनंदन
४४. वासुदेव घोष	६१. शिवराम
४५. वीर हाम्वीर	६२. शिवानंद
४६. वृंदावनदास	६३. शेखर
४७. मथुरादास	६४. श्यामदास
४८. माधव घोष	६५. श्यामानंद
४९. माधवदास	६६. श्रीनिवास
५०. माधवीदास	६७. हरिदास
५१. मुरारि गुप्त	६८. हरिवल्लभ

सुकुमार सेन की नामावली

सर्वाधिक अर्वाचीन लेखक डा० सुकुमार सेन ने इन समस्त और इन से भी अधिक वैष्णव कवियों का परिचय प्रस्तुत किया है अपने ग्रंथ 'हिस्ट्री आफ् ब्रज बुलि लिट्रेचर' में। उनका प्रस्तुत किया हुआ परिचय सर्वाधिक वैज्ञानिक खोजपूर्ण है। पीछे जितने नाम दिए गए हैं उन सब के अतिरिक्त जो और नाम उनके इस ग्रंथ में दिए हैं वे नीचे अंकित किए जा रहे हैं—

१. कामदेव	१३. जयचन्द्र
२. किशोरदास	१४. जानकीवल्लभ
३. किशोरीदास	१५. तुलसीदास
४. कुमुदानंद	१६. दासजानकी
५. गंगाराम	१७. दिव्यसिंह
६. गिरधरदास	१८. दुःखिनी
७. गोकुलदास	१९. द्विजजानकी
८. गोकुलानन्द	२०. नृप वैद्यनाथ
९. गोपीरमण	२१. बिहारीदास
१०. गोस्वामीदास	२२. ब्रजानंद
११. गौरकिशोर	२३. मथुरादास (१)
१२. जयकृष्णदास	२४. मथुरादास (२)

२५. यशोराजखान
२६. रघुनाथदास (१)
२७. रघुनाथदास (२)
२८. रसिकदास
२९. राघवेन्द्र
३०. राधादास
३१. बंशीदास
३२. वल्लभीकांत
३३. वीरचन्द्र
३४. वैष्णवचरण
३५. सुबलचन्द्र
३६. हरीरामदास

ऊपर जितने नाम दिए गए हैं वे प्रधानतया पदकर्त्ता हैं। कुछ ने बड़ी रचनायें भी की हैं। इन लेखकों के अतिरिक्त कुछ अन्य लेखकों का जो परिचय आगे है वे पदकर्त्ता न होकर अन्य बड़ी रचनाओं के प्रणेता हैं। उनके नाम प्रधानतया डा० सुकुमार सेन की 'बांगला साहित्येर इतिहास' से लिए गए हैं। इनमें आनंदी, अनिरुद्ध, श्रीकर नंदी, चूड़ामणिदास, गोविन्द आचार्य, कृष्णदास, दुःखी श्यामदास, रघुनाथदास, बृंदावनदास जयानंद, माधवदास, हरिचरणदास, ईशान नागर, विष्णुदास, लोकनाथदास, परमेश्वर दास, रामचन्द्र खान, पीताम्बर इत्यादि हैं।

भक्तमाल की नामावली

सोलहवीं शती में बनी हिन्दी रचनाओं में मूल भक्तमाल में उस शती के वैष्णव कवियों का नाम परिचय मिलता है। नाभादास ने भक्तमाल में जिनको बहुत महत्व दिया है उनके लिए एक पूरा छप्पय दिया है और बाकी कम महत्वपूर्ण लेखकों के तो एक ही छप्पय में कई कई नाम दे दिए हैं। कुछ बंगाली वैष्णवों के नाम भी दिए हैं, पर वे भाषा के कवि नहीं वरन् संस्कृत के कवि और लेखक हैं। ये रूप, सनातन, जीव गोस्वामी, लोकनाथ, गोपाल भट्ट, और भूगर्भस्वामी हैं। हिन्दी वैष्णव भक्तों की भक्तमाल में दी हुई नामावली निम्न है—

१. अग्रदास
२. आसकरनदास
३. कल्यानदास
४. कान्हरजी १, २
५. कान्हरदास
६. कुंभनदास
७. कृष्णदास २, २, ३
८. केवलराम
९. केशवदास
१०. खेम १, २, ३,
११. गदाधर १, २, ३
१२. गिरिधर
१३. गोपालदास
१४. गोपीनाथ १, २
१५. गोविंद स्वामी
१६. चतुर्भुजदास
१७. छीत स्वामी
१८. जगन्नाथदास
१९. जमुनास्त्री
२०. तुलसीदास
२१. दामोदरदास १, २, ३, ४
२२. नंददास
२३. नरसी
२४. नरवाहन
२५. नारायण भट्ट
२६. पद्मनाभ
२७. व्यास स्वामी
२८. माधवदास १, २

२९. मीरा	३४. श्रीभट्ट
३०. रामदास १, २	३५. सूरदास
३१. विट्ठल विपुल	३६. सूरदास मदनमोहन
३२. वीठलदास	३७. हरिदास
३३. विष्णुदास	३८. हितहरिवंश

बंगला भक्तमाल की नामावली

बंगला भक्तमाल में बंगाली वैष्णव भक्तों के साथ कुछ हिन्दी वैष्णव भक्तों का भी उल्लेख है। उनके नाम नीचे दिए जा रहे हैं :—

१. अग्रदास	८. मीराबाई
२. कील्हदेव	९. वल्लभाचार्य
३. केशव भट्ट	१०. विट्ठलदास
४. गोपाल भट्ट	११. सूरदास
५. गोविंददास	१२. हरिदास
६. तुलसीदास	१३. हरिव्यास
७. पयहारी कृष्णदास	

सोलहवीं शती के बाद हिन्दी में ध्रुवदास की "भक्त-नामावली" ही उल्लेखनीय है। इसमें कुछ वैष्णव भक्तों का परिचय है।

समय निर्धारण के आधारभूत सिद्धान्त

विद्वानों ने इन समस्त कवियों का समय निर्धारण कई तरह से किया है।

१. कुछ कवियों की निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथियां तो ज्ञात ही हैं जो विद्वानों की खोज का परिणाम हैं। अतः उनकी विद्यमानता कब से कब तक थी इसमें कोई उलझन नहीं है।

२. कुछ कवियों की केवल जन्म-तिथि, या केवल मृत्यु-तिथि ही ज्ञात है। इससे उनका सम्पूर्ण काल ज्ञात नहीं होता, परन्तु उस शती में थे यही ज्ञात होता है।

३. कुछ कवियों की कुछ रचनाओं का रचना-समय ज्ञात है। अतः उससे भी उनकी विद्यमानता का आंशिक काल ज्ञात हो जाता है।

४. कुछ महापुरुषों की जिनकी जन्म और मृत्यु की निश्चित तिथियां ज्ञात हैं समसामयिकता भी आंशिक रूप से काल का निर्धारण कर देती है। इन महापुरुषों में चैतन्य देव, वल्लभाचार्य, नरोत्तम ठाकुर, नित्यानंद, श्रीनिवास आचार्य, विट्ठल नाथ, आते हैं। इनमें से कोई पंद्रहवीं शती के उत्तरार्ध में और कोई सोलहवीं शती में वर्त्तमान थे।

५. नरोत्तम दास द्वारा संयोजित खेतुरी उत्सव १५८३-८४ ई. में हुआ था। उसमें

---

१. गो० वै० सा, भाग २, पृ० ८८

२. यह भक्तमाल कदाचित् 'भक्ति रत्नाकर' इत्यादि से पहले की ही रचना हो।

उपस्थित जिन व्यक्तियों के नाम भक्ति-रत्नाकर या नरोत्तम-विलास में आए हृ उनकी विद्यमानता कम से कम १५८३-८४ में थी यह निश्चित ही है।

जिस कवि का काल इन किसी भी प्रकार से निश्चित होता है उसका उल्लेख यथा-स्थान कर दिया गया है।

बंगाली कवि और पदकर्ता

१. अनंतदास
२. आचार्य चन्द्र
३. आत्मारामदास
४. ईशान नागर
५. उद्धवदास
६. कविकंठहार
७. कविरंजन
८. कविशेखर
९. कानुरामदास
१०. कामदेवदास
११. किशोरदास, किशोरीदास
१२. कुमुदानंद
१३. कृष्णकांत
१४. कृष्णदास
१५. कृष्णदास कविराज
१६. गिरधरदास
१७. गुप्तदास
१८. गोकुलदास
१९. गोपाल भट्ट
२०. गोपीकांत वसु
२१. गोपीरमण
२२. गोवर्धन
२३. गोविन्द घोष
२४. गोविन्ददास आचार्य
२५. गोविन्ददास कर्मकार
२६. गोविंददास कविराज
२७. गोविन्ददास चक्रवर्त्ती
२८. गोस्वामी दास
२९. गौरांगदास
३०. गौरीदास
३१. चण्डीदास
३२. चन्द्रशेखरदास
३३. चम्पति
३४. चूड़ामणिदास
३५. चैतन्यदास
३६. जगन्नाथदास
३७. जयकृष्णदास
३८. जयचन्द्रदास
३९. जानकीदास
४०. जानकीवल्लभ
४१. ज्ञानदास
४२. तुलसीदास
४३. दिव्यसिंह
४४. देवकीनंदनदास
४५. द्विज गंगाराम
४६. द्विजहरिदास
४७. धरणी
४८. नयनानंद
४९. नरहरिदास
५०. नरोत्तमदास
५१. नित्यानंददास
५२. नृसिंह देव
५३. परमानंददास १
५४. परमानंददास २
५५. परमेश्वरदास
५६. पुरुषोत्तमदास
५७. प्रसाददास
५८. बलरामदास
५९. बिहारीदास
६०. ब्रजानंद

६१. भागवताचार्य
६२. भूपति
६३. मथुरादास
६४. मनोहरदास
६५. माधव घोष
६६. माधवदास
६७. माधवीदास
६८. मुरारि गुप्त
६९. मोहनदास
७०. यदुनंदनदास
७१. यशोराजखान
७२. रघुनाथदास
७३. रसिकदास
७४. रसिकानंद
७५. राघवेन्द्र राय
७६. राधादास
७७. राधावल्लभदास
७८. रामचन्द्र
७९. रामानंद
८०. रायबसंत
८१. रायशेखर
८२. लक्ष्मीकांतदास
८३. लोकनाथदास
८४. लोचनदास
८५. वंशीदास
८६. वंशीवदन
८७. वल्लभदास
८८. वासुदेव घोष
८९. बासुदेव दत्त
९०. विजयनंददास
९१. विष्णुदास
९२. वीरचन्द्र
९३. वीर हाम्बीर
९४. वृन्दावनदास
९५. शंकरदास
९६. शचीनंदनदास
९७. शिवरामदास
९८. शिवानंद आचार्य
९९. शिवानंद सेन
१००. श्यामदास
१०१. श्यामानंद दास
१०२. श्रीनिवास आचार्य
१०३. सुबलचन्द्र ठाकुर
१०४. स्वरूपदामोदर
१०५. स्वरूपदास
१०६. हरिचरणदास
१०७. हरिवल्लभ
१०८. हरिरामदास

कवि परिचय : बंगाली कवि

अनन्तदास

अनंतदास नाम के दो व्यक्ति हुए, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। वैसे तो पदकल्पतरु में 'अनंत आचार्य', 'अनंतदास' और 'अनंतराय' तीन नामों से युक्त पद प्राप्त होते हैं। साधारणतः राय उपाधि के साथ आचार्य उपाधि नहीं दिखाई देती। इससे ज्ञात होता है कि अनंत आचार्य और अनंतराय दो भिन्न पदकर्ता थे। 'दास' उपाधि प्रायः दीनता-सूचक अर्थ में अधिकांश पदकर्त्ताओं ने प्रयोग की है। अतः इस नाम के दो व्यक्ति ही हुए थे, जैसा कि चैतन्यचरितामृत से भी ज्ञात होता है।

१. अनन्तदास आचार्य—यह गदाधर पंडित के शिष्य थे।

पंडित गोसाञिर शिष्य अनंत आचार्य।
कृष्ण प्रेममय तनु उदार महाआर्य॥

(चै. च., आदिलीला, परि. ८, पृ. ५३)

पुनश्च एक स्थल पर जहां गदाधर पंडित के शिष्यों का उल्लेख है, अनंत आचार्य का नाम आया है।

श्री गदाधर पंडित उपशाखा महोत्तम।
तार उपशाखा किछु करिये गणन॥
.. .. ..
अनंत आचार्य कवि दत्त मिश्र नयन॥

(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १२)

कृष्णदास बाबा जी रचित भक्तमाल में अनंत को 'सुदेवी' का अवतार और गौरांग का किंकर बताया गया है :—

सुदेवी अनंत आचार्य गौरांग किंकर।

इन सब अवतरणों से "अनंत आचार्य" गौरांग देव और गदाधर पंडित के समसामयिक ज्ञात होते हैं। वैसे तो इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है परन्तु १५५० से १५८२ तक समय ज्ञात है। ये कटवा उत्सव में उपस्थित थे[1] और नीलाचल जाते समय चैतन्य से मिले थे।

२. अनंतदास—इनका उल्लेख चैतन्यचरितामृत में अद्वैत आचार्य की शिष्य शाखा में किया गया है :—

अनंत दास, कानु पंडित, दास नारायण।

(चै. च., आदिलीला, परि. १२, पृ. ६५)

परन्तु यह अनंतदास स्वतंत्र पदकर्त्ता हैं अथवा दोनों एक ही हैं यह ज्ञात नहीं। तीनों नामों से युक्त पद इस प्रकार मिश्रित हो गए हैं कि उनका अलग करना कठिन है।

---

१. भ. र., पृ. ५८९

अनंत आचार्य के नाम के ३२ पद प्राप्त हैं और अनंतदास के नाम से केवल एक पद प्राप्त है।

आचार्य चन्द्र

वृन्दाबनदास ने अपने चैतन्य-भागवत[1] में, और देवकीनंदन ने अपने ग्रंथ वैष्णव-वंदना में आचार्य चन्द्र का उल्लेख किया है। चैतन्य देव के एक चचिया ससुर चन्द्रशेखर आचार्य रत्न थे। ये चैतन्य के अनन्य भक्त थे। आचार्य चन्द्र के नाम से एक पद प्राप्त है, जिसे सुकुमार सेन ने अपनी पुस्तक में उद्‌धृत किया है।[2] इसे उन्होंने दो प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों[3] से पाया है। इसमें नित्यानन्द के प्रति असीम भक्ति दिखाई गई है। प्रारंभ में गौर-वंदना भी है। अतः या तो आचार्य चन्द्र नित्यानन्द के शिष्य हैं अथवा आचार्य-रत्न ही अभीष्ट पदकर्त्ता हैं। इनकी निश्चित जन्म-मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

आत्मारामदास

आत्मारामदास का अधिक विवरण ज्ञात नहीं है। इनके चार पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं। इनमें से तीन पद नित्यानन्द विषयक हैं। इससे ज्ञात होता है कि आत्मारामदास नित्यानन्द के शिष्य और समसामयिक थे। सेन महोदय का मत है कि कदाचित् आत्माराम-दास 'प्रेमविलास' ग्रंथ के रचयिता नित्यानन्ददास के पिता थे। श्री निवास आचार्य के दो शिष्यों के नाम भी आत्मारामदास थे परन्तु वे इन पदों के रचनाकार नहीं हो सकते क्योंकि इन आचार्य महाशय का उल्लेख भी नहीं है।

ईशान नागर

ईशान नागर अद्वैत प्रभु के शिष्य और समसामयिक थे। पांच वर्ष की आयु में वे पितृहीन हो गए। इनकी दुःखी माता ने अद्वैत आचार्य का आश्रय ग्रहण किया और दोनों ने उन्हीं से वैष्णव धर्म की दीक्षा ली। अच्युतानन्द के साथ रह कर ईशान ने शिक्षा पाई। अद्वैत आचार्य ने गौरांग के विरह में व्याकुल होकर ईशान को चैतन्य नाम का प्रचार अपनी जन्मभूमि श्रीहट्ट में करने का आदेश दिया। अद्वैत आचार्य की मृत्यु हो जाने पर उनकी पत्नी सीतादेवी ने इनका विवाह किया और इन्हें अद्वैत प्रभु की जीवनी लिखने को कहा। सुतराम् ईशान ने 'अद्वैतप्रकाश' ग्रंथ की रचना की। कहा जाता है कि १५६८ ई. में यह ग्रंथ समाप्त हुआ। ईशान की निश्चित जन्म और-मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये अद्वैत के समसामयिक थे।

उद्धवदास

इस नाम के दो पदकर्त्ता हुए हैं। जो अधिक प्रसिद्ध कवि थे और जिनके पद अधिक संख्या में प्राप्त हैं, वे अठारहवीं शती में थे। इन्होंने अपने एक पद में एक अन्य उद्धवदास का उल्लेख किया है।

---

१. चै. भा., शेषखंड, अ. ५

2. Brajbuli, Page 211.

३. (१) सजनीकांत दास के पास सुरक्षित प्रति, (२) कलकत्ता विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति संख्या २४९१ जो १६८४ में लिखी गई।

रूप राधुराय नाम गोकुल श्री भगवान
भक्तिमान श्री उद्धवदास । (प. क. त., पद ३०९२)

ये उद्धवदास गदाधर पंडित के शिष्य थे और खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। इनके दो पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं। (१४८१,१५५८।)[१]

पदामृतसमुद्र में उद्धवदास के नाम से कोई भी पद नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध पदकर्त्ता उद्धवदास जिनके पद पदकल्पतरु में हैं अठारहवीं शती तक अप्रसिद्ध ही थे अथवा पदकर्त्ता नहीं थे। पदामृतसमुद्र के संग्रहकार राधामोहन ठाकुर अठारहवीं शती में थे। सेन महोदय को जो पद प्राप्त हुआ है वह सजनीकांत दास के पास सुरक्षित हस्तलिखित प्रति में है। वे उस पद के आधार पर ही एक और उद्धवदास बताते हैं।

कविकंठहार

कविकंठहार का अधिक विवरण अज्ञात है। क्षणदा-गीत-चिंतामणि में एक पद कविकंठहार के नाम से प्राप्त है। दो पद कीर्त्तनानन्द में भी प्राप्त हैं। नगेन्द्रनाथ ने अपने विद्यापति पदावली के संग्रह में तीन पद और दिए हैं।[२] साधारणतः कविकंठहार विद्यापति की ही उपाधि बताई जाती है परन्तु एक बंगाली पद भी कवि कंठहार के नाम से ढाका यूनिवर्सिटी की एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति में है।[३] इससे विद्यापति-भिन्न एक बंगाली कवि की स्थिति ज्ञात होती है। श्रीखंड के रघुनंदन के एक शिष्य कवि कंठहार नाम के थे।

कवि रंजन

ऐसा ज्ञात होता है कि कवि रंजन की दूसरी उपाधि विद्यापति थी। विद्यापति नामांकित कुछ बंगाली पद पदकल्पतरु में हैं। ये पद विद्यापति के हो नहीं सकते क्योंकि वे मैथिल थे। अब तक यह मत प्रचलित था कि किसी बंगाली पदकर्त्ता ने यह पद बनाकर विद्यापति के नाम से चला दिए हैं। परन्तु यह भी ठीक नहीं ज्ञात होता। अधिक संभावना एक बंगाली विद्यापति के होने की ही है। पंडित हरेकृष्ण साहित्यरत्न ने कुछ खोज की है, जिसके आधार पर उन्होंने इस तथ्य को पुष्ट किया है। उन्होंने दिखाया है कि रामगोपालदास के ग्रंथ 'रसकल्पवल्ली' और 'शाखा-निर्णय' में इस बात का उल्लेख है कि श्रीखंडवासी रघुनंदन के एक शिष्य कवि रंजन थे। ये कवि रंजन भी श्रीखंड निवासी थे।[४] ये अच्छे पदकर्त्ता थे और इनके पद विद्यापति की रचनाओं के अनुकरण में बने हैं।

---

१. सुकुमार सेन—हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ. ८८। सेन महोदय ने इन उद्धवदास का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत, आदिखंड, परिच्छेद १२ में बताया है परन्तु गदाधर पंडित की शाखा-गणना में उद्धवदास तो नहीं, पर उद्धरण अथवा उद्धारण नाम दिया है :

"श्रीनाथ चक्रवर्ती आर उद्धारणदास"

२. हि. ब्र. बु., पृ. २०४

३. „ „ , पृ. २०४

४. शा. नि., पृ. १६

ये कभी-कभी छोटे विद्यापति कहलाते भी थे ।[१] 'रसकल्पवल्ली' में इन कवि रंजन विद्यापति के कुछ पद दिए हैं। इन पदों में से एक पद श्रीखंडवासी रघुनंदन की वंदना है ।[२] इससे अनुमान होता है कि कवि रंजन रघुनंदन के शिष्य थे । इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है । रघुनंदन खेतुरी उत्सव में थे । अतः ये भी उस समय रहे होंगे ।

कवि शेखर

कवि शेखर का असली नाम देवकीनंदन सिंह था । राय शेखर से ये भिन्न हैं अथवा एक ही, यह कहना कठिन है । 'कवि शेखर', 'शेखर', 'राय शेखर', 'शेखर राय' इत्यादि नामों से जो पद मिलते हैं, वे इन दोनों के ही हो सकते हैं । कवि शेखर रचित 'गोपाल-विजय' काव्य में इन्होंने आत्म परिचय दिया है :—

सिंहवंशे जन्म नाम देवकीनंदन ।
श्री कवि शेखर राय बले सर्वजन ॥
बाप चतुर्भुज नाम मा हीरावती ।
कृष्ण जार प्राण धन कुल शील जाति ॥

(बां. सा. इ., पृ. २१४)

कवि शेखर ने संस्कृत में 'गोपालचरित' महाकाव्य और 'गोपीनाथ-विजय' नाटक लिखा था । बंगला भाषा में 'गोपालेर कीर्त्तनामृत' और 'गोपाल-विजय' पांचाली काव्य लिखा था । कवि शेखर ने अपनी रचनाओं की गणना भी इसी ग्रंथ में दी है :—

तवे महाकाव्य कैल गोपाल चरित ।
तवे कैल गोपालेर कीर्त्तन अमृत ॥
गोपीनाथ विजय नाटक कैल आर ।
तमु गोपवेशे मन ना पुरे आमार ॥
तवे से पांचाली करि गोपाल विजये ।
वैष्णव चरण रेणु करिया हृदये ॥ (बां. सा. इ., पृ. २१४)

गोपाल विजय पांचाली के प्रारंभ में इन्होंने एक संस्कृत का श्लोक दिया है, जिससे कवि शेखर ही इसके लेखक ज्ञात होते हैं :—

लिखति श्री कविशेखर एतां
प्रतिपदसमयां पदसमुपेताम् ॥
निरवधिमधुरप्रकृतरसिकालीं
श्री गोपाल विजय पांचालीम् ॥ (बां. सा. इ., पृ. २१५)

सुकुमार सेन का मत है कि कवि शेखर और राय शेखर एक ही व्यक्ति हैं ।

कानुरामदास

कानुरामदास नाम के दो व्यक्ति हुए हैं । इनमें से कौन पदकर्त्ता थे अथवा दोनों ही ने पद रचना की थी यह कह सकना कठिन है ।

---

१. शा. नि., पृ. १७
२. बं. सा. प. प., भाग ३७, पृ. ४४

१. **कानूरामदास**—ये नित्यानन्द प्रभु की पत्नी जाह्नवा देवी के शिष्य, तथा सदाशिव कविराज के पौत्र और पुरुषोत्तम दास के पुत्र थे।

श्री सदाशिव कविराज बड़ महाशय ।
श्री पुरुषोत्तम दास ताहांर तनय ॥
....
तार पुत्र महाशय श्री कानु ठाकुर ।
जार देहे रहे कृष्ण प्रेमामृत पूर ॥
(चै. च., आदिखंड, परि. ११, पृ. ६२)

ये कानुरामदास खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त इनकी निश्चित जन्म-तिथि अथवा रचना काल अज्ञात है।

२. **कानूरामदास**—ये कानुरामदास अद्वैत आचार्य की शिष्य शाखा में थे।

अनंत दास कानुपंडित दास नारायण।
(चै. च., आदिखंड, परि. १२, पृ. ६५)

ये कानुरामदास भी खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनकी निश्चित जन्म-तिथि और रचना काल अज्ञात है। इन दोनों कवियों के नाम के १३ पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं।

कामदेवदास

इस नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख पाया जाता है :

१. **अद्वैत आचार्य के शिष्य**—इनका उल्लेख चैतन्यचरितामृत में है।[1] ये अच्युतानंद के संग, जो अद्वैत प्रभु के पुत्र थे, खेतुरी उत्सव में भी गए थे।[2]

२. **कर्णानन्द में उल्लिखित श्रीनिवास के शिष्य**[3]—पदकल्पलतिका और कृष्ण-पदामृत-सिन्धु में इनका एक पद संगृहीत है।

किशोरदास, किशोरीदास

कदाचित् किशोरदास और किशोरीदास एक ही व्यक्ति हैं। प्रेमविलास ग्रंथ में[4] किशोर-दास और किशोरीदास दोनों ही नाम के व्यक्ति श्यामानंद के शिष्य बताए गए हैं। इससे अनुमान होता है कि ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है परन्तु ये भी खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनके दो पद 'अप्रकाशित पदरत्नावली' में और एक 'कृष्णपदामृतसिन्धु' में दिए हुए हैं। भक्ति-रत्नाकर ग्रंथ में भी इनका उल्लेख है।[5]

---

१. चै. च., आदि लीला, परि. १२
२. भ. र., पृ. ६३५
३. कर्णा., निर्यास १
४. प्रे. वि., विलास २०
५. भ. र., पृ. १०५५

कुमुदानंद

कर्णानंद[1] में एक कुमुदानंद का नाम आया है। ये श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। इनका भी इसमें उल्लेख है। इससे अधिक विवरण अज्ञात है। इस नाम से एक पद संकीर्त्तनामृत में है। कदाचित् कर्णानन्द में दिए कुमुदानन्द ही पदकर्त्ता हों।

कृष्णकांत

'गौरपदतरंगिणी' की भूमिका में जिन उद्धवदास का परिचय है उन उद्धवदास का वास्तविक नाम कृष्णकांत मजूमदार बताया है। अन्य किसी भी कृष्णकांत का पता वैष्णव साहित्य में नहीं मिलता अतः इसे ही ठीक मान लेना चाहिए। परन्तु 'कृष्णकांत' दूसरे उद्धवदास का नाम था ऐसा भी जगद्बंधु बाबू ने कहा है। अतः ये सत्रहवीं शती के पूर्व भाग के व्यक्ति हैं।

कृष्णदास

'श्रीकृष्ण-मंगल' ग्रंथ के रचयिता कृष्णदास माधव आचार्य के सेवक थे। उनके पिता का नाम यादवानन्द और माता का नाम पद्मावती था। ये लोग गंगा के पश्चिमी किनारे के प्रदेश में रहते थे। इन्होंने अपने गुरु का उल्लेख किया है परन्तु वास्तविक नाम नहीं दिया है, अतः गुरु कौन है यह जानना कठिन है। उद्धरण निम्न प्रकार है :—

"आमार प्रभु श्रीमती ईश्वरी
दीक्षा मंत्र दिला प्रभु मोर कर्णे धरि।"

(श्री कृष्णमंगल, पृ. ३८४)
(बां. सा. इ., पृ. ३३५)

यह 'ईश्वरी' कौन है? प्रायः नित्यानन्द की पत्नी जाह्नवा देवी के लिए वैष्णव भक्तों ने इस शब्द का प्रयोग किया है। हो सकता है कि इन 'कृष्णदास' की गुरु भी ये जाह्नवा देवी ही हों।

कृष्णदास कविराज

कृष्णदास कविराज 'चैतन्यचरितामृत' के रचयिता और विद्वान कवि थे। इनके रचे केवल पांच पद प्राप्त हैं। वे भी स्वतंत्र पद नहीं हैं; 'चैतन्यचरितामृत' महाकाव्य में दिए हुए हैं। इनकी जन्म-तिथि १४९६ ई. और मृत्यु संवत् १५९८ ई. के लगभग है। इनका रचना काल १५८१ ई. से पहले ही था। सन् १५८१ ई. में इन्होंने 'चैतन्यचरितामृत' समाप्त किया था। जीवन के मध्याह्न काल में कृष्णदास वृंदावनवासी हो गए थे। वहीं पर उन्होंने चैतन्यचरितामृत लिखा और मृत्यु पाई। इन्होंने अपने इसी ग्रंथ में दस अन्य कृष्णदासों का उल्लेख किया है, जिसमें से श्यामानन्द, उपनाम, दुःखी कृष्णदास ही उल्लेखनीय हैं। उनका परिचय आगे दिया जायगा। ये वृंदावनवासी रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्य थे।

---

१. कर्णा., निर्यास १

गिरिधर दास

गिरिधर दास श्री निवास आचार्य के शिष्य थे। रसकल्पवल्ली के रचयिता राम-गोपालदास ने इनका आभार माना है। इनकी निश्चित जन्म-मृत्यु-तिथि अज्ञात है। इनका एक पद 'क्षणदा-गीत-चिंतामणि' में और एक संकीर्त्तनामृत में संगृहीत है। एक संस्कृत ग्रंथ 'परकीया-रसस्थापन-सिद्धान्त-संग्रहम्'' है।

गुप्तदास

'पदकल्पतरु'[1] और 'क्षणदा-गीत-चिंतामणि'[2] में एक पद गुप्तदास का संगृहीत है। इससे ये कवि अभिराम ठाकुर के शिष्य जान पड़ते हैं। अभिराम ठाकुर नित्यानन्द प्रभ के अनुयायी थे। 'गुप्तदास' का अधिक विवरण अप्राप्य है।

गोकुल दास

भक्ति रत्नाकर[3] के अनुसार श्री आचार्य के एक शिष्य गोकुलदास थे। इनका कवीन्द्र नाम भी दिया है। उसी ग्रंथ में ये काढ़ी के मूल निवासी बताए गए हैं जो पीछे जाकर पंचकोट के सेरगढ़ में बस गए थे। गोकुलदास रचित केवल एक पद प्राप्त है जो कृष्ण के बहुत से नाम और उपाधियों की गणना-मात्र करता है। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

गोपाल भट्ट

गोपाल भट्ट दक्षिणात्य ब्राह्मण थे। भट्टमारी के वेंकट भट्ट इनके पिता थे। चैतन्य देव अपने दक्षिण भ्रमण के समय इनसे मिले थे। गोपाल भट्ट फिर वृंदावन में निवास करने लगे और प्रसिद्ध षष्ठ गोस्वामियों में से एक हुए। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। १५०३-१५७८ ई. तक इनकी उपस्थिति ज्ञात है। इन्होंने वैष्णव-स्मृति पर 'हरिभक्तिविलास' ग्रंथ की रचना की है। गोपाल भट्ट के रचे तीन पद पदकल्पतरु[4] में प्राप्त हैं। ये तीनों ब्रज भाषा में लिखे गए हैं।

गोपीकान्त वसु

गोपीकान्त वसु के नाम से केवल एक पद 'कृष्णपदामृत-सिन्धु' में है।[5] यह पद वात्सल्य रस का है।[6] ये कदाचित् रामानन्द वसु के वंश में थे। चैतन्यचरितामृत में इनका उल्लेख चैतन्य देव के अनुयायियों में किया गया है।[7] इनके विषय में अधिक ज्ञान नहीं है।

---

१. प. क. त., पद २३१९
२. क्ष. गी. चि. २४
३. पंचकूटे सेरगड़ वासी श्री गोकुल। पूर्व वास कड़इ कवीन्द्र भक्त्यातुल॥
भ. र., पृ. ६१९
४. प. क. त., पद १०८८, २८३३, २९६६
५. कृ. प. सि., पृ. १२
6. **Brajbuli, p. 401.**
७. चै. च., आदिलीला, परि. १०

गोपीरमण

गोपीरमण नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। एक तो श्री निवास आचार्य के शिष्य गोपीरमण वैद्य[1] और दूसरे हृदय चैतन्य के शिष्य ।[2] वैष्णवदास और पदकर्त्ता उद्धवदास ने उनका उल्लेख किया है।

जय जय गोपीरमण रसायन उज्वल-मुरति नितांत।

(प. क. त., पद १८)

श्री गोपीरमण नाम भगवान गोकुलाख्यान

(प. क. त., पद ३०९२)

गोवर्धन

गोवर्धन नामांकित १६ पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। इस नाम के चार व्यक्तियों का परिचय मिलता है।

१. रघुनाथदास के पिता गोवर्धनदास—ये चांदपुर ग्राम के निवासी थे। यवन 'हरिदास' कुछ दिन इनके घर रहे थे। इनका उल्लेख राधावल्लभदास ने एक पद में किया है। ये गोवर्धनदास अत्यन्त धनी व्यक्ति थे। रघुनाथ गोस्वामी जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति के पिता थे। परन्तु कवि या रचयिता के नाम से इनकी ख्याति नहीं है।

२. जयपुर के गोकुलचन्द्र मंदिर के प्रसिद्ध कीर्तनियां और पदकर्त्ता गोवर्धनदास—ये सत्रहवीं शती के व्यक्ति हैं।

३. नरोत्तम ठाकुर के शिष्य गोवर्धनदास—नरोत्तम-विलास ग्रंथ में इनका उल्लेख है :—

जय श्री भांडारी गोवर्धन भाग्यवान।
जेहुं सर्व्वमते कार्य करे समाधान॥

प्रेम-विलास ग्रंथ में भी इनका उल्लेख है।

गोवर्धन भांडारी शाखा सर्वत्र विदित।
महाशय करे तारे अतिशय प्रीत।

परन्तु इस बात का कहीं भी उल्लेख नहीं है कि ये कवि भी थे।

४. श्यामानंद के वंशज गोवर्धनदास—ये कवि थे, इस बात का उल्लेख कहीं नहीं है।

गोवर्धन के नाम से १६ पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कौन से गोवर्धनदास इनके रचयिता हैं। नरोत्तम ठाकुर के शिष्य गोवर्धन भांडारी को ही पदकर्त्ता माना जाता है।[3] परन्तु इसका प्रमाण कुछ नहीं है। पद बंगला और ब्रजबुलि दोनों में हैं। विषय कृष्णलीला और चैतन्य लीला है।

---

१. कर्णानंद, निर्यास १, प्रेम विलास, विलास २०

२. भ. र., पृ. १०४

३. गौ. प. त. की भूमिका, पृ. २८

गोविंद घोष

गोविंद घोष चैतन्य देव के सहचर और समसामयिक थे। ये श्रेष्ठ गायक भी थे। इनके रचे पद सब गौरांग विषयक हैं। पदकल्पतरु में इनके ६ पद प्राप्त हैं। इनकी निश्चित जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। चैतन्यचरितामृत और चैतन्यभागवत में इनका उल्लेख है। माधव घोष और वासुदेव घोष इनके भाई थे।

गोविंद माधव वासुदेव तिन भाइ।
जां सवार कीर्त्तने नाचे चैतन्य निताइ॥

(चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ६०)

गोविंददास आचार्य

गोविंददास आचार्य श्री चैतन्य-देव के शिष्य और समसामयिक थे तथा १५३३ ई. के लगभग उपस्थित थे। इनके पद पिछले दोनों गोविंददास के पदों में मिल गए हैं क्योंकि इनके पद प्राप्त नहीं हैं। 'वैष्णव-वंदना' और 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' दोनों में इनका उल्लेख है। वैष्णव-वंदनाओं के उल्लेख नीचे दिए जा रहे हैं :—

गोविंद आचार्य वंदो सर्व्व गुणशाली। जे करिल राधाकृष्णेर विचित्र धामाली॥

(देवकीनंदन कृत, बां. सा. इ., पृ. २०४)

गोविंद-आचार्य पद करिल वंदन। राधाकृष्ण रहस्य जे करिल वर्णन॥

(माधवनंद कृत, बां. सा. इ., पृ. २०४)

रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में सुरक्षित हस्तलिखित प्रति में कवि ने कहा है :—

चिंतिया चैतन्यदेवेर चरण कमल। द्विज गोविंद बोले श्रीकृष्ण मंगल॥

(बां. सा. इ., पृ. २०५)

इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने एक श्रीकृष्ण-मंगल भी लिखा था।

गोविंददास कर्मकार

गोविंददास कर्मकार चैतन्यदेव के सेवक बताए जाते हैं। कहा जाता है कि ये उनके जीवन की प्रधान घटनाओं को लिखते रहते थे; मुख्यतः नीलाचल वास और दक्षिण भ्रमण के समय की घटनायें। आगे चल कर इसे कड़चा का रूप दे दिया गया। परन्तु गोविंददास कर्मकार का उल्लेख चैतन्यदेव के सेवक के रूप में 'चैतन्यचरितामृत' अथवा 'चैतन्य-भागवत' किसी में भी नहीं है। केवल जयानन्द के 'चैतन्यमंगल' में इनका उल्लेख है :—

मुकुंद-दत्त वैद्य गोविंद कर्मकार।
मोर संगे आइसह काटोआ गंगापार॥

(बां. सा. इ., पृ. २७२)

इसके अनुसार ये चैतन्यदेव के समसामयिक ठहरते हैं।

गोविंददास कविराज

चैतन्यदेव के परवर्ती कवियों में गोविंददास कविराज सर्वश्रेष्ठ कवि हुए। इन्होंने केवल ब्रजबुलि में पद रचना की है। इनके पदों की संख्या भी अधिक है। पदकल्पतरु में

४६० पद प्राप्त हैं। इनका जन्म १५३० ई. और मृत्यु १६१३ ई. के लगभग है। इनका उल्लेख बहुत से ग्रंथों में मिलता है।[1] भक्तमाल, भक्ति-रत्नाकर और प्रेम-विलास में इनका विस्तृत विवरण है। भक्तमाल के अनुसार गोविंददास के भाई रामचन्द्र कविराज थे। वे विवाह के दिन गृह त्याग कर श्रीनिवास आचार्य के शिष्य हुए और उन्हीं के कहने पर गोविंददास जो पहले शाक्त थे वैष्णव हुए। प्रेमविलास में कविराज के बड़े भाई का दिया हुआ आत्म-परिचय है जो उन्होंने श्रीनिवास आचार्य को दिया था। उसके अनुसार ये तेलिया बुधरी ग्राम में जन्मे थे। पिता का नाम चिरंजीव सेन था।

तिलिया-बुधरी ग्रामे जन्म मोर हय।
पितार नाम चिरंजीव सेन महाशय॥
कनिष्ठ भ्रातार नाम हय श्री गोविंद।
एकोदरे दुइ भाइ परम स्वच्छन्द॥

(प. क. त., भाग ५, परिशिष्ट, पृ. ६०)

कहा जाता है कि कवि ने अपने पदों का संग्रह "गीतामृत" नाम से स्वयं किया था।

(प. स., पृ. १७)

भक्ति-रत्नाकर ने गोविंददास की उपस्थिति खेतुरी उत्सव में बताई है। वहां पर उनके पदों का कीर्त्तन सुनकर वीरभद्र गोस्वामी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे।

श्री गोविंद कविराजेर दुटि करे धरि।
कहे तुया काव्येर बालाई लैया मरि॥

(प. क. त., भाग ५, परिशिष्ट, पृ. ६६)

गोविन्ददास चक्रवर्ती

ये बोराकुली ग्राम-निवासी भक्त और पदकर्त्ता थे। गोविंददास श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। गोविंददास कविराज इनके समसामयिक और गुरुभाई थे। चक्रवर्ती महोदय की निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। रचना काल गोविंददास के रचना काल १५८३ ई. के आसपास हो सकता है। पदकल्पतरु में इनके ६ पद प्राप्त हैं। भक्ति-रत्नाकर ग्रंथ में इनका उल्लेख निम्न प्रकार से है :—

आचार्येर अति प्रिय शिष्य चक्रवर्त्ती।
गीतवाद्य-विद्याय निपुण भक्ति मूर्त्ति॥

वैष्णवदास के एक पद में गोविंददास चक्रवर्ती का उल्लेख है।

जय जय युगल-पिरितिमय श्रीयुत
चक्रवर्ती गोविंद। (प. क. त., पद १८)

पदकर्त्ता उद्धवदास ने भी अपने एक पद में गोविंददास का नाम दिया है।

श्रीदास गोकुलानंद चक्रवर्ती श्री गोविंद
श्रीराम-चरण श्रील व्यास॥

(प. क. त., पद ३०९२)

---

१. भक्तमाल, प्रेम-विलास, भक्ति-रत्नाकर, सारावली, कर्णानंद, मुक्ताचरित, अनुराग-वल्ली, नरोत्तम-विलास, श्रीनिवास-चरित्र।

गोस्वामीदास

प्रेमविलास[1] और नरोत्तमविलास[2] में एक गोस्वामीदास का वर्णन है। ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य बताए गए हैं। इनका एक पद सेन[3] ने हस्तलिखित प्रति से उद्धृत किया है। इनका अधिक विवरण अप्राप्य है।

गौरांगदास

गौरांगदास नाम के चार व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है।

१-२ **नरोत्तम ठाकुर के दो शिष्य।** इनका उल्लेख नरोत्तम-विलास में निम्न प्रकार से है :–

जय––श्रीगौरांगदास बायन––ठाकुर, जाहार मृदंग बाद्य टाप जाय दूर ॥

दूसरे गौरांगदास का उल्लेख भी उसी ग्रंथ में है––

जय श्री गौरांगदास बैरागी प्रवीण।

(हि. ब्र. बु., पृ. २०२ फुटनोट)

इन दोनों अवतरणों के अनुसार एक गौरांगदास वादक थे और दूसरे वैरागी थे।

३. **श्रीनिवास आचार्य के शिष्य गौरांगदास**–इनका उल्लेख प्रेमविलास[4] में है।

४. नरोत्तम-विलास[5] में एक चौथे **गौरांगदास** का उल्लेख है जो जाह्नवा ठकुरानी के साथ खेतुरी उत्सव में गए थे।

इन चारों में से कोई भी अभीष्ट पदकर्त्ता हो सकता है।

गौरीदास

गौरीदास नाम के दो व्यक्ति हुए। पदकल्पतरु में इस नाम से दो पद संगृहीत हैं। दोनों गौरीदासों का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।

१. **गौरीदास पंडित**––गौरीदास पंडित चैतन्यदेव के अनन्य भक्त थे। ये उनके समकालीन थे। ये उनके कीर्त्तन की ओर प्रबल रूप से आकृष्ट हुए थे। नित्यानन्द प्रभु और चैतन्यदेव का साथ छोड़कर ये घर नहीं जाते थे। इनके संबंधियों ने चैतन्य से प्रार्थना की कि वे गौरीदास को विवाह करके घर रहने की आज्ञा दें। उन्होंने चेष्टा की परन्तु गौरीदास अत्यन्त पीड़ित हुए। तब नित्यानन्द ने उन्हें घर पर चैतन्यदेव की मूर्ति प्रतिष्ठित करके घर रहने को कहा। इस पर वे राज़ी हो गए। ये गौरीदास अम्बिका कलना वासी कंसारी मिश्र के पुत्र थे। ऊपर दिए विवरण का उल्लेख ईशान के 'अद्वैत-प्रकाश' ग्रंथ में है।

महाप्रभुर अंतरंग-भक्त गौरीदास।
जबे गौर-संगे कैला कीर्त्तन-विलास ॥

---

१. प्रे. वि., विलास २०
२. न. वि., विलास १२
३. हि. ब्र. बु., पृ. ४०९
४. प्रे. वि., विलास २०
५. न. वि., विलास ८

गौर-निताई-संग बिनु घरे नाहिं रय।
तार बंधु-गण महाप्रभुरे कहय ॥
एइ बालकेरे आज्ञा कर दार-ग्रहे ।
सभार आनंद जदि थाके निज गृहे ॥
.... इत्यादि (हि. ब्र. बु., पृ. ३९८)

इन गौरीदास का उल्लेख कृष्णदास कविराज नें भी किया है।[२]

२. **गौरीदास कीर्त्तनियां**—दूसरे गौरीदास नित्यानन्द के समसामयिक भक्त थे। इनके संबंध में 'वैष्णव-वंदना' में निम्न उल्लेख है।

गौरीदास कीर्त्तनियार केशेते धरिया ।
नित्यानंद स्तव कराइला निज.शक्ति दिया ॥
(प. क. त., परिशिष्ट, पृ. ८४)

नित्यानन्द-वंदना सूचक एक पद पदकल्पतरु में है। इसमें गौरीदास का नाम है।

पहुमोर नित्यानंद राय[१]
....
गौरीदास हासि हासि, राजार निकटे बसि,
हाटेर महिमा किछु शुनि
(प. क. त. पद, २३१३)

दोनों ही व्यक्ति पदकर्त्ता हो सकते हैं परन्तु नित्यानन्द विषयक रचना गौरीदास द्वितीय की ही हो सकती है।

चंडीदास

चंडीदास नाम से युक्त बहुत से पद प्राप्त हैं। प्राप्त पदों में चंडीदास आदि, चंडीदास, द्विज चंडीदास, दीन चंडीदास, बड़ु चंडीदास, आदि कई प्रकार की भणितायें मिलती हैं। चंडीदास के नाम से 'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' नामक रचना भी प्राप्त है। चंडीदास नामधारी एक ही व्यक्ति थे जिनकी यह सब रचनायें हैं अथवा कई व्यक्ति थे इस पर विद्वानों ने बहुत छानबीन की है। प्रायः सब ही इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि दो चंडीदास तो अवश्य ही थे।

१—चैतन्य देव के पूर्ववर्ती एक चंडीदास थे, इस ब त का निर्देश चैतन्यचरितामृत म मिलता है। चैतन्यदेव चंडीदास के गीत सुनकर प्रसन्न होते थे। ये प्रसिद्ध बड़ु चन्डीदास माने जाते हैं और १४वीं शती के हैं। इनकी प्रसिद्ध रचना श्री कृष्ण कीर्त्तन है।

चंडीदास विद्यापति रायेर नाटक गीति कर्णानंद श्रीगीतगोविंद ।
स्वरूप रामानंद सने महाप्रभु रात्रि दिने गाय शुने परम आनंद ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २, पृ. १०६)

---

१. प. क. त., पद २२४२
२. प. क. त., पद २३५८, २३५९, २३६०

२—चैतन्य देव के परवर्त्ती एक व्यक्ति दीन चंडीदास थे, इस बात का पता चलता है। दीन चंडीदास की पदावली का संग्रह श्री मगोन्द्रमोहन वसु ने प्रकाशित किया है। दीन चंडीदास के नाम से युक्त एक पद प्राप्त है जिसमें नरोत्तमदास की वंदना है, इससे वे नरोत्तम के शिष्य ज्ञात होते हैं।

जय नरोत्तम गुणधाम
दीन दयामय अधम दुर्गत पतिते करुणावान।
.. ..
दीन चंडीदास कह कत दिने पदयुग हबे लाभ ॥
(प.क.त., परिशिष्ट, पृ. १०४)

चन्द्रशेखरदास

चन्द्रशेखर नाम के दो कवि हुए हैं। एक तो वैष्णवदास के परवर्ती कवि ज्ञात होते ह क्योंकि उनके संग्रह पदकल्पतरु में चन्द्रशेखरदास के कोई भी पद नहीं है। दूसरे चन्द्रशेखर आचार्य उपाधि से युक्त हैं। ये चैतन्यदेव के संबंधी और अनन्य भक्त थे। अतः ये उनक समसामयिक थे। चैतन्यदेव के संन्यास ग्रहण करके नीलाचल वास के समय आचार्य अन्य भक्तों के साथ प्रति वर्ष रथ-यात्रा के अवसर पर उनके दर्शन करने पुरी जाते थे। इनका उल्लेख चैतन्य-भागवत और चैतन्य-चरितामृत में है। इनके तीन पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं।

चैतन्य-चरितामृत के आदिलीला खंड के दसवें परिच्छेद में इनका उल्लेख है :—

श्री आचार्य रत्न नाम एक बड़ शाखा।
तांर परिकर तार शाखा उपशाखा ॥
आचार्य रत्नेर नाम श्री चन्द्रशेखर।
जांर घरे देवीभावे नाचेन ईश्वर।

एक तीसरे चन्द्रशेखर का उल्लेख रामगोपालदास ने 'शाखा-निर्णय' ग्रंथ में किया है जो नरहरि सरकार के शिष्य थे।[1]

चम्पति

चम्पति गोविंददास कविराज के मित्र और समसामयिक थे। गोविंददास के दो पदों में उनके साथ साथ चम्पति का नाम भी आया है। एक पद में विद्यापति के साथ भी उनका नाम आया है।

---

१. चन्द्रशेखर नाम वैद्य आशिला खंडेते।
जार बसत बाटी खंड क्षेत्र तलाते ॥
रसिकराय विग्रह तार सेवा अतिशय।
स्वर्ण ठाकुर बलि मोगल बेढ़िला आलय ॥
बकसे राखिला ठाकुर तबु न छांड़िला।
चन्द्रशेखर मुंड मोगल काटिला ॥

विद्यापति कवि चम्पति भाण।
राइना हेरव तोहारि बयान ॥
(प. क. त., पद ३६८)

गोविंददास के दो पदों में चम्पति का उल्लेख है। चम्पति कवि के ९ पद 'पदकल्पतरु' में प्राप्त हैं।

चूड़ामणिदास

'भुवन-मंगल' ग्रंथ के रचयिता चूड़ामणिदास का विशेष परिचय तो अज्ञात है। उन्होंने स्वयं जितना परिचय दिया है, वह निम्न है :—

धनंजय–पंडित खंडित भवबंध
चूड़ामणिदास करे पांचाली–प्रबंध।
रामदास–धनंजय करिया सहाय
गौरजन्महेतु चूड़ामणिदास गाय।
(बां. सा. इ., पृ. २६२)

इससे इतना ज्ञात होता है कि चूड़ामणिदास नित्यानन्द के अनुचर धनंजय पंडित के शिष्य थे।

चैतन्यदास

वंगीय वैष्णवों में कई व्यक्ति चैतन्यदास नाम के हुए। नीचे दिए दो व्यक्तियों के पदकर्त्ता होने की अधिक संभावना है। प्राप्त १५ पद किसकी रचना हैं, यह कहना कठिन है। परन्तु समस्त पदों की शैली इत्यादि समान है अतः वे एक ही व्यक्ति के हो सकते हैं।

१. शिवानन्द सेन के ज्येष्ठ पुत्र चैतन्य दास थे, परन्तु इनका अन्य विशेष विवरण अज्ञात है। अतः दूसरे चैतन्यदास की जो वंशीवदन के पुत्र थे पदकर्त्ता होने की अधिक संभावना है।[1] इनकी निश्चित जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि तो अज्ञात है परन्तु ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनके निम्न पद से ज्ञात होता है कि ये चैतन्यदेव के सामने ही उत्पन्न हुए थे :—

मोहे बिहि विपरीत भेल।
अभिमाने मोहे उपेखि पहुं गेल ॥
... ...
कि करिब कि ना जानि हृल।
पराण–पुतलि गोरा मोरे छांड़ि गेल ॥
... ...
चैतन्य दासेर सेइ हृल।
पाइया गौरांगचांद ना भजि तेजिल ॥
(प. क. त., पद ४६३)

२. चैतन्यदास का विवरण चैतन्य-चरितामृत में आदिलीला, दशम परिच्छेद में है

---

१. सुकुमार सेन—हि. ब्र. बु., पृ. ९०

चैतन्य दास राम दास आर कर्णपूर
तिन पुत्र शिवानंद प्रभुर भक्त शूर ।।

जगन्नाथदास

जगन्नाथदास नाम के कई व्यक्ति चैतन्य देव के भक्तों में हुए हैं। उनमें से दो का कुछ ब्यौरा ज्ञात है। काष्ठकाटा के जगन्नाथदास का नाम चैतन्य-चरितामृत में गदाधर पंडित के शिष्यों में दिया हुआ है :—

श्रीनाथ चक्रवर्ती आर उद्धारण दास ।
जितामिश्र काष्ठकाटा जगन्नाथ दास ।।

(चैं. च., आदिलीला, परि. १२ पृ. ६६)

परन्तु जो पद प्राप्त हैं उनमें चैतन्य देव के गृह जीवन का वर्णन है जिससे ज्ञात होता है कि पदकर्त्ता उनका समसामयिक था। एक दूसरे जगन्नाथदास चैतन्यदेव के अनन्य भक्त उड़ीसावासी थे। इनका उल्लेख देवकीनंदनदास ने वैष्णव-वंदना में किया है।

जगन्नाथदास वंदों संगीले पंडित ।
जार गीत शुनिया श्री जगन्नाथ मोहित ।।

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. ८५)

इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। चैतन्यदेव के नीलाचल वास के समय ये उपस्थित थे। इन्होंने भागवत की व्याख्या की थी और पद बनाए थे। पदकल्पतरु में इनके १० पद प्राप्त हैं।

जयकृष्णदास

कर्णानन्द[1] में एक जयकृष्ण आचार्य का उल्लेख है जो श्रीदास के पुत्र और कांचन गड़िया के हरिदास आचार्य के पौत्र थे। उसी ग्रंथ में इन्हें रामचन्द्र कविराज का शिष्य बताया है। नरोत्तम-विलास[2] में ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य बताए गए हैं। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। हो सकता है कि ये रामचन्द्र कविराज अथवा नरोत्तमदास के समसामयिक रहे हों। १६५३-१६५६ ई. की एक हस्तलिखित प्रति में इनके ग्यारह पद संगृहीत हैं।[3] तीन बंगाली पद कृष्णपदामृत सिन्धु में और एक पद कल्पलतिका में और पाए जाते हैं। अधिकांश पद सुबल-सम्वाद पर हैं।

जयचन्द्रदास

'अप्रकाशित पद-रत्नावली' में जयचन्द्रदास के नाम से एक पद प्राप्त है। इन कवि का अन्य समस्त विवरण अज्ञात है। सुकुमार सेन महोदय का अनुमान है कि जयचन्द्रदास नाम के कोई अन्य व्यक्ति नहीं हैं, वरन् ये और 'जयकृष्णदास' एक ही व्यक्ति हैं, तथा लिखने की भूल से जयकृष्ण की जगह जयचन्द्र हो गया है।

---

१. कर्णा., निर्यास ३
२. न. वि., विलास १२
३. हि. ब्र. बु., पृ. १९४

जानकीदास

जानकीदास नरोत्तमदास के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये नरोत्तमदास के समसामयिक थे। इनके केवल दो पद प्राप्त हैं। एक पद 'अप्रकाशित पद-रत्नावली' में और एक 'हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर' में दिया है। इनका उल्लेख प्रेम-विलास २० और नरोत्तम-विलास २० में है।

जानकीवल्लभ

'अप्रकाशित पद-रत्नावली' में जानकीवल्लभ के नाम का एक पद संगृहीत है। प्रेम-विलास[1] में नरोत्तमदास के शिष्यों में एक जानकीवल्लभ चौधरी का नाम आया है। नरहरि ने अपने ग्रंथ नरोत्तम-विलास[2] में इन्हें जानकीवल्लभ ठाकुर करके सम्बोधित किया है। इससे ये ब्राह्मण ज्ञात होते हैं। अन्य विवरण अज्ञात हैं।

'द्विज जानकी' और 'दास जानकी' नाम से भी तीन पद एक हस्तलिखित प्रति में, जो 'सजनीकांत' दास के पास है, पाए जाते हैं।[3] खेतुरी उत्सव में एक द्विज जानकी उपस्थित थे। कर्णानन्द[4] और प्रेम-विलास[5] में एक दास जानकी श्रीनिवास के शिष्यों में बताए गए हैं। सेन महोदय इन दोनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं।

ज्ञानदास

ज्ञानदास श्रेष्ठ पदकर्त्ता थे। इन्होंने बंगाली भाषा और ब्रजबुलि दोनों में ही रचना की है। स्वर्गीय रमणीमोहन मल्लिक ने ज्ञानदास के पदों का संकलन 'ज्ञानदास पदावली' के नाम से किया है। पदकल्पतरु में उनके १८६ पद हैं। 'अप्रकाशित पदरत्नावली' में और ५६ पद संगृहीत हैं। बर्दवान जिले के उत्तर में स्थित 'कांदड़ा' ग्राम में इनका जन्म १५३० ई. में हुआ था। उस ग्राम में इनके संस्मरण में प्रतिवर्ष वैष्णव सम्मेलन होता है। भक्ति-रत्नाकर ग्रंथ में इसका उल्लेख यों है :—

राढ़देशे कांदड़ा नामेते ग्राम हय।
तथाय मंगल ज्ञानदासेर आलय।।

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. ९६)

ज्ञानदास जाति के ब्राह्मण थे। इन्होंने जाह्नवा देवी से, जो नित्यानन्द प्रभु की पत्नी थीं, मंत्र दीक्षा ली थी। अतः चैतन्य-चरितामृत में इन्हें नित्यानन्द के शिष्यों में परिगणित किया गया है।

पीताम्बर माधवाचार्य दास दामोदर।
शंकर मुकुंद ज्ञानदास मनोहर।

(चै. च., आदिलीला, परि. ११, पृ. ६२)

---

१. प्रे. वि., विलास २०
२. न. वि., विलास १२
३. हि. ब्र. बु., पृ. १९८
४. कर्णा., निर्यास २
५. प्रे. वि., विलास २०

ज्ञानदास कटवा उत्सव और खेतुरी उत्सव दोनों में उपस्थित थे, इसका उल्लेख 'नरोत्तम-विलास' में मिलता है :—

श्रील रघुपति उपाध्याय, महीधर ।
मुरारि, मुकुंद, ज्ञानदास मनोहर ।

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. ९७)

ज्ञानदास ने राधाकृष्ण लीला वर्णन में चंडीदास का अनुगमन किया है।

तुलसीदास

'क्षणदा-गीत-चितामणि' में केवल एक पद तुलसीदास के नाम से संगृहीत है।[1] इस पद की प्रथम पंक्ति निम्न है :—

राधा कान निकुंज मंदिर मांझ

इसी प्रथम पंक्तिवाला एक पद गोविंददास का भी मिलता है परन्तु शेष पदों के भाव भिन्न भिन्न हैं। तुलसी नाम से युक्त पद की अन्तिम पंक्ति से मिलती जुलती कवि शेखर के एक पद की भी अन्तिम पंक्तियां हैं। अतः यह पद किसका है, यह कहना कठिन है। 'तुलसीदास' का कुछ विशेष परिचय भी प्राप्त नहीं है। प्रेम-विलास[2] और कर्णानन्द[3] में एक तुलसीरामदास का नाम आया है जो श्रीनिवास के शिष्य थे।

दिव्यसिंह

दिव्यसिंह गोविंददास कविराज के पुत्र और श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।[4] इनका केवल एक पद 'संकीर्त्तनामृत' में संगृहीत है। ये खेतुरी उत्सव में थे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। दिव्यसिंह रचित केवल एक पद संकीर्त्तनामृत में प्राप्त है।

देवकीनंदनदास

देवकीनंदनदास के पांच पद पदकल्पतरु में दिए हैं। कहा जाता है कि देवकीनंदन-दास का पूर्व नाम चापाल गोपाल था। उन्होंने श्रीवास के उस प्रांगण में जहां वैष्णव-गण कीर्त्तन करते थे शक्ति पूजा की सामग्री रख कर उन लोगों को शाक्त सिद्ध करने का पाप किया था जिसके फलस्वरूप उन्हें कुष्ठ हो गया। श्रीवास पंडित ने क्षमा करके वैष्णवों की वंदना करने की आज्ञा दी अतः उन्होंने 'वैष्णव-वंदना' ग्रंथ लिखा।

वैष्णव निन्दने तोमार एतेक दुर्गति। वैष्णव वंदना करि शुद्ध कर मति ॥

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. ९८)

देवकीनंदनदास पुरुषोत्तमदास के शिष्य और समसामयिक थे। उन्होंने वैष्णव-वंदना में कहा है :

---

१. क्ष. गी. चि., पद ३०५
२. प्रे. वि., विलास २०
३. कर्णा., निर्यास १
४. कर्णा., निर्यास १

पुरुषोत्तम पदाश्रय करि गिया धरे।

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. ९८)

पुरुषोत्तमदास नित्यानन्द प्रभु के शिष्य थे। पद और वैष्णव-वंदना के अतिरिक्त इन्होंने वैष्णवाभिधान नामक एक ग्रंथ और वनाया था।

द्विज गंगाराम

'क्षणदा-गीत-चिंतामणि' में एक पद द्विज गंगाराम नाम से पाया जाता है। यह नित्यानन्द प्रभु की वंदना में लिखा गया है। सुकुमार सेन का कथन है कि उन्होंने बंगीय साहित्य परिषद् की एक हस्तलिखित पोथी में भी इस नाम से अंकित एक पद देखा है। अतः द्विज गंगाराम पदकर्त्ता का होना निश्चित ही है। जाह्नवा देवी के एक भाई 'बड़ु गंगादास' थे। ये गौरीदास पंडित के शिष्य थे।[1] इस बात का उल्लेख भक्ति-रत्नाकर में है। ये द्विज गंगादास खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। सम्भवतः इन्हीं का पूरा नाम गंगारामदास रहा हो और ये ही अभीष्ट पदकर्त्ता रहे हों।

द्विज हरिदास

चैतन्यदेव के कई भक्त इस नाम के थे। द्विज हरिदास कांचनगड़िया स्थान के रहने वाले थे। जीवन के उत्तर काल में वे जाकर वृंदावन में रहने लगे थे। श्रीनिवास आचार्य ने उनके दो पुत्रों को दीक्षा दी थी।[2] अपने एक पद में इन्होंने श्रीनिवास की उच्चता बताई है।[3] इससे ये श्रीनिवास के भक्त ज्ञात होते हैं। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। १५३३ ई. के आसपास उपस्थित थे। इनकी एक रचना 'नाम-संकीर्त्तन' है।

दूसरे **हरिदास** चैतन्य देव के साथ नीलाचल पर रहते थे। ये महाप्रभु को कीर्त्तन ज्ञान सुनाया करते थे। एक बार इन्होंने चैतन्यदेव के लिए भिक्षा मांग कर लाए हुए मोटे चावलों को शिखी माइती की बहन के महीन चावलों से बदल लिया। इस अवसर पर उन्होंने उससे बातचीत भी की थी। चैतन्य देव की आज्ञा थी कि उनके भक्त और साथी स्त्रियों से साक्षात्कार न करें और न बात करें। इस अपराध पर उन्होंने हरिदास को त्याग दिया। ऐसा कहा जाता है कि दुःखी हरिदास ने गंगा में डूब कर प्राण दे दिए।

चैतन्य-चरितामृत, आदिलीला के दसवें अध्याय में दो हरिदासों का उल्लेख है :—

बड़ हरिदास आर छोट हरिदास।
दुइ कीर्त्तनीया रहे महाप्रभु आश।

(चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ० ६१)

परन्तु चैतन्यचरितामृत के आदिखंड के आठवें अध्याय में एक तीसरे हरिदास का भी उल्लेख है।

---

१. भ. र., पृ. ६७३

२. प. क. त., पद १७, और भक्ति-रत्नाकर

३. प. क. त., पद १७, ३०१४

अंते श्रीनिवास पद सेवायुक्त जे सम्पद
से सम्पदे सम्पदी जे हय

पंडित गोंसाञिर[1] शिष्य अनंत आचार्य ।
कृष्ण प्रेममय तनु उदार महा आर्य ।।
तांहार अनंत गुण के करु प्रकाश ।
तार प्रिय शिष्य इहों पंडित हरिदास ।।

.. ..

तिहों बड़ कृपा करि आज्ञा दिले मोरे ।
गौरांगेर शेष लीला वर्णिवार तरे ।।

(चै. च., आदिलीला, परि. ८, पृ० ५३)

इसके अनुसार ये तीसरे हरिदास गदाधर पंडित की शिष्य-परम्परा में थे और कृष्णदास कविराज के समसामयिक थे ।

एक चौथे हरिदास ठाकुर और थे। ये यवन थे परन्तु इन्होंने वैष्णव धर्म ग्रहण कर लिया था।

हरिदास का उल्लेख वैष्णवदास के एक पद में है :

गौरांगचांदेर प्रिय परिकर, द्विज हरिदास नाम ।
कीर्त्तन विलासी प्रेम सुखराशि, युगल-रसेर धाम ।।
ताहार नंदन प्रभु दुइ जन, श्रीदास गोकुलानंद

.. ..

गोरा-गुणमय सदय हृदय, प्रेममय श्रीनिवास ।।
आचार्य ठाकुर खेयाति जाहार, दोहे रहे तार पाश ।
पितृ-अनुमति जानिया ऐ दोहे, हइला ताहार शाखा ।।

(प. क. त., पद १७)

धरणी

धरणी के नाम से केवल चार पद पदकल्पतरु में दिए हैं। एक पद में वे कहते हैं :—

पहु मोर श्री श्रीनिवास
अविरत रामचन्द्र पहु विहरत
संगे नरोत्तमदास

(प. क. त., पद २३८१)

इससे ज्ञात होता है कि धरणी श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है । न यह ही ज्ञात होता है कि ये आचार्य के समसामयिक थे । श्री निवास आचार्य की जीवनी इत्यादि का विवरण जिन जिन ग्रंथों में दिया है उनमें किसी में भी धरणी का नाम नहीं है। हो सकता है कि यह श्रीनिवास की शिष्य-परम्परा में ही रहे हों। धरणी श्रेष्ठ कवि जान पड़ते हैं यद्यपि पद संख्या बड़ी नगण्य है ।

नयनानंद

नयनानन्द वाणीनाथ मिश्र के जो गदाधर पंडित के भाई थे, पुत्र थे। ये चैतन्य देव के

---

१. गदाधर पंडित

प्रमुख भक्त थे। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है परन्तु वे खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। अत: १५८३ ई. की उपस्थिति ज्ञात है। पदकल्पतरु में इनके २५ पद प्राप्त हैं। नयनानन्द का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत, आदिलीला के १२ वें परिच्छेद में है।

अनंत आचार्य कविदत्त मिश्र नयन।
गंगा मंत्री मामुठाकुर कंठाभरण॥

'प्रेम-विलास' ग्रंथ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति में, जो नवद्वीपवासी रसिकलाल बाबाजी के पास है, निम्न उल्लेख है :[1]

पंडित गोसाञीर भ्रातुष्पुत्र श्री नयनानंद।
पुष्प गोपाल, गोपालदास आर ध्रुवानंद॥

(प. क. त., खंड ५.)

नयनानन्द के समस्त पद गौरांग विषयक हैं। कृष्ण लीला संबंधी एक भी पद प्राप्त नहीं है।

नरहरिदास

नरहरिदास नाम के दो व्यक्ति हुए थे। एक नरहरि चक्रवर्ती,दूसरे नरहरि सरकार। नरहरि चक्रवर्ती सत्रहवीं शती में हुए थे। अत: उनसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। ये भक्ति-रत्नाकर ग्रंथ के प्रणेता हैं। नरहरि सरकार चैतन्यदेव के समसामयिक और शिष्य थे। इनका जन्म १४७८ ई. और मृत्यु १५४१ ई. है। इनकी जन्मभूमि बर्दवान जिले का श्रीखंड ग्राम है। उनके पिता का नाम नारायण देव था। ये लोग वैद्य परिवार के व्यक्ति थे और इनके बड़े भाई मुकुंद उस समय के पठान नरेश के वैद्य थे। नरहरिदास ने गौरांग-लीला संबंधी पद कदाचित् सर्वप्रथम भाषा में लिखे। निम्न पद से ऐसा ही ज्ञात होता है :—

गौर लीला वर्णने, इच्छा बड़ हय मने,
भाषाय लिखिया सब राखि।
किछु किछु पद लिखि, जदि इहा केह देखि,
प्रकाश करये प्रभु लीला॥

(गौ. प. त., पृ. ११-१२)

नरहरिदास के पदों में गौरांग के मिलने की तीव्र उत्कंठा है। उनके पदों में कुछ कुछ वैसी ही मिलन-इच्छा है जैसी गोपियों में कृष्ण के प्रति दिखाई जाती है। चैतन्यदेव ने दक्षिण भ्रमण के समय उनका स्मरण किया था, इसका उल्लेख गोविंददास के कड़चा में है।

कखन बलेन कोथा प्राण नरहरि
हरिनाम शुनि तोरे आलिंगन करि॥

नरहरि सरकार के दो संस्कृत ग्रंथों का उल्लेख जगद्‌बंधु बाबू ने किया है। ये ग्रंथ 'भक्ति-चन्द्रिका-पटल' और 'भक्तामृत-अष्टक' हैं।

---

१. प. क. त., पंचम खंड, प. १२७

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास राजा कृष्णानन्द दत्त के पुत्र थे। इनकी माता का नाम नारायणी था। राजशाही परगने के खेतुरी स्थान में इन लोगों की राजधानी थी। नरोत्तमदास ने पिता की मृत्यु के अनन्तर राज्य अपने भतीजे को दे दिया और स्वयं वृंदावन चले गए। 'नरोत्तम-विलास' में उल्लेख है कि वे पिता की जीवित अवस्था में ही वृंदावन चले गए थे। इनकी निश्चित जन्म तिथि अज्ञात है। जगद्बंधु बाबू ने गौर-पद-तरंगिणी की भूमिका में लिखा है कि वे पंचदश शती के मध्य भाग में उत्पन्न हुए थे। दो तिथियां ज्ञात हैं। १५८२ ई. में वे श्रीनिवास आचार्य और श्यामानन्द के साथ वृंदावन से बंगाल लौट कर आए। १५८३ ई. में उन्होंने खेतुरी में महोत्सव किया जिसमें समस्त प्रमुख वैष्णव सम्मिलित हुए थे। इस उत्सव में 'रस-कीर्तन' की जो गरानहाटी शैली कहलाती है वह नरोत्तम द्वारा प्रारम्भ हुई थी।

एथा सर्व-महांत कहय परस्परे।
प्रभुर अद्भुत सृष्टि नरोत्तम-द्वारे॥
.. ..
नरोत्तम-कंठ-ध्वनि अमृतेर धार।
जे पिये ताहार तृष्णा बाढ़े अनिवार॥ (न. वि., वि. ७)

पदकल्पतरु में इनके ६४ पद प्राप्त हैं।

नित्यानंददास

नित्यानन्ददास का असली नाम बलरामदास था। ये जाह्नवा देवी के शिष्य थे। इन्होंने 'प्रेम-विलास' ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ का समाप्ति काल १५२२ शक अथवा १६०० ई. दिया हुआ है। इस रचना के अन्त में इन्होंने कुछ विस्तार से आत्म-परिचय दिया है। इनका उल्लेख चैतन्य-भागवत, चैतन्य-चरितामृत, तथा वैष्णव-वंदना ग्रंथों में है।[1] 'कृष्णपदामृत-सिन्धु' में इनके चार पद हैं।

तीन अन्य नित्यानन्द भी हुए हैं—

१. वंशीवदन के कनिष्ठ पुत्र।

२. चतुर-धुरीण नित्यानन्द, 'रस कल्प वल्ली' के लेखक के पितामह।[2]

३. नित्यानन्द प्रभु के एक शिष्य।[3]

परन्तु इन तीनों की कोई भी रचनाएं प्राप्त नहीं हैं। अतः पहले नित्यानन्ददास ही

---

१. **प्रेम रसे महामत्त बलरामदास। नित्यानंद चंद्रे जार अधिक विश्वास॥ चै० भा०।**
बलरामदास कृष्णप्रेम रसास्वादी। नित्यानंद नामे हय परम उन्मादी॥
(चै. च., आदिलीला परि. १२, पृ. ६२)।
संगीतकारक बंदों बलरामदास। नित्यानंद चंद्रे जार अधिक विश्वास॥ वैष्णव-वंदना।

२. **बं. सा. प. प., भाग ३७, पृ. १०१**

३. **प्रेम-विलास**

अभीष्ट पदकर्त्ता हैं। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे, इस बात का उल्लेख भक्ति-रत्नाकर में है।[१]

नृसिंह देव

नृसिंह देव के नाम से केवल चार पद प्राप्त हैं। इनमें से तीन पद पदकल्पतरु में और एक संकीर्त्तनामृत में हैं। नृसिंह देव के विषय में अधिक विवरण ज्ञात नहीं है। सेन महोदय के अनुमान से नृसिंह देव गोविंददास कविराज के मित्र और समसामयिक थे।[२]

जगद्बंधु बाबू ने 'गौर-पद-तरंगिणी' की भूमिका में दो नृसिंह देवों का उल्लेख किया है :—

१. नित्यानन्द प्रभु के परिकर 'नृसिंह देव' जिनकी उपाधि कविराज थी।

२. उड़ीसा वासी नृसिंह देव।

'भक्ति-रत्नाकर' की दसवीं तरंग में एक प्रसंग है। श्रीनिवास आचार्य खेतुरी उत्सव में सम्मिलित होने नरोत्तम ठाकुर के घर पधारे हैं। इस प्रसंग में उनके भक्त और उनकी शिष्य-मंडली का उल्लेख है। उन सबके नाम दिए गए हैं। उसी में एक नृसिंह देव का भी नाम दिया है :—

श्रीनृसिंह कविराज महाकवि जेहों। जांर भ्राता नारायण कवि श्रेष्ठ तेंहो।

(प. क. त., परिशिष्ट, पृ. १४४)

प्रेम-विलास ग्रंथ में भी नृसिंह देव का उल्लेख है।

नरोत्तमेर स्वगण नरसिंह महाशय
दूर देशे पक्वपल्ली जांर राज्य हय।

गोविंददास कविराज के एक पद में भी नृसिंह देव का उल्लेख है :

कमलालालित, चरण कमल मधु
पाओये सोई सुजान।
राजा नरसिंह रूप नारायण
गोविंददास अनुमान।

इस सबसे निम्न चार बातें ज्ञात होती हैं :—

१. नृसिंह देव पक्वपल्ली के शासक थे।

२. ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे।

३. खेतुरी उत्सव अर्थात् १५८३ ई. में उपस्थित थे।

४. नृसिंह देव कवि थे।

अतः ये ही नृसिंह देव अभीष्ट पदकर्त्ता हैं। इससे अधिक इनके बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

परमानन्ददास

१. परमानन्ददास के पिता का नाम शिवानन्द सेन था। शिवानन्द सेन चैतन्य

---

१. मुरारि, चैतन्य, ज्ञान दास, महीधर। परमेश्वरदास, बलराम विज्ञवर॥

२. हि. ब्र. बु., पृ. १५५

देव के अनन्य भक्त थे। उन्हीं की इच्छानुसार शिवानन्द ने पुत्र का नाम परमानन्ददास रक्खा था। पुरीदास नाम से भी वे अभिहित किए जाते थे जैसा कि वैष्णवाचारदर्पण में है :—

> **गुणचूड़ा सखी हन कवि कर्णपूर।**
> **कांचड़ा पाड़ाय वास, चैतन्य शाखा शूर ॥**
> **वृद्ध पदांगुष्ठ प्रभु जांर मुखे दिला।**
> **पुरीदास नामबलि शक्ति संचारिला ॥**

चैतन्यदेव ने उनको 'कवि कर्णपूर' की उपाधि दी थी। वे सात वर्ष की अवस्था में ही काव्य रचना करने लगे थे, ऐसा कृष्णदास कविराज ने कहा है।

> **आर दिन प्रभु कहे पड़ पुरीदास।**
> **एक श्लोक करि तेहो करिल प्रकाश ॥**
> **सात वत्सरेर शिशु नाहि अध्ययन।**
> **ऐछे श्लोक करे लोके चमत्कृत हन ॥**

परमानन्ददास कांचड़ा पाड़ा नामक ग्राम में १५२७ ई. में उत्पन्न हुए थे। दो तिथियां जो इनकी रचनाओं की तिथियां हैं और ज्ञात हैं। एक तो संस्कृत काव्य 'चैतन्य-चरितामृत' की रचना तिथि जो १५७० ई. है और दूसरी 'चैतन्य-चन्द्रोदय' नाटक की रचना तिथि जो १५७२ ई. है। ये खेतुरी उत्सव में भी उपस्थित थे। इनका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में निम्न प्रकार है :—

> **चैतन्य दास, राम दास आर कर्णपूर।**
> **तिन पुत्र शिवानंदेर प्रभुर भक्त शूर ॥**

पदकल्पतरु में इनके बारह पद प्राप्त हैं। इन्होंने दो पद ब्रज भाषा में भी लिखे हैं॥ (प. क. त., पद २८५८ और २८७१)

२. परमानन्द गुप्त कवि कर्णपूर ने एक परमानन्द का उल्लेख किया है जो कृष्ण संबंधी पद लिखते थे।[1] पदकल्पतरु में इनके नाम से बारह पद हैं। इनमें से तीन[2] पद कृष्णलीला संबंधी हैं। ये पद इन परमानन्द गुप्त के ही हो सकते हैं। जयानन्द ने चैतन्य-मंगल में उल्लेख किया है कि परमानन्द ने चैतन्यदेव पर एक कविता लिखी है। चैतन्य-चरितामृत में इनका उल्लेख है।[3]

पदकल्पतरु के एक पद (२९०६) की अन्तिम पंक्तियां निम्न हैं :—

> **श्रीरूपमंजरिचरण-हृदये धरि**
> **कहे परमानंददास ॥**

रूपमंजरी, रूप गोस्वामी का भक्त नाम था। अतः यह तो निर्विवाद है कि यह पदकर्त्ता रूप गोस्वामी के शिष्य या प्रशंसक रहे होंगे। एक परमानन्द भट्टाचार्य और थे

---

१. परमानंद-गुप्तो यत-कृता कृष्णस्तवावली (गौरगणोद्देश-दीपिका, १९९)
२. प. क. त., पद १८३, ६७२, २९०६
३. परमानन्द गुप्त कृष्ण भक्त महामति।
पूर्व्वे जार घरे नित्यानंदेर वसति ॥ (चै. च., आदिलीला, परि. १२, पृ. ६३)

जो वृंदावन में रहते थे। कदाचित् वे ही इस पद के रचयिता हों। परन्तु पद दोनों के ही मिल गए हैं। ऐसा भी सम्भव है कि कवि कर्णपूर ही इन बारहों पदों के रचयिता हों। वे भी अन्तिम दिनों में वृन्दावन में थे।

परमेश्वरदास

परमेश्वरदास नित्यानन्द के शिष्य और समसामयिक थे। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। जगद्‌बंधु बाबू ने इन्हें पंद्रहवीं शती में उत्पन्न हुआ बताया है।

चैतन्य-चरितामृत में इनका नित्यानन्द के शिष्य होने का उल्लेख है :—

परमेश्वरदास नित्यानंदेक शरण
कृष्ण भक्ति पाय तांर जे करे स्मरण। चै. च. आदिलीला, परि. ११, पृ. ६२

चैतन्य-भागवत के अंत्यखंड में इनका उल्लेख चार बार किया गया है।

१. पुरंदर पंडित परमेश्वरदास।
जाहार विग्रहे गौरचंद्रेर प्रकाश॥
२. कृष्णदास पंडित परमेश्वरदास।
पुरंदर पंडितेर परम उल्लास॥
३. कृष्णदास परमेश्वरदास दुइजन।
गोपाल भावे हैहै करे अनुक्षण॥
४. नित्यानंद जीवन परमेश्वरदास।
जाहार विग्रहे नित्यानंदेर विलास॥ (गौ. प.त., उपक्रमणिका, पृ. १०७)

पदकल्पतरु में इनका एक पद प्राप्त है।

पुरुषोत्तमदास

पुरुषोत्तमदास हाली शहर निवासी वैद्य जाति के थे। इनके पिता का नाम सदाशिव कविराज था। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये नित्यानन्द महाप्रभु के शिष्य और समसामयिक थे। इनका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में आया है :—

सदाशिव कविराज बड़ महाशय।
श्री पुरुषोत्तमदास तांहार तनय॥
आजन्म निमग्न नित्यानंदेर चरणे।
निरंतरे बाल्यलीला करे कृष्ण सने॥ (चै.च., आदिलीला, परि. ११ पृ. ६२)

कदाचित् कवि को करुण रस अधिक प्रिय था क्योंकि उन्होंने 'माथुर' पर अधिक रचना की है। इनके बारह पद 'पदकल्पतरु' में प्राप्त हैं। चैतन्य-चरितामृत में तीन और पुरुषोत्तमदासों का उल्लेख है। परन्तु इनके ही पदकर्त्ता होने की अधिक संभावना है।

१. पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी आरो कृष्णदास
२. पुरुषोत्तम पंडित आर रघुनाथ
३. नवद्वीपेर पुरुषोत्तम पंडित महाशय
नित्यानन्द नामे जार महोन्माद हय॥
(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १०९)

'वैष्णव-वंदना' में भी पुरुषोत्तमदास का उल्लेख है।

सदाशिव कविराज महाभाग्यवान्। जार पुत्र पुरुषोत्तमदास नाम ॥
बाह्य नाहि पुरुषोत्तमदासेर शरीरे। नित्यानंद-चन्द्र जार हृदये विहारे ॥

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. ११०)

प्रसाददास

प्रसाददास नाम के व्यक्ति का उल्लेख कई ग्रंथों में मिलता है।

१. नरोत्तम-विलास में उल्लिखित 'प्रसाददास' वैरागी। ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे।

२. कर्णानन्द और प्रेम-विलास में उल्लिखित प्रसाददास, जो करुणाकर मजूमदार के पुत्र थे, और श्रीनिवास के शिष्य थे।

३. रसिक-मंगल में उल्लिखित प्रसाददास जो श्यामानन्द के परिवार के थे।

अभीष्ट प्रसाददास श्री निवास आचार्य के शिष्य ही थे। इनके ६ पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं। इनमें से एक पद में नित्यानन्द प्रभु की वंदना है। एक पद कृष्णलीला का और शेष गौरांग विषयक हैं। इनकी निश्चित-जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये श्रीनिवास आचार्य के समसामयिक थे।

बलरामदास

बलरामदास नाम के कई व्यक्ति हुए। इनमें से नीचे दिए तीन व्यक्ति पदकर्त्ता हो सकते हैं। परन्तु प्राप्त पद किस बलरामदास की या तीनों की रचनायें हैं, यह कहना कठिन है। प्राप्त पदों के अध्ययन से वे एक ही व्यक्ति की रचनायें जान पड़ती हैं। बलरामदास ने वात्सल्य रस के परिपाक में सफलता पाई है और बड़े पदकर्त्ताओं में एकमात्र ये ही वात्सल्य भाव की ओर अधिक उन्मुख हुए थे।

१. बलरामदास जो नित्यानन्द प्रभु के शिष्य थे। ये दो गाछिया ग्राम के निवासी थे। इन्होंने अपने गुरु की आज्ञानुसार श्रीगोपाल की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। इनके ग्राम में अब भी प्रतिवर्ष अगहन के महीने में इनकी मृत्यु-जयन्ती मनाई जाती है। ये ही बलरामदास पदकर्त्ता ज्ञात होते हैं। जैसा कि 'वैष्णव-वंदना' और चैतन्यचरितामृत के उल्लेख से भी ज्ञात ोता है।

संगीत कारक बंदों बलरामदास।
नित्यानंद चन्द्रे जार अधिक विश्वास ॥ (वैष्णव-वंदना)
बलरामदास कृष्ण-प्रेम रसास्वादी।
नित्यानंद नामे हय परम उन्मादी ॥

(चै. च., आदिलीला, परि. ११, पृ. ६२)

इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे।

२. नित्यानन्ददास जिनका दूसरा नाम बलरामदास था। इनके पिता का नाम आत्मारामदास था और ये श्रीखंड के निवासी थे। ये 'प्रेम-विलास' ग्रंथ के रचयिता थे और जाह्नवा देवी के शिष्य थे। ये भी खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है।

३. कविपति बलराम जो रामचन्द्र कविराज के शिष्य थे। ये बुधरी ग्रामवासी थे।

बलरामदास नाम से संयुक्त १३६ पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

बिहारीदास

बिहारीदास का एक पद सेन ने अपनी पुस्तक[1] में उद्धृत किया है। प्रेम-विलास[2] और नरोत्तम-विलास[3] में एक बिहारीदास का उल्लेख है जो नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। कदाचित् ये ही पदकर्त्ता हों। अधिक विवरण अज्ञात है।

ब्रजानंद

ब्रजानन्द का बहुत थोड़ा-सा ही विवरण ज्ञात है। कर्णानन्द के अनुसार ये श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे, और वृन्दावन में रहते थे।[4] इनका केवल एक पद पदकल्पतरु में संगृहीत है। इनकी निश्चित जन्मतिथि और मृत्युतिथि अज्ञात है।

भागवताचार्य

भागवताचार्य का नाम रघुनाथ था। वे भागवत पुराण का पारायण बड़े सुन्दर ढंग से करते थे। ये चैतन्यदेव के अनुयायी और गदाधर पंडित के शिष्य थे। नीलाचल जाते समय चैतन्यदेव इनके घर एक रात के लिए ठहरे थे। इनकी भागवत सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुए थे और इन्हें भागवताचार्य की उपाधि दी। इस घटना का उल्लेख चैतन्य-भागवत में है।[5] रघुनाथ ने 'कृष्ण-प्रेम-तरंगिणी' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ का उल्लेख कवि कर्णपूर ने अपने ग्रंथ 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' में किया है। 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' का समाप्तिकाल १५७५ ई. है। अतः रघुनाथ का ग्रंथ उससे पहले ही लिखा गया होगा। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। परंतु १५७५ ई. से पहले रहे होंगे यह निश्चित है। इनका एक पद भी "कृष्ण-प्रेम-तरंगिणी" में है।

भूपति

भूपति और भूपतिनाथ नाम के चार और दो पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। डा. सुकुमार सेन[6] और सतीशचन्द्र राय[7] का अनुमान है कि भूपति नाम का कोई स्वतंत्र पदकर्त्ता नहीं था। यह चम्पति की ही रचनायें हैं जो भूपति भणिता से युक्त हैं। इस प्रकार ये गोविंददास के समसामयिक ठहरते हैं।

मथुरादास

मथुरादास नाम के तीन व्यक्तियों का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।

---

१. हि. ब्र. बु., पृ. ४१०
२. प्रे. वि., विलास २०
३. न. वि., विलास १२
४. कर्णानंद, निर्यास १
५. चै. भा., शेषखंड, अ. ५
६. हि. ब्र. बु., पृ. १५१, १५३
७. प. क. त., पांचवां भाग, पृ. १९३

१. और २—श्री निवास आचार्य के शिष्य। इनका उल्लेख प्रम-विलास के २० विलास में और कर्णानंद के प्रथम निर्यास में है।

३. नरोत्तम के शिष्य। इनका उल्लेख भी प्रेम-विलास के बीसवें विलास और नरोत्तम-विलास के बारहवें विलास में है। अधिक विवरण अज्ञात है। पदकल्पतरु और कीर्त्तनानंद में जो एक पद संगृहीत है, कदाचित् इन्हीं में से किसी की रचना है।

मनोहरदास

मनोहरदास नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है।

१. **नित्यानंद प्रभु के शिष्य-शाखा वाले मनोहरदास**—इन का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में है :—

शंकर, मुकुंद, ज्ञानदास, मनोहर

(चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ६३)

ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इसका उल्लेख नरोत्तम-विलास में है।

श्रील रघुपति उपाध्याय, महीधर
मुरारि, मुकुंद, ज्ञानदास मनोहर।[1]

२. **बाबा आउल मनोहरदास**—ये भी नित्यानंद की शिष्य-शाखा में थे। प्रेम-विलास ग्रंथ में उल्लेख है कि ये जाह्नवा देवी के मंत्र-शिष्य थे और इनका नाम चैतन्यदास भी था।

मोर ठकुराणी शिष्य चैतन्यदास
आउलिया बलि ताके सर्वत्र प्रकाश।[2]

(ग्रंथकार नित्यानंददास वाक्य)

इनका पूर्व नाम चैतन्यदास था इस बात का उल्लेख 'सारावली' ग्रंथ में भी है।

आदि नाम मनोहर, चैतन्य नाम शेष।
आउलिया हइया बुले स्वदेश ओ विदेश॥[3]

प्रेम-विलास ग्रंथ में भी मनोहरदास की उक्ति दी है :—

विष्णुपुर मोर घर हय चार क्रोश।
राजार देशे वास करि हइया संतोष॥

(चैतन्य मनोहरदास वाक्य)

ये वैष्णव राजा वीर हाम्बीर के पुस्तकाध्यक्ष थे। इन्होंने १५७९ ई. के पहले ही संन्यास ले लिया था। वीर हाम्बीर की मृत्यु के बाद ये भ्रमण करने लगे और हुगली जिले के बदनगंज में कुछ दिन रहे। वहां से १६३८ ई. में बृन्दावन गए परंतु रास्ते में ही जयपुर में इनका देहावसान हो गया। कहा जाता है "पदसमुद्र" नाम से इन्होंने एक बृहद् पद-संग्रह किया था। एक दूसरा संग्रह-ग्रंथ "निर्यास-तत्व" भी है। "दिनमणि-चन्द्रोदय" इनकी अपनी रचना है।

कौन से मनोहरदास पदकर्ता हैं यह कहना कठिन है। कहा जाता है कि "पदसमुद्र" में जो मनोहर नामांकित पद हैं वे इनके ही हैं। पदकल्पतरु में इनके ६ पद संगृहीत हैं।

---

१. २. ३. गौ. प. त., उपक्रमणिका १४०-४१

माधव घोष

माधव घोष गोविंद घोष के भाई थे। ये चैतन्यदेव के अनन्य भक्त और समसामयिक थे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। इनका उल्लेख "चैतन्य-चरितामृत", "चैतन्य-भागवत" और "वैष्णव-वंदना" में है।

श्री माधव घोष मुख्य कीर्त्तनीया गणे।
नित्यानंद प्रभु नृत्य करे जार गाने॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ११, पृ. ६२)

सुकृती माधव घोष कीर्त्तने तत्पर।
हेन कीर्त्तनिया नाहि पृथिवी भितर॥
जांहारे कहेन वृन्दावनेर गायन।
नित्यानंद स्वरूपेर महाप्रियतम। (चै. भा.)
वंदिब माधव घोष प्रभुर प्रीतिस्थान।
प्रभु जांरे करिला अभंग स्वरदान। (वैष्णव-वंदना)
(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १४३)

माधव घोष रचित ५५ पद प्राप्त हैं।

माधवदास

माधवदास अथवा माधवाचार्य चैतन्यदेव की दूसरी पत्नी विष्णुप्रिया देवी के चचेरे भाई थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। ये चैतन्यदेव के समसामयिक थे और खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनके पिता का नाम सनातन मिश्र और माता का नाम विधुमुखी था। प्रेम-विलास ग्रंथ में इनका विस्तृत परिचय है। उसी में इनके गीतकार होने का भी उल्लेख है।

श्रीमद्‌भागवतेर श्रीदशम स्कंध। गीत वर्णनाते तिहों करि नाना छंद।
राखिला ग्रंथेर नाम श्रीकृष्ण मंगल। श्रीकृष्ण-चैतन्य पदे समर्पण कैल॥
(गौ. प. त., उपक्रमणिका पृ. १४५)

पदकल्पतरु में इनके ५ पद प्राप्त हैं।

माधवीदास

माधवीदास को कुछ लोगों ने शिखि माइती की जो चैतन्यदेव के उड़िया भक्त थे, 'बहन' माधवी बताया है।[१] पर डा. सुकुमार सेन और सतीशचन्द्र की सम्मति इसके विरुद्ध है। माधवीदास के नाम से कोई भी उड़िया पद नहीं प्राप्त है, और न इनके प्राप्त पदों में उड़िया का कोई चिह्न है। पदकल्पतरु के २२४० संख्यक पद से वे चैतन्यदेव के तिरोधान के पीछे के व्यक्ति जान पड़ते हैं।

जे देखये गोरा मुख सेइ प्रेमे भासे
माधवि वंचित हैल निज कर्म दोषे॥

---

१. गौ. प. त., पृ. १४७ और प. क. त., पांचवां खंड, पृ. १९९ (पदकल्पतरु के संपादक का यह मत नहीं है परंतु उन्होंने इस मत वालों का उल्लेख यहां किया है)

इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है।

मुरारि गुप्त

मुरारि गुप्त का जन्म सिलहट में हुआ था। परंतु उनके कुटुम्ब वाले आकर नवद्वीप में रहने लगे। मुरारि गुप्त चैतन्य के पड़ोसी और गुरुभाई थे। परंतु वे चैतन्य देव से कुछ वयस्क थे। ये उनके अनन्य भक्त और कवि थे। मुरारि गुप्त ने चैतन्यदेव की आदिलीला का सुन्दर विवरण अपने "चैतन्य-चरितामृत" में जो कड़चा कहलाता है, दिया है। वैष्णव-वंदना में उन्हें हनुमान का अवतार बताया है।

वंदिब मुरारि गुप्त भक्ति शक्तिमंत।
पूर्व अवतारे जांर नाम हनुमंत॥

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १४१)

चैतन्य-चरितामृत में कृष्णदास कविराज ने उनके सुंदर चरित्र का उल्लेख किया है।

श्री मुरारि गुप्त शाखा प्रेमेर भांडार।
प्रभुर हृदय द्रवे शुनि दैन्य जांर॥
प्रतिग्रह ना करे ना लय कार धन।
आत्मवृत्ति करि करे कुटुम्ब भरण॥

(चै. च., आदि लीला, परि. १०, पृ० ५८)

मुरारि गुप्त की निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। जगद्बंधु बाबू के अनुसार वे १५१४ शक में उत्पन्न हुए थे। मुरारि गुप्त के कड़चा की समाप्ति १५१३ ई० में हुई थी। इसी कड़चा में १२ पद मिलते हैं। यह कड़चा अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु है क्योंकि इसमें चैतन्य देव का प्रारंभिक गृहजीवन दिया हुआ है।

मोहनदास

मोहनदास श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। ये गोविंददास कविराज के मित्र थे क्योंकि उनके एक पद में "मोहन गोविंददास पहुं" करके भणिता दी हुई है। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। मोहनदास का उल्लेख कर्णानंद ग्रंथ में निम्न प्रकार है :—

श्रीमोहनदास नाम जन्म वैद्यकुले।
नैतिक भजन जांर अति निरमले॥

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १५४)

पदकल्पतरु में इनके ३० पद प्राप्त हैं।

यदुनंदनदास

इस नाम के दो व्यक्ति हुए हैं।

१. यदुनंदनदास चक्रवर्ती चैतन्यदेव के भक्त गदाधरदास के शिष्य थे। आगे चल कर ये नित्यानंद प्रभु के साथी हुए। इनकी निश्चित जन्मतिथि तो अज्ञात है। ये कटवा में रहते थे। सन् १५८३-८४ ई. में इन्होंने एक उत्सव किया था जिसमें समस्त वैष्णव महाजन उपस्थित हुए थे। इसका उल्लेख भक्ति-रत्नाकर के ११वें परिच्छेद में है।

भक्ति-रत्नाकर में इनके गीतकार होने का उल्लेख निम्न प्रकार है :—

यदुनंदनेर चेष्टा परम आश्चर्य ।
दीन प्रति चेष्टा जैछे ना कहिले नय ॥
.. ..
जे रचिल गौरांगेर अद्भुत चरित
द्रवे दारु पाषाण शुनिया जार गीत ॥

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १५६)

२. ये यदुनंदनदास मालिहाटी ग्राम के वैद्य परिवार के वंशज थे। वे श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। आगे चल कर उनकी पुत्री हेमलता ठकुरानी की सेवा में नियुक्त होगए थे। इन्होंने स्वरचित "कर्णानंद" में अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। इन्होंने अपने ग्रंथ "कर्णानंद" का समाप्तिकाल दिया है जो १६०८ ई. है। पदों और कर्णानंद के अतिरिक्त भी इन्होंने कई ग्रंथ लिखे हैं जो निम्न हैं :—

(१) राधा-कृष्ण-लीला-रस-कदम्ब—यह रूप गोस्वामी के संस्कृत नाटक 'विदग्ध-माधव' का पद्यानुवाद है।

(२) गोविन्द-लीलामृत—यह कृष्णदास कविराज के इसी नाम के ग्रंथ का संस्कृत से अनुवाद है।

(३) यह कृष्ण-कर्णामृत और उस पर की गई सारंग-रंगदा की टीका का पद्यानुवाद है। ये ग्रंथ भी कृष्णदास कविराज की रचनायें हैं।

पदकल्पतरु में यदुनंदन, यदु, यदुनाथ तीन नाम से पद मिलते हैं। कौन से पद किसके हैं यह कहना तो कठिन है। द्वितीय यदुनंदन दास का नाम यदुनाथ भी कर्णामृत में मिलता है।

यशोराज खान

यशोराज खान कदाचित् ब्रजबुलि के पदकर्ताओं में सर्वप्रथम पदकर्ता हैं। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। पीताम्बरदास की रचना 'रस-मंजरी' में एक पद यशोराज खान के नाम से युक्त दिया हुआ है। इस पद में हुसेन शाह का उल्लेख है। हुसेन शाह १४९३-१५१९ ई. में बंगाल के अधिपति थे। अतः उस समय यशोराज खान की उपस्थिति होना निश्चित है। रामगोपालदास ने अपने ग्रंथ 'रस-कल्प-वल्ली' में 'जसराज खां' का उल्लेख किया है।[1]

रघुनाथदास

इस नाम के दो व्यक्ति मिलते हैं।

१. **रघुनाथदास गोस्वामी**—ये प्रसिद्ध षट् गोस्वामियों में से एक थे। ये दास गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। ये सप्तग्राम के अधीश्वर गोवर्द्धन के पुत्र थे। यौवनावस्था में ही सब कुछ त्याग कर ये नीलाचल में चैतन्यदेव के शरणागत हुए थे। जगद्बंधु बाबू के मतानुसार इनका जन्म १४२८ शक (१५०७ ई.) और तत्वनिधि महाशय के

---

१. वं. सा. प. प., भाग ३७, पृ. १०१, भाग ३८ पृ. १४६

अनुसार १४२० शक (१४९९ ई.) में हुआ था। परंतु निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। १५०४ शक (१५८३ ई.) को इनका तिरोधान हो गया। ये संस्कृत के असाधारण विद्वान् थे। पदों के अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत में 'स्तवावली', 'विलाप कुसुमांजलि', 'दानचरित' और 'मुक्ताचरित' की रचना की है। पदकल्पतरु में इनके तीन पद प्राप्त हैं। दो तो ब्रजबुलि में हैं और एक ब्रजभाषा में है। ब्रजबुलि के एक पद में जयदेव की वंदना और दूसरे में राधा का वर्णन है। इनका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में है।

२. **रघुनाथदास**——ये श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। पीछे दिए रघुनाथदास का वह पद जो जयदेव की वंदना से संबंधित है इनकी रचना हो सकती है क्योंकि यह पद उतना सुन्दर नहीं है जितने अन्य दोनों। एक और पद है जो बंगीय साहित्य परिषद् में सुरक्षित "बृहद् भक्ति-तत्व-सार" की हस्तलिखित पोथी में मिलता है।[1] इसमें जीव गोस्वामी की वंदना है। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। प्राचीन उल्लेख "प्रेम-विलास[2] में है।

रसिकदास

रसिकदास रसिकानंद के नाम से भी विख्यात थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। इनका एक पद जो बंगला में है और रसिकानंद नाम से युक्त है, "पदकल्पतरु" में प्राप्त है। एक ब्रजबुलि पद "रसिकदास" नाम से "पदकल्पतरु" में है। तीन बंगाली पद "रसिक", "रसिकानंद", "रसिक आनंद" के नाम से "गौर-पद-तरंगिणी" में हैं। डा. सेन का विचार है कि "गौर-पद-तरंगिणी" के दो पदों में चैतन्यदेव के संन्यास ग्रहण समय के सिरमुंडन का वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी और वास्तविकता से पूर्ण है। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि यह पद किसी ऐसे व्यक्ति की रचना है जिसने या तो यह संस्कार स्वयं देखा है अथवा किसी ऐसे व्यक्ति से सुना है जो उस समय उपस्थित था। इन सब आधारों पर कहा जा सकता है कि रसिकदास सोलहवीं शती में उपस्थित थे। ये श्यामानंद पुरी के जो श्रीनिवास आचार्य के साथी थे शिष्य थे। श्यामानंद पुरी नरोत्तम ठाकुर के समसामयिक थे। रसिकानंद जाति से ब्राह्मण थे। इनके पिता अच्युतानंद जमींदार थे, और दालभूमि के 'रायनी' ग्राम के निवासी थे। इनकी माता का नाम मालती था।[3] रसिकानंद ने श्रीनिवास को पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा में वैष्णव मत फैलाने में बड़ी सहायता दी थी। वे खेतुरी उत्सव में थे।[4]

---

१. भावेर भूषण रूप ।......

वृन्दावन गुण नाम विलास । वर्ण गौर षड अभिलाष ॥
बैयासकी-सम श्री श्रीनिवास । विरचित-लीला-गुण-विलास ॥
बाहु विशाल धरि देअइ कोरा । बालक-केलि करत पहुं भोरा ॥
बाउल सब-जन रोदन हास । वंचित भेला तहि रघुनाथ-दास ॥

२. प्रे. वि., विलास २० (हि. ब्र. बु., पृ. १९५)

३. प्रे. वि., विलास २०

४. न. वि., विलास ६

एक दूसरे रसिक, रसिक दास का भी नाम मिलता है जो श्रीनिवास के शिष्यों में आता है।[1]

रसिकानंद

रसिकानंद श्यामानंद पुरी के शिष्य थे। नरोत्तम विलास (वि. ४) में इसका उल्लेख है–

श्रीश्यामानंदेर शिष्य रसिक मुरारि।

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १६१)

यह सोलहवीं शती के उत्तर काल में थे। इनका केवल एक पद पदकल्पतरु में है। इनके रचित "रति-विलास" और "शाखा-वर्णन" दो ग्रंथों का नाम और सुना जाता है।

राघवेन्द्र राय

राघवेन्द्र राय का उल्लेख प्रेम-विलास में है। इसके अनुसार ये, इनकी पत्नी विष्णुप्रिया और दो पुत्र षड्राय और संतोषराय सब नरोत्तम ठाकुर के शिष्य हो गए थे।[2] सेन ने अपनी पुस्तक में इनका एक पद उद्धृत किया है जो उन्हें वंगीय साहित्य परिषद् की एक हस्तलिखित प्रति में मिला है।[3] इनका विशेष विवरण अथवा साहित्य अप्राप्य है।

राधावल्लभदास

राधावल्लभदास के नाम से १७ पद प्राप्त हैं। दो पदों[4] से ज्ञात होता है कि वे श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। परंतु आचार्य के तीन शिष्य इस नाम के थे। (१) राधावल्लभ मंडल, (२) राधावल्लभ दास, और (३) राधावल्लभदास ठाकुर। यह निर्णय करना कि इनमें से कौन व्यक्ति अभीष्ट कवि थे, कठिन है। जगद्बंधु बाबू[5] के मतानुसार राधावल्लभ मंडल जो सुधाकर मंडल के पुत्र थे, अभीष्ट व्यक्ति हैं। "कर्णानंद" में इस संबंध में यह दिया है।

सुधाकर मंडल प्रभुर भृत्य एक जन
तांर स्त्री श्यामप्रिया कृपार भाजन
तांर पुत्र राधावल्लभ मंडल सुचरित्र
हरिनाम बिना जांर नाहि आर कृत्य।

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १६७)

इन राधावल्लभदास ने 'विलाप-कुसुमांजलि' का जिसके रचयिता रघुनाथदास गोस्वामी थे वंगला में अनुवाद किया था। दो अन्य ग्रंथों की रचना भी की थी, १. सनातन गोस्वामीर सूचक, २. सहजतत्व।

रस-कल्प-वल्ली ग्रंथ में एक राधावल्लभदास चक्रवर्ती का नाम आया है। सेन

---

१. प्रे. वि., विलास २० ; कर्णानंद, १ निर्यास
२. प्रे. वि., विलास २०
३. हि. ब्र. बु., पृ. ४०८
४. प. क. त., पद संख्या २३७९, २३८०
५. गौ. प. त., उपक्रमणिका पृ. १६६

महोदय इनको ही अभीष्ट पदकर्त्ता मानते हैं।[1] रस-कल्प-वल्ली के लेखक ने इन चक्रवर्ती महोदय के एक पद का उद्धरण देकर प्रथम दो शब्दों का उल्लेख भर किया है। राधावल्लभदास के नाम से युक्त किसी भी पद में ये पद नहीं मिलते परंतु उससे इतना तो ज्ञात होता ही है कि चक्रवर्ती महोदय पदकर्त्ता थे। "ठाकुर" उपाधि ब्राह्मणों की होती है। अतः सेन महोदय राधावल्लभदास ठाकुर को चक्रवर्ती महोदय मानते हैं और इस प्रकार राधावल्लभदास ठाकुर को अभीष्ट पदकर्त्ता बताते हैं। जन्मतिथि सबकी अज्ञात है।

राधादास

राधादास का निश्चित समय अज्ञात है। राधादास के पद किसी भी प्रसिद्ध पद-संग्रह में नहीं हैं। पीतांबरदास के एक ग्रंथ रस-मंजरी में एक पद दिया हुआ है। सुकुमार सेन महोदय का कथन है कि एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक में जो दास महाशय के पास है २७ पद राधादास के पाए जाते हैं।[2] १८ पद 'रासपंचाध्याय' नाम के अध्याय में संगृहीत हैं। ये १८ पद एक छोटी-सी हस्तलिखित प्रति के रूप में भी जिसका नाम "अष्टादश पदावली" है पाए जाते हैं।[3] इस प्रति का लिपिकाल १७०८ ई. दिया है। यह कहना कठिन है कि ये राधादास कौन थे। "अष्टादश पदावली" के अंतिम पद में केवल राधादास न होकर "राधावल्लभदास" नाम दिया है।

मधुकर कोकिल रति-जय-मंगल
कहु राधावल्लभदास।

इससे ज्ञात है कि इनका पूरा नाम राधावल्लभदास था। एक 'राधावल्लभदास' का विवरण पहले दिया जा चुका है। परंतु वे मुख्यतया ब्रजबुलि के लेखक थे। राधादास का केवल एक पद ब्रजबुलि में प्राप्त है। अतः दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति ज्ञात होते हैं। प्राचीन उल्लेखों से पांच राधावल्लभों का पता चलता है। इनमें से तीन तो श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे, और दो नरोत्तम ठाकुर के। श्रीनिवास के शिष्यों का विवरण पीछे 'राधावल्लभ' के साथ दिया जा चुका है। नरोत्तम ठाकुर के दोनों शिष्यों में से एक राधावल्लभ दत्त उन्हीं के भतीजे थे। दूसरे राधावल्लभ चौधरी थे। इसका उल्लेख प्रेम-विलास और नरोत्तम-विलास दोनों में है।

यह कहना कठिन है कि पांचों में से कौन राधादास के नाम से विख्यात थे और पदकर्त्ता थे। ये श्रीनिवास अथवा नरोत्तम ठाकुर के समसामयिक कहे जा सकते हैं।

रामचन्द्र

इस नाम के दो व्यक्ति हुए थे, जिनमें प्रसिद्ध रामचन्द्र कविराज ही हुए हैं, रामचन्द्र भणिता के केवल दो पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं।

१. रामचन्द्र कविराज—ये गोविंददास कविराज के ज्येष्ठ भ्राता थे। श्रीनिवास आचार्य इनके गुरु और नरोत्तम ठाकुर अभिन्न-हृदय मित्र थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि

---

१. हि. ब्र. बु., पृ. १६६
२. हि. ब्र. बु., पृ. १७१
३. वं. सा. प., हस्तलिखित प्रति नं. २३५२

अज्ञात है। १५३७ ई. से १६१२ ई. गोविंददास का समय है। अतः इसी के आगे पीछे इनका समय भी माना जाना चाहिए। इनका उल्लेख चार प्राचीन ग्रंथों में है।

(१) प्रेम-विलास, (२) भक्तमाल, (३) भक्ति-रत्नाकर, (४) कर्णानंद

भक्तमाल में रामचन्द्र का वर्णन कुछ अधिक है। उसके अनुसार कवि गोविंददास के छोटे भाई थे। ये अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति थे। इनके विवाह के अनन्तर श्रीनिवास आचार्य ने इन्हें देख कर कहा कि इतना सुन्दर व्यक्ति यदि कृष्ण का भक्त होता तो कितना अच्छा होता। यह सुनकर रामचन्द्र ने गृहत्याग करके उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इससे पहले ये शाक्त थे।[1]

प्रेम-विलास ग्रंथ के अनुसार ये गोविंददास के बड़े भाई थे। प्रेम-विलास के रचयिता ने रामचन्द्र का श्रीनिवास को दिया हुआ आत्मपरिचय इस प्रकार अंकित किया है :—

रामचन्द्र नाम मोर अम्बष्ठ कुले जन्म।
केवल लालसा प्रभुर चरण दर्शन॥
तिलिया-बुधरी ग्रामे जन्म मोर हय।
पितार नाम चिरंजीव सेन महाशय॥
कनिष्ठ भ्रातार नाम हय श्रीगोविंद।
एकोदरे दुइ भाइ परम स्वच्छन्द॥

(प. क. त., परि., पृ. ६०)

रामचन्द्र अत्यन्त विद्वान् थे। इसका उल्लेख कर्णानंद में है। "रामचन्द्र कविराज परम पंडित। बाचस्पति सम किवा सरस्वतीख्यात॥" उन्होंने "स्मरण दर्पण" नामक एक बंगला ग्रंथ रचा है।

२. रामचन्द्र गोस्वामी—रामचन्द्र गोस्वामी वंशीवदन के पौत्र और चैतन्यदास के पुत्र थे। श्री नित्यानंद प्रभु की पत्नी जाह्नवा ठकुरानी इनकी मंत्रदाता थीं।[2] इनकी जन्म-तिथि १५३४ ई. के लगभग थी। नाम की समानता होने के कारण इनके और रामचन्द्र कविराज दोनों के पद एक में मिल गए हैं। इनके तीन ग्रंथ उपलब्ध हैं—

(१) कड़चा-मंजरी, (२) सम्पुटिका, (३) पाखंड-दलन।

इनका उल्लेख वैष्णव-वंदना, और वंशीशिक्षा में है। इन्होंने तीर्थ-भ्रमण किया था और कुछ काल तक वृंदावन में रहे थे। वहाँ से युगल-विग्रह लेकर गौड़ आए।

रामानंद

रामानंद, रामानंददास, "दीनहीन रामानंद" नामों से ११ पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। वैष्णव इतिहासों में दो रामानंदों का उल्लेख आया है। रामानंद बसु और

---

१. भ. ब., पृ. २६४, १९वीं माला, ८८वां चरित्र

२. जाह्नवीर प्रिय वंद रामाइ गोसाई। जे आनिल गौड़ देशे कानाई बलाई॥ (वै. व.)
स्नानकाले रामकृष्ण श्री मूर्ति जुगल। प्रभु रामचन्द्र कोले आसिया लागिल॥ (वं. शि.)
(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १६९)

रामानंद राय। रामानंद राय का केवल एक पद ब्रजबुलि में प्राप्त है ।[१] अन्य समस्त रचना संस्कृत में ही है। संस्कृत की रचनाओं में उन्होंने सर्वदा अपना नाम "रामानंद राय" ही दिया है, रामानंद, रामानंद दास, "दीन हीन रामानंद" करके कहीं भी नहीं दिया है। अतः जो पद भाषा में प्राप्त हैं वे रामानन्द वसु के ही मानने होंगे।

रामानंद वसु—वर्दमान जिले के अन्तर्गत कुलीन ग्राम में मालाधर वसु का जन्म हुआ था। ये वहां के जमींदार थे। मालाधर वसु ने "श्री कृष्ण-विजय" नामक ग्रंथ भागवत के दशम स्कंध के आधार पर लिखा था। चंडीदास के बाद भाषा में वैष्णव साहित्य की रचना करने वाले ये ही थे। गौड़ के यवन अधिपति ने इन्हें "गुणराज खान" की उपाधि दी थी। पदकल्पतरु के संपादक श्री सतीश चन्द्र का मत है[२] कि रामानंद वसु इनके पुत्र सत्यराज खान के पुत्र थे। परंतु सुकुमार सेन का मत है कि[३] रामानंद वसु मालाधर के पौत्र न होकर पुत्र ही थे और सत्यराज खान उन्हीं की उपाधि थी । दोनों ने चैतन्य-चरितामृत का उल्लेख किया है। वह उद्धरण नीचे दिया जाता है :—

कुलीनग्रामी सत्यराज आर रामानंद ।
जदुनाथ पुरुषोत्तम शंकर विद्यानंद ॥
वाणीनाथ वसु आदि जत ग्रामी जन ।
सबे चैतन्य भृत्य चैतन्य प्राणधन ॥ (चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ५९)

प्रथम पंक्ति के आधार पर दोनों ही मत हैं। वैष्णव-वंदना ग्रंथ में भी इनका उल्लेख है :—

वसु वंश रामानंद बंदिव जतने ।
जार वंशे गौर बिना अन्य नाहि जाने ॥ (गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १६४)

रामानंद वसु चैतन्य देव के अनन्य भक्त थे और प्रतिवर्ष उनके दर्शन के लिए पुरी जाया करते थे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये चैतन्य देव के समसामयिक थे।

रामानंद राय—ये उड़ीसा के अधिपति "गजपति प्रतापरुद्र" के आमात्य और विद्यानगर के शासक थे। रामानंद राय संस्कृत के परम विद्वान् और भक्त थे। चैतन्यदेव जब दक्षिणी तीर्थों की यात्रा के लिए चले तब वासुदेव सार्वभौम ने उनसे रामानंद राय से मिलने का विशेष अनुरोध किया। वे रहस्यवादी कवि थे। दोनों की भेंट गोदावरी के तट पर हुई। गौरांगदेव ने रामानंद से वैष्णव धर्म और दर्शन पर प्रश्न किए और अंत में उन्हें निरुत्तर कर दिया। तब रामानंद ने अपना नीचे दिया पद सुनाया :—

पहिलहिं राग नयन-भंग भेल ।
अनुदिन बाढ़ल अवधि ना गेल ॥

---

१. यह अत्यन्त प्रसिद्ध पद है जिसकी प्रथम पंक्तियां निम्न हैं—
पहिलहि राग नयन-भंग भेल।
अनुदिन बाढ़ल अवधि ना गेल॥ (प. क. त., पद ५७९)

२. प. क. त., परिशिष्ट पृ. २०२

३. हि. ब्र. बु., पृ. ३९

ना सो रमण ना हाम रमणी ।
दुहुँ मन मनभव पेशल जनि ।।
ए सखि सो सब प्रेम काहिनी ।
कानु ठामे कहवि बिछुरह जानि ।।
ना खोजलुं दूति न खोजनु आन ।
दुहुँक मिलने मध्यत पांच बाण ।।
अब सो विरागे तुहुँ भेलि दूति ।
सुपुरुख प्रेमक ऐछन रीति ।।
वर्धन रुद्र नराधिप मान ।
रामानंद राय कवि भाण ।। (प. क. त., पद८७६)

चैतन्य इसे सुनते ही प्रेमविह्वल हो गए और तब से उनमें और रामानंद में प्रगाढ़ स्नेह हो गया। रामानंद राय ने अपना पद त्याग दिया और अधिकांश समय पुरी म उनके साथ ही व्यतीत किया। रामानंद की यह सब कथा कृष्णदास कविराज ने चैतन्य-चरितामृत के मध्यलीला के आठवें परिच्छेद में विस्तार से दी है। वैष्णव-वंदना ग्रंथ में भी देवकीनंदन दास ने इनका उल्लेख किया है :—

राय रामानंद बन्द बड़ अधिकारी।
प्रभु जांरे लभिला दुर्लभ ज्ञान करि ।। (गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ० १६४)

रामानंद राय ने संस्कृत में "जगन्नाथ-वल्लभ" नामक नाटक की रचना की थी। यह "रामानंद-संगीत-नाटक" के नाम से अधिक विख्यात है। इसमें जयदेव के अनुकरण पर राधाकृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन है।

रायवसंत

राय वसंत जाति के ब्राह्मण थे। इसका उल्लेख गोविंददास कविराज ने अपने एक पद में किया है।

गोविंददास कहये मतिमंत ।
भूलल जाहे द्विज राय वसंत ।। (प. क. त., पद २४३४)

राय वसंत और गोविंद दास दोनों नाम से युक्त तीन पद और पदकल्पतरु[1] में हैं। इससे ज्ञात होता है कि रायवसंत कविराज के मित्र और समसामयिक थे। ये खेतुरी के आसपास रहते थे और तीर्थयात्रा करने वृन्दावन गए थे। उस समय नरोत्तम रामचन्द्र और गोविंददास तीनों ने जीव गोस्वामी के लिए इनके द्वारा पत्र भेजा था। पदकल्पतरु में ५१ पद रायवसंत नामांकित पाए जाते हैं। "भक्ति-रत्नाकर" में एक पद नरोत्तम-वंदना का है।[2] इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है।

रायशेखर

गोविंददास कविराज के परवर्त्ती कवियों में रायशेखर अथवा कविशेखर सर्वश्रेष्ठ

---

१. पद १०५०, १७२०, २४२२
२. भ. र., तरंग १, बं. सा. प. प., भाग, ३६, पृ. ६२

कवि हुए। इन्होंन बंगला और ब्रजबुलि दोनों में रचनाएँ की। इन्होंने अपने कई नाम दिए हैं । कवि शखर, राय शेखर, शेखर राय, दुखिया, पापिया शेखर अथवा केवल शेखर। नगेन्द्र नाथ गुप्त इन्हें विद्यापति से अभिन्न मानते हैं। उनका कथन है कि रायशेखर विद्यापति की उपाधि थी। परंतु सुकुमार सेन और सतीशचन्द्र राय की सम्मति में रायशेखर भिन्न व्यक्ति थे।

रायशेखर श्री खंडनिवासी रघुनंदन गोस्वामी के शिष्य थे। पदकल्पतरु में प्राप्त तीन पदों में इन्होंने इसका उल्लेख भी किया है।[१] शाखा-निर्णय ग्रंथ में भी यह मिलता है।[२] इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। इनके गुरु रघुनंदन ठाकुर खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। अतः उस समय ये भी रहे होंगे। पदकल्पतरु में ३५ पद प्राप्त हैं। इन्होंने कृष्ण की आठों याम लीला विषयक पदावली का संकलन 'दंडात्मिका' पदावली के नाम से किया था।[३]

लक्ष्मीकांतदास

लक्ष्मीकांतदास नाम से एक पद पदकल्पतरु में और एक गौर-पद-तरंगिणी में है। दोनों ही चैतन्य विषयक हैं।[४] नरहरि सरकार के एक शिष्य लक्ष्मीकांतदास थे जिनका उल्लेख रामगोपालदास ने अपने "शाखा-निर्णय" ग्रंथ में किया है—

लक्ष्मीकांत नाम शाखा ठाकुर पूजारी।
ताहार विख्यात कथा आछे दुइ चारि॥ **(हि. ब्र.बु., पृ. ३९९)**

प्राप्त पदों से लक्ष्मीकांत सरकार ठाकुर के शिष्य ज्ञात होते हैं, क्योंकि ये पद "नदिया नागरी भाव" के हैं जो सरकार ठाकुर की शाखा की विशेषता थी।

लोकनाथदास

लोकनाथदास ने अद्वैत आचार्य की पत्नी सीता देवी की एक जीवनी लिखी है। "सीता-गुण-कदम्ब" उस काव्य का नाम है। उसी पुस्तक में लेखक अपने को फुलिया निकटवर्ती विष्णुपुर के निवासी माधव आचार्य के शिष्य बताते हैं। पुस्तक का आरम्भ काल १४४३ शकाब्द अर्थात् सन् १५२१-२२ ई. दिया है। अन्य विशेष विवरण अज्ञात हैं।

लोचनदास

लोचनदास ने अपने ग्रंथ चैतन्य-मंगल में स्वपरिचय दिया है।[५] इसके अनुसार ये बर्दमान जिला के अंतर्गत कोग्राम में उत्पन्न हुए थे। पिता का नाम कमलाकरदास था और माता का नाम सदानंदी था। मातामह पुरुषोत्तम गुप्त थे। इनके गुरु नरहरि सरकार थे। लोचन ने कहीं कहीं अपना नाम सुलोचन या त्रिलोचन भी दिया है। इनका जन्म १५२३ ई. के लगभग और मृत्यु कदाचित् १५८९ ई. के लगभग हुई थी। कहा जाता है चैतन्य-मंगल की रचना १५३७ ई. में हुई थी।

---

१. पद २१८९, २३७२, २३७३
२. शाखा निर्णय, पृ. १५
३. सतीशचन्द्र राय प., क. त., परिशिष्ट पृ. ३०
४. प. क. त., पद ११७, गौ. प. त., पृ. १४७
५. चै. मं., शेष खंड

नरहरि सरकार के आदेशानुसार लोचन ने "चैतन्य-मंगल" की रचना की थी। सतीशचन्द्र राय का मत है कि "चैतन्य-मंगल" मुरारि गुप्त के कड़चा के आधार पर लिखा गया है। समस्त चैतन्य-मंगल तो नहीं परंतु आदि-लीला कड़चा के आधार पर रची गई है। अनुवाद भी हो सकता है।[१] यह ग्रंथ मंगल काव्य के रूप में लिखा गया है।

चैतन्य-मंगल के अतिरिक्त लोचन ने अन्य ग्रंथ भी लिखे थे। एक 'दुर्लभसार' और दूसरा राय रामानंद के संस्कृत नाटक 'जगन्नाथ-वल्लभ' के पद्य भाग का भाषानुवाद। अनुवाद में भी छंद वही रक्खा है। भाषा संस्कृतगर्भित अधिक है। अंतिम पद तो एक तरह से संस्कृत का अन्वय-सा ही है।

इनके २९ पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। लोचनदास ने पदों की एक नयी शैली को जन्म दिया। ये 'धामाली' कहलाए। 'पयार' छंद और 'त्रिपदी' छंदों के स्थान पर, जो वर्णिक वृत्त हैं, चार मात्रा के चरण वाला मात्रिक छंद चलाया। धामाली का अर्थ ही आमोद है। छोटे चलते छंदों को कुछ तो शब्द के अर्थ से और कुछ होली जैसे आमोद-प्रधान गीतों की ताल 'धमार' के साथ समन्वय करके 'धामाली' पद कहा गया। ये पद बंगला भाषा में हैं और कृष्ण और गौरांग लीला से संबंधित हैं। भाषा सरल है और मुख्यतः स्त्रियों के कथन होने के कारण स्त्रियों की भाषाविशेष की छटा इनमें मिलती है।

लोचन खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे।

वंशीदास

वंशीवदनदास कभी 'वंशीदास' नाम से भी पद-रचना करते थे। परंतु एक अन्य 'वंशीदास' का भी पता चलता है। सतीशचन्द्र राय का मत है कि जितने भी पद 'वंशी' अथवा 'वंशीवदन' नाम से हैं वे सब वंशीवदन के ही हैं। परंतु सुकुमार सेन एक दूसरे वंशी की उपस्थिति भी मानते हैं। वंशीदास नाम से एक पद गौर-पद-तरंगिणी में उद्धृत है :—

जय जय मोर आचार्य ठाकुर अगति पतित अति।
करुणा करिया स्वचरणे राख ए मोर पापिष्ठ मति॥

(गौ. प. त., पृ. ५, पद ५)

इसके अनुसार ये 'वंशीदास' श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। कर्णानंद ग्रंथ में भी एक वंशीदास ठाकुर का उल्लेख है जो श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे :—

श्री वंशीदास ठाकुर येइ महाशय
प्रभुर प्रिय शाखा हय मधुर आशय॥

(कर्णानन्द, निर्यास १)

इन दोनों के आधार पर वंशीवदन भिन्न एक अन्य वंशीदास की उपस्थिति ज्ञात होती है जो श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। दोनों के पदों का मिश्रण हो गया है। ऊपर दिए उद्धरण वाले पद को इनका रचा हुआ निश्चित रूप से कहा जा सकता है। भक्ति-रत्नाकर के अनुसार ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे।

एक वंशीदास नाम के व्यक्ति ने रूप गोस्वामी के 'निकुंज-रहस्य-स्तव' का भाषा में

१. प. क. त., परिशिष्ट पृ. २०३

रूपांतर किया है। इसमें ३३ पद हैं जो लगभग सब के सब ब्रजबुलि में रचे गए हैं। बहुत सम्भव है कि ये वंशीदास भी ऊपर दिए व्यक्ति से अभिन्न ही हों।

वंशीवदनदास

वंशीवदनदास का जन्म सन् १४९४ ई. के लगभग हुआ था। नवद्वीप के समीपस्थ ग्राम 'कुलिया पहाड़' में इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम श्री छकड़ि चट्ट था। इसका उल्लेख वंशी-शिक्षा ग्रंथ में इस प्रकार है :

श्रीछकड़ि चट्ट नाम विख्यात भुवन ॥
पाटुलीर वास छाड़ि तेंह कुलीयाय ।
वास करिलेन आसि आपन इच्छाय ॥
तांहार आत्मज वंशी जाने सर्वजन ।"

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १२२)

वंशी-विलास ग्रंथ में इनके पांच नाम दिए हैं :

"श्री वंशी वदन, वंशी, आर वंशीदास ।
श्री वदन, वदनानंद पंचम प्रकाश ॥
प्रभुर पंचटी नाम गाय कविगण ।
मुख्य नाम हय किंतु श्री वंशीवदन ॥"

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १२४)

ऊपर के अवतरण के आधार पर सतीशचन्द्र राय वंशीदास और वंशीवदन को एक ही व्यक्ति मानते हैं। परंतु सेन महोदय वंशीदास को वंशीवदन से भिन्न बताते हैं। उनका आधार 'कर्णानंद' और 'भक्ति-रत्नाकर' ग्रंथ हैं।[1]

वंशीवदन चैतन्यदेव के अनन्य भक्त थे। उनके संन्यास लेने के अनन्तर वे विष्णु-प्रिया देवी के संरक्षक के रूप में उनके पास रहते थे। इन्होंने 'प्राणवल्लभ' नाम का एक विग्रह भी स्थापित किया था। पदकल्पतरु में इन के नाम से २५ और वंशीदास नाम से १७पद प्राप्त हैं। कहा जाता है कि चैतन्यदेव ने इन्हें रसराज उपासना सिखाई थी। इन्होंने 'दीपकोज्ज्वल' और 'दीपान्विता' नामक दो ग्रंथ भी रचे थे। वंशीवदन के चैतन्यदेव संबंधी पदों का ऐतिहासिक महत्त्व अधिक है, क्योंकि इन्होंने उनके जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन किया था।

वल्लभदास

इस नाम के तीन व्यक्ति हुए हैं। पदकल्पतरु में 'वल्लभदास', 'वल्लभ' और 'श्रीवल्लभ' तीन नाम से पद मिलते हैं। कुछ पदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वल्लभ-दास और श्रीवल्लभ नामांकित पद एक ही कवि की रचना है। इनकी निश्चित जन्म-तिथि ज्ञात नहीं है। अपने दो पदों में गोविंददास कविराज ने अपने नाम के साथ वल्लभ

---

१. कर्णानंद, निर्यास, १, भक्ति रत्नाकर १०.

का भी नाम दिया है।[१] वल्लभदास ने एक सम्पूर्ण पद में गोविंददास की प्रशंसा की है।[२] इन सब से ज्ञात होता है कि वल्लभदास या श्रीवल्लभ गोविंददास के समसामयिक थे। अतः सन् १५८३ ई. के आसपास ये उपस्थित थे।[३]

श्रीवल्लभ नाम के दो व्यक्ति एक ही समय में थे।

१. **श्रीवल्लभ ठाकुर** दिवली ग्राम के निवासी थे और श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।[४]

२. **श्रीवल्लभदास मजुमदार**—ये रामचन्द्र कविराज के शिष्य थे।

श्रीनिवास आचार्य के शिष्य वल्लभदास ही अभीष्ट कवि जान पड़ते हैं। इनकी निश्चित मृत्युतिथि भी अज्ञात है। अपने एक पद में इन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि ये श्रीनिवास, नरोत्तम, रामचन्द्र और गोविंददास इत्यादि के बाद तक जीवित रहे।[५] इनके एक पद में नरोत्तमदास के ग्रंथों का उल्लेख है।[६]

३. **कवि वल्लभ**—कवि वल्लभ के नाम से केवल एक पद प्राप्त है। ये 'करतोया' नदी के किनारे स्थित महास्थान में रहते थे। इनके पिता का नाम राजवल्लभ था। ये उद्धवदास के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। 'रस-कदम्ब' नामक अपनी रचना में उसका रचनाकाल इन्होंने दिया है। शक १५२० अर्थात् १५९८ ई. में यह लिखा गया था। अतः ये १५९८ ई० के आसपास जीवित थे, यह निश्चित है। उनके प्राप्त पद के आधार पर उन्हें नरोत्तमदास का शिष्य भी बताया जाता है। वह पंक्ति निम्न है :—

नरोत्तमदास आश चरणे रहु
श्री वल्लभ-मन भोर (प. क. त., पद १०२२)

वासुदेव घोष

वासुदेवघोष का जन्म सिलहट जिले के 'वर्ण' अथवा बुरंगी स्थान में हुआ था। माधव घोष और गोविंद घोष इनके दो भाई और थे। तीनों ही पदकर्त्ता और सुकंठ गायक थे। वासुदेव घोष चैतन्य देव के अनन्य भक्त और अनुचर थे। इन्होंने समस्त पद केवल गौर पर ही रचे हैं। इन्होंने चैतन्य को कृष्ण का स्वरूप ही माना है। अतः ठीक कृष्ण लीला वर्णन के समान ही चैतन्य लीला का वर्णन किया है। इन्होंने कृष्ण की 'दान-केलि', 'नौका विहार' और 'गोपी विहार' इन समस्त लीलाओं की कल्पना गौर-चरित्र में भी की है। नदिया-नागरी-भाव अर्थात् नदिया की स्त्रियों की गौर के प्रति आसक्ति-भाव के जन्मदाता ये ही थे।

---

१. प. क. त., पद २२५, २३४
२. गौ. प. त., ६।४।७१, पृ. ४८१
३. कर्णा., निर्यास ७, पृ. १७
४. कर्णा., निर्यास २., पृ. २६
५. प. क. त., पद २९८१
६. गौ. प. त., ६।४।६७, पृ. ४७८

कृष्णदास कविराज ने चैतन्यचरितामृत में इनका उल्लेख किया है :—

वासुदेव गीत करेन प्रभुर वर्णने ।

काष्ठ पाषाणादि द्रवे जाहार श्रवणे ।। (चै. च., आदिलीला, परि. ११, पृ. ६२)

देवकीनंदनदास ने अपनी ''वैष्णव-वंदना'' में इनकी वंदना की है :—

श्री वासुदेव घोष वंदिव सावधाने ।

गौरगुण बिना जेइ अन्य नाहि जाने ।। (गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १२६)

''वैष्णवाचार-दर्पण'' ग्रंथ में भी वासुदेव घोष का उल्लेख है । इसके अनुसार वासुदेव घोष जीवन के अंतिम दिनों में 'तमुलक' में आकर बस गए थे।

वासुदेव घोष की निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है । ये चैतन्यदेव के समकालीन थे ।

वासुदेवदत्त

वासुदेवदत्त चैतन्यदेव के अनुयायी थे । क्षणदा-गीत-चिंतामणि के पहले संस्करण में इस नाम से एक पद है । वासुदेव दत्त चैतन्यदेव के प्रमुख अनुयायियों में से थ ।

विजयानंददास

चैतन्यदेव के अनुचरों में एक विजयदास थे । ये प्राचीन पोथियों को उनके लिए लिपिबद्ध किया करते थे । अनुमान किया जाता है कि विजयानंददास नाम से जिनका एक पद पदकल्पतरु में है, ये ही विजयदास थे । कारण यह है कि वैष्णव साहित्य में किसी भी विजयानंददास का उल्लेख नहीं है । जो पद प्राप्त है वह गौरांग विषयक है और उसकी ध्वनि से भी ज्ञात होता है कि उन्होंने उन्हें देखा था ।[1] इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात हैं । ये चैतन्यदेव के समकालीन थे ।

विष्णुदास

अद्वैत पत्नी सीता देवी की एक छोटी गाथा विष्णुदास के नाम से पाई जाती है । विशेष विवरण अप्राप्य है । लेखक ने चैतन्य-चरितामृत और कृष्णदास का उल्लेख अपने काव्य में किया है । इससे ये कृष्णदास के परवर्त्ती कवि जान पड़ते हैं ।

वीरचन्द्र

वीरचन्द्र का एक पद प्राप्त है । इसे सेन महोदय ने अपनी पुस्तक में पद-कल्प-लतिका और कीर्त्तन-गीत-रत्नावली से उद्धृत किया है । कदाचित् इस पद के कर्ता वीरचन्द्र नित्यानंद प्रभु के पुत्र वीरचन्द्र हैं । ये १५२५ ई. में उत्पन्न हुए थे ।

वीर हाम्बीर

वीर हाम्बीर मल्ल-भूमि के राजा थे । १५८० ई. के लगभग श्रीनिवास आचार्य ने उन्हें वैष्णव धर्म में दीक्षित किया । इसका विशद वर्णन प्रेम-विलास, कर्णानंद, और भक्ति-रत्नाकर में है । दीक्षा के अनन्तर श्रीनिवास ने इनका नाम चैतन्यदास रक्खा ।[2] इनका

१. प. क. त., पद २२४२

२. भ. र., पृ. ५८१.

एक पद 'कर्णानंद' (पृ. १९) और पदकल्पतरु (१३७८) दोनों में है। एक अन्य पद भक्ति-रत्नाकर (पृ. ५८१) में है।

वृन्दावनदास

वृन्दावनदास श्रीवास पंडित की भतीजी नारायणी ठकुरानी के पुत्र थे। श्रीवास पंडित चैतन्य के परम भक्त थे। वृन्दावनदास का जन्म १५०७ ई. में बताया जाता है। परंतु यह तिथि संदिग्ध है। मृत्यु-तिथि १५८८ ई० के लगभग बताई जाती है। वृन्दावन-दास खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे।

पदों के अतिरिक्त वृन्दावनदास ने "चैतन्य-भागवत" नामक चैतन्य जीवनी लिखी है। चैतन्य-भागवत का रचनाकाल १५३५, १५४८, १५५७ से लेकर १५७३ ई० तक मिलता है। ये नित्यानंद प्रभु के शिष्य थे। "चैतन्य-भागवत" के अतिरिक्त 'तत्व-विलास' 'दधिखंड', 'वैष्णव-वंदना' और 'भक्ति-चिंतामणि' ग्रंथ भी इनके लिखे हुए बताए जाते हैं।

शंकरदास

शंकरदास नाम से तीन पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। वैष्णव साहित्य में पांच शंकरदासों का उल्लेख पाया जाता है। इनमें से दो के साहित्यकार होने की संभावना है।

१. चैतन्यदेव के भक्त और दामोदर पंडित के छोटे भाई। इनका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत के आदिखंड के १०वें परिच्छेद में है।

तांहार अनुज शाखा शंकर पंडित।
प्रभुर पादोपाधान जांर नाम विदित॥ (चै. च., आदिलीला, परि १०, पृ. ५७)

परन्तु ये पदकर्ता नहीं है।

२. चैतन्य-चरितामृत में उल्लिखित एक अन्य शंकर।[1]

३. नित्यानंद प्रभु की शिष्य-परंपरा के शंकर:—

शंकर मुकुंद ज्ञानदास मनोहर। (चै. च. आदिलीला, परि. ११, पृ. ६३)

इनका भी विशेष विवरण अज्ञात है।

४. नरोत्तम ठाकुर के शिष्य शंकरदास। इनका उल्लेख नरोत्तम-विलास ग्रंथ में है:—

जय वैष्णवेर प्रिय शंकर विश्वास।
गौर गुण गान जे हो परम उल्लास॥
(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १७९)

५. देवकीनंदन के वैष्णव-वंदना ग्रंथ में उल्लिखित शंकर घोष।

वंदिव शंकर घोष किंचन रीति।
डमकेर वाद्येते जे प्रभुर कैल प्रीति॥
(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १७९)

चौथ और पांचवें शंकर ही पदकर्त्ता और ग्रंथकार हैं। एक ग्रंथ 'गुरुदक्षिणा' प्राप्त है जिसके लेखक शंकरदास हैं। वे कौन से हैं, 'शंकर विश्वास' अथवा 'शंकर घोष', यह कहना कठिन है।

---

१. चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ५७

शचीनंदनदास

शचीनंदन रामचन्द्र गोस्वामी के छोटे भाई थे। ये वंशीवदन के पौत्र और चैतन्य-दास के पुत्र थे। रामचन्द्र गोस्वामी का जन्मकाल १५३४ ई. के लगभग था। अतः शचीनंदन का जन्मकाल इसके कुछ वर्ष पीछे ही होगा। निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। इनका एक पद जो पदकल्पतरु और गौर-पद-तरंगिणी दोनों में है प्राप्त है। एक बारह-मासा भी प्राप्त है। इसमें गौरांग-लीला और विष्णुप्रिया-विरह वर्णन है।

शिवरामदास

शिवरामदास के नाम से २४ पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। इनके कुछ पदों की भाषा मिश्रित ही है। कुछ ब्रजबुलि और कुछ ब्रज भाषा मिली है। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। "भक्ति-रत्नाकर" और "नरोत्तम-विलास" दोनों में ही एक पयार छंद दिया है।

जय शिवरामदास परम उदार।
गौर नित्यानंद अद्वैत सर्वस्व जाहार ॥

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १७९)

ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे, और उन्हीं के समसामयिक भी थे। इससे अधिक विवरण अज्ञात है।

शिवानंद आचार्य

चैतन्य-चरितामृत म कृष्णदास कविराज ने शिवानंद आचार्य का नाम गदाधर पंडित के शिष्यों में दिया है। पदकल्पतरु[1] में तीन पद शिवानंद नाम से, और छः पद शिवाई नाम से प्राप्त हैं। भक्ति-रत्नाकर में भी एक पद शिवानंद के नाम से प्राप्त है। इन समस्त पदों में गदाधर की गौरांग के साथ क्रीड़ा वर्णित है। अतः शिवाई और शिवानंद एक ही व्यक्ति ज्ञात होते हैं और गदाधर पंडित के शिष्य भी ज्ञात होते हैं। भक्ति-रत्नाकर वाले पद में इन्होंने गदाधर पंडित को 'पहु' कहा है। शिवानंद आचार्य की निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इस प्रकार १५८३–१५८४ ई. में इनकी उपस्थिति स्पष्ट है।

शिवानंद सेन

शिवानंद सेन चैतन्य देव के अनन्य भक्त और समसामयिक थ। गौर-पद-तरंगिणी के एक पद में इन्होंने कुछ आत्म-परिचय दिया है।[2] ये कुलीन ग्रामवासी थे। ये संन्यास लेकर नीलाचल वास करते हुए चैतन्यदेव के पास प्रतिवर्ष यात्रियों के साथ जाते थे। इसका उल्लेख उक्त पद में है। वैष्णव-वंदना ग्रंथ में इनका उल्लेख है।[3] चैतन्य-चरितामृत में भी कई स्थानों पर इनका उल्लेख है। शिवानन्द सेन प्रसिद्ध कवि कर्णपूर के पिता थे।

---

१. **प. क. त., पद १८५१, २१२७, २३५५**

२. **गौ. प. त., पृ. ३८२**

३. **प्रेममय तनु वंद सेन शिवानंद। जाति प्राणधन जार गौर-पद-द्वन्द्व।**

सेन के नाम से केवल तीन पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं । इनकी निश्चित जन्मतिथि और मृत्युतिथि अज्ञात है। ये १५१२ ई० के आस-पास अवश्य ही उपस्थित थे।

श्यामदास

श्यामदास नाम के चार व्यक्तियों का पता चलता है।

१. **श्यामदास चक्रवर्ती**—ये श्रीनिवास आचार्य के साले और शिष्य थे।[१] इनके पिता गोपाल चक्रवर्ती थे।

२. **श्यामदास चट्ट**—ये भी श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।

३. **श्यामदास चक्रवर्ती**—ये व्यास चक्रवर्ती के पुत्र थे। दोनों पिता-पुत्र श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।

४. **श्यामदास आचार्य**—अद्वैत आचार्य के शिष्य। इस बात का उल्लेख "वैष्णवाचार्य-दर्पण"[२] में है।

श्यामदास नामांकित कई पद प्राप्त हैं। पदकल्पतरु में ६ पद, गौर-पद-तरंगिणी में १ पद, संकीर्त्तनान्द में ३ पद, अप्रकाशित पद-रत्नावली में ११ पद और पदकल्पतरु में २ पद पाए जाते हैं। इन सब के पदकर्त्ता कौन हैं, एक ही व्यक्ति है अथवा कई यह सब कहना कठिन है। इनके ब्रजबुलि पदों में एक विशेषता अवश्य है। ये समस्त पद ब्रज-भाषा मिश्रित हैं। इससे दो बातें स्पष्ट हैं। या तो श्यामदास वृन्दावन में रहे या इस नाम का कोई ब्रजभाषा का कवि हुआ था। व्यास के पुत्र श्यामदास विद्वान् व्यक्ति थे। कदाचित् ये वृन्दावन गए हों। परंतु निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इनकी निश्चित जन्मतिथि, तथा मृत्युतिथि अज्ञात है, परंतु ये श्रीनिवास के समसामयिक थे।

श्यामानंददास

श्यामानंद का दूसरा नाम 'दुःखी कृष्णदास' भी था। ये धारेन्दा बहादुरपुर ग्राम के निवासी थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि तो अज्ञात है। परंतु ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। श्यामानंद ने वृन्दावन में रह कर जीव गोस्वामी से वैष्णव शास्त्रों का अध्ययन किया था और उड़ीसा में वैष्णव धर्म का प्रचार किया था। फिर श्रीनिवास और नरोत्तम के साथ ये बंगाल लौट आए। गौरीदास पंडित इनके गुरु थे ; पदकल्पतरु[३] के तीन पदों में इसका आभास मिलता है। श्यामानंद के पद 'दुःखी कृष्णदास', 'दुःखिनी', 'दीन दुःखी कृष्णदास' इन कई नामों से मिलते हैं। इन कुछ पदों में ब्रज भाषा का मिश्रण है।[४] इनकी

---

१. श्यामदास रामचन्द्र गोपाल-तनय।
श्यामानंद रामचरणाख्या केह् कय॥ (गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १८१)
दोहे आचार्येर शिष्य अद्भुत चरित॥ (गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. १८२)

२. श्यामदास अद्वैतेर शाखार प्रधान।
सीता माता जारे करिला स्तन-पान॥ (हि. ब्र. बु, पृ. ४७१)

३. प. क. त., पद २३५८, २३५९, २३६०

४. प. क. त., पद १०८५

जीवनी कुछ अधिक विस्तार से 'भक्ति-रत्नाकर' में पाई जाती है। नरोत्तमदास का एक पद[1] भी इनकी चर्चा करता है।

श्रीनिवास आचार्य

श्रीनिवास का महत्त्व कवि की दृष्टि से तो कम ही है। इनके रचे कुल ५ पद प्राप्त हैं। ये बड़े भारी वैष्णव आचार्य हो गए हैं। श्रीनिवास की जीवनी कई ग्रंथों में मिलती है। प्रेम-विलास, कर्णानंद, अनुराग-वल्ली, भक्ति-रत्नाकर और नरोत्तम-विलास, इन समस्त ग्रंथों में इनका उल्लेख है। ये शाखंडी ग्राम निवासी गंगाधर भट्टाचार्य उर्फ चैतन्यदास के पुत्र थे। इनकी माता जाजीग्राम के बलराम आचार्य की पुत्री थीं। श्रीनिवास का जन्म १५१६ ई. के लगभग हुआ था। इन्होंने चैतन्यदेव के दर्शन नहीं कर पाए थे। वैसे उनके समसामयिक थे। वृन्दावन में जाकर श्रीजीव गोस्वामी के पास वैष्णव धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया था। गोपाल भट्ट इनके गुरु थे। वृन्दावन में ही नरोत्तम और श्यामानंद से मित्रता हुई। कर्णानंद[2] के अनुसार इन्होंने ५ पद लिखे थे। तीन पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं।[3]

सुबलचन्द्र ठाकुर

यदुनंदन ने अपने ग्रंथ कर्णानंद[4] में कहा है कि सुबलचन्द्र ठाकुर श्रीनिवास आचार्य की पुत्री हेमलता देवी के शिष्य और भतीजे थे, अर्थात् ये श्रीनिवास आचार्य के पौत्र थे। आचार्य के तीन पुत्र थे, वृन्दावनचंद्र, राधाकृष्ण और गतिगोविंद। गतिगोविंद के तीन पुत्र थे,—कृष्णप्रसाद, सुन्दरानन्द और हरि। अत: सुबल ठाकुर अन्य दो पुत्रों में से किसी की सन्तान रहे होंगे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये हेमलता देवी के समकालीन कुछ काल तक रहे। १६वीं शती का उत्तरार्ध और १७वीं शती का पूर्वार्ध इनका समय है। इनके दो पद पदामृत-समुद्र में हैं।

स्वरूप दामोदर

स्वरूप दामोदर चैतन्यदेव के समसामयिक और उनकी लीला के संगी थे। नदिया निवास में भी वे उनके समसामयिक थे। उनका पूर्व नाम पुरुषोत्तम आचार्य था। संन्यासी होने पर स्वरूप दामोदर नाम हुआ। संन्यास लेकर वे पुरी में जाकर चैतन्यदेव के साथ रहने लगे। कृष्णदास कविराज ने अपने चैतन्य-चरितामृत में उनका उल्लेख किया है और संकेत किया है कि इन्होंने महाप्रभु की लीला वर्णन में 'कड़चा' की रचना की थी।

१. मध्ये शेष प्रभुलीला स्वरूप दामोदर। सूत्र करि ग्रंथिलेन ग्रंथेर भितर॥

(चै. च., आदिलीला, परि. १३, पृ. ६७)

२. दामोदर स्वरूप आर गुप्त मुरारि, मुख्य मुख्य लीला सूत्र लिखेछे विचारि।

(चै. च., आदिलीला, परि. १३, पृ. ६८)

---

१. गौ. प. त., पृ. ४६९, ४७०

२. कर्णा., पृ. १११

३. प. क. त., पद ७९०, ३०७३, ८३९

४. कर्णा., निर्यास २, पृ. २७

स्वरूप दामोदर की निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये नवद्वीप (नदिया) के निवासी थे।

स्वरूपदास

इस नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है।

१. श्रीनिवास आचार्य की शिष्य परंपरा में उल्लिखित स्वरूपाचार्य। ये प्राय: श्रीनिवास के समसामयिक ही थे। इनका उल्लेख भक्ति-रत्नाकर में है।

२. नरोत्तम-विलास में उल्लिखित **स्वरूपदास**—ये गौरांग के परिकरों में से थे, और चैतन्यदेव के समसामयिक थे।

हरिचरणदास

हरिचरणदास अद्वैत आचार्य के शिष्य थे। इन्होंने अपने ग्रंथ "अद्वैत-मंगल" की रचना अद्वैत के पुत्र अच्युतानंद की आज्ञा से की थी।[1] अद्वैत की बाल्यलीला इन्होंने विजय पुरी संन्यासी से सुनी थी जो अद्वैत के मामा थे। अद्वैत-मंगल में इसका उल्लेख है।

सभार अग्रेते पुरी कहते लागिला। छिलवृ देशेते हय नवग्राम नाम।

... ...

एकांत करिया शुन सबे मन दिया। अद्वैत जन्म एवे कहि विवरिया।

कदाचित् "अद्वैत-मंगल" की रचना आचार्य के जीवन काल में ही हुई थी। क्योंकि कवि ने केवल कवि कर्णपूर का नाम चैतन्य-लीला वर्णन करने वालों में दिया है। अन्य किसी का भी नहीं। अत: ये कवि कर्णपूर और वृंदावनदास तथा कृष्णदास के बीच के समय में रहे होंगे।

श्री चैतन्य लीला वर्णिला कवि कर्णपूर।
ताहे नित्यानंद लीला रसेर प्रचुर॥
अद्वैत-प्रभुर आदि-अंत्य लीला किछु।
वर्णन करिव सर्व करि आगु-पिछु॥ (बां. सा. इ., पृ. २७५)

हरिरामदास

रामचन्द्र कविराज के एक शिष्य हरिराम आचार्य थे। इस बात का उल्लेख भक्ति-रत्नाकर में निम्न है :—

श्री रामचन्द्रेर शिष्य हरिरामाचार्य।
सर्वत्र विदित अलौकिक सर्व कार्य॥

प्रेम-विलास में इनकी जाति एवं निवास-स्थान का विवरण है :—

हरिदास आचार्य शाखा परम पंडित। राढ़ी श्रेणी विप्र इहा जगत् विदित॥
गंगा पद्मार संगम जेवा स्थान हय। तथाय गोयास ग्राम तांहार आलय।

इनकी दीक्षा का विवरण नरोत्तम-विलास में है।[2]

---

१. **वंदे श्री अच्युतानंद प्रभुर तनय।**
बलराम कृष्ण मिश्र आर जत हय॥
तोमार आज्ञाय लिखि यतन करिया। (पृ. १९)

२. न. वि., विलास १०

हिन्दी कवि और पदकर्ता

१. अग्रदास
२. अभयराम कवि
३. आसकरनदास
४. कल्याणदास
५. कल्यानी
६. कान्हरदास
७. कुंभनदास
८. कृष्णदास
९. केवलराम
१०. केशवदास
११. खेम कवि
१२. गंगा स्त्री
१३. गदाधरदास
१४. गिरिधर
१५. गोकुलनाथ गोस्वामी
१६. गोपालदास
१७. गोपीनाथ
१८. गोविंददास
१९. गोविंद स्वामी
२०. चतुरबिहारी
२१. चतुर्भुजदास
२२. चन्द सखी
२३. छबीले कवि
२४. छीत स्वामी
२५. जगन्नाथदास
२६. जमुना स्त्री
२७. तानसेन
२८. तुकाराम
२९. तुलसीदास
३०. दामोदरदास
३१. धोंधेदास
३२. नंददास
३३. नरवाहन जी
३४. नरसैंयां अथवा नरसी
३५. नवल स्त्री
३६. नागरीदास
३७. नाथ ब्रजवासी
३८. नाथ भट्ट
३९. नाभादास
४०. नारायण भट्ट
४१. पद्मनाभ
४२. परमानंददास
४३. प्राणचंद चौहान
४४. बलरामदास
४५. ब्रजपति
४६. भगवत रसिक
४७. भगवानदास (हित)
४८. भीषमदास
४९. माणिकचन्द
५०. माधवदास
५१. मीराबाई
५२. मुरारिदास
५३. रसिक
५४. रसिकबिहारिनदास
५५. रामदास
५६. लालचदास
५७. लालदास
५८. वनचन्द्र
५९. वल्लभ
६०. विट्ठलदास या बीठलदास
६१. विठ्ठलनाथ
६२. विठ्ठल विपुल
६३. विद्यादास
६४. विष्णुदास
६५. व्यास स्वामी
६६. श्रीभट्ट
६७. सगुनदास
६८. सूरदास

६९. सूरदास मदनमोहन
७०. सेवक
७१. हरिदास
७२. हरिराय
७३. हरिवंशअली
७४. हितरूपलाल
७५. हितहरिवंश
७६. हृदयराम

अग्रदास

स्वामी अग्रदास नाभादास के गुरु और पयहारी कृष्णदास के शिष्य थे। ये रामोपासक कवि थे। इनका जन्म और मृत्यु संवत निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। ये तुलसीदास के समकालीन थे। इनकी विशेष प्रसिद्धि सं. १६३२ वि. के लगभग थी। इनकी कई एक रचनायें हैं, जो नीचे दी जा रही हैं :

(१) ध्यान-मंजरी (२) हितोपदेश उपाख्यान बावनी (३) रामभजन-मंजरी (४) रामचरित्र के पद (५) हितोपदेश भाषा।

इनका उल्लेख भक्तमाल में है।

(श्री)अग्रदास हरिभजन बिन, काल वृथा नहिं बित्तयो॥
सदाचार ज्यों संत प्राप्त जैसे करि आये।
सेवा सुमिरण सावधान चरण राघव चित लाये॥
प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर।
रसना निर्मल नाम मनहुं वर्षत धाराधर॥
(श्री) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत, मन वच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन काल वृथा नहीं बित्तयो।

(भ० हिन्दी, पृ० ३१८)

अभयराम कवि

अभयराम के कुछ पद राग कल्पद्रुम में प्राप्त हैं। इनका अन्य विशेष विवरण अज्ञात है। ये सन् १५४५ ई. के लगभग उत्पन्न हुए थे।[1]

आसकरन दास

आसकरन दास नरवर गढ़ के राजा भीम सिंह के पुत्र थे। इनकी रुचि वैष्णव धर्म की ओर थी। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु तिथि अज्ञात है। इनका रचना काल सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में है। आसकरन दास के लिए एक सम्पूर्ण छप्पय भक्तमाल में है।

(श्री) मोहन मिश्रित पद कमल आसकरन जस बिस्तर्यो॥
धर्मशील गुनसींव महाभागौत राजरिषि।
पृथीराज कुल दीप भीम सुत विदित कील्ह सिबि
सदाचार अति चतुर, विमल बानी, रचना पद
सूर धीर उद्दार बिनै भलपन भक्तनि हद
सीतापति राधासुवर, भजन नेम कूरम धर्यौ
(श्री)मोहन मिश्रित पद कमल आसकरन जस बिस्तर्यो॥" (भ. हिन्दी, १७४ पृ. ८८३)

1. The Modern Vernacular Literature of Hindustan P. 30.

इसके अनुसार आसकरनदास कील्ह देव के शिष्य थे। भक्तमाल के वार्त्तिक में उल्लेख है कि यवन बादशाह इनसे मिलने गया था। बादशाह का नाम तो नहीं दिया है परंतु वार्त्तिककार का तात्पर्य अकबर शाह से ही हो सकता है। आसकरनदास ने केवल पद रचना ही की है। ऊपर के छप्पय से यह भी ज्ञात होता है कि ये राम और कृष्ण दोनों के भक्त थे। इनके पद "कीर्तन-रत्नाकर" और "राग-कल्पद्रुम" में मिलते हैं। कविता साधारण श्रेणी की है।

कल्यानदास

इनका अधिक विवरण अज्ञात है। ये १५१० से १५७३ ई. तक के व्यक्ति हैं। कुछ पद ही इनकी रचना हैं जो "कीर्तन-रत्नाकर" और "राग-कल्पद्रुम" में प्राप्त हैं। ये साधारण श्रेणी के कवि हैं। भक्तमाल में कल्यानदास नाम के तीन व्यक्तियों का उल्लेख है। कृष्णदास पयहारी के शिष्यों में एक कल्याणदास हैं।

पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधारी।
देवा हेम कल्यान गंगा गंगासम नारी॥ (भ. हिन्दी, ३९, पृ. ३१४)

भक्तमाल में एक कल्याणसिंह और एक अन्य कल्याणदास का भी उल्लेख है।

१. **कल्याणसिंह**—ये जगन्नाथ के भक्त थे। अंतिम दिनों में राम के भक्त हो गए। ये दास्य भक्ति को मानने वाले थे। कल्याणसिंह के पद कृष्णलीला संबंधी हैं।

(भ. हिन्दी, १८९, पृ. ९१३)

२. दूसरे कल्याणदास को वार्त्तिक तिलककार ने इसी छप्पय (१८९) की टीका में रूप गोस्वामी का शिष्य बताया है। अतः ये भी कृष्ण-भक्त होंगे।

वार्त्तिक तिलककार ने स्वयं ही उन्हें श्रृंगारनिष्ठा वाला कहा है। अभीष्ट पदकर्त्ता इनमें और सर्वप्रथम उल्लिखित कल्याणदास में से कोई भी हो सकते हैं।

कल्यानी

विशेष विवरण अज्ञात है। रचना काल सं. १६६६ वि. के लगभग है। कुछ स्फुट भजन ही इनकी रचना है। इनका उल्लेख ध्रुवदास की भक्त-नामावली में है।

कान्हरदास

'कान्हरदास' या 'कान्हर' नाम के छः व्यक्तियों का उल्लेख 'भक्तमाल' में मिलता निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि तो किसी की भी ज्ञात नहीं है।

१. **कान्हरदास**—ये कान्हरदास पयहारी श्रीकृष्णदास के शिष्य थ।

विष्णुदास कन्हर रंगा, चांदन सबीरी गोबिंद पर।
पैहारी परसाद तें शिष्य सबै भये पार कर॥

(भ. हिन्दी, ३९, पृ. ३१४)

२. **कान्हर जी**—इनका कुछ अधिक विवरण नहीं दिया है। १०० संख्या वाले छप्पय में कुछ भक्तों की तालिका दी है, जो "भक्तमाल दिग्गज भगत एथानाइत सूर धीर" है। इन्हीं में कान्हर का नाम दिया है :-

छीतम द्वारिकादास माधव मांडन रूपा दामोदर।
भल नरहरि भगवान बाल कान्हर केसौ सोहैं घर।

(भ. हिन्दी, १००, पृ. ६५४)

३. **कान्हरजी**—इनका भी कुछ अधिक विवरण भक्तमाल में नहीं है। भक्ति-सुधा-स्वाद तिलक टीका के ७३४ पृष्ठ पर एक छप्पय (११७) दिया है जिसमें "भक्तनि कौ आदर अधिक राजबंश में इन कियौ" कह कर कुछ राजवंशियों की सूची दी है जिनमें "कन्हर" भी हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि वे भक्तों का आदर करने वाले राजा थे। स्वयं भक्त थे अथवा नहीं, यह नहीं कहा। अतः ये अभीष्ट पदकर्त्ता नहीं हो सकते।

४. **कान्हरजी**—ये कान्हरजी गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र हैं। अतः सोलहवीं शती के परवर्त्ती व्यक्ति हुए।

५. **कान्हरजी**—इनके लिए भक्तमाल में एक पूरा छप्पय १७१ (पृ. ८८०) दिया गया है। "कान्हरदास संतिन कृपा, हरि हिरदै लाहौ लह्यौ।" इससे कुछ बिशेष विवरण ज्ञात नहीं होता। यही जाना जाता है कि ये भक्त थे। गुरु या अन्य किसी का भी उल्लेख नहीं है। अतः इनका समय निश्चित करना भी कठिन है।

६. **कान्हरजी**—इनके लिए भी एक सम्पूर्ण छप्पय भक्तमाल में दिया गया है। उससे इतना ज्ञात होता है कि ये कृष्ण-भक्त थे और बूड़िया ग्राम निवासी थे :—

बूड़िए बिदित "कन्हर" कृपाल, आत्माराम आगमदरसी।
कृष्ण भक्ति को थंभ, ब्रह्मकुल परम उजागर।........

(भ. हिन्दी, १९१, पृ. ९१५)

इन विवरणों के आधार पर प्रथम और छठे व्यक्ति ही अभीष्ट व्यक्ति हो सकते हैं। इनके नाम से केवल पद प्राप्त हैं जो 'कीर्त्तन-रत्नाकर' और 'राग-कल्पद्रुम' में हैं।

कुंभनदास

वल्लभाचार्य ने जिस अष्टछाप को जन्म दिया था उसके सर्वप्रथम शिष्य "कुंभनदास" थे। कुंभनदास के जीवन-चरित्र का उल्लेख जो वार्त्ताओं में है उससे ज्ञात होता है कि जिस समय वल्लभाचार्य ने ब्रज आकर गोवर्द्धन पर "श्रीनाथ" का मंदिर बनाया उस समय कुंभनदास उनके शिष्य हुए। गोवर्द्धननाथ के प्राकट्य की वार्त्ता में लिखा है कि जब ये प्रकट हुए, तब कुंभनदास १० वर्ष के बालक थे। प्राकट्य का समय सं १५३५वि. बताया है। इसके अनुसार कुंभनदास की जन्म-तिथि लगभग सं. १५२५ वि. के आती है। मृत्यु की निश्चित तिथि नहीं ज्ञात है। चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के अनुसार वे सूरदास की मृत्यु के समय जीवित थे। डा. दीन दयाल गुप्त उनकी मृत्यु लगभग सं. १६३९ वि. मानते हैं।[१]

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में लिखा है कि अकबर ने कुंभनदास को फतेहपुर सीकरी बुलवाया था। इसका उल्लेख कुंभनदास के एक पद में है[२] कि वे वहां गए थे।

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, अष्ट व० स० भाग १, पृ० २४४
२. भक्तन को कहा सीकरी सों काम।
　आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम।
　जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन परी प्रनाम।

वार्त्ताओं के अतिरिक्त इनका उल्लेख भक्तमाल में भी है। परंतु उन्हें कुछ अधिक महत्व नहीं दिया गया है। बहुत से भक्तों के साथ उल्लेख कर दिया गया है।

पर-अर्थ-परायन भक्त ये, कामधेनु कलियुग्ग के।
लक्ष्मण, लफरा, लड्डू, संत, जोधपुर त्यागी।
सूरज कुंभनदास, बिमानी, खेम बिरागी॥

(भ. हिन्दी, ९८, पृ. ६४६)

प्राचीन जीवनी-साहित्य में जहां कुंभनदास की जीवनी है, उनकी किसी रचना का उल्लेख नहीं है, केवल पदों का उल्लेख है कि वे प्रसिद्ध हुए।[1] ये पद 'कीर्त्तन-संग्रह', 'कीर्त्तन-रत्नाकर', 'राग-कल्पद्रुम' इत्यादि में मिलते हैं।

कृष्णदास

'भक्तमाल' में कृष्णदास नाम के ६ व्यक्तियों का उल्लेख है।

१. **पयहारी कृष्णदास**—इनके विवरण के लिए एक सम्पूर्ण छप्पय है।

निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास, अन परिहरि पय पान कियो।
जाके सिर कर धरयो, तासु कर तर नहिं अड्डयो।
अर्प्यो पद निर्वान सोक निर्भय करि छड्डयो॥
तेज पुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता।
सेवत चरण सरोज राय राना भुविजेता॥
दाहिमा बंश दिनकर उदय, संत कमल हिय सुख दियो।
निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास अन परिहरि पय पान कियो॥

(भ. हिन्दी, ३८, पृ. ३०८)

वार्तिककार् न कृष्णदास पयहारी को अनंतानन्द जी का शिष्य बताया है:- प्रियदास ने अपनी टीका में इन अनंतानंद जी के पुत्र का विवरण वर्त्तमान काल में दिया है।

नृपसुत भक्त बड़ो अबलौं बिराजमान . . . (भ. हिन्दी, ३७, पृ. ३१०)

इससे ज्ञात होता है कि अनंतानंद का पुत्र सं. १७६९ में जीवित था। अनंतानंद प्रियादास के पूर्ववर्त्ती व्यक्ति ठहरते हैं। अतः कृष्णदास पयहारी भी प्रियादास के पूर्ववर्त्ती व्यक्ति हैं। इनकी निश्चित तिथियां अज्ञात हैं। ये भक्त के साथ साथ कवि या लेखक भी थे, कहा नहीं जा सकता। इसी टीका के पृष्ठ ९०२ पर एक और छप्पय (१८५) है जिसमें ये 'गलता' वासी बताए गए हैं। युगल-मान-चरित्र और भक्तमाल की टीका इनकी रचनायें हैं।

२. भक्तमाल में एक सम्पूर्ण छप्पय है जिसमें एक अन्य कृष्णदास का उल्लेख है :—

नन्दकुंवर कृष्णदास को निज पग तें नूपुर दियौ॥
तान मान सुर ताल सुलय सुन्दर सुठि सोहै।
सुधा अंग भ्रू भंग गान उपमाकों को है॥
रत्नाकर संगीत, रागमाला, रंगरासी।
रिझये राधालाल, भक्त पद रेनु उपासी॥

---

१. "सो कुंभन दास जी के पद जगत में प्रसिद्ध भये।"

स्वर्णकार "खरगू" सुवन, भक्त भजन पद दृढ़ लियौ ।
नन्दकुंवर "कृष्णदास" कों निज पग तें नूपुर दियौ ।।

(भ. हिन्दी, १८०, पृ. ८९७)

इससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ये कृष्णदास 'खरगू' सुनार के पुत्र थे, भक्त थे और संगीत के ज्ञाता कीर्त्तनकार थे। निश्चित तिथि, रचना इत्यादि का परिचय नहीं मिलता।

३. **कृष्णदास ब्रह्मचारी**—ये सनातन गोस्वामी के शिष्य थे। इनका उल्लेख भक्तमाल में एक छप्पय में अन्य भक्तों के साथ किया गया है।

वृंदाबन की माधुरी, इन मिलि आस्वादन कियौ ।
"कृष्णदास" पंडित उभै अधिकारी हरि अंग ।।(भ. हिन्दी, ९४, पृ. ६१९)

हो सकता है कि नाभादास जी का तात्पर्य यहां उन कृष्णदास कविराज से हो जो "चैतन्य-चरितामृत" के रचयिता थे। यदि ये वही हैं तो इनका विशेष विवरण बंगला कवियों के साथ देखिए।

४. ऊपर दिए छप्पय में "कृष्णदास पंडित उभै अधिकारी हरि अंग" दिया है। अर्थात् दो कृष्णदासों का उल्लेख है। कृष्णदास अधिकारी 'ब्रह्मचारी' इनका विवरण ऊपर दिया है। 'कृष्णदास हरि अंग' का प्रियादास ने छप्पय ९४ के वार्तिक में कृष्णदास पंडित करके उल्लेख किया है :—

श्री गोविन्दचन्द रूपरासि रसरासि दास, कृष्णदास
पंडित ये दूसरे यों जानि लै। (भ. हिन्दी, पृ. ६२५)

इन कृष्णदास की निश्चित तिथियों का उल्लेख नहीं है। ये भक्त थे, यह तो बताया है पर कवि या लेखक भी थे यह नहीं बताया है।

५. **कृष्णदास चालक**—छप्पय संख्या १२४ में जो रूपकला की टीका के पृ. ७४९ पर दिया गया है, इन कृष्णदास चालक का उल्लेख है :—

चालक की चरचरी, चहूं दिशि उदधि अंत लौ अनुसरी ।।
सक्कोप सुठि चरित प्रसिध, पुनि पंचाध्याई ।
कृष्ण रुक्मिनी केलि, रुचिर भोजन विधि गाई ।।
गिरिराजधरन की छाप, गिरा जलधर ज्यों गाजै ।
संत सिखंडी खंड हृदै, आनंद के काजै ।।
जाड़ा हरन जग जड़ता कृष्णदास देही धरी ।
चालक की चरचरी चहूं दिशि उदधि अंत लौ अनुसरी ।

इसके अनुसार ये कृष्णदास कवि थे। इनकी दो रचनायें 'रास-पंचाध्यायी' और 'कृष्ण-रुक्मिणी केलि' बतायी जाती हैं। उपनाम "गिरिराजधरन" है। चर्चरी छंद में इन्होंने रचना की है।

ध्रुवदास ने भी इनका उल्लेख किया है।

युगल प्रेम रस अब्धि में, परचौ प्रबोध मन जाय ।
बृन्दावन रस माधुरी, गाई अधिक लड़ाय ।।

निश्चित तिथियां अज्ञात हैं।

६. वल्लभाचार्य के शिष्य कृष्णदास——भक्तमाल में निम्न छप्पय दिया है :——

गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम मांझ साझौ दियौ ।
श्री बल्लभ गुरुदत्त भजन सागर गुन आगर ।
कबित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर ।।
बानी बंदित बिदुष सुजस गोपाल अलंकृत ।
ब्रज रज अति आराध्य बहै धारी सर्व सुचित ।
सानिध्य सदा हरिदास बर्य गौर स्याम दृढ़ ब्रत लियौ
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम मांझ साझौ दियौ ।।

(भ. हिन्दी, ८१, पृ. ५८१)

ये कृष्णदास वल्लभाचार्य के शिष्य और सुकवि बताए गए हैं। अतः ये अष्टछापी कृष्णदास हो सकते हैं। ''चौरासी वैष्णव की वार्त्ता'' में उल्लेख है कि ये कृष्णदास गुजरात के चिलोतरा ग्राम में कुनबी के घर उत्पन्न हुए थे :-

सो ये कृष्णदास गुजरात में एक चिलोतरा ग्राम है
तहां एक कुनबी के घर जन्मे ।।

वैष्णवों की जीवनी संबंधी रचनाओं से कृष्णदास की जन्म और मरण की निश्चित तिथियों का पता नहीं चलता। डा. दीनदयालु गुप्त[1] ने वार्त्ताओं और वल्लभ-दिग्विजय के कुछ प्रसंगों के आधार पर इनका जन्म संवत् १५५२ विक्रमी के लगभग माना है। कृष्णदास जी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ के सातों पुत्रों की बधाई गाई थी। गोस्वामी जी के सातवें पुत्र संवत् १६२८ वि. में उत्पन्न हुए थे। कृष्णदास उस समय तक जीवित थे। डा. दीन दयालु गुप्त[2] इनका निधन-संवत् १६३२-३८ वि. के बीच में मानते हैं।

कृष्णदास के नाम से आठ रचनायें बताई जाती हैं जिनके नाम निम्न हैं :——

१. जुगल-मान-चरित्र
२. भक्तमाल पर टीका
३. भ्रमर-गीत
४. प्रेमसत्व निरूप
५. भागवत भाषानुवाद
६. वैष्णव-वंदना
७. कृष्णदास की वाणी
८. प्रेमरस-रास

इनमें से तीसरी और चौथी रचना अधिक प्रसिद्ध है। परंतु डा. दीनदयालु गुप्त] इनको संदिग्ध रचनायें मानते हैं । 'कृष्णदास की बानी' और 'प्रेमरस-रास' को भी वे स्वतंत्र रचना नहीं मानते। शेष रचनाओं को उन्होंने अप्रामाणिक माना है।[3] कृष्णदास के पद राग सागरोद्भव, राग रत्नाकर और छपे हुए कीर्त्तन संग्रहों में प्राप्त है।

---

१. अष्ट. व. स., पृ. २५३-५४
२. ,, ,, ,, , पृ. २५४
३. ,, ,, ,, , पृ० ३१७-३२०

केवलराम

केवलराम व्रजवासी थे। १५७५ ई. के आस पास इनकी उपस्थिति ज्ञात है। इनके कुछ पद रागकल्पद्रुम में प्राप्त हैं जो मुख्यतया राधाकृष्ण लीला संबंधी हैं। ये कृष्ण-दास पयहारी के शिष्य थे। इनका उल्लेख भक्तमाल में है :—

केवलराम कलियुग के पतित जीव पावन किये ।।
भक्ति भागवत बिमुख जगत, गुरु नाम न जानैं ।
ऐसे लोक अनेक ऐंचि सनमारग आनैं ।।
निर्मल रति निहकाम, अजा तें सदा उदासी ।
तत्त्वदरसी तमहरन, सील करुना की रासी ।।
तिलक दाम नवधा रतन, कृष्ण कृपा करि दृढ़ दिये ।
केवलराम कलियुग के पतित जीव पावन किये ।।

(भ० हिन्दी, १७३, पृ० ८८२)

केशव भट्ट

केशव काश्मीरी अत्यन्त विद्वान पंडित थे। ये चैतन्यदेव के समकालीन थे। केशव ने चैतन्यदेव से शास्त्रार्थ किया था जिसमें ये पराजित हुए। फिर ये वृंदावन में रहने लगे। इनकी रचनायें स्फुट पद हैं। दो पद रागकल्पद्रुम में प्राप्त हैं। इनका उल्लेख भक्तमाल म है :

केशौ भट नरमुकुटमणि जिनकी प्रभुता बिस्तरी ।।
कास्मीरि की छाप, पाप तापनि जग मंडन ।
दृढ़ हरिभक्ति कुठार, आन धर्म बिटप बिहंडन
मथुरा मध्य मलेच्छ, बाद करि बरबट जीते ।
काजी अजित अनेक देखि परचै मैं भीते ।।
बिदित बात संसार सब संत साखि नाहिन दुरी ।
केशौभट नर मुकुटमणि, जिनकी प्रभुता बिस्तरी ।। (भ० हिन्दी, ७५, पृ० ५६६)

इनके अतिरिक्त भक्तमाल में चार अन्य केशव जी नाम के व्यक्तियों का उल्लेख है।[1]

खेम कवि

खेम कवि का विशेष विवरण अज्ञात है। इस नाम से कुछ पद "रागकल्पद्रुम" में हैं। ये १५०४-१५७३ ई. के बीच में उपस्थित रहे होंगे।[2] भक्तमाल में 'खेम' नाम के तीन व्यक्तियों का उल्लेख है।

१—भक्तपाल दिग्गज भगत ए थानाइत सूरधीर ।।

. . . . . .

खेम श्रीरंग नंद बिस्नु बीदा बाजूसुत जोरी। (भ० हिन्दी, १००, पृ० ६५४)

---

१. भक्तमाल, भ० सु० स्वाद तिलक टीका पृष्ठ ६५४, ६५५, ६५७, ८४३. (छप्पय १००, १०१, १०२, १५१)

२. (क) **The Modern Vernacular Literature of Hindustan, p. 32**
(ख) मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० २३४

२—निरबर्त भये संसार तें, ते मेरे जजमान सब ॥

. . . . . .

किंकर कुंडा कृष्णदास खेम सोठा गोपानंद. . . .इत्यादि

(भ. हिन्दी, १४७, पृ. ८३०)

३—श्री अग्र अनुग्रह तें भये, शिष्य सबं धर्म की धुजा ॥

. . . . . .

औरौ अनुग उदार खेम खीची धरमधीर लघुऊधौ ॥

(भ. हिन्दी, १५०, पृ. ८४२)

अंतिम 'खेम' अग्रदास की शिष्य परंपरा में हैं। कदाचित् ये ही अभीष्ट पदकर्त्ता हों। एक खेमजी ब्रजवासी का उल्लेख मिश्रबन्धु-विनोद में पृ० ४०३ पर है। इनकी रचना 'खेमजी की चितवनी' और जन्म काल १६३० विक्रम संवत् बताया गया है।

गंगास्त्री

गंगास्त्री हित हरिवंश की शिष्या थीं। इनका उल्लेख ध्रुवदास की भक्तनामावली में है। इनकी रचना स्फुट पद हैं। इनका निश्चित जन्म समय तो अज्ञात है। ये हित-हरिवंश की समकालीन रहीं होंगी।

गदाधरदास

"गदाधरदास" नाम के तीन व्यक्तियों का उल्लेख भक्तमाल में बताया जाता है।

१. गदाधर भट्ट—गदाधर भट्ट के लिए एक सम्पूर्ण छप्पय दिया गया है जो निम्न है :—

गुन निकर गदाधर भट्ट अति सबहिन कौं लागै सुखद ॥
सज्जन सुहृद सुशील बचन आरज प्रतिपालय।
निर्मत्सर निहकाम कृपा करुणा कौ आलय ॥
अनन्य भजन दृढ़ करनि धरयौ बपु भक्तनि काजै ॥
परम धरम कौ सेतु विदित बृन्दावन गाजै ॥
भागौत सुधा बरषै बदन काहू कौं नाहिन दुखद ॥
गुन निकर गदाधर भट्ट अति सबहिन कौं लागै सुखद ॥

(भ. हिन्दी, १३८, पृ. ७९३)

गदाधर भट्ट चैतन्यदेव के भक्त शिष्य थे। इनका जन्म-समय शिवसिंह ने सं. १५८० दिया है। मिश्रबन्धु विनोद में भी सं. १५८०वि. जन्म काल दिया है। गदाधर भट्ट चैतन्यदेव के समसामयिक तो थे ही अतः संवत् १५८४वि. में जो चैतन्यदेव के लीला संवरण का समय है। उनकी उपस्थिति निश्चित है। जीव गोस्वामी से भी इनका साक्षात्कार हुआ था। इसका उल्लेख प्रियादास ने अपनी टीका के कवित्त में किया है।[1]

---

१. "स्याम रंग रंगी" पद सुनि कै गुसाई जीव पत्र दै पठाये उभै साधु
बेगि धाये हैं (कवित्त १८२)
मिले श्री गुसाईं ज सों आंखैं भरि आई (कवित्त १८१)

बंगला भक्तमाल में भी जो लालदास रचित है इस बात की पुष्टि होती है। यह विवरण निम्न है :—

गदाधर भट्ट नाम रसिक भकत।
राधाकृष्ण-प्रेम-लीला-रसे उन्मत ॥
एक पद बानाइया भट्ट महाशय।
श्रीजीव गोस्वामि स्थाने आनंदे पाठाय॥
वृंदावने गोस्वामी पाइया सेइ पद।
उथलिल गोस्वामीर प्रेमानंदमद ॥
गोस्वामिजी भट्टजीके लिखि पाठाइला।
. . . . . .
पत्री पाठ करि भट्ट चलिला अमनि।
श्रीवृंदावने जथा श्रीजीव गोस्वामी ॥
जाइया पड़िला पदे गोस्वामी तुलिया।

(भ. बं., माला २३, पृ. ३३९)

मोहिनी वाणी के नाम सें इनके पदों का संग्रह बताया जाता है।

२. भक्तमाल की भक्ति-सुधा-स्वाद तिलक टीका के पृ. ९०४ पर एक छप्पय (१८६) दिया गया है। यह सम्पूर्ण छप्पय एक दूसरे गदाधरदास का विवरण देता है।

भली भांति निबही भगति सदा गदाधरदास की ॥
लालबिहारी जपत रहत निशि बासर फूल्यौ।
सेवा सहज सनेह सदा आनंद रस झूल्यौ ॥
भक्तनि सों अति प्रीति रीति सबही मन भाई।
आसय अधिक उदार रसन हरि-कीरति गाई ॥
हरि विश्वास हिय आनि कै सपनेहुं आन न आस की।
भली भांति निबही भगति सदा गदाधरदास की ॥

इन गदाधरदास का अन्य अधिक विवरण अज्ञात है। मिश्रबन्धु-विनोद के पृ. ३५५ पर एक गदाधर मिश्र का नाम दिया है, जिनका जन्म संवत् १५८० वि. है। यदि ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं तो यही जन्म संवत् उनका समय निर्धारण करता है। अन्यथा इतना तो निश्चित है कि ये भक्तमाल रचयिता के पूर्ववर्त्ती व्यक्ति हैं। गदाधरदास नाम से सागरोद्भव में पद संकलित हैं। भक्तमाल के वार्त्तिक तिलककार रूपकला गदाधरमिश्र को वल्लभाचार्य का शिष्य बताते हैं।

३. गदाधर—भक्तमाल में एक तीसरे गदाधर का उल्लेख बहुत से अन्य भक्तों के साथ साथ किया गया है :—

गुनगन बिसद गोपाल के एते जन भये भूरिदा॥
बोहिथ रामगुपाल कुंवरबर गोबिन्द मांडिल।
छीत स्वामि जसवंत गदाधर अनंतानंद भल ॥

(भ. हिन्दी, १४६, पृ. ८२९)

ये तीसरे गदाधर कौन थे यह कहना कठिन है। इनके समय के बारे में यह निश्चित है कि ये नाभादास के पूर्ववर्त्ती व्यक्ति थे।

गिरिधर

गिरिधर के कुछ स्फुट भजन प्राप्त हैं। इनका विशेष विवरण अज्ञात है। इनका रचना काल संवत् १६६६ वि. के आसपास माना जा सकता है। भक्तमाल में इनका उल्लेख है।

गिरिधरन ग्वाल गोपाल कौ सखा सांच लौ संग कौ ॥
प्रेमी भक्त प्रसिद्ध गान अति गद गद बानी।
अंतर प्रभु सों प्रीति प्रगट रहै नाहिन छानी ॥
नृत्य करत आमोद विपिन तन बसन बिसारै।
हाटक पट हित दान रीझि ततकाल उतारै ॥
मालपुरै मंगल करन रास रच्यौ रस रंग कौ।
गिरिधरन ग्वाल गोपाल कौ सखा सांच लौ संग कौ ॥

(भ. हिन्दी, १९४, पृ. ९२०)

ध्रुवदास ने भी इनका उल्लेख निम्न रूप से किया है :—

गिरिधर स्वामी पर कृपा, बहुत भई दश कुंज।
रसिक रसिकनी की सुजश, गायी तिहिं रसपुंज ॥

गोकुलनाथ गोस्वामी

गोकुलनाथ गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र थे। इनका जीवन-काल सं. १६०८ वि. से १६९७ वि. तक है। इन्होंने दो गद्य ग्रंथ "चौरासी वैष्णव की वार्त्ता" और "दो सौ बावन वैष्णव की वार्त्ता" रचे थे। ये मिश्रित ब्रजभाषा की रचनायें हैं।

गोपीनाथ

मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म-काल सं. १५४८ बतलाया है और रचना-काल संवत् १५६८ निर्धारित किया है। भक्तमाल में इस नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख है :—

१. **गोपीनाथ**—ये मथुरावासी बताए गए हैं। यह नीचे दिए छप्पय के अंश से स्पष्ट है :—

जे बसे बसत मथुरा मंडल, ते दया दृष्टि मोपर करौ ॥
रघुनाथ गोपीनाथ रामभद्र दासू स्वामी।......इत्यादि

(भ. हिन्दी, १०३, पृ. ६६१)

२. **पंडा गोपीनाथ**—इनका अन्य भक्तों के साथ उल्लेख मात्र है। वह छप्पय निम्न है :—

बद्रीनाथ उड़ीसे, द्वारिका सेवक सब हरि भजन पर ॥
. . .   . . .
पंडा गोपीनाथ मुकुंदा गजपति महाजस।.....इत्यादि

(भ. हिन्दी,१०१, पृ. ६५५)

गोपालदास

गोपालदास के नाम से पद रागकल्पद्रुम में प्राप्त हैं। मिश्रबन्धु संवत् १५६१ से १६३० वि. तक इनकी उपस्थिति बताते हैं। इनका निश्चित जन्मसंवत् तो अज्ञात है। नाभादास इन्हें पयहारी कृष्णदास का शिष्य बताते हैं। इस प्रकार ये कदाचित् उनके समकालीन रहे हों। वैसे भी क्योंकि इनका उल्लेख नाभादासजी ने किया है ये उनके पूर्ववर्ती व्यक्ति रहे होंगे। यह छप्पय जिसमें अन्य भक्तों के साथ गोपालदास का उल्लेख है, निम्न है :—

पैहारी परसाद तें शिष्य सबै भये पारकर ॥

. . . . . .

पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधरी
देवा हेम कल्यान गंगा गंगासम नारी . . . . इत्यादि

'(भ. हिन्दी, ३९, पृ. ३१४)

गोविंददास

गोविंददास की एक रचना पद-संग्रह प्राप्त है। इसका नाम एकांत-पद है। ये राधाकृष्ण विषयक पद हैं जो ब्रजभाषा में हैं। इनका जन्म संवत् १६११ वि. में हुआ था।[1] इनके पद रागकल्पद्रुम में भी प्राप्त हैं।

गोविंद स्वामी

गोविंद स्वामी अष्टछाप के एक कवि थे। ये पदकर्त्ता थे। इनके पद कीर्त्तन-संग्रहों में प्राप्त हैं। पदों के अतिरिक्त अन्य कोई रचना प्राप्त नहीं है। डा. दीनदयालु गुप्त ने, "वार्त्ताओं", "अष्टछाप" "सम्प्रदाय कल्पद्रुम" और श्री गिरिधर लाल के एक सौ बीस वचनामृत के आधार पर इनकी संक्षिप्त जीवनी दी है[2]। उनके कथनानुसार ये आंतरी ग्राम में उत्पन्न हुए थे। बाद को ये गोवर्धन चले गए। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य हुए थे। इनका जन्म-संवत् लगभग १५६२ विक्रमी और मृत्यु-संवत् १६४२ वि. बताते हैं। इन्होंने विट्ठलनाथ के सातवें पुत्र घनश्याम का उल्लेख एक पद में किया है।[3] घनश्याम संवत् १६२८ वि. में जन्मे थे। उस समय तक ये थे।

भक्तमाल में इनका अन्य भक्तों के साथ एक छप्पय में उल्लेख है :—

हरि सुजस प्रचुर कर जगत मैं, ये कबिजन अतिसय उदार ॥
बिद्यापति ब्रह्मदास बहोरन चतुर बिहारी।
गोबिन्द गंगा रामलाल बरसानियां मंगलकारी ॥

(भ. हिन्दी, १०२, पृ. ६५७)

प्रियादास ने अपने कवित्तों में कुछ अधिक विवरण दिया है जो इनकी भक्ति की दृढ़ता बताता है।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ७१३
२. अष्ट. व. स., पृ. २६६-२७२ :
३. भये श्री "वल्लभराय" "रघुपति" श्री यदुपति सामल घन ।
गोविन्द प्रभु गिरिराज उद्धरण गुणनिधि श्री गिरधरन ।

चतुरबिहारी

चतुरबिहारी के कुछ पद राग-सागरोद्भव में प्राप्त हैं। ये साधारण श्रेणी के कवि हैं। शिवसिंह और मिश्रबंधु दोनों ही ने सं. १६०५ वि. इनका जन्मकाल दिया है।[१] इनके विषय में अधिक तो ज्ञात नहीं है परंतु ये विट्ठलनाथ के शिष्य ज्ञात होते हैं, जैसा कि उन्होंने एक पद में उल्लेख किया है।

जीवन मुक्त सदा तेही जन जो श्री वल्ल भनंदन के चेरे।
चतुर कहे श्री विट्ठलनाथ प्रभु सों, हमेहूं गिनिये तिनमें भले बुरे तो तेरे।
(की. र., पृ. १९६)

चतुर्भुजदास

चतुर्भुजदास अष्टछाप के कवि कुंभनदास के पुत्र थे और स्वयं भी अष्टछाप के एक कवि थे। डा. दीनदयालु गुप्त ने अष्टछाप के आधार पर जो चतुर्भुज दास की जीवनी दी है[२] उसके अनुसार ये कुंभनदास के पुत्र थे। पिता ने जन्म होने के कुछ ही दिन बाद नव-जात शिशु को गोस्वामी विट्ठलनाथ की शरण में दे दिया। विट्ठलनाथ ब्रज में गिरिधर जी के जन्म के बाद आए थे। उस समय संवत् १५९७ वि० चल रहा था। तभी चतुर्भुज-दास उनकी शरण में दिए गए थे। अतः उनका जन्मसंवत् १५९७ वि० है। चतुर्भुज-दास संवत् १६२८ वि० तक अवश्य विद्यमान थे। यह संवत् विट्ठलनाथ के सातवें पुत्र घनश्यामदास जी का जन्मकाल है। चतुर्भुजदास ने उनकी बधाई गाई है।[३] चतुर्भुजदास ने विट्ठलनाथ की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए पद लिखे हैं।[४] गोस्वामीजी का मृत्युसंवत् १६४२ वि० फाल्गुन कृष्ण ७ माना जाता है। चतुर्भुजदास की मृत्यु इस संवत् में ही हुई होगी।

चन्द सखी

चन्द सखी का विशेष विवरण अज्ञात है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह कोई स्त्री है अथवा पुरुष। भक्तों के नाम पुरुष होते हुए भी राधा की सखियों के नाम पर पाए जाते हैं। ग्रियर्सन ने इनका उल्लेख पुल्लिंग में किया है।[५] ये १५६१ से १६३० संवत् तक के कवियों में से एक हैं। चन्द सखी के पद रागकल्पद्रुम में प्राप्त हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि ये कृष्ण के बालरूप की उपासक थीं क्योंकि अधिकांश पदों की अन्तिम पंक्ति में "चन्द सखी

---

१. शिवसिंह—सरोज, पृ. ४१४
मिश्रबंधुविनोद, पृ. ३६२

२. अष्ट. व. स., पृ. २६२-२६६

३. **श्री बल्लभ सुजसु सन्तन नित्य गाऊं।**
... ...
श्री घनश्याम अभिराम रूप वरषा स्वांति आस ज्यों रस चातक रटाऊं॥

४. **श्री वल्लभ सुत दरसन कारन अब सब कोऊ पछतैहें॥**
चतुर्भुजदास आस इतनी जो सुमिरन जनमु जनमु सिरैहें॥

5. **Modern Vernacular Literature of Hindustan, P. 332.**

भज बाल कृष्ण छवि" दिया है। कदाचित् ये मीराबाई की भक्त और परवर्ती कवि थीं, क्योंकि इनके एक पद की भाषा बहुत कुछ मीरा बाई की भाषा है :—

जाबादे गुमानीड़ा कृष्ण म्हारे डेरे काम छे ।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी यमुना किनारे म्हारो गाम छे ।
म्हारे आंगन तुलसी को बिरवा सांवरी सखी म्हारो नाम छे ।
जानी नहीं तो पूंछ लीजयो कुंज द्रुमन म्हारो धाम छे ।
चन्द सखी भज बाल कृष्ण छवि श्री राधा म्हारो नाम छे ।

(रागकल्पद्रुम, पृ. ५०६)

मीरा के दो पदों के कुछ भाव भी चन्द सखी के दो पदों में मिलते हैं।

कहिये जो कहबे की होय ।
... ...
चन्द सखी पीर तब ही मिटेगी मिले सांवरा वैद्य जो मोय ॥

(रागकल्पद्रुम, पृ. ६५)

"मीरा की प्रभु पीर मिटेगी वैद संवलिया होय" इस पंक्ति का भाव चन्द सखी की अन्तिम पंक्ति में है। इसी प्रकार दूसरा पद है :—

जाने रे कोउ वैद्य न मन की ।
जा तन लागे सोइ तन जाने अटपटी प्रीति लगन है कठिन की ।

मीरा के पद की निम्न पंक्ति से तुलना की जा सकती है :—

घायल की गति घायल जाने की जिन लाई सोय।

छबीले कवि

छबीले कवि का समय अज्ञात है। विशेष विवरण भी अज्ञात है। इनका नाम शिवसिंह ने दिया है। इनके कुछ पद रागकल्पद्रुम में है जो संख्या में तीन हैं और राधा-कृष्ण लीला विषयक हैं।

छीत स्वामी

छीत स्वामी अष्टछाप के एक कवि हैं। डा. दीनदयालु गुप्त ने अष्टछाप, वार्त्ताओं, और पद प्रसंग माला के आधार पर इनके जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की है।[1] इसके अनुसार छीत स्वामी मथुरिया चौबे थे और विट्ठल नाथ के शिष्य थे। शिष्य होने से पहले ही ये कवि थे। राजा बीरबल के पुरोहित थे। सम्प्रदाय कल्पद्रुम में इनकी शरणागति का समय संवत् १५९२ विक्रम दिया है। गुप्त जी ने इसी को मान कर उनके जन्मसंवत् का अनुमान १५६७ वि. के लगभग किया है। छीत स्वामी ने विट्ठलनाथ के सातों पुत्रों की बधाई गाई थी। गिरिधर लाल जी के १२० वचनामृत में इनकी मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ की मृत्यु के बाद ही बताई है। इनका प्राचीन उल्लेख वार्ता के अतिरिक्त भक्तमाल में भी है। एक छप्पय में बहुत से अन्य व्यक्तियों के साथ इनका नाम दे दिया है :—

गुनगन बिसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा ॥

१. अष्ट. व. स., पृ. २७२-२७८

बोहित्थ रामगुपाल कुंवरबर गोबिन्द मांडिल ।
छीत स्वामि जसवंत गदाधर अनंतानंद भल ।।

(भ. हिन्दी, १४६, पृ. ८२९)

छीत स्वामी की रचना पदों तक ही सीमित है । ये विट्ठलनाथ के शिष्य थे जैसा इस पद से ज्ञात है :—

हम तो विट्ठलनाथ उपासी ।
सदा सेंउ श्री वल्लभ नंदन जाइ करौं कहा कासी ।।
इन्हें छांड़ि जो औरे धावे सो कहिये असुरासी ।
छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल, बानी निगम प्रकासी ।।

जगन्नाथदास

जगन्नाथदास का विशेष विवरण ज्ञात नहीं है । मिश्रबन्धु-विनोद में इनका नाम संवत् १५६१ से १६३० वि०' तक के कवियों में दिया है । भक्तमाल में अग्रदास के शिष्यों में एक जगन्नाथ का नाम दिया है ।

श्रीअग्र अनुग्रह तें भये शिष्य सबै धर्म की धुजा ।।

... ...

कोमल हृदै किशोर, जगत, जगन्नाथ सलूधौ ।
ओरौ अनुग उदार खेम खीची धरमधीर लघुऊधौ ।

(भ. हिन्दी, १५०, पृ. ८४२)

रागकल्पद्रुम में जगन्नाथ कवि के नाम से ३ पद प्राप्त हैं । कदाचित् ये इन्हीं के पद हों ।

जमुना स्त्री

जमुना स्त्री हित हरिवंश की चेली थीं । इनका निश्चित जन्म और मरण काल तो अज्ञात है । कदाचित् हित हरिवंश की समसामयिक रही हों । भक्तमाल में कलियुगी भक्त नारियों के नाम एक छप्पय में दिए हैं । उसी में "जमुना" भी दिया है । हो सकता है उसका तात्पर्य इन्हीं जमुना स्त्री से हो ।

कलिजुग जुवतीजन भक्तराज महिमा सब जानै जगत ।।
कला लखा कृतगढ़ौ मानमती सुचि सतिभामा ।
जमुना कोली रामा मृगा देवादे भक्तन विश्रामा ।।

(भ. हिन्दी, १०४, पृ० ६६४)

तानसेन

प्रसिद्ध गवैये भक्त तानसेन अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक रत्न थे । ये जाति के ब्राह्मण थे और ग्वालियर के रहने वाले थे । पीछे चल कर इन्होंने मुस्लिम धर्म ग्रहण किया । इनका रचनाकाल सं. १६१७ वि० के लगभग है । इनके बनाए तीन ग्रंथ बताए जाते हैं ।[1]

---

१. मिश्रबंधु-विनोद, पृ. ३४५

१. संगीतसार
२. रागमाला
३. श्री गणेश-स्तोत्र

तानसेन की प्रशंसा में सूरदास ने कहा है :

विधना यह जिय जानि कै सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलते तानसेन की तान ॥

तुकाराम

तुकाराम महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत और कवि थे । इन्होंने 'पारकरी' नामक पंथ चलाया था और प्रेम-भक्ति का प्रचार किया था। इनके अभंग (पद) महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध हैं । इनका समय संवत् १६६४ से १७०६ वि० तक है । इनकी कुछ रचनायें हिन्दी में भी हैं।

तुलसीदास

सुप्रसिद्ध भक्त और कवि तुलसीदास सोलहवीं शती के महाकवि हैं । ये राम-काव्य के प्रणेता हैं। रामकाव्य ही इन्होंने अधिक लिखा है । कृष्ण और हनुमान पर भी इनकी रचनायें प्राप्त हैं। इनकी कविता का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । काव्य की प्रचलित समस्त शैलियों में इनकी रचनायें उपलब्ध हैं। ब्रज भाषा और अवधी दोनों में इन्होंने कविता की है । ये अकबर के समकालीन थे। इनकी जन्मतिथि के संबंध में अत्यन्त मतभेद है। अधिकांश विद्वानों के मतों का उल्लेख कर डा. माताप्रसाद गुप्त संवत् १५८९, भादों सुदी ११ मंगलवार को अधिक संभव मानते हैं ।[1] मिश्रबंधु भी यही तिथि देते हैं।[2] गोसाईं चरित में इनका जन्मसंवत् १५५४ वि. दिया हुआ है। तुलसीदास की मृत्युतिथि भी अनिश्चित है। इनकी तीन रचनाओं की रचना-तिथियां ज्ञात हैं :—

१. रामचरितमानस वि. सं. १६३१.
२. पार्वती मंगल, वि. सं. १६४३,
३. कवितावली, सं. १६६५—१६८५ वि. के बीच में

नाभादास ने अपने भक्तमाल में तुलसीदास का उल्लेख किया है :—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीक तुलसी भयौ ॥
त्रेता काव्य निबंध करि सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरें ब्रह्म हत्यादि परायन ॥
अब भक्तनि सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी।
राम चरन रस मत्त रटत अहनिसि व्रतधारी ॥
संसार अपार के भार को सुगम रूप नवका लयौ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीक तुलसी भयौ ॥

(भ. हिन्दी, १२९, पृ० ७६२)

---

१. तुलसीदास, पृ. १०९–१११
२. मिश्रबंधु-विनोद, पृ. ३०४

वार्त्ताकार ने तुलसीदास को नंददास का भाई बताया है। "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता" में नंददास की वार्त्ता में तुलसीदास का उल्लेख है।[1]

"नंददास जी तुलसी दास के छोटे भाई हते।"

"सो नंददास जी के बड़े भाई तुलसीदास जी काशी में रहते हुते"

"सो एक दिन नंददास के मन में ऐसी आई जो जैसे तुलसी दास
जी ने रामायण भाषा करी है, सो हमहूं श्रीमद्भागवत करें।"

इन अवतरणों से तुलसीदास का काशीवासी होना और रामायण लिखना ज्ञात होता है।

तुलसीदास की रचनायें संख्या में काफी हैं। नीचे उनकी तालिका दी जाती है।

१. राम गीतावली	२. कृष्ण गीतावली
३. रामचरितमानस	४. दोहावली
५. सतसई	६. राम-विनयावली या विनय-पत्रिका
७. रामलला नहछू	८. पार्वती-मंगल
९. जानकी-मंगल	१०. बाहुक
११. वैराग्य-संदीपनी	१२. रामाज्ञा प्रश्न
१३. बरवै रामायण	१४. कवितावली

बंगला भक्तमाल में तुलसीदास का कई पृष्ठों में विवरण दिया है। उस में अलौकिक घटनायें ही अधिक हैं। प्रारम्भ की कुछ पंक्तियाँ ये हैं :

श्रीमान् तुलसीदास जगते विख्यात।
अलौकिक अद्भुत जाहार चरित॥
पूर्वे तेंहो छिलेन वाल्मीकि मुनिवर।
लोकेर निस्तार हेतु केला अवतार॥
लौकिक लीलाते एक ब्राह्मणेर घरे।
जन्मिलेन महाशय लोक-व्यवहारे॥
कालेते विवाह करि गृहस्थालि कैल।
स्त्रीर वशीभूत विप्र एकांत हइल॥

(भ. बं., माला २३, पृ. ३२९)

दामोदरदास

दामोदरदास की निश्चित जन्म- और मरण-तिथि अज्ञात हैं। मिश्रबंधु इन्हें सं. १५६१ से १६३० वि० तक के कवियों में से एक कवि मानते हैं। दामोदर नाम से कुछ पद कीर्त्तन-संग्रहों और रागकल्पद्रुम में मिलते हैं। हिन्दी भक्तमाल में 'दामोदर' नाम के चार व्यक्तियों का उल्लेख है।

१. कील्हदेव के शिष्य दामोदर—बहुत से अन्य शिष्यों के साथ इनका भी उल्लेख है।

---

१. अष्टछाप, नंददास की वार्त्ता

कीन्ह् कृपा कीरति बिशद परम पारखद सिष प्रगट ।

... ...

रसिक रायमल गौर देवा दामोदर हरिरंग राचा. . . . इत्यादि

(भ. हिन्दी, १५८, पृ. ८५५)

२. इनके गुरु इत्यादि का विवरण नहीं है ; केवल बहुत से भक्तों के साथ नाममात्र दिया है ।

निरबर्त्त भये संसार तें, ते मेरे जजमान सब ॥

... ...

जैदेव राघो बिदुर दयाल दामोदर मोहन परमानंद । . . . .इत्यादि

(भ. हिन्दी, १४७, पृ. ८३०)

३. इनका भी बहुत से भक्तों के साथ उल्लेखमात्र है । विशेष विवरण नहीं दिया है ।

हरि के संमत जे भगत, ते दासनि के दास

.. .. ..

दामोदर सांपिले गदा ईश्वर हेम विदीता । . . . .इत्यादि

(भ. हिन्दी, १०५, पृ. ६६८)

४. इन चौथे दामोदर का भी बहुत से भक्तों के साथ उल्लेखमात्र है ।

भक्त पाल दिग्गज भगत ए थानाइत सूर धीर ॥

.. .. ..

छीतम द्वारिकादास माधव मांडन रूपा दामोदर । इत्यादि

(भ. हिन्दी, १००, पृ. ६५४)

एक और दामोदरदास का उल्लेख हरिराय कृत "भावप्रकाश" में है जो बल्लभाचार्य के शिष्य बताए जाते हैं । बल्लभाचार्य उन्हें "दमला" कहते थे । यह भी वे कहते हैं । 'पद्मनाभ' के एक पद में इन दमला का उल्लेख है ।

धोंधेदास

धोंधेदास के कुछ पद रागकल्पद्रुम में प्राप्त हैं । इनका विशेष विवरण अज्ञात है । ये सं. १५६१ से सं. १६३० वि. के बीच में उपस्थित थे । पद साधारण रूप से सुन्दर हैं । एक पद राम के ऊपर भी है [1] जिसमें दशरथ के मरने के बाद की घटना का वर्णन है । अन्य सब पद कृष्णविषयक हैं ।

---

१. जबै भरत घर जाय माता सों कहा रिसाई ।
बिछुरे सीताराम लच्छमन से दोउ भाई ।
बैठो कैकेयी राज करो दशरथ त्यागे प्राण ।
ऊंचे नीचे महल देख के कौन हमारो काम ।
नगर छोड़ सवा हाथ मुंह खोदी रामचरन चित्त लाई ॥
पैकरमा कर पूज पायरी भरत कीन्ह परणाम ।
धोंधे दास विरह वियोगी जै बोलो सीताराम ॥ (रागकल्पद्रुम, भाग १, पृ० ६३१)

नंददास

नंददास अष्टछाप के एक कवि हैं। ये श्रेष्ठ कवियों में से हैं। रचनायें भी विभिन्न शैलियों में और विभिन्न विषयों पर हैं। डा. दीनदयालु गुप्त ने वार्त्ता, भक्तमाल, भक्त-नामावली, गोसाईं चरित इत्यादि के आधार पर जो इनकी जीवनी प्रस्तुत की है उसके अनुसार ये रामपुर ग्राम के निवासी ब्राह्मण थे। वार्त्ता में इन्हें तुलसीदास का भाई बताया गया है। गोस्वामी विट्ठलनाथ इनके गुरु थे। गुरु की वंदना में नंददास ने कई पद बनाए हैं। एक पद नीचे दिया जाता है :—

प्रात समैं श्री वल्लभसुत को, वदन कमल को दर्शन कीजै।
तीन लोक वंदित पुरुषोत्तम उपमा कहि जो पटतर दीजै॥
श्री वल्लभ सुत कुल उदित चन्द्रमा लखि छबि नैन चकोरन पीजै।
नंददास श्री वल्लभसुत पर, तन मन धन न्योछावर कीजै॥

डा. गुप्त नंददास का जन्मसंवत् १५९० वि. के लगभग और मृत्युसंवत् १६४३ वि. के लगभग मानते हैं।[१] निम्न ग्रंथ नंददास की रचना बताए जाते हैं[२] :—

१. रास-पंचाध्यायी
२. रूप-मंजरी
३. विरह-मंजरी
४. रस-मंजरी
५. मान-मंजरी या नाममाला
६. अनेकार्थ-मंजरी
७. भागवत, दशम स्कंध
८. श्याम-सगाई
९. सुदामा-चरित
१०. गोवर्द्धन-लीला
११. सिद्धांत-पंचाध्यायी
१२. रुक्मिणी-मंगल
१३. भँवर-गीत
१४. दान-लीला
१५. जोग-लीला
१६. मान-लीला
१७. मान-लीला
१८. फूल-मंजरी
१९. राजनीति हितोपदेश
२०. नासिकेत भाषा
२१. रानी माँगौ
२२. प्रबोध-चन्द्रोदय
२३. ज्ञान-मंजरी
२४. विज्ञानार्थ प्रकाशिका
२५. पनिहारिन लीला
२६. रास लीला

इन के अतिरिक्त नन्ददास के स्फुट पद भी प्राप्त हैं।

नरवाहन जी

नरवाहन जी हित हरिवंश के शिष्य थे और मौगांत निवासी थे। इस बात का उल्लेख प्रियादास ने अपनी टीका में किया है। नाभादास ने एक छप्पय में बहुत से अन्य भक्तों के साथ इनका भी उल्लेख किया है।

---

१. अष्ट. व. स., पृ. २५५—२६२
२. अष्ट. व. स., पृ. ३२४-३७४

हरि के संमत जे भगत, ते दासनि के दास ।।

नरबाहन बाहन बरीस जापू जैमल बीदावत . . . इत्यादि (भ. हिन्दी, १०५, पृ. ६६८)

प्रियादास के कथनानुसार इनके ऊपर दो कवित्त बना कर हितहरिवंश ने अपने "हित चौरासी" ग्रंथ में सम्मिलित किए हैं। मिश्रबंधु इनका जन्मकाल सं. १६१७ वि. बताते हैं।

नरसैयां अथवा नरसी

नरसैयां का विशेष विवरण ज्ञात नहीं है। मिश्रबंधु[1] इन्हें सं. १५६१ से १६३० वि. के बीच का कवि बताते हैं। नरसी नाम से कुछ पद "रागकल्पद्रुम" में हैं। ये हिन्दी-गुजराती मिश्रित हैं। अतः ये नरसी गुजरात के प्रसिद्ध वैष्णव नरसी मेहता ही हो सकते हैं। नरसी मेहता का उल्लेख भक्तमाल में है।

जगत बिदित "नरसी" भगत (जिन) "गुज्जर" धर पावन करी ।।
महास्मारत लोग भक्ति लौलेस न जानैं ।
माला मुद्रा देखि तासु की निन्दा ठानैं ।।
ऐसे कुल उत्पन्न भयौ भागौत सिरोमनि ।
ऊसर तें सर कियौ खंड दोषहिं खोयो जिनि ।।
बहुत ठौर परचौ दियौ रसरीति भक्ति हिरदै धरी ।
जगत बिदित नरसी भगत (जिन) गुज्जर धर पावन करी ।।

(भ. हिन्दी, १०८, पृ. ६८०)

भक्त नामावली में भी नरसी का उल्लेख निम्न प्रकार है :—

नरसी हो अति सरस हिय, कहा देऊं समतूल ।
कहेउ सरस शृंगार रस, जानि सुखनि को मूल ।।

प्रियादास इन्हें जूनागढ़ का निवासी बताते हैं। इनका संवत् १६०० से १६३५ वि. तक का समय ज्ञात है। ये श्रेष्ठ भक्त और बड़े परोपकारी व्यक्ति थे। इनके पदों का गुजरात में अच्छा प्रचार और मान है।

नवल स्त्री

इनका विशेष विवरण अज्ञात है। कुछ स्फुट पद इनकी रचनायें हैं। इनका रचना-काल सं. १६६६ वि. के लगभग है। भक्तनामावली में इनका उल्लेख है।

नागरीदास

नागरीदास वृंदावन में रहते थे। ये विहारिनीदास के शिष्य थे। इनका निश्चितजन्म और मृत्यु संवत् अज्ञात है। ये संवत् १६५० वि. के आसपास उपस्थित थे। मिश्रबंधु-विनोद (पृ. ३८९) में इनकी एक रचना 'समय प्रबंध संग्रह' का उल्लेख है जिसे मिश्रबंधुओं ने छतरपुर में देखा है। इसमें नागरीदास ने अपने पदों के साथ हितहरिवंश, हितध्रुव, व्यास, कृष्णदास, हितगोपीनाथ, हितरूपलाल के पदों का संग्रह किया है। इनके कुछ पद रागकल्पद्रुम में संगृहीत हैं।

---

१. मिश्रबंधु-विनोद, पृ. २३४

नाथ व्रजवासी

मिश्रबंधु-विनोद में नाथ व्रजवासी का जन्मसंवत् १६०५ वि. दिया है।[1] रचना-काल १६३० वि. दिया है। अन्य विशेष विवरण अज्ञात हैं।

नाथ भट्ट

नाथ भट्ट का जन्म संवत् १६४१ वि. में हुआ था। ये महंत गोपाल भट्ट के पुत्र थे। इन्होंने पदों की रचना की थी। ध्रुवदास ने अपनी भक्तनामावली में इनका उल्लेख किया है।

नाभादास

नाभादास स्वामी अग्रदास के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात हैं। भक्तमाल का रचनाकाल संवत् १६४२—१६८० वि०. के बीच में सिद्ध किया जाता है।[2] यही समय उनकी उपस्थिति का भी है। इन्होंने प्रसिद्ध 'भक्तमाल' की रचना की थी। कुछ पद भी इनके बनाए हुए प्राप्त हैं।

नारायण भट्ट

नारायण नाम से कुछ पद कीर्त्तन-संग्रहों और रागकल्पद्रुम में प्राप्त हैं। ग्रियर्सन इनका जन्म सन् १५६३ ई. बताते हैं।[3] ये बरसाने के ऊंचेगांव के निवासी थे :—

नारायण भट्ट के लिए नाभादास जी ने एक सम्पूर्ण छप्पय रचा है।

"ब्रजभूमि उपासक" भट्ट सो रचि पचि हरि एकै कियौ।
गोप्यस्थल मथुरा मंडल जिते "बाराह" बखाने।
ते किये नारायण प्रगट प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने॥
भक्ति सुधा कौ सिंधु सदा सतसंग समाजन।
परम रसज्ञ अनन्य, कृष्णलीला कौ भाजन॥
ज्ञान समारत पच्छ कों नाहिन कोउ खंडन बियौ।
"ब्रजभूमि उपासक" भटट सो रचि पचि हरि एकै कियौ॥

(भ. हिन्दी ,८७, पृ. ५९५)

इसके अनुसार नारायण भट्ट ने वृंदावन, मथुरा के सब प्राचीन तीर्थ स्थल जो बाराह पुराण में दिए हैं खोज निकाले थे।

पद्मनाभ

पद्मनाभ नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख भक्तमाल में है।

१. **कबीर के शिष्य पद्मनाभ**—ये कबीर दास के शिष्य थे और रामभक्त थे।

कबीर कृपा तें परम तत्व पद्मनाभ परचौ लह्यौ॥
नाम महा निधि मंत्र नाम ही सेवा पूजा।
जप तप तीरथ नाम, नाम बिन और न दूजा॥

---

१. मिश्रबंधु-विनोद, पृ. ३०६
२. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम संस्करण, पृ. ३९१
3. The Modern Vernacular Literature of Hindustan, p. 30.

नाम प्रीति नाम बैर नाम कहि नामी बोलै।
नाम अजामिल साखि, नाम बंधन ते खोलै ॥
नाम अधिक रघुनाथ तें राम निकट हनुमत कह्यौ ॥
कबीर कृपा तें परम तत्व पद्मनाभ परचौ लह्यौ ॥ (भ. हिन्दी, ६८, पृ. ५३९)

२. पयहारी कृष्णदास के शिष्य पद्मनाभ—ये वल्लभ सम्प्रदायी हैं। वल्लभाचार्य की वंदना में इनके कुछ पद प्राप्त हैं। भक्तमाल में एक छप्पय में अन्य भक्तों के साथ इनका भी उल्लेख है :—

पैहारी परसाद तें शिष्य सबै ये पारकर।
. . . .
पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधारी । . . . . इत्यादि । (भ. हिन्दी, ३९, पृ. ३१४)

पद्मनाभ नाम से पद अधिकतर कृष्ण-लीला संबंधी या वल्लभ-वंदना संबंधी हैं। अतः दूसरे पद्मनाभ ही अभीष्ट पदकर्ता हैं। इनका निश्चित जन्मसंवत् अज्ञात है। पयहारी कृष्ण दास के समकालीन रहे होंगे। मिश्रबंधु इन्हें संवत् १५६१ से १६३० वि० के कवियों में मानते हैं।[१] इनके पद कीर्त्तन-संग्रहों और रागकल्पद्रुम में हैं। बहुत संभव है कि एक तीसरे पद्मनाभ और हों—क्योंकि पद्मनाभ के नाम से केवल वल्लभाचार्य की वंदनायें हैं, 'कृष्णदास' की नहीं—और समस्त प्राप्त पद इन्हीं पद्मनाभ की रचना हों, 'कृष्णदास' के शिष्य की रचनायें न हों।

परमानंददास

परमानंददास अष्टछाप के एक कवि हैं। डा. दीनदयालु गुप्त ने वार्त्ता, भक्तमाल और वल्लभ-दिग्विजय के आधार पर परमानंददास की जीवनी की जो रूप-रेखा प्रस्तुत की है[२] उसके अनुसार यह कन्नौज में उत्पन्न हुए थे। जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले ही ये कवि और गवैये के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। संवत् १५७६ वि० के लगभग ये वल्लभ सम्प्रदाय में आए। तब से कृष्णलीला संबंधी बहुत से पद बनाए। गुप्त जी ने इनकी जन्म-तिथि संवत् १५५० वि०, अगहन सुदी ७ सोमवार सिद्ध की है। परमानंददास ने विट्ठलनाथ के सातों पुत्रों की बधाई गाई है। सातवें पुत्र का जन्म संवत् १६२८ वि० है। तब तक इनका जीवित रहना निश्चित है। गुप्त जी इनका मृत्यु-संवत् १६४० वि० मानते हैं। इनकी दो रचनायें हैं पर पद बहुत से हैं।

१. दानलीला
२. ध्रुव चरित्र

प्राणचंद चौहान

प्राणचंद ने 'रामायण' महानाटक नामक एक ग्रंथ की रचना की। इसमें रामकथा संवादों के रूप में वर्णित है। इनका जन्म और मृत्यु संवत् निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। संवत् १६६७ वि० रचना काल कहा जाता है।

---

१. मिश्रबंधु-विनोद, पृ. २३४
२. अष्ट. व. स., पृ. २१९—२३०

बलरामदास

बलरामदास का विशेष विवरण अज्ञात है। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें संवत् १५६१ से १६३० वि० के कवियों में गिनाया है।

ब्रजपति

ब्रजपति नाम से कुछ पद जो कृष्णलीलासंबंधी हैं कीर्त्तन-संग्रहों में प्राप्त हैं। इनका विशेष विवरण अज्ञात है। मिश्रबंधु इन्हें संवत् १५६१ वि. से संवत् १६३० वि. के कवियों में एक कवि बताते हैं।[1]

भगवत रसिक

भगवत रसिक स्वामी हरिदास के शिष्य थे। इनका निश्चित जन्म और मृत्यु संवत् अज्ञात है। रचना काल संवत् १६२७ विक्रम है। इनकी कई रचनायें हैं।

१. अनन्य-निश्चयात्मक
२. नित्यबिहारी-युगल-ध्यान
३. अनन्य-रसिकाभरण
४. निश्चयात्मक ग्रंथ
५. निर्बोध-मनरंजन

भगवानदास (हित)

मिश्रबंधु-विनोद में एक भगवानदास का उल्लेख है,[2] जिसका जन्म संवत् १५९० वि० है। परंतु भगवानदास, जन भगवानदास और केवल भगवानदास तीन नामों से कुछ पद कीर्त्तन-संग्रहों में प्राप्त हैं। मिश्रबंधु प्रथम दो को एक ही व्यक्ति मानते हैं।[3] भगवानदास (हित) ने गो. विट्ठलनाथ की वंदना और उनके सातों पुत्रों की बधाई गाई है। अत: ये उनके समसामयिक थे। कुछ पद कृष्णलीला संबंधी भी हैं। एक पद में कृष्ण के विवाह का वर्णन है :—

दूल्हे हो नन्दलाल, न्याय दिन दूल्हे हो नंदलाल।
रीझ विकाय जहां बसे जहां नव दुल्ही ब्रजबाल ॥
सिथल चाल अति डगमगे हो बसन मरगजे गात।
अति शोभित रसमसें मानो ब्याह भयो जागे रात ॥ . . . . इत्यादि

(कीर्त्तन-रत्नाकर, पृ. २५)

भीषमदास

शिवसिंह-सरोज (पृ. ४६६) में भीषमदास का उल्लेख है। परन्तु अन्य विशेष विवरण रचना-काल इत्यादि संबंधी अज्ञात है।

माणिकचंद

माणिकचंद के नाम से कुछ पद कीर्त्तन-संग्रहों और रागकल्पद्रुम में प्राप्त हैं। इनका

---

१. मिश्र बंधु विनोद, पृ. २३४
२. मिश्र बंधु विनोद, पृ. ३५९
३. मिश्र बंधु विनोद, पृ. २३४, ३३८, ३६५

विशेष विवरण, निश्चित जन्म और मृत्यु काल अज्ञात है। मिश्रबन्धु इन्हें संवत् १५६१ वि० से १६३० वि० तक के कवियों में मानते हैं। माणिकचंद ने वल्लभाचार्य और उनके पुत्र गो. विट्ठलनाथ दोनों के जन्म-उत्सव गाए हैं। इससे वे वल्लभ के पुत्र विट्ठल के जन्म तक उपस्थित अवश्य रहे होंगे।

माधवदास

माधवदास का जन्म संवत् १५८० वि० के लगभग हुआ था। रचना काल संवत् १६०२ वि० के लगभग है। रचना स्फुट पद हैं। ये पद कीर्त्तन-संग्रहों और "रागकल्पद्रुम" में हैं। शिवसिंह सेंगर इन्हें जगन्नाथ पुरी का निवासी बताते हैं। बंगाली वैष्णव पद-कर्त्ताओं में भी एक माधवीदास या माधवदास हैं। इनका परिचय बंगाली कवियों के साथ दिया जा चुका है। ये भी जगन्नाथ पुरी में रहते थे। कदाचित् ये दोनों एक ही व्यक्ति हों जिसने हिंदी, बंगाली दोनों में पद रचना की हो। दो माधवदासों का उल्लेख भक्तमाल में है।

१. जगन्नाथ जी के भक्त माधव दास—

बिनै ब्यास मनो प्रगट ह्वै जन को हित माधौ कियौ॥
पहिले बेद बिभाग कथित पुरान अष्टादस।
भारत आदि भागौत मथित उद्धारचौ हरि जस॥
अब सोध सब ग्रंथ अर्थ भाषा बिस्तारचौ।
लीला जै-जै जैति गाय भव पार उतारचौ॥
जगन्नाथ इष्ट बैराग्य सींव करुणा रस भीज्यौ हियौ।
बिनै ब्यास मनो प्रगट ह्वै जग को हित माधौ कियौ॥

(भ. हिन्दी, ७०, पृ. ५४६)

२. सोभूराम के भाई माधवदास—

सोदर सोभूराम के, सुनौ तिनकी कथा॥
. . .   . . .
बहुरचौ माधवदास भजन बल परचौ दीनौ। . . . . इत्यादि

(भ० हिन्दी, १९०, पृ. ९१४)

मीराबाइ

प्रसिद्ध भक्त कवि मीराबाई की जन्म- और मृत्यु-तिथि के संबंध में मतभेद है। मीराबाई का जन्म संवत् १५५५ वि. से लेकर १५७३ वि. तक बताया जाता है।[1] ये राजस्थानी थीं। इनकी मृत्यु का संवत् भी निर्विवाद नहीं है। रामकुमार वर्मा संवत् १६२० से १६३० वि० के बीच में इनकी मृत्यु हुई बताते हैं। किंवदंती है कि इनका पत्र-व्यवहार तुलसीदास से होता था। मीराबाई का उल्लेख भक्तमाल में है।

लोक लाज कुल-शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट, कलि जुगहिं दिखायौ।

१. मिश्रबन्धु—सं० १५७३, रामकुमार वर्मा सं० १५५५, रामचन्द्र शुक्ल सं० १५७३

निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ ।।
दुष्टनि दोष बिचारि मृत्यु को उद्दिम कीयौ ।
बार न बांकौ भयौ गरल अमृत ज्यौं पीयौ ।।
भक्ति निसान बजाय कै काहू ते नाहिन लजी ।
लोक लाज कुल-शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ।।

(म. हिन्दी, ११५, पृ. ७१९)

बँगला भक्तमाल में भी मीराबाई का उल्लेख है। विवरण पूरे डेढ़ पृष्ठ में है। कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं :—

मेरता ग्रामेते जन्म मीराबाई नाम ।
रानी जे राजार वधू गुणे अनुपाम ।।
एकान्त श्रीकृष्णभक्त अनन्य मानस ।
प्रेमभक्ति चमत्कृत कृष्ण जाहे वश ।। ——इत्यादि

(भ. बं., माला २२, पृ. ३२०)

बँगला भक्तमाल और प्रियादास की हिन्दी भक्तमाल की टीकाओं में सम्राट अकबर और तानसेन का मीरा के दर्शनों को आने का और मीराबाई का वृन्दावन जाकर रूप गोस्वामी के दर्शन करने का उल्लेख है। बँगला भक्तमाल की पंक्तियां निम्न हैं :—

बाईजीर गानशक्ति आकबर साह ।
पातसा शुनिते मने करिला उत्साह ।।
तानसेने संगे करि बैष्णवेर वेशे ।
बाईजीर गृहे गेला हइया उल्लासे ।।——इत्यादि

(भ. बं., माला २२, पृ. ३२०)

दो सौ बावन और चौरासी वैष्णव की वार्ता में मीराबाई पर कोई स्वतंत्र वार्ता नहीं है, अन्य व्यक्तियों की वार्त्ताओं के साथ उल्लेख है। ध्रुवदास की भक्त-नामावली में भी मीराबाई का उल्लेख है। इनकी रचनायें ये हैं :—

१——गीत-गोविन्द की टीका
२——नरसी जी का मायरा
३——राग सोरठ पद संग्रह
४——फुटकर पद

मुरारिदास

"मुरारिदास" के नाम से कुछ पद कीर्तन-संग्रहों में प्राप्त हैं। विशेष विवरण अज्ञात है। मिश्रबन्धु इन्हें संवत् १५६१ से १६३० वि० तक के कवियों में मानते हैं। भक्तमाल में एक रामभक्त मुरारिदास का उल्लेख है। परन्तु प्राप्त पद श्रीकृष्ण संबंधी हैं। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

रसिक

रसिक नाम से कुछ पद कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। कुछ पदों में वल्लभाचार्य का जन्म

उत्सव और कुछ पदों में विट्ठलनाथ का जन्म उत्सव वर्णित है। इससे ज्ञात होता है कि कवि वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ दोनों का भक्त है और कुछ काल तक दोनों का ही समसामयिक था। वैसे इनकी निश्चित तिथियां अज्ञात हैं। मिश्रबन्धु इनका रचना काल संवत् १६३१ वि० बताते हैं।[1] उनके कुछ पद राग-कल्पद्रुम में भी हैं। कृष्ण लीला संबंधी पदों में कवि ने बाल लीला पर ही अधिक ध्यान दिया है। मिश्रबन्धु एक अन्य रसिकदास और बताते हैं।

रसिकबिहारी, रसिकबिहारिनदास, बिहारिनदास

बिहारिनदास नागरीदास के गुरु थे। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात हैं। मिश्रबन्धु इन्हें संवत् १५६१ से १६३० वि. के एक कवि बताते हैं और रचना काल संवत् १६२९ वि. के लगभग मानते हैं।[2] "रसिकबिहारी" के नाम से रागकल्पद्रुम में तीन पद हैं। यह कहना कठिन है कि ये "रसिकबिहारी" और "रसिकबिहारिदास" भिन्न व्यक्ति हैं अथवा अभिन्न। जो पद "पदकल्पद्रुम" में हैं, उनमें दो की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा नहीं है। बिहारिनदास नाम से संयुक्त पद की भाषा इन पदों की भाषा से अच्छी है।[3]

१—उनींदा छो जी कांई रात रा बैन शिथिल।
अरु नयन झुक्या ही आवे लगि बैठा परमातरा।
पलकां पीके अधरन अंजन अलसाया छो गातरा॥
रसिकु बिहारी बेनिया ढुलावां कहां कहां करि आये यातरा।

(राग-कल्पद्रुम, भाग २, पृ. ५०)

२—रसिया हो राज होरी रंग राचे
म्हारी चुनर सबही भिजोई केसर कीच रह्यो माचे॥
बाज रहे छे बीणा मृदंग..........इत्यादि (रागकल्पद्रुम, भाग २, पृ. २९१)

बिहारिनदास के नाम से "साखी" ग्रंथ प्राप्त है। इनका एक पदों का ग्रंथ भी है। अनुमान किया जा सकता है कि रसिकबिहारी इनसे भिन्न ही व्यक्ति हैं।

रामदास

मिश्रबंधुओं ने "रामदास" नाम के भी दो व्यक्तियों का उल्लेख किया है।[4]

१—**रामदास**—इन्हें ये संवत् १५६१ से १६३० वि. तक के कवियों में से एक कवि बताते हैं। विशेष विवरण अज्ञात है।

२—**रामदास बाबा**—इन्हें ये गोपाचलवासी बताते हैं और इनका रचना-काल संवत् १६०७ बताते हैं।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृ. ३२२
२. मिश्रबन्धु विनोद, पृ. २३४, २९५
३. साधन सबै प्रेम के तरु हरि।
निकसत उमंग प्रगट अंकुर बर पात पुराने परिहरि॥
गुन सुनि भई दास की आसा दरस्यो परस्यो पावै।......इत्यादि
४. मिश्रबन्धु विनोद, पृ. २३४, २९९

भक्तमाल में भी दो रामदासों का उल्लेख है।

१—इन रामदास का छीतस्वामी, गदाधर, गोविन्द इत्यादि के साथ उल्लेख है। कदाचित् ये इन लोगों के समसामयिक व्यक्ति ही रहे हों और ये और मिश्रबन्धु द्वारा उल्लिखित पहले "रामदास" एक ही व्यक्ति हों।

"गुन गन बिसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा॥
... ...
गोसू रामदास नारद श्याम पुनि हरिनारायन। इत्यादि
(भ. हिन्दी, १४६, पृ. ८२९)

२—ये रामदास "बछवन" के निवासी बताए गए हैं और भक्त-सेवी भी हैं।

श्री रामदास रस रीति सों, भली भांति सेवत भगत॥
सीतल परम सुसील बचन कोमल मुख निकसै।
भक्त उदित रबि देखि, हृदै बारिज जिमि बिकसै॥
अति आनंद मन उमंगि संत परिचर्या करई।
चरण धोय दंडौत बिबिध भोजन बिस्तरई॥
"बछवन" निवास बिस्वास हरि, जुगल चरण उर जगमगत।
श्री रामदास रस रीति सों, भली भांति सेवत भगत॥
(भ. हिन्दी, १९६, पृ. ९२२)

यह कहना कठिन है कि इनमें से अभीष्ट पदकर्त्ता जिनके पद कीर्तन-संग्रहों और "रागकल्पद्रुम" में प्राप्त हैं, कौन से हैं। रामदास नाम से जो पद प्राप्त हैं, उनमें से दो पद रामचन्द्र संबंधी हैं, शेष कृष्ण लीला के।[1] दोनों ही पद होली लीला के हैं।

लालचदास

लालचदास हलवाई रायबरेली के निवासी थे। इनकी दो रचनाएँ (१) भागवत-दशम स्कंध-भाषा और (२) हरिचरित्र प्राप्त हैं। दोनों में रचना काल दिया है। हरिचरित्र संवत् १५८५ वि० और भागवत-दशम स्कंध १५८७ वि० में रचे गए हैं। कवि ने स्व-परिचय दिया है।

लालदास

लालदास का अधिक विवरण अज्ञात है। मिश्रबन्धु इनका रचना काल संबत् १६१० वि. बताते हैं।[2] एक लालदास कवि थे जिन्होंने बँगला भक्तमाल की रचना की है। उनका विवरण अन्यत्र दिया है। इन लालदास की रचनाओं की सूची मिश्रबंधु-विनोद के आधार पर निम्न है।[3]

१—बानी, २—मंगल, ३—चेतावनी, ४—स्फुट पद।

इनका एक पद "रागकल्पद्रुम" में प्राप्त है।

---

१. रागकल्पद्रुम, भाग २, पृ. २७६, ३२१
२. मिश्रबन्धु विनोद, पृ. ३०१
३. मिश्रबन्धु विनोद, पृ. ३०१

रामकुमार वर्मा ने एक अन्य लालदास का उल्लेख किया है[1] जिनका कविता काल संवत् १५८५ वि. है और (१) हरिचरित्र (२) भागवत-दशम-स्कंध-भाषा दो ग्रंथ हैं।

वनचन्द्र

गोस्वामी वनचन्द्र हितहरिवंश के चौथे पुत्र थे। इनका निश्चित जन्म- और मृत्यु-संवत् तो अज्ञात है। रचना काल संवत् १६१० वि. के आसपास माना जाता है। स्फुट पद ही इनकी रचना हैं। अन्य रचनाएँ नहीं मिलतीं।

वल्लभ

वल्लभ अथवा श्री वल्लभ नामांकित कुछ पद कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। कहा नहीं जा सकता कि ये वल्लभ प्रसिद्ध वल्लभाचार्य महाप्रभु हैं या अन्य कोई भक्त। वल्लभाचार्य की समस्त रचनाएँ संस्कृत भाषा ही में हैं।[2] इन्होंने पद भी रचे, इसका उल्लेख नहीं है। हो सकता है कि वल्लभ नाम से कोई अन्य कवि रहे हों। शिवसिंह सरोज[3] में एक वल्लभ का उल्लेख है जिनको संवत् १६०१ वि० में उत्पन्न बताया जाता है। पद राधाकृष्ण लीला विषयक हैं।

विट्ठलदास या बीठलदास

भक्तमाल में दो विट्ठलदासों का उल्लेख है।

१—माथुर चौबे विट्ठलदास

बिट्ठलदास माथुर-मुकुट, भयौ अमानी मानदा ॥
तिलक दाम सों प्रीति गुनंहि गुन अन्तर धार्‌यौ।
भक्तन को उतकर्ष जनम भरि रसन उचार्‌यौ ॥
सरल हृदै संतोष जहां तहां पर उपकारी।
उत्सव में सुत दान कियो कर्म दुसकर भारी ॥
हरि गोबिन्द जै जै गोबिन्द गिरा सदा आनन्ददा।
बिट्ठलदास माथुर मुकुट, भयौ अमानी मानदा ॥

(भ. हिन्दी, ८४, पृ. ५८७)

प्रियादास ने अपनी टीका में लिखा है कि ये कीर्तन करते थे। हो सकता है कि ये कवि रहे हों।

२—ये बीठलदास रैदासी भक्त थे। अतः इनसे हमारा प्रयोजन नहीं है।

"बीठल" अथवा विट्ठल नाम से जो पद प्राप्त हैं, वे इनके या विट्ठलनाथ के या दोनों के ही हो सकते हैं। मिश्रबन्धु बीठलदास को संवत् १५४० वि. के लगभग उत्पन्न हुआ बताते हैं और रचना काल १५६८ वि. के लगभग अनुमान करते हैं।

विट्ठलनाथ

गोस्वामी विट्ठलनाथ वल्लभाचार्य के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १५७२ वि. में और

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ७१०

२. अष्ट. व. स., पृ. ७३

३. शिवसिंह सरोज, पृ. ४५५

मृत्यु संवत् १६४२वि. में हुई। इन्होंने अष्टछाप की स्थापना की थी। इनके नाम से प्राप्त पदों को कुछ लोग अन्य कवि की रचना बताते हैं। इन्होंने राधाकृष्ण बिहारी संबंधी एक ग्रंथ गद्य में लिखा था, जिसका नाम "श्रृंगाररस-मंडन" है। स्वयं इनकी रचनाएँ अधिक नहीं हैं। परन्तु इनके कारण उस समय वैष्णव संप्रदाय की बहुत उन्नति हुई। अष्टछाप कवियों की वैष्णव रचनाएँ इन्हीं के काल में रची गई।

विट्ठल विपुल

विट्ठल विपुल स्वामी हरिदास के मामा और शिष्य थे। अतः ये उनके समसामयिक थे। स्वामी हरिदास की उपस्थिति संवत् १६०० वि. से १६१७ वि. तक ज्ञात है। विट्ठल विपुल को भी इस समय में उपस्थित माना जा सकता है। इन्होंने वल्लभाचार्य और गो० विट्ठलनाथ दोनों की वंदना में पद रचे हैं। इनकी रचना स्फुट पद हैं जो कीर्तन-संग्रहों और "रागकल्पद्रुम" में प्राप्त हैं। इनका उल्लेख भक्तमाल में है।

बृन्दाबन की माधुरी इन मिलि आस्वादन कियौ।
सर्बस राधारमन, भट्ट गोपाल उजागर ॥
हृषीकेश" भगवान विपुल बीठल रस सागर ।
इत्यादि

(भ. हिन्दी, ९४, पृ. ६१८)

विट्ठल विपुल अपने गुरु स्वामी हरिदास की मृत्यु के बाद तक जीवित थे, इसका उल्लेख प्रियादास ने अपनी टीका में किया है।

विद्यादास

विद्यादास के नाम से एक पद "रागकल्पद्रुम" में प्राप्त है। इसमें राधा का श्रृंगारिक वर्णन है। विद्यादास का अधिक विवरण अज्ञात है। शिवसिंह-सरोज में इनका जन्म संवत् १६५० वि. दिया है।[1] मिश्रबन्धुओं ने इनका नाम संवत् १५६१ से संवत् १६३० वि. के कवियों की सूची में दिया है।

विष्णुदास

विष्णुदास के नाम से कुछ पद कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। इन पदों में वल्लभाचार्य का जन्म-उत्सव और विट्ठलनाथ की बधाई है। कृष्णलीला संबंधी समस्त पद बाल्य लीला वाले हैं। इससे ज्ञात होता है कि विष्णुदास वल्लभ के भक्त शिष्य थे और विट्ठलनाथ के जन्मकाल, जो संवत् १५७२ वि. में है, तक उपस्थित थे।

भक्तमाल में विष्णुदास नाम के तीन व्यक्तियों का उल्लेख है।

१—पयहारी कृष्णदास के शिष्य विष्णुदास

पैहारी परसाद तें शिष्य सबै भये पारकर ॥

.. .. ..

विष्णुदास कन्हर रंगा चांदन सबीरी गोबिंद पर।
पैहारी परसाद तें शिष्य सबै भये पारकर ॥

(भ. हिन्दी, ३४, पृ. ३१४)

---

१. शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४६१

२—मथुरा निवासी विष्णुदास

जे बसे बसत मथुरामंडल ते दयादृष्टि मो पर करौ ॥

... ...

चतुरभुज चरित्र बिष्णुदास बेनी पदमो सिर धरौ ।
जे बसे बसत मथुरा मंडल, ते दयादृष्टि मो पर करौ ॥

(भ. हिन्दी, १०३, पृ. ६६१)

३—ये विष्णुदास नामदेव और कबीर के समकालीन थे। प्रियादास ने अपनी टीका में इस बात का उल्लेख किया है।

अभीष्ट पदकर्ता पहले दो विष्णुदास में से एक हो सकते ह; अथवा दोनों ही रहे हों, जिनके पद मिश्रित हो गए हैं।

व्यास स्वामी

व्यास स्वामी का नाम पहले हरीराम था। ये ओरछा नरेश श्री मधुकर शाह के गुरु थे। ओरछा से ४५ वर्ष की आयु में ये वृन्दावन गए और हितहरिवंश के शिष्य हुए। इनकी वृन्दावन यात्रा संवत् १६१२ वि. में हुई थी। अतः इनका जन्म संवत् १५६७वि. के लगभग आता है। ये हितहरिवंश के राधावल्लभी संप्रदाय में दीक्षित हुए तो परन्तु अपना भी एक अलग मत "हरिव्यासी" चलाया था। भक्तमाल में इनका उल्लेख है :—

उतकर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति ब्यास के ॥
काहू के आराध्य मच्छ कच्छ नरहरि सूकर ।
बामन फरसाधरन सेतबन्धन जु सैल-कर ॥
एकन कें यह रीति नेम नवधा सों लायें ।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लड़ायें ॥
नौगुण तोरि नूपुर गुह्यो, महत सभा मधि रास के ।
उतकर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति ब्यास के ॥

(भ. हिन्दी, ९२ पृ., ६०९)

व्यास स्वामी ने अधिकतर पद ही बनाए हैं। ये राधाकृष्ण लीला विषयक हैं। मिश्र-बन्धु इनकी पांच रचनाएँ बताते हैं।[1]

१. व्यास जी की बानी
२. रास के पद
३. ब्रह्मज्ञान
४. मंगलचार पद
५. पद (३०० पृष्ठ छोटे)

श्री भट्ट

श्री भट्ट की दो रचनाएें हैं, जो पदों का संग्रह ही हैं।

१. युगल शतक—१०० पदों का संग्रह

---

१. मिश्र-बन्धु-विनोद, प. ३५६

२. आदि बानी

रामचन्द्र शुक्ल इनका जन्मसंवत् १५९५ वि. बताते हैं। इनका रचनाकाल संवत् १६२२ वि. के लगभग माना जाता है। भक्तमाल में इनका उल्लेख है :—

श्रीभट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥
मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुबलित छबि।
निरखत हरखत हृदै प्रेम बरसत सु कलित कबि ॥
भव निस्तारन हेतु देत दृढ़ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजस ससि ऊदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित ॥
आनन्द कन्द श्रीनन्द सुत, श्री बृषभानु सुता भजन।
श्रीभट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥

(भ. हिन्दी, ७६, पृ. ५७०)

युगल-शतक में कृष्णभक्ति संबंधी पद हैं।

सगुनदास

सगुनदास का निश्चित जन्म- और मृत्यु-संवत् तो अज्ञात है। ये संवत् १५६१ से १६२० वि. तक रहे होंगे, ऐसा मिश्रबन्धुओं का अनुमान है।[1] इनके पदों में वल्लभाचार्य के जन्म-उत्सव का वर्णन है। गो० विट्ठलनाथ की बधाई नहीं है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कवि उनके जन्म से पहले दिवंगत हो चुके होंगे। इनकी रचना स्फुट पद हैं जो कीर्तन-संग्रहों में हैं।

सूरदास

सुप्रसिद्ध महाकवि सूरदास अष्टछाप के एक कवि थे। ये वल्लभाचार्य के समकालीन थे। गो० विट्ठलनाथ के भी समकालीन थे। सूर सारावली, वाणी, बल्लभ-दिग्विजय, अष्टछाप इत्यादि के आधार पर डा० दीनदयालु गुप्त ने इनके जीवन की जो रूप-रेखा प्रस्तुत की है, वह यों है।[2] सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनका जन्म दिल्ली से चार कोस दूर ब्रज की ओर स्थित सीही ग्राम में हुआ। अन्त समय में ये गोवर्द्धन पर रहे। अकबर शाह ने तानसेन से इनके पद सुन कर इनसे मथुरा में भेंट की थी। सूरदास की जन्मतिथि संवत् १५३५ वि. वैशाख सुदी पंचमी और मृत्युसंवत् १६३८ अथवा १६३९ वि. के लगभग है। सूरदास की रचनाओं में पदों की संख्या अधिक है। वार्ता में सूर ने "लक्षावधि" पद किए, ऐसा कहा गया है। डा० गुप्त ने सूरदास जी की २४ रचनाओं के नाम दिए हैं :[3]—

१—सूरसागर
२—भागवत-भाषा
३—दशम-स्कंध भाषा
४—सूरदास के पद
५—प्राणप्यारी
६—व्याहली
७—भवंरगीत
८—सूररामायण

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ. २३४
२. अष्ट. व. स., पृ. १९८—२१९
३. अष्ट व. स., पृ. २७९

९—नागलीला	१७—दानलीला
१०—गोवर्द्धनलीला	१८—मानलीला
११—सूर-पचीसी	१९—सूरसाठी
१२—राधारसकेलि-कौतूहल	२०—नल-दमयंती
१३—सूरसागर-सार	२१—हरिवंश-टीका
१४—सूरसारावलि	२२—रामजन्म
१५—साहित्यलहरी	२३—एकादशी-माहात्म्य
१६—सूरशतक	२४—सेवाफल

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन अकबर के कार्यकर्त्ता और समकालीन थे। ये बड़े साधुसेवी थे। खजाने के १३ लाख रुपये साधुओं को खिला कर ये संडीले से वृन्दावन भाग गए और वहीं रहे। भक्तमाल में इनका उल्लेख है :—

(श्री) मदनमोहन सूरदास की नाम शृंखला जुरी अटल॥
गान काव्य गुण राशि सुहृद सहचरि अवतारी।
राधाकृष्ण उपास्य रहसि सुख के अधिकारी॥
नवरस मुख्य सिंगार बिबिधि भांतिन करि गायौ।
बदन उच्चरित बेर सहस पायनि ह्वै धायौ॥
अंगीकार की अवधि यह, ज्यों आख्या भ्राता जमल।
(श्री) मदनमोहन सूरदास की नाम शृंखला जुरी अटल॥

(भ. हिन्दी, १२६, पृ. ७५१)

इनकी रचनाएँ पद ही हैं जो कदाचित् नाम साम्य से सूरदास की रचनाओं में मिल गए हैं।

सेवक

सेवक हितहरिवंश के पुत्र थे। हितहरिवंश संवत् १५८२ वि. में गृहत्यागी होकर वृन्दावन चले गए थे। सेवक का जन्म संवत् १५८२ वि. के पहले ही हुआ रहा होगा। इन्होंने हित हरिवंश की प्रशंसा और यश वर्णन में 'भक्ति परचावली मंगलपद बंध' और बानी दो ग्रंथ रचे थे।

हरिदास

हरिदास के समय के बारे में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये अकबर के समकालीन थे। प्रियादास ने अपनी टीका में अकबर का इनसे साक्षात्कार करने आना बताया है। इन्होंने टट्टी संप्रदाय चलाया था। इनकी रचनाएँ पद ही अधिक हैं। मिश्रबन्धु इनकी कई रचनाओं का उल्लेख करते हैं।[1]

१—बानी

२—साधारण सिद्धांत

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ. ३०२

३—रस के पद
४—पद
५—भरथरी-वैराग्य
६—हरिदास जू को ग्रंथ

ये गानविद्या में निपुण थे, इस बात का उल्लेख नाभादास ने किया है :—

आसधीर उद्योतकर, रसिक छाप हरिदास की ॥
जुगल नाम सौं नेम जपत नित कुंजबिहारी ।
अवलोकत रहैं केलि सखी सुख के अधिकारी ॥
गान कला गन्धर्ब, स्याम स्यामा को तोषैं ।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं ॥
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन आसा जास की ।
आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की ॥

(भ. हिन्दी, ९१, पृ. ६०७)

हरिराय

हरिराय वल्लभाचार्य के भक्त और अनुयायी थे। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। रचनाकाल और प्रसिद्धि संवत् १६०७ वि. के लगभग है । इन्होंने कई ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें गद्य ग्रंथ भी हैं।

१—आचार्य श्री महाप्रभून की द्वादस निज वार्ता (गद्य ग्रंथ)
२—श्री आचार्य जी महाप्रभून के सेवक चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता (गद्य ग्रंथ)
३—श्री आचार्य जी महाप्रभून की निज वार्ता व सह वार्ता (गद्य ग्रंथ)
४—ढोलामारू की वार्ता
५—भागवती के लक्षण
६—द्विदलात्मक स्वरूप विचार
७—गद्यार्थ भाषा
८—गोसाईं जी के स्वरूप के चिन्तन के भाव (गद्य ग्रंथ)
९—कृष्णावतार स्वरूप-निर्णय
१०—सातों स्वरूप की भावना
११—वल्लभाचार्य जी के स्वरूप को चिन्तन भाव
१२—श्रीयमुनाजी के नाम (गद्य ग्रंथ)
१३—वर्षोत्सव (निज पदों का संग्रह)

हरिवंशअली

ये हितहरिवंश के समकालीन बताए जाते हैं। इन्होंने "हिताष्टक" प्रथम और द्वितीय दो ग्रंथों की रचना की। इनमें हित जी की बन्दना है।

हितरूपलाल

हितरूपलाल हितहरिवंश की शिष्य परम्परा में थे। इनका निश्चित जन्म- और मृत्यु-

संवत् अज्ञात है । ये संवत् १६४० वि. के आस-पास उपस्थित थे, जो इनका कविता-काल है। इनकी रचना मुख्यतया पद ही हैं। इनकी दो रचनाएँ प्राप्त हैं,(१)बानी, (२) समय-प्रबन्ध। समय-प्रबन्ध में १९५ पद हैं।

हितहरिवंश

हितहरिवंश का जन्म संवत् १५५९ वि. के लगभग हुआ था। इन्होंने "राधावल्लभी" नामक एक नया सम्प्रदाय चलाया था । इसमें राधा की उपासना प्रमुख है । भक्तमाल में इनका उल्लेख है ।

(श्री) हरिबंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानिहैं ।।
(श्री) राधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी ।
कुंज केलि दंपति तहां की करत खवासी ।।
सर्बसु महा प्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी ।
बिधि निषेध नहिं दाम अनन्य उतकट ब्रत धारी ।।
व्यास सुवन पथ अनुसरै, सोई भलै पहिचानिहै ।
(श्री) हरिबंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानिहै ।।

(भ. हिन्दी, ९०,पृ. ६०३)

इनकी दो रचनाएँ हैं,(१) हित-चौरासी (२) राधा सुधानिधि। इनकी रचना मुख्यतया पदों में है। ये गोपाल भट्ट के शिष्य थे।

हृदयराम

इनका विशेष विवरण अज्ञात है । ये रामभक्त कवि थे । इन्होंने संवत् १६२३ वि. में "हनुमान-नाटक" के नाम से एक नाटक की रचना की थी । इस रचना का आधार संस्कृत का यही नाटक है ।

तृतीय अध्याय

सोलहवीं शती के वैष्णव साहित्य की अनुक्रमणिका

वैष्णव साहित्य से हमारा अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसका संबंध किसी न किसी वैष्णव संप्रदाय से है। वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा इस देश में बड़ी पुरानी है। पर देश और काल भेद से इसमें बहुत से रूपांतर उपस्थित हो गए। ब्रज के वैष्णव साहित्य और बंगाल के वैष्णव साहित्य में व्यापक प्रवाह एकहोते हुएभी समुचित अन्तर उपस्थित होगया है। यह अन्तर निम्न रूपों में व्यक्त होता है:—ब्रज का वैष्णव कृष्ण का भक्त है पर वंगीय वैष्णव राधा और कृष्ण की समकक्षता में चैतन्य के प्रति अपनी भावनाएँ भी व्यक्त करता है। ब्रज वैष्णव भक्तों की अपनी एक अलग परम्परा है और वंगीय भक्तों की इससे भिन्न दूसरी है। भक्ति व्यक्त करने की पद्धतियां और उसके संबंध के पद दोनों साहित्यों में पृथक् पृथक् शैलियों में हैं। वंगीय वैष्णवों ने भक्ति-रस की सांगोपांग शास्त्रीय चर्चा नायक-नायिका भेद अथवा संयोग-वियोग शृंगार के ढंग पर बड़े विस्तार से की है। फलतः उनकी रचनाओं में कभी-कभी भक्ति भावनायें शृंगारिकता के आवरण में ऐसी लुप्त सी प्रतीत होती हैं जिनसे कभी कभी पढ़ने वालों को ऐसा सन्देह होता है कि वे भक्ति-प्रधान न होकर शृंगार-प्रधान ही हैं। इन सब बातों की विस्तृत विवेचना इस ग्रन्थ में आगे की जायगी। यहां केवल इतना ही जान लेना समुपयुक्त है कि ब्रज और गौड़ दोनों स्थानों की भक्ति की दार्शनिक व्याख्या के अन्तर ने उनके साहित्य भंडार को मूलतः एक होते हुए भी विभिन्न रूप दिया है। इसी साहित्य की सामग्री का सिंहावलोकन इस अध्याय में किया जायगा।

इस शती की साहित्यिक सामग्री का वर्गीकरण विषयों के अनुसार करना उचित होगा। विषय विभाग कई प्रकार से किए जा सकते हैं। उदाहरणतः श्री हरिदास ने अपने "गौड़ीय वैष्णव साहित्य" ग्रंथ में विषय-विभाग निम्न प्रकार से किया है: (१) दर्शन, सिद्धांत आदि, (२) काव्य—महाकाव्य, खंड काव्य, गीति काव्य, शतक, विरुद, कड़चा इत्यादि, (३) नाटक, (४) रसग्रंथ, अलंकार, छंद, व्याकरण इत्यादि, (५) स्मृतिशास्त्र (६) पदावली, (७) चरितावली, (८) भाष्य टीका, अनुवाद और व्याख्या, (९) विविध स्तव, माहात्म्य, भजन इत्यादि।

इस शती के समस्त वंगीय और हिन्दी साहित्य को दृष्टि में रखते हुए विषय विभाजन निम्न प्रकार करना अधिक सरल और सुबोध होगा :—

१—दर्शन और सिद्धांत ग्रंथ

२—काव्य

(क) महाकाव्य

(ख) खंड काव्य

३—नाटक

४—पदावली

५—जीवनी

६—भाष्य, टीका, अनुवाद

७—विविध

(१) दर्शन और सिद्धान्त ग्रंथ

दर्शन शब्द का प्रयोग उन वैष्णव धर्म ग्रंथों के लिए किया जा रहा है जिनमें अपने मत-विशेष के अनुरूप पुराणों, मुख्यतया भागवत पुराण, की व्याख्या और ईश्वर, जीव, भक्ति इत्यादि की विवेचना भक्ति धर्म के विशेष दृष्टिकोण को रख कर की गई है। "हरिदास दास" ने भी यही व्याख्या दी है। "यथार्थतत्त्वनिर्णायक शास्त्रके दर्शन शब्दे अभिहित करा हय [1]।" इस प्रकार के दर्शन ग्रंथ प्राय: सबके सब संस्कृत में हैं। भाषा में इस प्रकार के किसी ने भी दर्शन-ग्रंथ केवल दार्शनिक विवेचना करने के लिए नहीं लिखे, ऐसा ज्ञात होता है। कृष्णदास कविराज की रचना "श्री चैतन्यचरितामृत" में कुछ अध्याय ऐसे अवश्य हैं जहां उन्होंने इस प्रकार की दार्शनिक विवेचना दी है। परन्तु वह सब चैतन्यदेव के चरित्र वर्णन के प्रसंग में आ गई है। दार्शनिक विवेचना करना उनका ध्येय नहीं है। चैतन्यदेव को परमतत्व सिद्ध करने के लिए उन्हें ईश्वर और उसके लोकों का वर्णन करना पड़ा है। ये चैतन्यदेव को "स्वयं कृष्ण" कह कर फिर कृष्ण को परम तत्व सिद्ध करते हैं। इस प्रकार चैतन्यदेव परम तत्त्व सिद्ध हो जाते हैं। कृष्णदास ने तर्क उपस्थित करके उन्हें परमतत्त्व नहीं सिद्ध किया है। इसी प्रसंग में परम तत्त्व के गुण, अवतार शक्ति, वैभव, सबका वर्णन आ गया है। जीव, भक्त एवं माया का वर्णन भी यथा-स्थान आया है। आगे चल कर उन्होंने चैतन्यदेव के मुख से भक्ति रस की व्याख्या, भक्ति का माहात्म्य इत्यादि कहलवाया है। इसी प्रकार तुलसीदास ने अपने "रामचरितमानस" में भी प्रसंगानुसार कुछ न कुछ दार्शनिक विवेचना की है। अत: इन रचनाओं को 'दार्शनिक ग्रंथ' का नाम नहीं दिया जा सकता। प्रारम्भ में दिए भाव के अनुसार जो ग्रंथ प्राप्त हैं, उनकी सूची नीचे दी जा रही है। वास्तविक रूप से जिन्हें दार्शनिक ग्रंथ कहा जा सकता है, वे सब संस्कृत में हैं।

धार्मिक सिद्धांत, उपासना पद्धति, माहात्म्य इत्यादि से संबंध रखने वाले ग्रंथ अवश्य भाषा में उपलब्ध हैं। यहां पर केवल इन्हीं ग्रंथों को सिद्धांत ग्रंथ कहा गया है। लेखकों के नाम सहित उनकी सूची नीचे दी जा रही है। पीछे इनमें से प्रमुख रचनाओं का परिचय दिया जायेगा।

बंगला विभाग

आत्मसाधन	नरोत्तमदास
आश्रयनिर्णय	नरोत्तमदास
उपासनापटल	नरोत्तमदास
उपासनासार-संग्रह	दु:खी कृष्णदास
कृष्णलीलामृत	बलरामदास
गोलोकवर्णन	गोपाल भट्ट
चौषट्टि-दंडनिर्णय	कृष्णदास
चैतन्य-प्रेमविलास	लोचनदास
छय-तत्त्वमंजरी	नरोत्तमदास

१. श्री श्री गौड़ीय-वैष्णव साहित्य, पृ. ३८

छय-तत्त्वविलास	वृन्दावनदास
तत्त्वनिरूपण	नरोत्तमदास
तत्त्वविकास	वृन्दावनदास
दुर्लभ-सार	लोचनदास
दंडात्मिका प्रणाली	कवि शेखर
देह-निरूपण	लोचनदास
पाखंड-दलन	रामचन्द्र गोस्वामी
प्रेमभक्ति-चन्द्रिका	नरोत्तमदास
भक्ति-लतिका	नरोत्तमदास
भक्ति-लतावली	नरोत्तमदास
भक्ति-सारात्सार	नरोत्तमदास
भक्ति-चिन्तामणि	वृन्दावनदास
भक्ति-प्रदीप	शंकरदेव
भक्ति-माहात्म्य	वृन्दावनदास
भक्ति-रत्नाकर	शंकरदेव
भक्ति-रत्नावली	माधवदेव
भक्ति-लक्षण	वृन्दावनदास
भक्ति-साधन	वृन्दावनदास
भजन-निर्णय	ज्ञानदास
भागवत-तत्त्वलीला	नरोत्तमदास
रागानुगालहरी	लोचनदास
वस्तु-तत्त्व	लोचनदास
वस्तु-तत्त्वसार	नरोत्तमदास
सद्भावचन्द्रिका	नरोत्तमदास
साधन-तत्त्व	नरहरिदास
साध्य-प्रेम-चन्द्रिका	नरोत्तमदास
सिद्धि-भक्ति-चन्द्रिका	नरोत्तमदास
सिद्धांत-चन्द्रिका	रामचन्द्र
सिद्धांत-चन्द्रोदय	मुकुन्ददास
स्तोत्र-शतनाम	द्विज हरिदास
स्वरूपकल्पतरु	नरोत्तमदास
हाटपतन	नरहरिदास

हिन्दी विभाग

अष्टयाम	नाभादास
ज्ञान-मंजरी	नंददास
द्वादश-यज्ञ	चतुर्भुजदास

प्रेम-तत्त्व-निरूपण	कृष्णदास
प्रेम-तत्त्व-निरूपण	कृष्णदास अधिकारी
भक्ति-प्रताप	चतुर्भुजदास
भक्ति-रस-बोधिनी	प्रियादास
भेद-भास्कर	भागवतदास
रामार्चन-पद्धति	रामानन्द
विज्ञानार्थ-प्रकाशिका	नंददास
वैराग्य-संदीपनी	तुलसीदास
वैष्णव-मत-भास्कर	रामानन्द
सिद्धांत-पंचाध्यायी	नंददास
हनुमान-शिक्षा-मुक्तावली	तुलसीदास

कुछ ऐसे ग्रंथ भी हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से तो सिद्धांतग्रंथ नहीं कहा जा सकता परन्तु इससे सम्बन्धित अवश्य हैं। ये ग्रंथ भक्ति-रस संबंधी हैं। वैष्णव धर्म में भक्ति का एक स्वतंत्र रस है। इसमें प्रेम अर्थात् श्रृंगार भी सम्मिलित है। इस भक्ति-रस की विवेचना या निदर्शन करने वाली रचनाएँ भी सिद्धांत ग्रंथों में आ जाती हैं। उनकी सूची नीचे दी जा रही है।

बंगला विभाग

अमृत-रस-चन्द्रिका	नरोत्तम
गोविन्द-रति-मंजरी	घनश्यामदास
रस-भक्ति-चन्द्रिका	नरोत्तम
रस-भक्ति-लहरी	नरोत्तम
रस-पुष्प-कलिका	किशोरदास
रसोज्ज्वल	जगन्नाथदास

हिन्दी विभाग

रसमंजरी	नन्ददास

आगे उन रचनाओं का सूक्ष्म परिचय दिया जा रहा है जो इस साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। यह स्थान उन्हें कुछ तो प्रमुख लेखकों की रचना होने से मिला है, और कुछ स्वयं श्रेष्ठ रचना होने के कारण और कुछ अपने विषय के महत्त्व और उसके प्रतिपादन के कारण। आगे लेखक का नाम देकर उसकी रचनाओं का परिचय एक स्थान पर दिया जा रहा है, अकारादि क्रम से नहीं।

बंगाली साहित्य में लेखक कई प्रकार के सन्-संवतों का उपयोग करते हैं। जिसे वे शकाब्द कहते हैं वह सन् ७८ ई. से आरम्भ हुआ, अर्थात् शकाब्द में ७८ की संख्या जोड़ देने से ईसवी सन् (ख्रीष्टाब्द) आ जाता है। दूसरी एक गणना बंगाब्द (B.E.) या साल (B. S.) में है, जिसमें ५९३ की संख्या जोड़ने से ईसवी सन् या ख्रीष्टाब्द आ जाता है। ईसवी सन् में ५७ की संख्या जोड़ने से हमारा विक्रम संवत् बनता है। उदाहरण ११९० साल=११९०+५९३ ई.=१७८३ ई०=१७८३—७८ या १७०५ शकाब्द।

दर्शन और सिद्धांत ग्रंथ—बंगला विभाग

नरोत्तमदास की रचनाएं

सिद्धि-भक्ति-चंद्रिका—इसका दूसरा नाम रस-भक्ति-चन्द्रिका भी है। एक दूसरी रचना भी, जो इसी नाम की है, प्राप्त है; इसके लेखक गोविन्ददास हैं। श्री चैतन्यदास के नाम से युक्त एक तीसरी "रस-भक्ति-चन्द्रिका" पाई गई है। इस तीसरी रचना का नाम "आश्रय-निर्णय" भी है। नरोत्तम की रचना की हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल १९ पौष, १२१४ साल है।[१]

उपासना-पटल—किसी किसी हस्तलिखित प्रति में "उपासना-तत्व-सार" नाम भी दिया है। वैसे भी "उपासना-पटल" का नाम "गुरु-शिष्य-संवाद-पटल" भी है। कई एक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं जिनका लिपिकाल क्रमशः २३ चैत्र, १२२२, १२२९ और ३ ज्येष्ठ, १२५९ साल है।[२]

वस्तुतत्त्वसार—लोचनदास के नाम से भी इसी नाम की एक रचना पाई जाती है।[३]

प्रेम-भक्ति-चन्द्रिका—नरोत्तमदास रचित यह ग्रंथ अनेक बार मुद्रित हुआ और प्रचलित भी हुआ। इस ग्रंथ में सरल भाषा के प्रयोग द्वारा त्रिपदी छंद में वैष्णवों की भक्ति-साधना का विवरण दिया गया है। रचना छोटी ही है परन्तु अत्यन्त मार्मिक होने के कारण वैष्णव भक्तों और संन्यासियों ने उसे बहुत अपनाया है। प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों का लिपिकाल क्रमशः १०१६ लल्लाब्द और ११ भाद्र ११११ मल्लाब्द है।[४] इसका प्रामाणिक संस्करण मुर्शिदाबाद जिला अन्तर्गत मिरजापुर ग्रामवासी श्री दुर्गादास राय ने प्रस्तुत किया है।[५] इसके अंश सूक्तियों के रूप में बहुत प्रचलित हैं। उदाहरणस्वरूप ज्ञान-कर्म की हीनता के लिए कहा गया है :—

ज्ञान कांड कर्मकांड
केवल विषेर भांड
अमृत बलिया जेवा खाय[६]

कृष्ण की महिमा बताते हुए कवि कहते हैं :—

तीर्थ-यात्रा-परिश्रम
केवल मनेर भ्रम
सर्व सिद्धि गोबिंद चरण[७]

---

१. बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. ६६
२. बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. २६३
३. रायल एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी, पो. नं. ३९६३
४. रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी, पो. नं. ३६१६, ३५८६
५. प. क. त., परिशिष्ट, पृ. १४२, फुट नोट
६. राय संस्करण, पृ. २४
७. राय संस्करण, पृ. ५

धन-सम्पत्ति की क्षणभंगुरता के लिए लेखक कहता है :—

राजार से राजपाट
जेन नाटुयार नाट
देखिते देखिते किछु नय, इत्यादि[1]

आश्रय-निर्णय——'आश्रय-निर्णय' नाम से कृष्णदास की भी एक रचना प्राप्त है। नरोत्तम की रचना की हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल २५ माघ १७०५ शकाब्द है।[2]

स्वरूप-कल्पतरु——स्वरूप-कल्पतरु एक मूल्यवान रचना है। इसकी एक खंडित हस्तलिखित प्रति प्राप्त है। कुछ लोग इसे संदेहास्पद रचना मानते हैं। परन्तु खंडित प्रति में एक 'दोहा' है :——

अनंग मंजरीर पद अर्हिनिश आश।
स्वरूप कल्पतरु कहे नरोत्तमदास।

इससे ज्ञात होता है कि यह रचना इनकी हो सकती है। एक स्थान पर उल्लेख है कि यह प्रेम-भक्ति-चंद्रिका के बाद की रचना है।

प्रेमभक्तिचन्द्रिका पूर्वे करियाछि लिखन
आपन भजनकथा राखिनु गोपन ॥

इस रचना में वैष्णवी रस-साधना का विवरण है। चैतन्य-चरितामृत के किसी-किसी अध्याय की व्याख्या भी की गई है। प्रसंगानुसार नरोत्तमदास ने अपने और अन्य पदकर्ताओं के पद भी दिए हैं। ये पद रागात्मक हैं। प्रीति के लिए वे कहते हैं——

पिरित आखर तिन
जपह रजनि दिन।
पिरित ना जाने जारा
काष्ठेर पुतलि तारा।
पिरित जानिल जे
अमर हइल से।
पिरिते जनम जार
के बुझे महिमा तार।
जो जना पिरित माने
वेद विधि से कि माने।
पिरिति वेदेर पर
हृदये ताहारि घर।
भजन पूजन जत
पिरित बिहने हत। इत्यादि

इसमें स्त्रियों का माधुर्यपूर्ण वर्णन भी है :——

नारी बिने कोथा आछे जुड़ावार स्थान।

---

१. वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ८, पृ. ५३-५४
२. राय संस्करण, पृ. १८

सर्व्वभावे नारी हंते जुड़ाय परान ।
पतिभावे पुत्रभावे भ्रातृ-पितृभावे ।
स्नेह-मोह-समता ममता भावे सेवे ॥

हाटपत्तन—हाटपत्तन को कुछ लोग संदेहास्पद रचना बतलाते हैं। 'हाटपत्तन' नाम से एक अन्य व्यक्ति की रचना भी प्राप्त है। इस छोटी रचना में चैतन्यदेव से प्रभावित सिद्धान्त हैं। वल्लभदास नामांकित एक पद में इस रचना को "हाट पत्तन मधुर केवल" कहा है।

मुकुंददास की रचनाएँ

सिद्धांतचन्द्रोदय—सिद्धांतचन्द्रोदय मुकुंददास गोस्वामी की रचना है। इस ग्रंथ में १८ प्रकरण हैं। इसमें नित्यलीला, गौर-कृष्ण-तत्व, रागभक्ति, नाम-माहात्म्य और वैष्णव के आचार इत्यादि की चर्चा है। श्री हरिदास का मत है कि इस ग्रंथ में 'परकीया-वाद' का जो प्रकरण है वह प्रक्षिप्त अंश है।[1] इसकी दो हस्तलिखित प्रतियों में ६ ही प्रकरण हैं, एक तीसरी प्राप्त प्रति में अठारह प्रकरण हैं। ढाका विश्वविद्यालय और बाराह-नगर के ग्रंथागार में इसकी प्रतियां सुरक्षित हैं।

वृंदावनदास की रचनाएँ

१. **तत्वविलास**—वृंदावनदास की इस रचना का बड़ा आदर है। इसकी कई हस्त-लिखित प्रतियां प्राप्त हैं। वैष्णव-चरण वासक ने इसका मुद्रित संस्करण प्रस्तुत किया था।

२. **भक्ति-चिन्तामणि या भक्ति-तत्व-चिन्तामणि**—इस रचना की भी कई एक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं। एक प्रति का लिपिकाल जो रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में संगृहीत है, १६१८ शक है। बटतला प्रेस से इसका मुद्रित संस्करण प्रकाशित हुआ है।

रामचन्द्र गोस्वामी की रचनाएँ

पाखंड-दलन—पाखंडदलन, एक छोटी सी रचना है। वृंदावनदास की भी एक रचना 'पाखंडदलन' है।[2] भक्ति-तत्व-सार में श्री कृष्णदास बाबाजी कृत एक अन्य 'पाखंड-दलन' का उल्लेख है। रामचन्द्र गोस्वामी की रचना में श्रीकृष्ण का सवश्वरत्व,भजनीयत्व, कृष्ण की स्मरण विधि, अहैतुकी भक्ति-निरूपण, श्री कृष्णेर दयालुता, भक्ति ओ भक्त महिमा, साधुसंग, असत्-संगत्याग, वैष्णव पूजा की श्रेष्ठता, गुरुपादाश्रय, नामकीर्त्तन माहात्म्य इन सब की विवेचना और वर्णन दिया है।

अनंगमंजरी संपुटिका—इस छोटी रचना में चार लहरी हैं। समस्त रचना में वृंदावनदास की 'भजन चंद्रिका' का प्रभाव है। उसी में से प्रमाणवाक्य उद्धृत किए गए हैं। इस रचना की एक प्रति वंगीय साहित्य परिषद् की लाइब्रेरी में सुरक्षित है।[3] देवकीनंदन कृत वैष्णव-वंदना में रामचन्द्र गोस्वामी का 'रामाई' नाम से उल्लेख है।

प्रथम लहरी—इसमें राधाकृष्ण और बलराम को आनन्द, चित् और सत् गुण से

---

१. श्री श्री गौड़ीय वैष्णव साहित्य, भाग २, पृ. १४३
२. बंगला साहित्येर इतिहास, पृ. ४१६
३. वंगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी, पोथी नं २४३२

अभिहित करके तत्व बताया है और उन्हें रूप-मात्र की भिन्नता बताकर एक ही तत्व सिद्ध किया है। इसके बाद बलदेव का तत्व-निरूपण किया गया है। ये बलदेव सत् और चित् तत्वों को लेकर पुरुष देह धारण करके कृष्ण के साथ हास्य, सख्य, और वात्सल्य भाव से क्रीड़ा करते हैं।

द्वितीय लहरी--बलराम ने प्रकृत्यंश लेकर गोकुल की रचना की, स्वयं प्रधान होकर सत् अंश से गोष्ठ क्रीड़ा की, फिर आनन्द अंश लेकर गूढ़ मति अनंगमंजरी हुए, और कृष्ण से विहार किया ।

तीसरी लहरी--राधा अनंगमंजरी पर प्रसन्न हुई, इत्यादि बताकर अनंगमंजरी की सखियों का निरूपण किया है।

चौथी लहरी–इसमें यह बताया है कि वे ही अनंगमंजरी अब जाह्नवा देवी हैं, अतः उनकी उसी प्रकार सेवा करनी चाहिए।

रामचन्द्रदास की रचनाएं

१. **सिद्धांतचन्द्रिका**--इस ग्रंथ[1] में लेखक का नाम 'रामचन्द्रदास' दिया हुआ है। यह रामचन्द्रदास गोविन्ददास के भाई रामचन्द्र कविराज हैं या अन्य कोई, यह कहना कठिन है। इसमें पांच प्रसंग हैं। प्रथम और द्वितीय प्रसंग में कृष्ण ने ब्रज का त्याग किया या नहीं किया, इसकी मीमांसा कई सन्देहों का निवारण कर के की गई है। अन्त में मुख्य सिद्धांत जो दिया है, वह "मथुरार छले कृष्णलीला संगोपने, परिवार सह कैल एइ वृंदावने" है। तीसरे प्रसंग में वृंदावन और गोलोक का अभेद स्थापित किया गया है। लघुभागवतामृत के प्रमाण वाक्यों द्वारा वृंदावन को गोलोक के अन्तर्गत बताया गया है।[2] चौथे प्रसंग में मर्त्य वृंदावन और दिव्य वृंदावन का अभेद बताया गया है। पांचवें प्रसंग में कृष्ण और चैतन्य का अभेद बताया गया है। कृष्ण यदि वृंदावन त्याग करके कहीं नहीं जाते तो चैतन्य का अवतार कैसे लिया, राधा को विरह कैसे हुआ, इन सब सन्देहों का निवारण किया गया है। गोपप्रकाश और स्वयंप्रकाश इन दो मूर्तियों से कृष्ण-युक्त हैं। चैतन्य की मूर्ति स्वयं-प्रकाश है।

२. **स्मरणदर्पण**--यह मुख्यतया गुरु महिमा और गुरु की भक्ति पर रचा हुआ ग्रंथ है।[3] गुरु के प्रति स्नेह-भक्ति होने से भजन की शक्ति आती है। कृष्ण के प्रति अपराध हो जाय तो निस्तार हो सकता है, पर गुरु के प्रति अपराध होने से निस्तार नहीं होता। कवि कहता है :–

साधुमुखे कथामृत, शुनिया विमल चित, तवे गुरुदेवे हय रति।
नित्य नित्य बाड़े रति, गुरु पदे हय गति, तवे हय भजन शकति ॥
कृष्णेते अपराध हय, ताहाते निस्तार पाय, गुरु अपराधे नाहि त्राण।
ताहे बड़ परमाद, वैष्णवेते अपराध, गुरुदेवे ना करे मार्जन ॥

---

१. रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी, पो. सं. ४९५०, बंगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी, पो. सं. १६५७

२. 'गोलोक वृंदावने आछये सर्वदा'।

३. बंगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी, पो. सं. २४८९, लिपिकाल १०६६ साल।

लोचनदास की रचनाएं

दुर्लभसार—इस ग्रंथ के रचयिता श्री लोचनदास ठाकुर हैं। श्रीमद्भागवत के कुछ स्थलों की, जिन्हें वैष्णव मत के अनुकूल मानने में कुछ संदेह होता है, अपने मत के अनुसार व्याख्या करने के लिए इसकी रचना की गई है। विरोधियों की उक्तियों का खंडन करके गौड़ीय वैष्णव मत की स्थापना की गई है। इसमें चार अध्याय हैं। प्रथम खंड को सूत्र-खंड कहा गया है और उसमें भक्ति-माहात्म्य का वर्णन देने के बाद गौरांग अवतार का कारण, संकीर्त्तन का महत्व, और अपना वंश-परिचय दिया है। दूसरे खंड को मध्य खंड नाम देकर उसमें भक्त कौन है, यह बताकर भक्तों की निरपेक्ष, और सापेक्ष दो श्रेणियां बताई हैं। इसी खंड में रागानुगाभक्ति की चर्चा की है। तीसरे और चौथे खंडों में मुख्यतया श्रीकृष्णलीला, विशेषतया मथुरा जाने के बाद की घटनाओं का विवरण, देकर कृष्ण के व्रज त्याग, तथा राधा त्याग का कारण बताया है। व्रजवासियों के विरह दु:ख का भी करुणाजनक वर्णन है। परकीया गोपियां क्या व्यभिचारिणी थीं, इसकी भी मीमांसा की गई है।

दर्शन और सिद्धान्त ग्रन्थ—हिन्दी विभाग

तुलसीदास की रचनाएं

वैराग्य-संदीपनी—वैराग्य संदीपनी तुलसीदास की एक छोटी सी रचना है। इस ग्रंथ के चार भाग हैं। (१)मंगलाचरण, (२) संत-स्वभाव-वर्णन, (३)संत-महिमा-वर्णन, (४) शांति-वर्णन। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने इसका संस्करण प्रस्तुत किया है जो संवत् १९८० वि. में प्रकाशित 'तुलसी ग्रंथावली' भाग २ में है। दोहा संख्या ७ में तुलसीदास ने इसे 'अखिल ज्ञान को सार' बताया है। वह दोहा निम्न है :—

तुलसी वेद-पुरान-मत, पूरन सास्त्र विचार।
यह बिराग-संदीपनी, अखिल ज्ञान को सार॥

नंददास की रचनाएँ

ज्ञानमंजरी—नन्ददास कृत इस रचना का नाम मिश्रबन्धु-विनोद में है।[1] यह रचना उपलब्ध नहीं है।[2] अत: इसके बारे में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता।

विज्ञानार्थ-प्रकाशिका—'विज्ञानार्थ-प्रकाशिका' इसी नाम के संस्कृत ग्रंथ की टीका है। मिश्रबन्धु-विनोद में इसका इतना ही उल्लेख है। मिश्रबन्धुओं ने इसे छत्रपुर में कहीं देखा था। वैसे तो यह रचना उपलब्ध नहीं है।[3]

सिद्धांत-पंचाध्यायी—यह अत्यन्त छोटी सी रचना है। इसमें कृष्ण का ईश्वरत्व, कृष्ण-भक्ति का माहात्म्य और लीला इत्यादि का थोड़ा वर्णन है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं। एक प्रति में इसका नाम 'अध्यात्म-पंचाध्यायी' भी मिलता है।[4]

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ. २८२
२. नन्द., प्रथम भाग, पृ. २० (सं. उमाशंकर शुक्ल)
३. नन्द., पृ. ८
४. नन्द., प्रथम भाग, पृ. ८३

इस रचना का आधुनिकतम मुद्रित संस्करण उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

रस ग्रन्थ——बंगला विभाग

घनश्यामदास की रचना

गोविंदरति मंजरी——घनश्यामदास कविराज ने इस नाम की दो रचनाएँ कीं। एक संस्कृत में और दूसरी बंगला भाषा में। बंगला रचना में पांच स्तवक हैं।

प्रथम स्तवक——गोविंद-रत्यंकुर—इसमें चैतन्य की वंदना, गुरु नित्यानन्द की वंदना, एवं रचयिता का अपना परिचय है।

द्वितीय स्तवक——गोविंद-रति-पल्लव—इसमें राधा का पूर्व राग, श्रीकृष्ण का पूर्व राग, स्वयं दौत्य, अभिसार, और संक्षिप्त संभोग वर्णित है।

तृतीत स्तवक——गोविंद-रति-कोरक——इसमें संकीर्ण संभोग, खंडिता, तथा कलहांतरिता का विवरण है।

चतुर्थ स्तवक——गोविंद-रति-प्रसून——सम्पन्न संभोग, प्रेम वैचित्य, वासकसज्जा, उत्कंठिता और विप्रलब्धा का विवरण है।

पंचम स्तवक——गोविंद-रत्यामोद——इस में समृद्धिमान-संभोग, विरह, दूती की सहायता, कृष्ण-गोपी संवाद, विरह वर्णन इत्यादि का विवरण है।

कवि ने विरह का वर्णन अधिक किया है। रचना पदों में है। इसकी हस्तलिखित प्रति रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में सुरक्षित है (पो. सं. ३७२५, ४९६६) बेनीमाधव दे ने एक संस्करण प्रकाशित किया है।

नंदकिशोरदास की रचना

रसपुष्प कलिका——इस रचना का नाम रसकलिका भी है। यह रस पर भाषा में प्राचीनतम रचना है। यह बंगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी में सुरक्षित है (पो. सं. १२५३) इस पुस्तक की रचना 'उज्ज्वल-नीलमणि' और 'विदग्ध-माधव' के अवलम्बन पर हुई है। कवि ने स्वयं कहा है :——

विदग्धमाधव आर, उज्ज्वलनीलमणि सार, ए दुइ रसेर सागर।
नानामृत आछे इथे, शुनि साधु-मुखादिते, आस्वादिते लोभ बाड़े मोर॥

... ...

श्री गुरु वैष्णव पादपद्मे करि आश। रसपुष्पकलिका कहे नंदकिशोर दास।

रचना सोलह दलों में विभक्त है। प्रथम दल में नायक-गुण वर्णन, दूसरे में नायिका निरूपण, तीसरे में नायिका-स्वभाव भेद, चौथे में दौत्य, पांचवें में उद्दीपन-विभाव, छठे में अनुभाव, सातवें में सात्विकी भाव, आठवें में व्यभिचारी भाव, नवें में अष्टविध रति, दसवें में मोहन दशा, ग्यारहवें में स्थायी भाव, बारहवें में विप्रलब्ध, तेरहवें में संभोग-चतुष्टय, चौदहवें में पुष्पत्रोटन तथा वंशी चोरी, पंद्रहवें में दान लीला और सोलहवें में संभोग लीला का वर्णन है। उदाहरण राधा-कृष्ण से न लेकर चैतन्यदेव के जीवन से लिए हैं, यह इस ग्रंथ की विशेषता है। बीच-बीच में बहुत-से संस्कृत श्लोक भी उद्धृत किए गए हैं। यह रचना 'चैतन्यचरितामृत' के बाद की है और उससे प्रभावित भी है। इसमें 'चैतन्य-चरितामृत' के कुछ अंश उद्धृत भी किए गए हैं।

नरोत्तमदास की रचना

रसभक्तिचन्द्रिका—इस रचना को सिद्धि-भक्ति-चन्द्रिका भी कहा गया है। इसी नाम की दो रचनाएँ और प्राप्त हैं। ये गोविन्ददास और चैतन्यदास के नाम से हैं।[1]

रस ग्रन्थ—हिन्दी विभाग

नंददास की रचना

रसमंजरी—यह नायिका भेद और नायक भेद पर छोटी सी रचना है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं।[2] कवि का कथन है कि नंदकुमार 'रसमय, रसकारन' हैं। प्रेम-रस उन्हीं से है और उन्हीं से करने में शोभा देता है परन्तु जब तक नायक-नायिका भेद नहीं जाना जाता तब तक यह प्रेम नहीं उत्पन्न होता। अतः कवि ने यह सब वर्णन किया है। इस रचना का आधुनिकतम मुद्रित संस्करण श्री उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

(२) काव्य

वैसे तो सोलहवीं शती का प्रायः समस्त साहित्य कविता में ही है। गद्य में तो रचनाएं प्रायः हैं ही नहीं। विषय के अनुसार विभाजन करने पर भी सब रचनाएं काव्य के अन्तर्गत आती हैं। यहां काव्य से तात्पर्य केवल उन रचनाओं से है जो कल्पना, छंद, अलंकार इत्यादि समस्त काव्य गुण से सम्पन्न ऊंची श्रेणी की रचनाएं हैं। गौड़ीय वैष्णव समाज के अत्यन्त ऊंची श्रेणी के काव्य ग्रंथ संस्कृत में हैं। इनके रचयिता मुख्यतया रूप-गोस्वामी और कवि कर्णपूर हैं। कुछ काव्य बंगला भाषा में भी हैं। ये उतनी ऊंची श्रेणी के तो नहीं हैं परन्तु सुन्दर कवित्वपूर्ण रचनाएं तो हैं ही। काव्य के अन्तर्गत 'खंड-काव्य' और 'महाकाव्य' दोनों आते हैं। यहां पहले छोटे-छोटे काव्यों की, जिन्हें खंड-काव्य का नाम दिया गया है, सूची दी जा रही है।

खंड काव्य

खंड काव्य से तात्पर्य उन समस्त रचनाओं से है जो आकार में छोटी हैं। कुछ में प्रबंधात्मकता है, कुछ में नहीं है। कुछ में कथानक हैं, कुछ में केवल इष्टदेव का लीला वर्णन अथवा गुण गान मात्र हैं। ये कृष्ण से या राम से संबंध रखते हैं। रामचरित पर कृष्ण-चरित की अपेक्षा कम रचनाएं हुई हैं। हिन्दी में तुलसीदास के रामसंबंधी खंड काव्य 'कवितावली' में कांड तो सातों दिए हैं, रचना भी अपेक्षाकृत बड़ी है, पर प्रबंधात्मकता नहीं है। बंगला के राम-कथानक भी कुछ इसी प्रकार के हैं। खंड काव्यों की सूची नीचे दी जा रही है:—

बंगला विभाग

[कृष्णलीला संबंधी]

कृष्णमंगल	गोविंद
कुंजवर्णन	नरोत्तम

१. बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. ६६

२. नंददास, भाग १, भूमिका पृ. ४५-४६, (सं. उमाशंकर शुक्ल)

कृष्णमंगल	कृष्णदास
कृष्णसंगल	यशोराजखान (अप्राप्य)
कृष्ण-लीलामृत	कवि शेखर
गोपाल-विजय	दुःखी श्यामदास
गोविंदमंगल	दुःखी श्यामदास
दधि-खंड	वृन्दावनदास
दानकेलि-कौमुदी	यदुनंदनदास
दूतिबोध	जगन्नाथदास
यशोदार-वात्सल्य-लीला	ज्ञानदास
राधाकृष्ण-लीला-कदम्ब	यदुनंदनदास
श्रीकृष्ण-मंगल	माधव आचार्य
श्रीकेशव-मंगल	नरहरिदास

[राम-कथानक संबंधी]

१. अंगदेर रायबार	शंकर कविचन्द्र
२. रामायण	द्विज मधुकंठ
३. रामगीता	वंशीवदन द्विज
४. सीता-वनवास	घनश्यामदास
५. रामायण	चन्द्रावती

हिन्दी विभाग

१. कवितावली	तुलसीदास
२. जानकीमंगल	तुलसी
३. जुगल-मान-चरित्र	कृष्णदास
४. जोगलीला	नंददास
५. दोहावली	तुलसी
६. दानलीला	नंददास
७. नागलीला	नंददास
८. पार्वती-मंगल	तुलसी
९. पनिहारिन-लीला	नंददास
१०. बरवै रामायण	तुलसी
११. भंवरगीत	नंददास, सूरदास
१२. भ्रमरगीत	कृष्णदास
१३. रामलला नहछू	तुलसी
१४. रुक्मिणी-मंगल	नंददास
१५. रासपंचाध्यायी	नंददास
१६. श्याम-सगाई	नंददास

हिन्दी और बंगला दोनों के ही काव्य ग्रंथों में 'मंगल' नाम की रचनाएं हैं। परन्तु दोनों में भिन्नता है। हिन्दी की 'मंगल' रचनाएं केवल विवाह का वर्णन करती हैं परन्तु बंगला के 'मंगल' ग्रंथ विवाह का वर्णन नहीं करते, बरन् देवता का यश वर्णन करते हैं। कुछ प्रमुख रचनाओं का परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

काव्य—बंगला विभाग

माधव आचार्य कृत श्रीकृष्ण मंगल—इस रचना का उल्लेख देवकीनंदन की वैष्णव-वंदना में मिलता है।

माधव आचार्य वंदो कवित्व शीतल।
जांहार रचित गीत श्रीकृष्ण मंगल॥

इस रचना की कई एक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं। परन्तु प्राय: सब में ही अन्य कवियों की रचनाओं और पदों का मेल हो गया है। इस रचना का सर्वप्रथम मुद्रित संस्करण 'श्रीमद्भागवत सार' के नाम से सन् १८२६-२७ ई.(१२३३ साल)में प्रस्तुत हुआ था। यह नाम संपादक का दिया हुआ है। वैसे मूल रचना में नीचे दी पंक्ति के अतिरिक्त और कहीं भी यह नाम नहीं आया है। इस पंक्ति में भी यह ध्वनि नहीं निकलती कि रचना का नाम 'भागवत-सार' है :

पद पुरान आर श्रीभागवत सार केवल परम परकाशे।

इसका तो इतना ही अर्थ है कि पद, पुराण और भागवत का सार प्रकाशित करता हूं। वैसे इस रचना का मूलाधार भागवत का दशम स्कन्ध तो है ही। दशम स्कंध की कथा के अतिरिक्त इसमें दान-खंड, नौका-खंड, रुक्मिणी की फूल-शैया, अजामिल का उपाख्यान, यदुवंश को ब्रह्मशाप, युधिष्ठिर का स्वर्ग गमन इत्यादि विशेष प्रसंग हैं। हरिवंश और विष्णुपुराण से भी कथायें ली हैं। लेखक ने स्वयं कहा है :—

१. राज राज अभिषेक नाहि भागवते। विस्तारि कहिब ताहा हरिवंश मते।
२. पारिजात हरण ईषत भागवते। विस्तार कहिब विष्णुपुराणेर मते॥

दूसरा मुद्रित संस्करण बंगवासी कार्यालय ने १३३३ साल में निकाला। इसकी एक हस्तलिखित प्रति (पो. सं. ५४४९) रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी में है।

कृष्णदास कृत श्रीकृष्णमंगल—कृष्णदास की रचना श्री कृष्णमंगल भागवत का अवलम्बन ले कर रची हुई है। यह अपेक्षाकृत छोटी रचना है। भागवत के दशम स्कंध के कथानक के अतिरिक्त दान-खंड और नौका-खंड का आख्यान उन्होंने हरिवंश से लिया है, ऐसा वे कहते हैं।

दानखंड नौकाखंड नाहि भागवते। अन्न नाँहि विष्णु कहि हरिवंश मते।

इन दो कथानकों के साथ मार-खंड, और वंशी-चोरी-लीला भी वर्णित है। इस रचना का मुद्रित संस्करण वंगीय साहित्य परिषद् ने प्रकाशित किया है। रचना सुन्दर है। इसमें तद्भव शब्दों का बाहुल्य है।

गोविंद आचार्य कृत कृष्णमंगल—गोविन्द आचार्य ने कृष्ण-लीला सम्बन्धी काव्य लिखा था, इसका उल्लेख देवकीनंदन, और माधव दोनों ने अपनी रचना 'वैष्णव-वन्दना' में किया है।

गोविंद आचार्य बंदो सर्वगुणशाली ।
जे करिल राधाकृष्णेर विचित्र धामाली । **(वैष्णव-वंदना, देवकीनंदन कृत)**
गोविंद आचार्य पद करिल वंदन ।
राधा कृष्ण रहस्य जे करिल वर्णन । **(वैष्णव-वंदना, माधव कृत)**

रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में द्विज गोविंद भणिता से युक्त एक कृष्णमंगल की प्रति खंडित रूप में है। सुकुमार सेन इसे गोविंद आचार्य की ही रचना मानते हैं।[१] काव्य मुख्यतया वर्णनात्मक है। इसमें अधिकतर पयार छंदों का ही प्रयोग हुआ है। इसमें परीक्षित का उपाख्यान, ध्रुवचरित्र, अजामिल का उपाख्यान, प्रह्लाद चरित्र, गजेन्द्र-मोक्ष कथा, रामलीला, और अंत में कृष्णलीला वर्णित है। कृष्णलीला में दानखंड और नौकाखंड भी सम्मिलित हैं। इसमें 'बड़ायी' पात्र का भी उल्लेख है।

बलरामदास कृत कृष्णलीलामृत——कृष्णलीलामृत काव्य की रचना भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तीय पुराण के आधार पर की गई है। प्राप्त प्रति में[२] बारह परिच्छेद हैं। इन परिच्छेदों में कृष्ण का मथुरागमन और गोपियों का विरह वर्णित है। मंगलाचरण में कवि ने गदाधरदास का नाम दिया है। रचना का भी नाम दिया है :—

श्रीयुत गदाधर चरण भरसे,
कृष्णलीलामृत कहे बलदेव दासे ॥

कविशेखर कृत गोपाल विजय——'गोपाल विजय' पांचाली काव्य है। इसकी कई एक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं।[३] कलकत्ता विश्वविद्यालय की सुरक्षित प्रति में १६५६-५७ शकाब्द लिपिकाल दिया है। काव्य वर्णनात्मक है। इसमें श्रीकृष्ण की ब्रजलीला, मथुरागमन की कथा तक वर्णित है। अधिकतर पयार छंद का और कहीं कही त्रिपदी छंद का प्रयोग किया गया है। कथा चंडीदास कृत 'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' के अनुरूप है। इसमें भी 'बड़ायी' एक पात्र है। वह राधाकृष्ण के बीच में कुटनी का काम करती है।

दुःखी श्यामदास कृत गोविंदमंगल——गोविंद-मंगल की कोई भी प्राचीनतम प्रति नहीं प्राप्त है। इस रचना का प्रथम मुद्रित संस्करण १८७० ई. में हुआ था। दूसरा मुद्रित संस्करण ईशानचन्द्र बसु के संपादन में बंगवासी कार्यालय से प्रकाशित हुआ। गोविंद-मंगल की रचना 'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' के अनुकरण में हुई है। इन दोनों में बहुत अधिक साम्य है। उसी के समान गोविंद-मंगल में दानखंड और नौकाखंड हैं। कहीं कहीं भागवत कथा भी है। काव्य अत्यंत वर्णनात्मक नहीं है। बीच-बीच में पद हैं। इसमें पयार और त्रिपदी छंदों का अधिक प्रयोग है।

शंकर कविचन्द्र कृत 'अंगदेर रायबार'——'अंगदेर रायबार' छोटी-सी रचना है। इसमें अंगद के दूतत्व की कथा वर्णित है। समस्त रचना वर्णनात्मक है और 'पयार' छंद में लिखी गई है। अंगद का राम के शिविर से प्रस्थान, लंका-आगमन, रावण से उत्तर-

---

१. बांगला साहित्येर इतिहास, पृ. २०५
२. बंगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी, पोथी सं. १२६९
३. बांगला साहित्येर इतिहास, पृ. २१४

प्रत्युत्तर, दोनों का क्रोध, अंगद का रावण के मुकुट उतारना इत्यादि का वर्णन है। संवादों में व्यंग्य का अच्छा चित्रण है। दिनेशचन्द्र सेन ने अपने 'वंग साहित्य परिचय' में इस रचना को उद्धृत किया है।[१] उन्होंने अपनी दूसरी रचना Bengali Language & Literature में शंकर कवि चन्द्र कृत ४१ अन्य रचनाओं की सूची दी है जिसकी हस्तलिखित प्रतियां उन्होंने देखी हैं।[२]

घनश्यामदास कृत 'सीतार वनवास'—यह रचना भी छोटी ही है। इसमें राम द्वारा सीता के वनवास देने की कथा वर्णित है। लक्ष्मण उन्हें रथ में बैठा कर वन ले जाते हैं, वहां जाने के पूर्व सीता कौशल्या से प्रार्थना करती हैं, कौशल्या मना करती हैं, परन्तु फिर सीता के अनुनय पर अनुमति दे देती हैं, लक्ष्मण उन्हें छोड़ आते हैं। अन्त में वाल्मीकि आ जाते हैं। समस्त रचना वर्णनात्मक है और पयार छन्द में है। इसकी प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति पर लिपिकाल बंगला सन् १०३५ (१६२७ ई०) पड़ा है।

काव्य—हिन्दी विभाग

तुलसीदास की रचनाएं

कवितावली—कवितावली का रचना काल डा. रामकुमार वर्मा सं. १६६९ वि. के लगभग मानते हैं।[३] यह रचना ७ कांडों में विभाजित है और राम की कथा है। रचना सम्यक् ग्रंथ न होकर समय समय पर लिखी कविताओं की संग्रह है।

जानकी-मंगल—इस रचना का रचना-काल डा. रामकुमार वर्मा सं. १६४३ वि० मानते हैं।[४] इस छोटी-सी रचना में सीता और राम का विवाह वर्णित है ?

पार्वती मंगल—इसका रचना काल भी डा. वर्मा सं. १६४३ वि० ही मानते हैं। इसमें पार्वती शिव का विवाह वर्णन है।

दोहावली—अन्तर्साक्ष्य के अनुसार डा. वर्मा इसका रचना काल संवत् १६६५-१६८० वि. मानते हैं।[५] इस रचना में दोहा छंद में नीति, भक्ति, राम महिमा, नाम माहात्म्य, प्रेम इत्यादि पर उक्तियां हैं।

इन सब रचनाओं का मुद्रित संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी-ग्रंथावली, भाग २ में प्राप्त है।

नंददास की रचनाएं

जोगलीला—उमाशंकर शुक्ल जोगलीला के नंददास कृत होने में संदेह करते हैं। उन्होंने तर्क भी उपस्थित किए हैं। वे इसका सर्वप्रथम उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में हुआ बताते हैं। कुछ अंश भी उन्होंने उद्धृत किए हैं।[६]

---

१. वंग साहित्य परिचय, पृ. ५२४
२. Bengali Language & Literature, P. 185.
३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ४४७
४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ४०४
५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ४१०
६. नंददास, भूमिका, पृ. ३०

दानलीला——'दानलीला' को भी उमाशंकर शुक्ल संदिग्ध रचना ही बताते हैं। इस रचना की जो प्रति उन्हें प्राप्त हुई है उसे उन्होंने पूरा का पूरा उद्धृत किया है। रचना नंददास की अन्य प्रामाणिक रचनाओं से हीन तो अवश्य ज्ञात होती है। यह कृति अत्यन्त छोटी है।[1]

भंवर-गीत——यह अत्यन्त सुन्दर रचना है। छोटी है। ऊधव और गोपियों का उत्तर-प्रत्युत्तर है जिसमें सगुणवाद-निर्गुणवाद की विवेचना है। इसका विशेष विवरण सिद्धांत ग्रंथों के साथ दिया जा चुका है।

रुक्मिणी-मंगल——यह सुन्दर काव्य-गुण सम्पन्न छोटी रचना है। इसमें रुक्मिणी का कृष्ण को पत्र भेजना, रुक्मिणी-हरण और अन्त में कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह रोला छंद में वर्णित है। इसका सर्वप्रथम मुद्रित संस्करण अग्रवाल प्रेस प्रयाग द्वारा सं. १९९० वि. में प्रकाशित हुआ था। इसकी चार हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं।[2]

श्याम-सगाई——यह रचना भी अत्यन्त छोटी है। इसमें कृष्ण की माता के पास राधा की सगाई का समाचार आना और उनका स्वीकार कर लेना, बस इतनी ही कथा है। यह रचना भी रुक्मिणी-मंगल के साथ ही अग्रवाल प्रेस द्वारा सं. १९९० वि. में प्रकाशित हुई थी।[3]

रासपंचाध्यायी——रासपंचाध्यायी नंददास कृत अत्यन्त श्रेष्ठ रचना है। यह एक प्रसिद्ध कृति है। इसकी कई एक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं।[4] इसका विषय कृष्ण की रासलीला है।

नंददास के प्रामाणिक ग्रंथों का आधुनिक संस्करण श्री उमाशंकर शुक्ल द्वारा संपादित और प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित है। यह संस्करण सन् १९४२ ई. में प्रकाशित हुआ है।

महाकाव्य

काव्य शास्त्र के अनुसार यदि देखा जाय तो जितने भी काव्य यहां पर महाकाव्य की सूची में रक्खे गए हैं उनमें से प्राय: कोई भी महाकाव्य नहीं ठहरेगा। महाकाव्य से तात्पर्य केवल उन रचनाओं से है जो खंड, सर्ग या परिच्छेद या कांड में विभक्त लंबे आख्यानक काव्य हैं। इनकी संख्या बहुत कम ही है। प्राप्त महाकाव्यों की सूची नीचे दी जा रही है।

बंगला विभाग

१. चैतन्यचरितामृत	कृष्णदास कविराज
२. चैतन्यभागवत	वृंदावन दास
३. चैतन्यमंगल	जयानन्द

हिन्दी विभाग

१. रामचरित मानस	तुलसीदास

---

१. नंददास, भूमिका, पृ. २३——२५
२. नंददास, भूमिका, पृ. ६९
३. नंददास, भूमिका, पृ. ६९
४. नंददास, भूमिका, पृ. ७०

चैतन्यचरितामृत, चैतन्य-भागवत, चैतन्यमंगल इन तीनों का परिचय जीवनी साहित्य के साथ प्रस्तुत किया जायगा। रामचरितमानस हिन्दी की अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। उसका परिचय नहीं दिया जा रहा है।

(३) नाटक

नाट्य साहित्य का हिन्दी और बंगला दोनों ही स्थानों के वैष्णव साहित्य में अभाव है। गौड़ीय वैष्णव समाज में संस्कृत में रचे सुन्दर और बड़े नाटक प्राप्त हैं। रूप गोस्वामी-रचित 'ललित-माधव', 'विदग्ध-माधव' और 'दान-केलि-कौमुदी' बड़े आदर से देखे जाते हैं। कर्णपूर रचित 'चैतन्य-चन्द्रोदय' चैतन्यदेव पर रचा गया है। ब्रज के वैष्णव लेखकों ने संस्कृत में ऐसी कोई रचना (अर्थात् नाटक) नहीं की। जो नाटक पाए जाते हैं, उनकी सूची नीचे दी जा रही है :—

बंगला विभाग

१.	कंस-वध यात्रा	रामचरण
२.	रामविजय नाट	शंकरदेव
३.	रुक्मिणी हरण नाट	शंकरदेव
४.	गोपीनाथ विजय	कवि शेखर

हिन्दी विभाग

१.	**हनुमान्नाटक**	**हृदयराम**

ये नाटक भी शास्त्रीय पद्धति और नाट्य साहित्य के नियमों का पूर्ण रूप से पालन नहीं करते। 'यात्रा' एक प्रकार के संगीत-नाट्य को कहते हैं। बंगाल में यह बहुत प्रचलित है। 'कंस-वध यात्रा' भी कुछ कुछ उसी प्रकार की रचना है।

नाटक—बंगला विभाग

शंकरदेवकृत राम विजयनाट—यह नाटक प्राचीन संस्कृत रूपक 'भांड' की पद्धति पर लिखा गया है। यह ब्रजबुलि में रची गद्य की रचना है। इसमें कुछ पद्य भी हैं। प्रारम्भ में सूत्रधार नांदी पाठ करता है। उसी में कथा का परिचय देता है। वह राम की स्तुति "जय जय रघुकुल कमल प्रकाशक दासक नाशक भीति" पद द्वारा करता है। प्रारंभिक वंदना तो संस्कृत के श्लोकों द्वारा की गई है। इस रचना को हरिविलास गुप्त ने 'सीता-स्वयंवर' नाटक के नाम से सर्वप्रथम बंगला सन् १२९१ में प्रकाशित किया था।

शंकरदेव कृत रुक्मिणी-हरण नाट—यह भी गद्य की रचना है। इसकी भाषा ब्रज बुलि है। प्राचीन संस्कृत रूपक भांड की शैली पर इसकी रचना है। सूत्रधार आकर परिचय देता है, नांदी पाठ करता है। कथावस्तु जैसा कि नाम से ज्ञात है, 'रुक्मिणी हरण' से सम्बन्धित है। पद जो ब्रजबुलि में हैं, बीच बीच में यथेष्ट मात्रा में हैं। इसका प्रथम मुद्रित संस्करण सन् १८७५ ई. में जोड़ाहाट से हुआ।[१]

रामचरण कृत कंस-वध यात्रा—यह रचना शंकरदेव की 'रुक्मिणी हरण नाट' के

१. बां० सा० इ०, पृ० ३४२

अनुकरण में बनाई गई है। यह मुख्यतया संगीतात्मक है क्योंकि यात्रा की शैली पर बनी है। इसमें अनेक पद भी हैं।

नाटक—हिन्दी विभाग

हृदयराम कृत हनुमान्नाटक—इस नाटक की रचना संवत् १६२३ वि. में हुई। यह स्वतंत्र रचना नहीं है। संस्कृत में इसी नाम के नाटक के आधार पर यह नाटक लिखा गया है। इसमें राम-भक्ति बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई है।[1]

(४) पदावली

सोलहवीं शती के प्रायः सब वैष्णव लेखकों ने पद रचे हैं। वे पद स्फुट रूप में ही प्राप्त हैं। बहुत कम कवियों ने अपने पदों के संग्रह स्वयं ही प्रस्तुत किए थे। आगे चल कर कुछ लोगों ने उन पदों के संग्रह किए। हिन्दी में 'रामगीतावली', 'कृष्णगीतावली' और 'विनयावली' इत्यादि ऐसी रचनाएं हैं जिनका संग्रह पीछे से किया नहीं ज्ञात होता। श्री हरिदास दास ने कुछ हिन्दी पदकर्त्ताओं के पद-संग्रहों की सूची दी है।[2] वह हिन्दी विभाग में दे दी गई है।

बंगला विभाग

गीतामृत	गोविंददास
गोपालेर कीर्त्तन-अमृत	कवि शेखर
दंडात्मिका प्रणाली	कवि शेखर
संगीतमाधव	गोविंददास

हिन्दी विभाग

कृष्णगीतावली	तुलसीदास
परमानंद-सागर	परमानंद दास
मोहिनी-वाणी	गदाधर भट्ट
माधुरी-वाणी	श्री माधुरी जी
सरस-सागर	सरस माधुरी
रास के पद	हरिदास
रामगीतावली	तुलसीदास
रामचरित के पद	अग्रदास
विनयावली	तुलसीदास
सूरसागर	सूरदास
सुहृत वाणी	सूरदास मदनमोहन

आगे चल कर किए गए संग्रह ग्रंथ

अप्रकाशित पद-रत्नावली	सतीशचन्द्र राय
कीर्त्तनानंद	गौर सुन्दरदास

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ५४०

२. श्री श्री गौड़ीय वैष्णव साहित्य, द्वितीय खंड, पृ. ५६-५९

गीतचन्द्रोदय	नरहरि चक्रवर्ती
गीतमाला	रघुनंदन
गौरपदतरंगिणी	जगद्बंधु भद्र
गौरांगपदावली	दीनबंधुदास
पदामृतसमुद्र	राधामोहन ठाकुर
पदकल्पतरु	वैष्णवदास
पदकल्पलतिका	गौरीमोहनदास
पदचिन्तामणिमाला	प्रसाददास
पदरत्नाकर	कमलाकान्तदास
पदरससार	निमानंददास
पदसमुद्र	बाउल मनोहरदास
संकीर्त्तनामृत	दीनबंधुदास

पदावली---बंगला विभाग

गोविंददास कृत गीतामृत--यह रचना गीतावली के नाम से भी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि गोविंददास ने अपने पदों का संग्रह इस नाम से स्वयं किया था। परन्तु यह रचना अप्राप्य है।

गोविंददास कृत संगीतमाधव--संगीतमाधव रूप गोस्वामी के नाटक का पद्य-मय अनुवाद है।

कवि शेखर कृत दंडात्मिका-प्रणाली--यह छोटी रचना राधाकृष्णलीला सम्बन्धी है। इसमें रात दिन के प्रत्येक दंड की लीला, सेवा, उपासना इत्यादि सम्बन्धी पद हैं।

कवि शेखर कृत गोपाल-कीर्त्तन-अमृत--यह राधाकृष्णलीला सम्बन्धी पदा-वली का संग्रह है।

पदावली---हिन्दी विभाग

तुलसीदास कृत कृष्ण-गीतावली--कृष्ण-गीतावली कृष्णलीला सम्बन्धी पदा-वली का संग्रह ग्रंथ है। इसमें ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया है। इसकी रचना-तिथि का स्पष्ट निर्देश कहीं नहीं दिया है। कुछ विद्वान इसकी रचना-तिथि संवत् १६३० वि. से लेकर १६४३ वि. तक बताते हैं।[१] परन्तु सब लोग इनसे सहमत भी नहीं हैं।[२]

तुलसीदास कृत रामगीतावली--इसका नाम गीतावली या 'पदावली रामायण' करके भी दिया हुआ है। तब इसमें विनयपत्रिका भी सम्मिलित थी, ऐसा अनुमान किया जाता है।[३] इसकी हस्तलिखित प्रतियां पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुई हैं। इस रचना में, जो छोटी ही है, रामलीला वर्णित है। इस रचना की तिथि का स्पष्ट निर्देश कहीं भी नहीं है। विद्वानों ने अनुमान लगाए हैं और फलस्वरूप संवत् १६१५ वि. से लेकर १६४३ वि. के लगभग

१. तुलसी. कवि., पृ. ४०५, हि. सा. आ. इ., पृ. ४१२
२. तुलसी. -- माताप्रसाद गुप्त, पृ. ३४३-४५
३. तुलसी. -- माताप्रसाद गुप्त, पृ. १९६-२००

के बीच तक रचना-तिथियां बताई हैं ।[१] इस कृति की भाषा ब्रज है। सम्पूर्ण कृति कांडों में विभक्त है। ये कांड मानस के सदृश्य ही हैं, परन्तु रचना उससे कहीं छोटी है।

तुलसीदास कृत विनयपत्रिका——यह रचना विनयावली नाम से भी प्रसिद्ध है। इसकी रचना रामविनय सम्बधी स्फुट पदों में हुई है। राम के साथ-साथ उनकी पत्नी सीता, भाई, पार्षद सबके लिए स्तुतियां हैं। पदों से संयुक्त यह रचना तुलसीदास की राम के दरबार में दी गई अर्जी है। इसीलिए उन सब की स्तुति की गई है जो राम के प्रिय हैं और तुलसी की सिफारिश उनसे कर सकते हैं। रचना-तिथि का स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं है। एक हस्तलिखित प्रति पर सं० १६६६ वि. दिया है।[२] ऐसा ज्ञात होता है कि कवि के जीवन काल में किसी ने इसकी प्रतिलिपि की थी। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसका उल्लेख करके उन रचना-तिथियों पर भी विचार किया है जो अन्य विद्वानों ने दी हैं।

इनके मुद्रित संस्करण 'तुलसी-ग्रंथावली, भाग २' में नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रस्तुत किए हैं।

सूरदास कृत सूरसागर–सूरसागर एक विशाल पद संग्रह ग्रंथ है। इसकी रचना भागवत के आधार पर हुई है। कवि ने भागवत के समस्त स्कंधों का पदों में संक्षिप्त रूपांतर किया है। दशम स्कंध अधिक विस्तार से है। इसकी भाषा ब्रज है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। सूरसागर का उल्लेख "वार्त्ता" में है। इसका मुद्रित संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने प्रस्तुत किया है (सं० २००५ वि०)।

गदाधर भट्ट कृत मोहिनीवाणी——इसके लेखक गदाधर भट्ट बताए गए हैं। इनके पदों का संग्रह कुसुम-सरोवर निवासी कृष्णदास महाराज ने 'मोहिनी बाणी' नाम से प्रकाशित किया है।[३] यह संग्रह योग पीठ, उपदेश, विनय, ब्रजजन सम्बन्ध, बधाई, नाम माहात्म्य, यमुना, वंशी, स्मरण-वंदना, अनुराग, रूप माधुरी, श्री राधावदन शोभा, मान, दान, रास, विवाह, भोजन, बसंत, होरी लीला (कृष्ण और चैतन्य दोनों की), वर्षा, झूलन इत्यादि विषयों के पदों को लेकर किया गया है।

माधुरी कृत माधुरीवाणी——इसके रचयिता श्री माधुरी जी हैं।[४] यह रचना पदों में है और छः भागों में है। वंशीवट-विलास माधुरी, उत्कंठा माधुरी, कलि माधुरी, श्री वृंदावन-विहार माधुरी, दान माधुरी, मान माधुरी, ये विभाग हैं। प्रत्येक विभाग के प्रारम्भ में चैतन्य देव की वंदना है। केलि माधुरी के अंत में इस ग्रंथ की रचना तिथि दी है।

संवत् सोलस से असी सात अधिक हिय धार।
केलि माधुरी छटि लिखि श्रावन बदि बुधवार।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास——डा० श्यामसुन्दर दास, पृ. ७७, तुलसी. कवि. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. ३८०, हि. सा. आ. इ., पृ. ४१९–२१

२. तुलसी., पृ. २४०-४३

३. श्री श्री गौड़ीय वैष्णव साहित्य, द्वितीय खंड, पृ. ५८

४. वही, पृ. ५७

सरस-माधुरी कृत सरससागर—इसके रचयिता सरस-माधुरी हैं ।[१] ये राजपूताना के निवासी थे । सरससागर में प्रायः तीन हजार पद संगृहीत हैं । इसमें नाम, धाम, विनय, भगवत्कृपा, विश्वास, विरह, शृंगार, चैतन्य, हितहरिवंश, दादू इत्यादि पर पद हैं । मुख्य भाषा व्रज है जिसमें राजपूताने की प्रादेशिक भाषा भी मिश्रित है ।

सूरदास मदनमोहन कृत सुहृत वाणी—इसके रचयिता सूरदास मदनमोहन हैं । १०५ पदों का संग्रह सुहृत-वाणी के नाम से जयपुर से प्रकाशित हुआ है ।[२] इसमें लालजी की बधाई, श्रीजी की बधाई, पालना झूलना, प्रभाती, मुरली, अनुराग, रास, खंडिता, कुंज बिहार, वसंत, फुल दोल, चन्दन यात्रा, हिंडोला इत्यादि पर पद हैं ।

संग्रह ग्रंथ : बंगाली विभाग

नीचे उन संग्रह ग्रंथों का परिचय दिया जा रहा है जो प्राचीनतम हैं और रचयिताओं के अपने प्रस्तुत किए संग्रह नहीं हैं । आगे चलकर भक्तों ने उन्हें संगृहीत कर दिया है और नाम दे दिए हैं ।

पदसमुद्र—हुगली जिला निवासी हाराधन दत्त ने कई बार लिखा था कि उनके 'अतिवृद्ध पितामह' के समसामयिक बावा बाउल मनोहरदास ने एक पद संग्रह पदसमुद्र नाम से प्रस्तुत किया था जिसमें १५०० पद थे और यह सोलहवीं शती के मध्य में संगृहीत हुआ था ।[३] परन्तु यह संग्रह ग्रंथ किसी ने देखा नहीं । कहा जाता है कि इसकी हस्तलिखित प्रति हाराधन दत्त के पास थी । उनकी मृत्यु के बाद उसका पता नहीं चला ।[४]

क्षणदा-गीत-चितामणि—'क्षणदा-गीत-चिंतामणि' के संकलनकार श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती हैं । इनका नाम 'हरिवल्लभ' या 'वल्लभ' भी है । सतीशचन्द्र राय की सम्मति है कि यह संकलन सत्रहवीं शती में किया गया था, यद्यपि चक्रवर्ती महाशय सोलहवीं शती के अंत में थे ।[५] इसमें तीस क्षणदायें हैं जिनके नाम शुक्ल और कृष्ण पक्ष की तिथियों पर 'सप्तमी क्षणदा, अष्टमी क्षणदा' करके हैं । समस्त पद कृष्ण-राधा लीला विषयक हैं । इस संग्रह का सर्वप्रथम संपादन वृंदावन के प्रसिद्ध आचार्य राधानाथ गोस्वामी के शिष्य कृष्णपद बावाजी ने किया था और मुद्रित संस्करण देवकीनंदन यंत्रालय वृंदावन ने निकाला ।

पदामृत समुद्र—इसका संकलन राधामोहन ठाकुर ने किया था । ये १७वीं शती के अंतिम भाग में थे । पदामृत समुद्र में ७४६ पदों का संग्रह है जिसमें २२८ पद इनकी अपनी रचना हैं । स्वर्गीय रामनारायण विद्यारत्न ने राधारमण यंत्रालय से इसका सटीक संस्करण निकाला था ।

गीतचन्द्रोदय—इस संग्रह ग्रंथ के संकलनकर्ता नरहरि चक्रवर्ती हैं । उन्होंने अपने संग्रह ग्रंथ को आठ भागों में बांटा है:—

---

१. श्री श्री गौड़ीय वैष्णव साहित्य, खं. २, पृ. ५९
२. वही, पृ. ५६
३. दीनेशचन्द्र सेन, पृ. ५६२
४. वही, पृ. ५६२
५. प. क. त., परिशिष्ट, भूमिका, पृ. १

१. गौरकृष्णामृत
२. गौरकृष्णभावनामृत
३. गौरकृष्णचरितामृत
४. गौरकृष्णविलासामृत
५. गौरकृष्णलीलामृत
६. नित्यसेवामृत
७. नामामृत
८. प्रार्थनामृत

इसमें मुख्यतया गौरांग सम्बन्धी पद हैं। कुल मिलाकर ४३ पदकर्त्ताओं के पद संगृहीत हैं।

पदकल्पतरु--"पद कल्पतरु" के संग्रहकार वैष्णवदास हैं, जिनका असली नाम गोकुलानंद सेन है। ये राधामोहन ठाकुर के शिष्य थे। 'पदकल्पतरु' में चार शाखा में हैं। प्रथम शाखा में ११, द्वितीय में २४, तृतीय में ३१, और चौथे में २६ पल्लव हैं। इस संग्रह में १३० पदकर्त्ताओं के लगभग ३००० पद संगृहीत हैं।

पदरससार--श्री निमानंददास ने 'पदकल्पतरु' के आदर्श पर इस संग्रह ग्रंथ को प्रस्तुत किया। 'पदकल्पतरु' में जिन पदकर्त्ताओं के पद दिए हैं, उनके अतिरिक्त २१ अन्य व्यक्तियों के पद भी इसमें हैं। इसमें लगभग २००० पद संगृहीत हैं।

पदरत्नाकर--१२१३ बंगाब्द में कमलाकांत दास ने इस संग्रह को प्रस्तुत किया था। इसमें ४३ तरंगें हैं। कुल मिलाकर १३५८ पद संगृहीत हैं जिसमें १२ या १३ स्वरचित पद हैं।

(५) जीवनी साहित्य

जीवनी साहित्य की रचना ब्रज अर्थात् हिन्दी वैष्णव साहित्य में अपेक्षाकृत बहुत कम है। बंगीय वैष्णव साहित्य में चरित-ग्रन्थ (जीवनी ग्रंथ) अधिक हैं। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि बंगीय जीवनी साहित्य हिन्दी की अपेक्षा बहुत अधिक है। हिन्दी में जीवनी साहित्य की जो रचना उपलब्ध है वह 'भक्तमाल' है। इस रचना में पौराणिक और लौकिक भक्तों की जीवनी पर अधिकांशतया कुछ अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। कहीं-कहीं एक छप्पय एक भक्त के लिए दे दिया गया है परन्तु अधिकतर नाम का उल्लेख मात्र ही है। एक तरह से यह रचना यशगाथा मात्र है। बंगाली रचना "वैष्णव-बंदनायें" भी इसी प्रकार की हैं। परन्तु बंगला जीवनी साहित्य में इनके अतिरिक्त लम्बे आख्यानक काव्य और अन्य चरितग्रंथ भी हैं जो प्रमुख भक्तों के जीवन पर विशद रूप से प्रकाश डालते हैं। नीचे इन रचनाओं की सूची दी जा रही है।

बंगला विभाग

अद्वैतप्रकाश--ईशाननागर
अद्वैततत्व--श्यामदास
अद्वैतमंगल--हरिचरणदास

अद्वैतसूत्र—कृष्णदास
अद्वैतमंगल—श्यामदास
अद्वैतविलास—नरहरिदास
कड़चा—गोविन्ददास कर्मकार
कड़चा—स्वरूप-दामोदर
कड़चा मंजरी—रामचन्द्रदास
कर्णामृत या कर्णानंद—यदुनंदनदास
गौरांग-विजय—शचीनंदन
गौरांग-अष्टक—बलरामदास
गौरांग-अष्ट-मालिका—नरहरिदास
चैतन्यचरितामृत—कृष्णदास
चैतन्यभागवत—वृंदावनदास
चैतन्य-मंगल—जयानंद
चैतन्य-मंगल—लोचनदास
नित्यानंद-वंश-विस्तार—वृंदावनदास
प्रेमविलास—नित्यानंददास
भुवन-मंगल—चूड़ाभानदास
वीरचन्द्र-चरित्र—बलरामदास
वैष्णव-वंदना—वृंदावनदास
वैष्णव-वंदना—माधवदास
वैष्णव-वंदना—देवकीनंदनदास
वैष्णवाभिधान—देवकीनंदनदास
सीतागुणकदंब—विष्णुदास
सीताचरित्र—लोकनाथदास

हिन्दी विभाग

गोसाईं-चरित—वेणीमाधवदास
भक्तमाल—नाभादास
मूल गोसाईं चरित—रघुबरदास
वार्त्ताएं—गोकुलनाथ

इन जीवनी-ग्रंथों में से कुछ प्रमुख रचनाओं का परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

जीवनी-साहित्य--बंगाली विभाग

कृष्णदास कृत चैतन्यचरितामृत—कृष्णदास कविराज का लिखा यह जीवनी ग्रंथ महाकाव्य की श्रेणी में आता है। इसमें चैतन्यदेव की जीवनी विस्तृत रूप से वर्णित है। उनकी जीवनी के उत्तरार्द्ध पर कवि ने अधिक ध्यान दिया है। कहा जाता है कि ऐसा उन्होंने

इसलिए किया था जिसमें चैतन्य-भागवत का प्रचार कम न हो जाय क्योंकि उसमें पूर्वार्ध पर अधिक ध्यान दिया गया है। इस ग्रंथ में चैतन्य देव की जीवनी के साथ-साथ उनकी भक्ति पद्धति, उनके प्रवर्तित वैष्णव धर्म की नैतिक, तात्त्विक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक सब दृष्टियों से सुन्दर व्याख्या दी है। अतः कथावस्तु के लिए कविराज ने अपने से पहले लिखी चैतन्य जीवनियों से और धर्म की व्याख्या के लिए मुख्यतया भागवत और अन्य धर्म ग्रंथों से सहायता ली है।[1]

अपनी कथावस्तु के अनुरूप ही काव्य गंभीर है। इसकी रचना काल के विषय में मतभेद है। कुछ प्रतियों में अंत में एक श्लोक[2] पाया जाता है जिसके अनुसार १५३७ शक (१६१५ ई०) में यह महाकाव्य रचा गया। परन्तु कुछ प्रतियों में पाठांतर है। कुछ प्रतियों में यह श्लोक है ही नहीं। अतः ठीक तिथि का निर्देश होना कठिन है। इतना कहा जासकता है कि यह सोलहवीं शती के उत्तरार्ध की रचना है। इसमें रघुनाथदास गोस्वामी, वृंदावनदास सब का उल्लेख है।[3] अतः यह ग्रंथ उन्हीं लोगों के आस-पास के समय में रचा गया होगा।

चैतन्यचरितामृत में तीन खंड हैं। आदिलीला, मध्यलीला, एवं अंत्यलीला। प्रत्येक खंड परिच्छेदों में बंटा हुआ है। आदिलीला में १७, मध्यलीला में २५ एवं अंत्यलीला में २० परिच्छेद हैं। प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में उस परिच्छेद में वर्णित विषय की सूची दी है जो इसकी अन्यतम विशेषता है।

इसमें त्रिपदी और पयार छंदों का प्रयोग किया गया है। भाषा में कुछ हिन्दी शब्दों का मेल है। इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व अधिक है और यह तथ्यपूर्ण है।

चैतन्यचरितामृत का सार

आदिलीला, परिच्छेद १—चैतन्य के अवतार का मूल प्रयोजन
२—चैतन्यतत्त्व-निरूपण 'विशेष'
३—अवतार का उद्देश्य
४—अवतार का अंतरंग हेतु
५—नित्यानंद तत्त्व
६—अद्वैत तत्त्व
७—पंचतत्व आख्यान
८—उपक्रमणिका, स्वपरिचय
९—चैतन्य के गुण वर्णन
१०-१२—गौर, नित्यानंद, अद्वैत और गदाधर के शिष्य
१३-१७—जन्म, बाल्यकाल, किशोरावस्था और यौवनावस्था की लीलाओं का वर्णन

---

१. चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५६।
२. शाके सिन्ध्वग्नि वाणेन्दो ज्येष्ठे वृन्दावनान्तरे।
सूर्य्याहासित पंचम्यां ग्रंथोऽयं पूर्णतां गतः॥
३. (क) सेई रघुनाथ जै प्रभु आमार।
(ख) वृंदावनदास पादपद्म करि ध्यान (चै. च., आदिलीला, परि. ८, पृ. ५४)

मध्य लीला, परिच्छेद १—रूप-सनातन वर्णन
२—यौवन लीला के आगे के १२ वर्ष
३—संन्यास की परवर्त्ती घटनायें
४-६—उड़ीसा तीर्थभ्रमण, सार्वभौम मिलन
७-८—दक्षिण भारत की यात्रा, रामानंद से मिलन, भक्ति पर वाद-विवाद
९—दक्षिण भारत भ्रमण
१०-११—प्रत्यागमन
१२-१८—वृंदावन यात्रा, प्रत्यागमन
१९-२५—भक्ति-सिद्धान्त, धर्म इत्यादि का वर्णन
अंत्यलीला, परिच्छेद १-२०—चैतन्यदेवकी जीवनी का उत्तरार्ध, रूप-सनातन से मिलन, दिव्योन्माद इत्यादि।

चैतन्यचरितामृत क्योंकि गाने के लिए नहीं बना था अतः इसमें गेय छंद नहीं हैं। कुछ पद बीच में दिए गए हैं। इसका सर्वप्रथम मुद्रित संस्करण, वेणीमाधव दत्त ने चन्द्रिका प्रेस से प्रकाशित किया था।

वृन्दावनदास कृत चैतन्यभागवत—इसके रचयिता वृन्दावनदास थे। इस ग्रंथ और ग्रंथकर्त्ता दोनों का उल्लेख "चरितामृत" में कृष्णदास ने किया है :—

कृष्णलीला भागवते कहे वेद व्यास।
चैतन्य लीलार व्यास वृंदावनदास॥

(चै. च., आदिलीला, परि. ८,पृ. ५३)

"चैतन्यभागवत" का नाम पहले चैतन्य-मंगल था; फिर न जाने क्यों चैतन्य भागवत हुआ। कहा जाता है जयानंद के चैतन्य-मंगल से अलग करने के लिए नाम परिवर्त्तन किया गया। यह कहां तक ठीक है कहा नहीं जा सकता; परन्तु वृंदावनदास रचित चैतन्य-चरित ग्रंथ का नाम "चैतन्य-मंगल" था इसका उल्लेख चैतन्यचरितामृत में है :—

वृंदावन दास कैल चैतन्यमंगल।
जाहार श्रवणे नाशे सर्व अमंगल॥

(चै. च., आदिलीला परि. ८, पृ. ५३)

इससे भ्रम हो सकता है कि चैतन्यमंगल ही वृंदावनदास रचित है, 'भागवत' नहीं; परन्तु प्रेम-विलास में स्पष्ट उल्लेख है कि यह दोनों ग्रंथ एक ही हैं :—

चैतन्यभागवतेर नाम चैतन्यमंगल छिल।
वृंदावनेर महान्तेरा भागवत आख्या दिल॥

"चैतन्यभागवत" में चैतन्यदेव का चरित्र भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण के चरित्र के रूप में उपस्थित किया गया है। इस प्रकार उन्होंने श्री चैतन्य के अवतार की स्थापना की है।

प्रस्तुत ग्रंथ की निश्चित रचना-तिथि अज्ञात है परन्तु यह नित्यानंद प्रभु के जीवन-

काल में उनकी आज्ञा से ही रचा गया था यह निश्चित है।[1] इसमें श्रीवास, रूप और सनातन का भी ऐसा उल्लेख है कि वे उस समय जीवित थे[2] यह स्पष्ट होता है।

प्रेम-विलास में इस काव्य का रचनाकाल दिया है :––

चौदशत् पंचानव्वइ शकाब्दा जखन।
श्री चैतन्य भागवत रचे दास वृंदावन॥

एक बात और निश्चित है। यह ग्रंथ कृष्णदास के 'चरितामृत' से पहले उपस्थित था क्योंकि उन्होंने इसका उल्लेख किया है।

'चैतन्य-भागवत' का ऐतिहासिक महत्त्व अधिक है। इसमें तात्कालीन बंगाल की दशा का वर्णन है। यह ग्रंथ तीन खंडों में विभक्त है,––आदिखंड, मध्यखंड और अंत्यखंड। आदिखंड में १५ अध्याय हैं। सब में चैतन्य की बाल्यकाल से लेकर गया-यात्रा तक की कथा वर्णित है। मध्यखंड में सत्ताईस अध्याय हैं। यह संन्यास ग्रहण की कथा में ही समाप्त किया गया है। अंत्यखंड में केवल दश अध्याय हैं। नीलाचल बास तक की कथा बताकर यह अत्यन्त आकस्मिक रूप से समाप्त हो गया है। इसका कारण अज्ञात है। कृष्णदास के समय में भी यह इतना ही था, इसका उन्होंने उल्लेख किया है।

नित्यानंदलीलावर्णने हइल आवेश।
चैतन्येर शेषलीला रहिल अवशेष॥

परन्तु यह कारण कहां तक ठीक है, कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि कवि ने चैतन्यदेव के जीवनकाल में ही ग्रंथ समाप्त कर दिया हो।

अम्बिकाचरण ब्रह्मचारी द्वारा प्रकाशित "चैतन्यभागवत" के तीन अतिरिक्त अध्याय "बंगीय साहित्य परिषद्" के संग्रह में है। परन्तु सेन महोदय उन्हें वृंदावन-दास की रचना नहीं मानते। यदि ये तीन पीछे के अध्याय जिसमें चैतन्यदेव की अंत्यलीला वर्णित है वृंदावनदास की रचना होती तो कृष्णदास यह न कहते कि "चैतन्येर शेषलीला रहिल अवशेष"।

यह ग्रंथ पयार छंद में रचित है। त्रिपदी छंद भी हैं परंतु ये वहीं प्रयुक्त हुए हैं जहां काव्य को गेय बनाया है। पद भी हैं। स्थान-स्थान पर राग-रागिनी भी दी हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह गेय काव्य भी है।

लोचनदास कृत चैतन्यमंगल––लोचनदास ने चैतन्यमंगल की रचना मुरारि-गुप्त की संस्कृत रचना 'कड़चा' के आधार पर की है। ये नरहरि सरकार के शिष्य थे और उन्हीं की आज्ञा से उन्होंने इस ग्रंथ की रचना की थी। चैतन्य-मंगल में चार खंड हैं।

---

१. अंतर्यामी नित्यानंद बलिला कौतुके।
चैतन्य चरित्र किछु लिखिते पुस्तके॥

२. अद्यापिओ श्रीवासेर चैतन्य कृपाय।
द्वारे सब उपसन्न हतेछे लीलाय॥ (चै. भा. शेषखंड, अ. ५., पृ. ३१०)
अद्यापिओ दुइ भाइ रूप-सनातन।
चैतन्य कृपाय हैल विदित भुवन॥ (चै. भा., शेषखंड, अ. ५., पृ. ३५०)

१. सूत्रखंड—इसमें मंगलाचरण, गुरु वंदना, शची और जगन्नाथ मिश्र का जन्म, कलि में पाप का आधिक्य वर्णन, नारद का द्वारका में जाकर कृष्ण से कलि के जीवों की दुर्दशावर्णन, कृष्ण का अवतार लेना स्वीकार करना, ब्रह्मा और शिव को सूचना, रुक्मिणी से भावी अवतार की बातचीत करना तथा सब भक्तों का जन्म लेना इत्यादि दिया गया है।

२. आदिखंड—इसमें शची गर्भ स्थिति, चैतन्य की अद्वैत आचार्य द्वारा वंदना, चैतन्य का जन्म, जन्म उत्सव, नामकरण, चैतन्य की बाल्य लीला, उपनयन, जगन्नाथ मिश्र की मृत्यु, चैतन्य का विद्यारम्भ, विवाह, यात्रा, पत्नी लक्ष्मी की मृत्यु, लक्ष्मी का पुनर्जन्म, विष्णुप्रिया से पुर्नविवाह, गया-यात्रा, ईश्वरपुरी से मिलन और दीक्षा-ग्रहण, वृन्दावन यात्रा, तथा नवद्वीप आगमन की कथा वर्णित है।

३. मध्यखंड—इसमें भक्तों से साक्षात्कार, कृष्ण-भक्ति और संकीर्त्तन, नित्यानंद से मिलन, जगाई मधाई उद्धार, वृन्दावन यात्रा की इच्छा, केशव भारती से मिलन, संन्यास ग्रहण, माता-पत्नी का दु:ख, नवद्वीप त्याग कर नीलाचल यात्रा और निवास इत्यादि का विवरण है।

४. शेषखंड—इसमें दक्षिण भारत का भ्रमण, तीर्थ-दर्शन, नीलाचल में पुनरागमन, वृंदावन यात्रा, नवद्वीप आगमन, भक्तों से मिलन इत्यादि की कथा है।

यह रचना वर्णनात्मक है। इसमें छंद भी कई प्रकार के प्रयुक्त हुए हैं। पयार, लघु त्रिपदी, दीर्घत्रिपदी, मध्यतरजा, करुणा इत्यादि छंदों का प्रयोग हुआ है। रचना श्रेष्ठ काव्य मानी जाती है।

जयानंद कृत चैतन्यमंगल—जयानंद की यह रचना पांचाली काव्य की शैली पर है। इसमें ऐतिहासिक की अपेक्षा जनश्रुति पर अवलंबित तथ्य अधिक हैं। इसमें तात्कालीन ऐतिहासिक परिस्थिति का निर्देश मिलता है। चैतन्यदेव संबंधी कुछ ऐसे तथ्य हैं जो वैष्णवों को स्वीकार नहीं है। अत: यह रचना वैष्णव समाज में आदरणीय नहीं है। इसमें चैतन्य-देव के तिरोधान की कथा है। रचना मामूली है। इसका सर्वप्रथम परिचय वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका ने प्रस्तुत किया। फिर नगेन्द्रनाथ वसु और कालिदास नाग ने संपादन करके वंगीय साहित्य परिषद् की ओर से इसे प्रकाशित किया। मुद्रित प्रति का पाठ सम्पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं है।

गोविंददास कृत कड़चा—कहा जाता है कि गोविंददास कर्मकार चैतन्यदेव के सेवक थे जो दक्षिण-भ्रमण में भी उनके साथ गए थे। इन्होंने चैतन्यदेव की जीवनी लिखी जो 'कड़चा' कहलाती है। शांतिपुर निवासी जयगोपाल गोस्वामी ने इस कड़चा का मुद्रित संस्करण संस्कृत प्रेस डिपोजिटरी से १८९५ ई. में प्रकाशित किया था। दीनेशचन्द्र सेन ने एक दूसरा संस्करण स्वयं संपादित करके कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९२६ ई. में प्रकाशित किया था। इस कड़चा की प्रामाणिकता संदिग्धसी ही है। कुछ लोग इसे गोविंद-दास कृत मानते हैं, कुछ नहीं मानते।[1] गोविंद कर्मकार और उनके कड़चा का उल्लेख लोचन, जयानंद या वृंदावनदास किसी ने नहीं किया है।

---

[1] बां. सा. इ., पृ. २७१

स्वरूपदामोदर कृत कड़चा---स्वरूपदामोदर चैतन्यदेव के अनन्य सहचर थे और उन्होंने चैतन्यदेव की जीवनी लिखी थी, इसका उल्लेख 'चैतन्यचरितामृत' में है। इस कड़चा से बहुत सहायता ली गई है, यह भी 'कृष्णदास' ने कहा है। रचना संक्षिप्त है, इसका भी उल्लेख है।[1] यह रचना अब अप्राप्य है।

हरिचरणदास कृत अद्वैतमंगल---अद्वैत आचार्य के ज्येष्ठ पुत्र अच्युतानंद के आदेशानुसार हरिचरणदास ने अद्वैत मंगल की रचना की थी। ये अद्वैत आचार्य के शिष्य थे। इन्होंने अद्वैत आचार्य के मातुल विजयपुरी के मुख से उनकी बाल-लीला सुनी और तब लिखी। उन्होंने अपनी रचना में केवल कवि कर्णपूर का नाम दिया है। इससे ज्ञात होता है कि यह रचना अद्वैत के जीवनकाल में ही बन गई थी। १९०१ ई. में सान्याल ने प्रथम तीन परिच्छेद प्रकाशित किए थे। सर्वप्रथम परिचय बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका ने दिया था।[2] इसकी एक हस्तलिखित प्रति १७१३ शक (१७९२ ई०) की प्राप्त है। कहा जाता है कि अद्वैत के एक अन्य शिष्य श्यामदास आचार्य ने भी एक अद्वैतमंगल रचा था पर वह अब प्राप्त नहीं है। इस ग्रंथ में पांच अवस्था और तेइस संख्यायें हैं।

ईशान-नागर कृत अद्वैतप्रकाश---ईशान-नागर अद्वैत आचार्य के शिष्य थे। चैतन्यदेव के तिरोधान पर अद्वैत आचार्य अत्यन्त संतप्त हुए और आत्मसंगोपन की इच्छा करके उन्होंने ईशान को प्रचार करने का आदेश दिया। उनकी पत्नी ने अद्वैत आचार्य की गुणावली लिखने को कहा। इसलिए 'अद्वैतप्रकाश' की रचना हुई। इस रचना के मुख्य उपादान लाउड़िया कृष्णदास की संस्कृत रचना 'बाललीला-सूत्र' और पद्मनाभ तथा श्यामदास के मुख से सुनी कथा है। यह रचना ईशान ने १४९० शक (१५६९ ई.) में सत्तर वर्ष की आयु में समाप्त की थी। इसमें बाइस अध्याय हैं। अद्वैत की जीवन-घटनाओं के साथ साथ प्रसंगानुसार चैतन्य देव के और अन्य भक्तों के भी वृत्तांत हैं। इस रचना का सर्वप्रथम मुद्रित संस्करण अमृतबाज़ार-पत्रिका के कार्यालय से १८९७ ई. में प्रकाशित हुआ था। साहित्य परिषद् पत्रिका ने (भाग ३, पृ. २४९-५४) एक हस्तलिखित प्रति के अवलंबन पर, जिस पर १७०३ शक (१७८२ ई.) लिपिकाल दिया है, इस रचना का परिचय प्रस्तुत किया था। मुद्रित प्रति के अकृत्रिमत्व पर कुछ लोगों को सन्देह है। वे इसे इतनी पुरानी रचना नहीं मानते।[3]

विष्णुदास कृत सीतागुणकदम्ब---सीतागुण कदंब में अद्वैत आचार्य की पत्नी सीता देवी की जीवनी वर्णित है। लेखक ने स्वपरिचय में अपने को माधवेन्द्र आचार्य का पुत्र और सीता देवी का शिष्य बताया है। श्री हृषिकेश वेदांत शास्त्री ने संपादन करके १३४६ साल (१९३९ ई.) में प्रकाशित किया। रचना का आरम्भ कदाचित् १४४३ शक (१५२१-२२ ई.) में हुआ था।[4]

---

१. मध्य शेष प्रभु लीला स्वरूप दामोदर। सूत्र करि ग्रंथिलेन ग्रंथेर भितर॥
(चै. च., आदिलीला, परि. १३, पृ. ६७)

२. भाग ३, पृ. २५५-६७

३. बां. सा. इ., पृ. २७६

४. बां. सा. इ., पृ. २७७

लोकनाथ कृत सीताचरित--इस छोटी रचना में अद्वैत-पत्नी सीता देवी की जीवनी है। रचना में चैतन्यचरितामृत का लेखक के नाम सहित उल्लेख है। अतः यह अद्वैत आचार्य के शिष्य लोकनाथ चक्रवर्ती की रचना नहीं हो सकती। भक्ति-प्रभा कार्यालय ने इसे १३३३ साल (१९२६ ई.) में प्रकाशित किया। रचना संदिग्ध है।[1]

नित्यानन्ददास कृत प्रेमविलास--नित्यानंददास का जन्म १५३७ ई. में हुआ था। कुछ प्रतियों के आधार पर 'प्रेमविलास' का रचना-काल १६०० ई. बताया जाता है। अतः इस रचना को भी सोलहवीं शती की रचनाओं में सम्मिलित कर लिया गया है। श्रीनिवास आचार्य की द्वितीय पत्नी गौरांगप्रिया के आदेशानुसार उनके शिष्य गुरुचरण-दास ने 'प्रेमामृत' ग्रंथ रचा था। इसमें प्रेमविलास का नाम है। प्रेमविलास की रचना आचार्य की प्रथम पत्नी जाह्नवा देवी के आदेश से हुई थी। इसमें प्रधानतया श्रीनिवास आचार्य और श्यामानंद प्रभु की जीवनी वर्णित है। यह अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व की रचना है। वंग देश में वैष्णव धर्म-प्रचार की कथा इसमें मिलती है। खेतरी उत्सव, तथा कटोया उत्सव का भी वर्णन है। इसके द्वारा बहुत से वैष्णव लेखकों का समय निर्धारित होता है। इसमें बीस विलास हैं। सर्वप्रथम मुद्रित संस्करण बरहमपुर के राधारमण यंत्रालय से प्रकाशित हुआ था। द्वितीय संस्करण यशोदानन्द तालुकदार ने १३२० साल (१९१३ ई.) में प्रकाशित किया।

यदुनन्दनदास कृत कर्णानन्द--यदुनंदनदास सोलहवीं शती के उत्तरार्ध के व्यक्ति हैं। कर्णानन्द १५२९ शक (१६०८ ई.) की वैसाखी पूर्णिमा को समाप्त हुआ था। अतः इसे भी सोलहवीं शती की रचनाओं में सम्मिलित कर लिया गया है। इसमें सात निर्यास हैं। राधारमण यंत्रालय बरहमपुर द्वारा प्रथम मुद्रित संस्करण १२९८ साल (१८९१ ई.) में प्रकाशित हुआ। इसकी रचना प्रेमविलास के अनुरूप ही है।

देवकीनन्दन कृत वैष्णव-वन्दना--'वैष्णव-वंदना' में लगभग २०२ वैष्णव भक्तों की वंदना की गई है। इन व्यक्तियों की जीवनी पर तो कुछ प्रकाश इस रचना से नहीं पड़ता, नाम बहुत से मिल जाते हैं। यही इसका ऐतिहासिक मूल्य है। यह रचना अत्यन्त लोकप्रिय है।

माधवदास कृत वैष्णव-वन्दना--इस रचना का प्रचार उस वैष्णव-वंदना की अपेक्षा, जो देवकीनंदन की रचना है, कम है। वंगीय साहित्य परिषद् ने शिवचंद शील द्वारा संपादित इस रचना को १३१७ पौष वंगाब्द (१९१० ई.) में प्रकाशित किया है। इसमें श्री चैतन्य, नित्यानंद, अद्वैत, हरिदास, श्रीनिवास, रामचन्द्र कविराज, मुरारि गुप्त, वासुदेव, इत्यादि का उल्लेख है।

जीवनी-साहित्य--हिन्दी विभाग

नाभादास कृत भक्तमाल--नाभादास अष्टछापीय कवियों के समकालीन थे। इन्होंने भक्तों का माहात्म्य दर्शाने के लिए भक्तमाल की रचना की थी। इसकी रचना छप्पय छंद में है। इस ग्रंथ में दिए भक्तों के वृत्तांत विशद नहीं हैं, केवल महिमा सूचक हैं।

---

१. बां. सा. इ., पृ. २७७

किसी किसी भक्त का वर्णन एक सम्पूर्ण छप्पय में हुआ है, परंतु अधिकांशतः तो भक्तों के नाम ही दिए गए हैं। एक ही छप्पय में बहुत से नाम आ गए हैं। इस ग्रंथ की रचना-तिथि के बारे में कुछ मतभेद है। सं० १६४२ से लेकर १६८० वि. तक में इसकी रचना बताई जाती है।[1] छोटी और अपूर्ण होने पर भी यह रचना अत्यन्त लोकप्रिय हुई। बंगला के दो कवियों ने भक्तमाल का अनुकरण किया। ये दोनों ही सोलहवीं शती के परवर्त्ती कवि हैं। एक तो लालदास या कृष्णदास बाबाजी रचित ग्रंथ है जिसका नाम भी भक्तमाल ही है। इसमें मूल हिन्दी छप्पय देकर फिर उसका बंगला में भाष्य सा किया गया है। उन सम्पूर्ण भक्तों की नामावली तो बंगला भक्तमाल में नहीं है जो हिन्दी भक्तमाल में है। थोड़े से मुख्य हिन्दी भाषा-भाषी वैष्णव भक्तों का परिचय है। दूसरी रचना जगन्नाथदास कृत भक्तचरितामृत है। यह भी भक्तमाल का अवलंबन लेकर रची गई है।[2]

वेणीमाधवदास कृत मूल गोसाईं चरित--इस छोटी रचना में गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी वर्णित है। इसका एक मुद्रित संस्करण गीता प्रेस गोरखपुर ने सं० १९९१ में प्रस्तुत किया है। इसमें १२१ दोहे, १९ सोरठे, एक सवैया और शेष चौपाइयां हैं।

(६) भाष्य, टीका और अनुवाद

इस विभाग में वैष्णव कवियों कृत वे सब रचनाएं सम्मिलित कर ली गई हैं जो भागवत, पुराणों और अन्य प्रमुख संस्कृत रचनाओं के अनुवाद हैं। रचनाओं के परिचय के साथ उस रचना का उल्लेख कर दिया गया है जिसका वह अनुवाद है। नीचे इन ग्रंथों की सूची दी जा रही है।

बंगला विभाग

कृष्णमंगल	शेखर
कृष्णकर्णामृत	यदुनंदनदास
केशवमंगल	नरहरिदास
कृष्णप्रेमतरंगिणी	रघुभागवताचार्य
गोविंदमंगल	दुःखी श्यामदास
गोविंदलीलामृत	यदुनंदनदास
गीता	गोविंद मिश्र
चन्द्रहास	घनश्यामदास
जगन्नाथ-वल्लभ	लोचनदास
दशम स्कंध	रामकांत
दश-श्लोकी भाष्य	राधाकृष्णदास
दानलीला-चन्द्रामृत	यदुनंदनदास
निकुंज-रहस्य-स्तव	वंशीदास
बृहन्नारदीय पुराण	देवइ

१. अष्ट. व. स., पृ. १०९
२. गौ. वै. सा., पृ. ९६, भाग २

भागवत पुराण	रामकांत
भागवत पुराण	शंकरदेव
भागवत-तत्त्व-लीला	ज्ञानदास
भागवत पुराण	जगन्नाथदास
रसकदंब	कवि वल्लभ
रसिकरंगदा	वीरचन्द्र
राधा-कृष्ण-लीला-रस-कदंब	यदुनंदन
विष्णु-भक्ति-रत्नावली	लाउड़िया कृष्ण दास
सुबोधिनी	चैतन्यदास
स्मरण मंगल	नरोत्तम

हिन्दी विभाग

गीतगोविंद टीका	मीराबाई
निंबादित्य दशश्लोकी भाष्य	हरिव्यास
भागवत दशम स्कंध	नंददास
भागवत भाषा	भूपति
वृंदावन महिमामृत	भगवंत
सुबोधिनी	वल्लभ
हितोपदेश उपाखणा बावनी	अग्रदास

तुलसीदास के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट (१९०४) में 'गीता-भाष्य' अनुवाद ग्रंथ का नाम आया है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट (१९१७-१९१९) में सूरदास के नाम से 'भागवत' नामक एक ग्रंथ का उल्लेख हुआ है।

इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

भाष्य, टीका और अनुवाद—बंगाली विभाग

लोचनदास कृत जगन्नाथ-वल्लभ का अनुवाद—रामराय कृत जगन्नाथ-वल्लभ नाटक का अनुवाद लोचनदास ने किया था। यह अनुवाद पद्य में ही है। इन्होंने अनुवाद में मूल को सुरक्षित रखने की चेष्टा की है। नाटक संस्कृत की रचना है। लोचनदास ने उस पदावली को वैसे ही रख दिया है। उदाहरण के लिए दोनों की कुछ पंक्तियां नीचे दी जा रही हैं:—

मूल

परिणत-शारद शशधर बदना।
मिलिता पाणितले गुरुमदना॥
देवि! किमिह परमस्ति मदिष्टं।
बहुतर-सुकृत फलितमनुदिष्टं॥

अनुवाद

निर्मल-शारद शशधरवदनी।
विदलित-कांचन-निंदितवरणी॥

पिकरुत गुंजित-सुमधुर-वचना ।
मोहन कृत करि शत शत मदना ॥
देवि ! श्रृणु वचनं मम सारं ।
किल गुणधाम मिलित, मनुवारं ॥ इत्यादि । (५।६१)

नरोत्तम कृत स्मरण मङ्गल का अनुवाद--श्री राधाकृष्ण की अष्टकालीन लीला और उपासना संबंधी ग्रंथ स्मरण-मंगल का अनुवाद नरोत्तमदास ने पयार छंद में किया है।

कविवल्लभ कृत रसकदम्ब--रसकदंब की रचना "श्री कृष्णसंहिता" के आधार पर हुई है। इसमें प्रसंग के क्रम से कृष्णलीला का वर्णन है। रसकदंब में बाइस अध्याय हैं। कवि वल्लभ ने रचना में इसका समाप्तिकाल १५२० शक[1] दिया है। यह लगभग १५९९ ई. होता है। बंगीय साहित्य परिषद् ने तारकेश्वर भट्टाचार्य और आशुतोष चट्टोपाध्याय द्वारा संपादित इस रचना को १३३२ साल अर्थात् सन् १९२५ ई. में प्रकाशित किया है।[2]

यदुनन्दनदास के अनुवाद

१. श्री राधाकृष्ण-लीला-रस-कदम्ब--प्रस्तुत रचना रूप गोस्वामी कृत 'विदग्ध-माधव' नाटक का रूपांतर है। बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका ने एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है[3] जिसका लिपिकाल १७, भाद्रपद १५९३ शकाब्द (१६७२ ई.) दिया हुआ है। इस रचना का मुद्रित संस्करण ज्ञानरत्नाकर प्रेस से १८५० ई. में प्रकाशित हुआ है।

२. दानलीला-चन्द्रामृत--प्रस्तुत रचना रूप गोस्वामी कृत 'दानकेलि-कौमुदी' भांडिका का अनुवाद है। केशवचन्द्र दे ने इसे १९१८ ई. में प्रकाशित किया था।

३. गोविन्दविलास--इस रचना का दूसरा नाम गोविन्द-लीलामृत भी है। यह कृष्णदास कविराज की रचना गोविन्द-लीलामृत का अनुवाद है। चैतन्य-चन्द्रोदय प्रेस ने १७७४ शकाब्द अर्थात् १८५२-५३ ई. में इसका मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया।

४. कृष्ण-कर्णामृत--प्रस्तुत रचना बिल्वमंगल कृत संस्कृत रचना 'कृष्ण-कर्णामृत' और उस पर की गई कृष्णदास कविराज की संस्कृत टीका 'सारंग-रंगदा' दोनों का अनुवाद है। बरहमपुर स्थित राधारमण प्रेस ने इसका मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया है।

रघुभागवताचार्य कृत कृष्ण-प्रेम-तरंगिणी--रघुभागवताचार्य गदाधर पंडित के शिष्य थे। इनकी यह रचना बंगला भाषा में भागवत का अनुवाद है। यह अनुवाद अत्यन्त सरल और सरस है। अनुवाद संक्षिप्त है और प्रत्येक अध्याय का धारावाहिक रूप से है। कवि कर्णपूर ने अपनी रचना 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' में इस रचना का उल्लेख किया है। कवि कर्णपूर की रचना १५७७ ई० की है, अतः कृष्ण-प्रेम-तरंगिणी उससे पहले ही रची गई होगी। इसके दो मुद्रित संस्करण प्राप्त हैं। एक तो नगेन्द्रनाथ वसु संपादित और बंगीय साहित्य परिषद् द्वारा १९०५ ई० में प्रकाशित और द्वितीय वसंतरंजन राय द्वारा संपादित और बंगवासी कार्यालय द्वारा १९१० ई० में प्रकाशित।

---

१. विंशति अधिक पंचदश शत

२. बां. सा. इ., पृ. ३३५

३. साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. २५७

भाष्य, टीका और अनुवाद—हिन्दी विभाग

नन्ददास कृत दशम-स्कंध—दशम स्कंध की रचना नंददास ने अपने किसी मित्र के आग्रह पर की थी, ऐसा उन्होंने प्रारंभ में कहा है।

तिन कही 'दशम स्कंध' जुआहि,
भाषा करि लघु बरनौ ताहि। (नं. दास., द. स्कं० १।५)

इस रचना में भागवत दशम स्कंध के उन्तीस अध्यायों का पद्यबद्ध अनुवाद है। दशम स्कंध का मुद्रित संस्करण उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

(७) विविध

इस विभाग में वे रचनाएं ली गई हैं जो सोलहवीं शती के वैष्णव लेखकों और कवियों की रचनायें हैं परन्तु पीछे दिए विभागों में नहीं आतीं। ये समस्त रचनाएं कुछ न कुछ धार्मिकता का पुट अवश्य लिए हैं। कुछ राधाकृष्ण लीला संबंधी, कुछ प्रार्थना वंदना, इत्यादि संबंधी, और कुछ तीर्थ माहात्म्य संबंधी रचनाएँ हैं।

बंगला विभाग

अद्वैततत्त्व	दु:खी कृष्णदास
अर्थरत्नाल्पदीपिका	रामनरायण मिश्र
आत्मजिज्ञासा	कृष्णदास
आत्मनिरूपण	कृष्णदास
आत्मसाधन	कृष्णदास
आद्या-चिन्तामणि	कृष्णदास
आनन्दभैरव	नरोत्तमदास
आनन्दलतिका	लोचनदास
आनन्दलहरी	वृंदावनदास
आश्रयनिर्णय	कृष्णदास
उपासनासार-संग्रह	श्यामानंददास
किशोरीमंगल	कृष्णदास
कुंजरास्तव	यदुनंदनदास
कुंजरास्तव	शचीनंदन
गुरुतत्त्व	कृष्णदास
गुरु-शिष्य-संवाद	कृष्णदास
गोकुलविलास	वृंदावनदास
गोलोकसंहिता	वृंदावनदास
गोवर्धनस्तव	श्यामानन्द
गोवर्धनोपदेश-संप्रार्थना	श्यामानन्द
गौरांग-अष्ट-मालिका	नरहरिदास
चन्द्रमणि	नरोत्तमदास

चमत्कार-चन्द्रिका	नरोत्तमदास
चैतन्य-तत्त्व-सार	कृष्णदास
चैतन्य-प्रेम-विलास	लोचनदास
ज्ञान-रत्न-माला	कृष्णदास
तत्त्वनिरूपण	वृंदावनदास
तत्त्वसार	वृंदावनदास
दिनमणि-चन्द्रोदय	मनोहरदास
दीपान्विता	वंशीवंदन
दुर्लभामृत	रामचन्द्र
देह-कड़च	नरोत्तमदास
नवराधातत्त्व	नरोत्तमदास
निगूढ़-तत्त्वसार	कृष्णदास
नृलोकसार-चिन्तामणि	कृष्णदास
पद्यमाला	रामचन्द्र
पाखंड-दलन	वृंदावनदास
प्रार्थना	नरोत्तमदास
प्रार्थना	लोचन
प्रेमरत्नावली	कृष्णदास
प्रेमविलास	कृष्णदास
प्रेमसाधन	जगन्नाथदास
बाल्यविलास	कृष्णदास
भक्ति-चिन्तामणि	वृंदावनदास
भक्ति-तत्त्व-चिन्तामणि	वृंदावनदास
भक्ति-प्रदीप	शंकर देव
भजनक्रम	कृष्णदास
भजननिर्देश	नरोत्तमदास
भावमाला	श्यामानन्द
भावावेश	वृंदावनदास
मनोवृत्ति-पटल	कृष्णदास
रघुनाथ दास गोस्वामीर शोचक	कृष्णदास
रति-विलास	कृष्णदास
रस-कदंब-कलिका	कृष्णदास
रसमय-चन्द्रिका	कृष्णदास
रागमय-कर्ण	कृष्णदास
रागमाला	नरोत्तमदास
राग-रत्नावली	कृष्णदास

लीलामृतसार	वृन्दावनदास
वीर-रत्नावली	गति-गोविंद
वृन्दावन-ध्यान	कृष्णदास
वृन्दावन-परिक्रमा	दु:खी कृष्णदास
वैष्णवधर्म	वृंदावनदास
शिक्षा-दीपिका	कृष्णदास
शुद्ध-रति-कारिका	कृष्णदास
श्री चैतन्यनित्यानंद संवाद	वृंदावनदास
श्रीवृंदावन-लीलामृत	नंदकिशोरदास
श्रीश्री रूप-सनातन-स्तोत्र	गोवर्धन भट्ट
सखी मंजरीर कुंजदास	कृष्णदास
सार-संग्रह	कृष्णदास
सारासार-कारिका	नरोत्तम
सिद्धान्त-चन्द्रोदय	नरोत्तम
सिद्धिनाम	नरोत्तम
सूक्ष्मतमा-वृत्ति	रामनारायण
सूर्यमणि	नरोत्तमदास
स्मरण दर्पण	रामचन्द्र
स्वरूप-कल्प-लतिका	नरोत्तम
स्वरूप-वर्णन	कृष्णदास
हाटपत्तन	नरोत्तमदास

हिन्दी विभाग

अनेकार्थनाममाला	नंददास
अनेकार्थमंजरी	नंददास
आदिबानी	श्री भट्ट
कुंडलिया	अग्रदास
चैतन्य-काव्य	गौरदास, गोपालदास, परमानन्द गुप्त
चैतन्य-प्रेमविलास	लोचनदास
ध्रुव-चरित्र	परमानन्ददास
नरसी का मायरा	मीराबाई
पंचसहेली	छीहल
फूलमंजरी	नंददास
बरवै रामायण	तुलसी
बावनी	छीतल
मधुमालती	चतुर्भुजदास

युगलशतक	श्रीभट्ट
रसमंजरी	नंददास
राग सोरठ	मीरा
राम-गोविंद	मीरा
रामललानहछू	तुलसीदास
राम-ज्ञान प्रश्नावली	तुलसीदास
रूपमंजरी	नंददास
विज्ञानार्थ-प्रकाशिका	नंददास
विरहमंजरी	नंददास
श्यामसगाई	नंददास
साहित्य-लहरी	सूरदास
सुदामा-चरित	नंददास
हित-चौरासी	हितहरिवंश
हित जी की नामावली	वृंदावनदास
हित जू को मंगल	चतुर्भुजदास

नीचे कुछ प्रमुख रचनाओं का सूक्ष्म परिचय दिया जा रहा है।

विविध बंगला विभाग

कृष्णदास उर्फ श्यामानंद दास की रचनाएं—इन रचनाओं का उल्लेख डा. सुकुमार सेन ने अपने 'बंगला साहित्येर इतिहास' में किया है। श्यामानंद, कृष्णदास, दुःखी कृष्णदास इत्यादि नाम से इनकी रचनाएं मिलती हैं। डा. सेन ने इन रचनाओं का जो विवरण दिया है वह नीचे दिया जा रहा है।[1]

भावमाला—साहित्य सभा वर्द्धमान में सुरक्षित प्रति, संख्या ५३७ घ.

उपासनासार—वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. २५२ पर उल्लेख। आदि से अन्त तक जीव गोस्वामी के दोहों का संग्रह सा ही दीखता है। अन्त में "उपासना सार कहे श्यामानंददास" कह कर कवि ने अपना नाम दिया है।

अद्वैत-तत्त्व—इस रचना का उल्लेख वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ५, पृ. १९७ पर है। प्रति श्रीहट्ट के आसपास की है।

गोवर्धनोपदेश-संप्रार्थना—साहित्य सभा वर्धमान में सुरक्षित प्रति, सं. ५३७ ग.

गोवर्धन-स्तव—इस रचना में लगभग २३ स्तव हैं। साहित्य सभा वर्धमान में सुरक्षित है। प्रति की संख्या ५३७ ख है।

कृष्णदास कविराज की रचनाएं—कृष्णदास कविराज के नाम से जिन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है वे सब ही उनकी रचना हैं, इसमें संदेह है। छोटी-बड़ी कई रचनाएं किन्हीं अन्य कृष्णदासों की हैं जो इनके नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सब रचनाओं की सूची डा.

---

१. बां. सा. इ. पृ. ३२२

सेन ने दी है।[1] यहां इन्हीं के अनुसार इन रचनाओं का सूक्ष्म परिचय दिया जा रहा है।

आत्मजिज्ञासा—यह रचना 'आत्मजिज्ञासा-तत्त्व' अथवा 'आत्मजिज्ञासा-सारात्सार' नाम से भी प्रसिद्ध है। वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. ३१, ४९ पर इसका उल्लेख है। प्राप्त प्रति का लिपिकाल १२१६ साल है। साहित्य सभा बर्धमान में सुरक्षित प्रति है जिसकी संख्या ३१८ है।

आत्मसाधन—वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. ४९ पर उल्लेख है। लिपिकाल जो उल्लिखित प्राप्त प्रति पर है, १२२२ साल दिया हुआ है।

आत्मनिरूपण—इस रचना की प्रति संख्या ३९६६ रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

आश्रयनिर्णय—इस नाम की कई रचनाएँ विभिन्न कवियों के नाम से प्राप्त हैं। इस रचना की हस्तलिखित प्रति रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी में संगृहीत है। प्रति की संख्या ३५८५ है।

जवामंजरी—एक अज्ञातनामा लेखक की अत्यन्त छुद्र रचना 'जवा-मंजरी-तत्त्व-निरूपण' पाई गई है। यह एक प्रकार से 'जवामंजरी' की व्याख्या-सी है। इस रचना का उल्लेख वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ८, पृ. ३३ पर है। प्रति संख्या ३५३ साहित्य सभा बर्धमान में सुरक्षित है।

बाल्य-रस-विलास—वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. ७०-७१ पर इस रचना का उल्लेख है। वैष्णव चरण वसाक ने इसे प्रकाशित किया है।

शिक्षादीपिका—भक्तिरसामृतसिन्धु के अनुसरण में बनी हुई यह रचना कृष्णदास के नाम से प्रसिद्ध है। इसके लेखक ने अपने गुरु का नाम रामचन्द्रदास दिया है। इसकी एक प्रति संख्या ३४१ साहित्य सभा बर्धमान में और एक प्रति संख्या ३७४६ एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

रस-कदम्ब-कलिका—इस रचना को वेणीमाधव दे ने प्रकाशित किया है।

गीत गोविन्द कृत वीर-रत्नावली—यह रचना एक प्रकार से जीवनी ग्रंथ है। इसमें वीरचन्द्र प्रभु की महिमा वर्णित है। लेखक ने वीरचन्द्र और चैतन्य की अभिन्नता स्थापित करते हुए इसे द्वितीय अवतार का प्रयोजन बताया है। फिर उनकी प्रेमभक्ति प्रचार की कथा बताई है। इसमें कई अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के अंत में निम्न पंक्ति है :—

महाप्रभु वीरचन्द्र अमूल्य पद वंदे, वीररत्नावली कहे ए गति गोविन्दे।

नरोत्तमदास की रचनाएं

चमत्कार चन्द्रिका—इस रचना का उल्लेख वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, २६३ पर है। बर्धमान साहित्य सभा में प्रति, संख्या ३०७, सुरक्षित है, जिस पर ११ कार्त्तिक १२१० लिपिकाल दिया हुआ है।[1]

---

१. बां. सा. इ., पृ. ४१७

१. बा. सा. इ., पृ. ३१५

प्रेमभक्ति-चिन्तामणि, चन्द्रमणि, सूर्यमणि---वल्लभदास ने नरोत्तमदास की वंदना करते हुए अपने पद में कहा है :

चन्द्रिका पंचम सार, **तिन मणि सारात्सार**

गुरुशिष्यसंवादपटल

'तिन-मणि' से ऊपर दी गई तीनों रचनाओं से तात्पर्य है। परन्तु चन्द्रमणि और सूर्यमणि का कुछ विवरण ज्ञात नहीं है। प्रेमभक्ति-चितामणि की प्रति (५३५६) एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

देह-कड़च---१६०४ शकाब्द (१६८३ ई०) में की गई हस्तलिखित प्रति का उल्लेख वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ४ में है। यह प्रति कलकत्ता विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

रागमाला---इस रचना की कई प्रतियां प्राप्त हैं। वंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. ५१ पर एक प्रति का उल्लेख है जिसका लिपिकाल १ फाल्गुन ११६२ साल है। इसी भाग के पृ. ६७ पर एक अन्य रचना का उल्लेख है जिसका लिपिकाल २३ ज्येष्ठ १२४१ साल है। शिवरतन मिश्र ने अपनी रचना 'बांगला प्राचीन पुथिर विवरण' में भी इसका विवरण दिया है। एशियाटिक सोसाइटी की सुरक्षित प्रति की संख्या ५३८५ है।

प्रार्थना---प्रस्तुत रचना में नरोत्तमदास के रचे प्रार्थना संबंधी पद हैं। यह रचना वैष्णव समाज में बड़े आदर की दृष्टि से देखी जाती है। इसमें संप्रार्थनात्मिका, स्वदैन्य-बोधिका, साधकदेहेर लालसा-सूचिका, मनःशिक्षा, विलापात्मिका, वैष्णव-महिमा प्रकाशिका, श्री गुरु वैष्णवे विज्ञप्तिरूपा, श्रीधामवासे लिप्सात्मिका, सिद्ध देहेर लालसामयी, एवं आक्षेप बोधिका इत्यादि भेद से प्रार्थना संगृहीत हैं।

मनोहरदास कृत दिनमणिचन्द्रोदय---राय रामानंद के भ्राता वाणीनाथ पट्टनायक के प्रपौत्र ये मनोहरदास थे। इन्होंने अपने भक्तिसंबंधी भाव प्रकट करने के लिए चन्द्रसूर्य-सम राधाकृष्ण की लीला वर्णन की है। अतः रचना का नाम 'दिनमणिचन्द्रोदय' रक्खा। रचना पयार और त्रिपदी छंद में है। रचना में सहजिया वैष्णव मत की छाप अधिक है। उन्होंने गौरांग देव को शिक्षा गुरु माना है :--

शिक्षा गुरु गौरहरि बाउल गोसाईं। तिहं मोर श्री गुरु हन जे दिन देखाई॥

विविध---हिन्दी विभाग

तुलसीदास की रचनाएं

रामलला नहछू---यह अत्यन्त छोटी सी रचना है। इसमें केवल २० छंद हैं। इस रचना में विवाह के समय किया गया राम का नहछू वर्णित है। रचना साधारण है। इसका मुद्रित संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने प्रकाशित किया है।

रामाज्ञा प्रश्न---यह रचना सात सर्गों में है। प्रत्येक सर्ग में सात सप्तक हैं। इसमें रामकथा के साथ साथ शकुन अपशकुन विचार वर्णित है। इसका मुद्रित संस्करण काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रस्तुत किया है।

बरवै रामायण---तुलसीदास ने इस ग्रंथ में बरवै छंद में सम्पूर्ण रामकथा कही है।

इस छोटी सी रचना में सातों कांड हैं। कुल मिलाकर ६९ बरवै हैं। इसका मुद्रित संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रस्तुत किया है।

नंददास की रचनाएँ

रूपमंजरी—यह रचना कृष्ण काव्य संबंधित है। कुंवरि रूपमंजरी का विवाह-संबंध एक अयोग्य वर से ठहरता है। सखी उसका संबंध कृष्ण से करवा देती है। बीच में विरह वर्णन और प्रकृति वर्णन भी है। मुद्रित संस्करण उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

विरहमंजरी—इस छोटी सी रचना में द्वादश मासिक विरहों का वर्णन है। मुद्रित संस्करण उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

रसमंजरी—इस रचना में नायिकाभेद वर्णित है। मुद्रित संस्करण उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ अध्याय

आध्यात्मिक विचार

१. तर्क, श्रद्धा और शब्द प्रमाण

सोलहवीं शती का प्रायः समस्त वैष्णव साहित्य धार्मिक साहित्य है। भाषा में रचित जो साहित्य है उसमें मुख्यतया अपने इष्टदेव की लीला का गान किया गया है। उनके गुण गाए गए हैं और उनकी भक्ति करने की प्रेरणा की गई है। कवियों ने इष्टदेव का स्वरूप वर्णन करने के लिए और मन को भक्ति की ओर उन्मुख करने के लिए ईश्वर, जीव, माया, संसार, भक्ति इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ कहा है, किसी ने कम, और किसी ने अपेक्षाकृत अधिक। यह समस्त वर्णन प्रसंगानुसार है। प्रायः किसी ने भी केवल आध्यात्मिकता या दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए लेखनी नहीं उठाई है। गौड़ीय वैष्णव समाज, और ब्रज वैष्णव समाज दोनों अपने आचार्यों के दार्शनिक सिद्धान्तों को मान कर चले हैं। परन्तु स्वयं दार्शनिकता की उलझनों में नहीं पड़े हैं। यह कार्य रूप, सनातन, जीव और वल्लभ ने किया है। इनके बृहद्-भागवतामृत, लघु-भागवतामृत, षट्-संदर्भ और तत्त्वदीप-निबंध इत्यादि ग्रंथ संस्कृत में रचे गए हैं। इन ग्रंथों में दार्शनिक आलोचनायें तथा श्रीमद्भागवत की व्याख्यायें अपने अपने मतानुसार की गई हैं। भाषा के कवियों ने केवल दार्शनिक विचारों के प्रतिपादन के लिए कोई भी रचना नहीं की। वे भक्त थे, विद्वान् भी थे परंतु आचार्य नहीं थे। उनकी रचनाओं में कृष्ण और राम की लीला वर्णित है। उन्हीं के स्वरूपवर्णन में कहीं कहीं ब्रह्म, ईश्वर इत्यादि का वर्णन आ गया है। इसी प्रकार भक्ति करने के लिए मन को उपदेश देते समय संसार की असारता, माया के स्वरूप, और कार्य का निर्देश किया गया है। इस प्रकार के उल्लेखों को दार्शनिक विचार न कह कर आध्यात्मिक विचार कहना अधिक उचित होगा।

वैष्णव भक्त कवि तो बहुत से हैं और उनका रचा साहित्य भी प्रचुर है। परन्तु आध्यात्मिक विचार जिन्हें महत्त्व दिया जा सके बहुत कम ने प्रस्तुत किए हैं। बंगाली वैष्णव भक्तों में कृष्णदास कविराज ही ऐसे हैं जिन्होंने 'चैतन्यचरितामृत' में आध्यात्मिक विचार उपस्थित किए हैं। 'चैतन्यचरितामृत' में भी लेखक ने केवल दार्शनिकता के प्रतिपादन करने के लिए कुछ भी नहीं कहा है। चैतन्य को कृष्ण बताया है, अतः कृष्ण का स्वरूप बताने में ब्रह्म इत्यादि की व्याख्या की है। नित्यानंद को संकर्षण बलराम बताया है। संकर्षण का स्वरूप और कार्य बताने में संसार, माया और इनकी उत्पत्ति इत्यादि का विवरण आ गया है। चैतन्य और रामानंदराय की वार्त्ता में तथा चैतन्यदेव द्वारा रूप सनातन को उपदेश देने में, भक्ति, श्रुति, शब्द, इत्यादि का विवरण आया है। अर्थात् सब कुछ कथा के प्रसंग में है। स्वतंत्र विवेचन नहीं है। इसी प्रकार हिन्दी की रचनाओं में भी आध्यात्मिक विचार प्रसंगानुसार ही हैं। तुलसीदास ने रामचरितमानस में ब्रह्म की जो कुछ व्याख्या की है वह राम का स्वरूप बताने के लिए। जीव, संसार, भक्ति, माया इत्यादि की कथा कभी राम के मुख से, कभी काग-भुशुंडि के मुख से और कभी शिव से कहलाई है। उन्होंने भी स्वतंत्र रूप से अपनी आध्यात्मिक विचारधारा कहीं भी उपस्थित नहीं की है। नंददास की "सिद्धान्त-पंचाध्यायी" नाम से तो सिद्धान्त संबंधी रचना ज्ञात होती है परन्तु उसमें भी केवल सिद्धान्तों

की विवेचना नहीं, रास इत्यादि का भी वर्णन है। कृष्ण के स्वरूप का वर्णन अवश्य है। वे ब्रह्म बताए गए हैं परन्तु ब्रह्म इत्यादि की व्याख्या नहीं की गई है। सूरदास की रचनाओं में दार्शनिक व्याख्यायें पाई जाती हैं परन्तु वे भी प्रसंगानुसार हैं। उनका "सूरसागर" भागवत के प्रत्येक स्कंध की कथा को लेकर चला है। उसमें भी स्कंध हैं। इस प्रकार भागवत के जिन स्कंधों में दार्शनिक तत्त्वों की जो विवेचना है वह सूरसागर में भी आ गई है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है समस्त आध्यात्मिक विचार प्रसंगानुसार हैं। स्वतंत्र रूप से प्रतिपादित विषय नहीं हैं। अत: उनमें विवेचना नहीं है और न व्याख्या है। ऐसा न होने के कारण तर्कपूर्ण शैली भी नहीं दृष्टिगोचर होती। ये भक्त तर्क को कोई स्थान नहीं देते। जो कुछ ज्ञान है वह तर्क से नहीं आता।[१] वह 'तर्कासह' है। अनुमान प्रमाण से भी कुछ नहीं होता। विश्वास से सब कुछ जाना जा सकता है और सब से बड़ी बात तो ईश्वर की कृपा है।[२] कृष्णदास चैतन्य की भगवत्ता के बारे में और ईश्वर के बारे में भी यही बात कहते हैं।[३] तुलसीदास ने यद्यपि स्पष्ट रूप से तर्क और विश्वास के बारे में कुछ नहीं कहा है परन्तु बालकांड में जो रामकथा दी है उसमें से ध्वनि यही निकलती है।[४] वे बार-बार कहते हैं कि मेरी कविता तो कुछ नहीं है, उसमें वर्णित रामकथा ही सब कुछ है। लोग उसी के लिए कविता का आदर करेंगे।[५] दुष्ट लोग तो हँसी उड़ायेंगे ही, कौए 'कल कंठ' को 'कठोर' कहते ही हैं। परन्तु सज्जन इस कथा में अवगाहन करके पार उतर जायेंगे, काक पिक और बक मराल हो जायेंगे। रामकथा में यह रुचि भी ईश्वर के देने से ही होगी

---

१. प्रति युगे करेन कृष्ण युग अवतार।
तर्कनिष्ठ हृदय तोमार नाहिक विचार॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १२९)

२. आचार्य कहे अनुमाने नहे ईश्वर ज्ञाने॥
अनुमान प्रमाण नहे ईश्वरत्व ज्ञाने।
कृपा बिना ईश्वरेर केह नाहि जाने॥
ईश्वरेर कृपालेश हय त जाहारे।
सेइत ईश्वरतत्व जानिबारे पारे॥ (चै. च., मध्यलीला, परि० ६, पृ० १२९)

३. (१) चैतन्येर गूढ़तत्व जानि इहा हैते।
विश्वास करि शुन तर्क ना करिह चिते॥
अलौकिक लीला एई परम निगूढ़।
विश्वासे पाइये तर्के हय बहु दूर॥ (चै.च., मध्यलीला, परि. ९, पृ.१५६)
(२) अलौकिक लीलाय जार ना हय विश्वास।
इह लोक परलोक तार हय नाश॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १७, पृ. १४१)

४. हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहं मधुर कथा रघुबर की।
(रा. च. मा., बा. ९, पृ. ७)

५. सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। (रा. च. मा., बा. १०, पृ. ८)

और वही उन्हें जानेगा भी जिसे वे जना देंगे।[1] इतने पर भी जो शंका करेंगे वे मूर्ख हैं।[2] कृष्णदास कविराज चैतन्य की कथा केवल विश्वासी भक्त के लिए ही बोधगम्य बताते हैं।[3] 'भक्त कोकिल' के लिए उसमें सब कुछ है, अभक्त 'ऊंट' के लिए कुछ नहीं।

बंगाली भक्त और ब्रज मंडल के भक्त दोनों ही इस बात पर जोर देते हैं कि तर्क से कुछ नहीं होता। तर्क करने वाला, जिसे वे लोग कुतार्किक कहते हैं, अन्धकार में ही पड़ा रहता है। वह विद्वान् होते हुए भी ईश्वर से दूर रहता है। कृष्णदास ने चैतन्यचरितामृत में सार्वभौम ठाकुर और गोपीनाथ आचार्य के बीच में चैतन्य देव के परिचय के बारे में जो बातचीत की है उसमें इसी को दिखाया है। सार्वभौम चैतन्य को कृष्ण अवतार मानने को तैयार नहीं हैं। परन्तु गोपीनाथ उन्हें तर्क से न समझा कर यही कह कर छोड़ देते हैं कि तुम माया के बंधन में हो। वे कहते हैं :—

ईश्वरेर कृपालेश हय त जाहारे।
सेइत ईश्वरतत्त्व जानिबारे पारे॥
.. .. ..
यद्यपि जगद्गुरु तुमि शास्त्र ज्ञानवान।
पृथिविते नाहि पंडित तोमार समान॥
तोमार नाहिक दोष शास्त्रे एइ कहे।
पांडित्याद्ये ईश्वर तत्व कभु ज्ञान नहे॥
.. .. ..
तबुत ईश्वर ज्ञान ना हय तोमार।
ईश्वरेर माया एइ बलि व्यवहार॥
.. .. ..
तोमार आगे एत कथार नाहि प्रयोजन।
ऊषर भूमेते जेन बीजेर रोपण॥

---

१. (१) अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता।
(रा. च. मा., बा. ७, पृ. ५)
(२) सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हई होइ जाई।
(रा. च. मा., अ. १२७, पृ. २२२)

२. एतेहु पर करिहहिं ते असंका। मोहिंतें अधिक जे जड़ मतिरंका।
(रा. च. मा., बा. १२, पृ. ९)

३. ए सब सिद्धान्त गूढ़ कहिते ना जुयाय।
ना कहिले केह एर अंत नाहि पाय॥
अतएव कहि किछु करिया निगूढ़।
बुझिबे रसिक भक्त ना बुझिबे मूढ़॥
.. .. ..
ए सब सिद्धान्त-रस आम्रेर पल्लव। भक्तगण कोकिलेर सर्वदा वल्लभ॥
अभक्त उष्ट्रेर इथे ना हय प्रवेश। . . . (चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. ३१)

तोमार उपरे तांर कृपा जबे हवे ।
ए सब सिद्धान्त तबे तुमिह् करिबे ।।
तोमार जे शिष्य कहे कुतर्क नाना वाद ।
इहार कि दोष एइ मायार प्रसाद ।।
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १२९-३०)

अर्थात् जिस पर ईश्वर की कृपा का लेश होता है वही ईश्वरतत्त्व को जान सकता है । यद्यपि तुम जगद्‌गुरु हो और ज्ञानवान् हो, पृथिवी पर तुम्हारे समान पंडित नहीं है, परन्तु तुम्हारा भी कुछ दोष नहीं है । शास्त्र ऐसा ही कहते हैं कि पांडित्य से ईश्वर का ज्ञान कभी नहीं होता । इतने पर भी तुम्हें ईश्वर का ज्ञान नहीं होता यह ईश्वर की माया ही है । तुम्हारे आगे इस कथा को कहने से कुछ लाभ नहीं है । यह ऊसर भूमि में बीज बोने के समान है । तुम्हारे ऊपर जब उनकी कृपा होगी तब तुम भी यह सब सिद्धान्त कहोगे । तुम्हारे जो शिष्य कुतर्क करके नाना प्रकार के 'वाद' कहते हैं उसमें उनका क्या दोष । यह तो माया का प्रसाद है ।

यद्यपि यह बात गोपीनाथ आचार्य ने चैतन्य की भगवत्ता में अविश्वास करने वाले सार्वभौम भट्टाचार्य और उनके शिष्यों के लिए कही है, परन्तु यह केवल उन्हीं तक सीमित नहीं है । यह समस्त वैष्णव भक्तों का विश्वास है । वे तर्क नहीं मानते, न करते हैं, और न करना चाहते हैं । वे अपने इष्टदेव के, चाहे वे राम हों, चाहे कृष्ण और चाहे चैतन्य, अनन्य भक्त हैं । उनके ईश्वरत्व में वे तर्कहीन विश्वास करते हैं और भक्ति में भर कर उनका गुणगान करते रहते हैं । तर्क और तार्किक उन्हें माया से घिरे और मूढ़ ही ज्ञात होते हैं ।

वैष्णव रचयिताओं ने तर्क को अत्यन्त तुच्छ मान कर उसे अपनी रचनाओं में स्थान नहीं दिया है । परन्तु वे 'प्रमाण' में विश्वास अवश्य करते हैं । हिन्दी वैष्णव लेखकों की रचनाओं में प्रमाण के इस विश्वास को और कौन से प्रमाण मान्य हैं इस बात को इतना अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। बंगाली वैष्णव कवि इसे बहुत अधिक महत्त्व देते हैं । कृष्णदास कविराज ने चैतन्यचरितामृत में चैतन्यदेव के मुख से कहलाया है कि श्रुति के प्रमाण प्रधान हैं ।[१] श्रुतियों में भी वे श्रुतियां विशेष प्रमाण हैं जो वैष्णव धर्म संबंधी हैं । गोपीनाथ आचार्य भागवत और महाभारत को प्रधान शास्त्र मानते हैं ।[२] इन्हीं श्रुतियों के कथन मान्य हैं। वेदों पर वैष्णव लेखकों की आस्था है, तथा उन्हें स्वतः प्रमाण माना गया है ।[३]

---

१. प्रमाणेर मध्ये श्रुति प्रमाण प्रधान ।
श्रुति जे मुख्यार्थ कहे सेइ से प्रमाण ।।
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

२. भागवत भारत दुइ शास्त्रेर प्रधान । (चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १२९)

३. स्वतः प्रमाण वेद सत्य जेइ कये ।
लक्षणा करिते स्वतः प्रमाण्यहानि हये ।।
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

कहने के लिए वेदों को श्रुति मान कर उनकी महत्ता स्वीकार की गई है परन्तु उन्हें अपने लिए 'शब्द' प्रमाण नहीं माना गया है। वेद अत्यन्त गूढ़ हैं, उनका अर्थ समझ में नहीं आता है। अतः उनमें दिए सिद्धान्तों का अर्थ पुराणों से ज्ञात करना चाहिए।[1] चैतन्यदेव कहते हैं कि वेद तो यही कहते हैं कि ब्रह्म सविशेष है, परन्तु लोग लक्षणा से गलत अर्थ करते हैं और भ्रम फैलाते हैं।[2] गीता जीव को भगवान् की शक्ति मानती है परन्तु लोग दोनों में अभेद मानते हैं।[3] यह सब मुख्यार्थ न करके कल्पना से लक्षणार्थ लेने के कारण होता है। वेदों का इसमें कोई दोष नहीं है। वे तो स्वतः प्रमाण हैं ही। उनका लक्षणा से अर्थ मत करो। वेद को न मानने वाले बौद्ध नास्तिक थे। परन्तु वेदाश्रय लेकर लोग बौद्धों से भी अधिक नास्तिकता फैलाते हैं।[4] इन्हीं कारणों से चैतन्यदेव कहते हैं कि पुराणों को मानों, वे गूढ़ नहीं हैं अतः भ्रम में नहीं डालेंगे।

वेदों पर आस्था तो तुलसीदास ने भी दिखाई है। परन्तु इतनी अधिक विवेचना नहीं की है। वेद ने ऐसा कहा है, निगम नेति नेति कहते हैं, वेद में राजा दशरथ विदित हैं, इत्यादि कह कर ही वेदों का महत्त्व स्वीकार कर लिया है।[5] वेद शरीर धारण करके राम की स्तुति भी करते हैं। इन उल्लेखों से अधिक तुलसीदास और कुछ नहीं कहते।

प्राचीन दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन करने वाले ग्रंथों के वैष्णव लेखकों के प्रति आस्था, कृष्णदास को व्यास के सूत्रों के बारे में भी कुछ कहने को बाध्य करती है। सूत्र श्रेष्ठ हैं, श्रद्धा करने के योग्य हैं और मुख्यार्थ लिया जाय तो मानने के भी योग्य हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य ब्रह्मसूत्रों का वही अर्थ बताते हैं जो पीछे से चला आ रहा है। परन्तु

---

१. वेदेर निगूढ़ अर्थ बुझने न जाय।
पुराणवाक्ये सेइ अर्थ करये निश्चय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

२. अतएव श्रुति कहे ब्रह्म सविशेष।
मुख्या छांड़ि लक्षणाते माने निर्विशेष॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३२)

३. गीता शास्त्रे जीवरूप शक्ति करि माने।
हेन जीवे अभेद कर ईश्वरेर सने॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३२)

४. वेद ना मानिया बौद्ध हय त नास्तिक।
वेदाश्रय नास्तिकवाद, बौद्धते अधिक॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३२)

५. (क) तहां बेद अस कारन राखा। (रा. च. मा., बा. १३, पृ. ९)
(ख) तदपि संत मुनि बेद पुराना।
जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥
(रा. च. मा., बा. १२१, पृ. ६४)
(ग) बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊं। (रा. च. मा., बा. १८८, पृ. ९५)

चैतन्यदेव वेदान्त का कुछ दूसरा अर्थ बताते हैं। वे कहते हैं कि सूत्रों का अर्थ तो अत्यन्त निर्मल है।[1] सूत्रों का भाष्य उनका अर्थ प्रकाशित करने के लिए किया जाता है परन्तु लोग भाष्य कह कर तो उन वेदान्त सूत्रों के अर्थ को और भी प्रच्छन्न कर देते हैं।[2] सूत्रों के मुख्य अर्थ न कह कर कल्पना से उन्हें और भी गूढ़ कर देते हैं।[3] उपनिषदों में जो मुख्य अर्थ शब्द के वर्णित हैं उन्हीं को व्यास ने अपने सूत्रों में कहा है।[4] परन्तु लोग उन मुख्यार्थों को छोड़ कर गौणार्थ की कल्पना करते हैं और अभिधा को छोड़ कर लक्षणा लेते हैं। इस कारण सूत्रों का महत्व नष्ट हो जाता है।[5] व्यास के सूत्र तो सूर्य की किरण के समान हैं। स्वकल्पित भाष्य रूप मेघ से उसे ढंक दिया गया है। जीवों के निस्तार के लिए व्यास ने वेदान्त सूत्रों की रचना की थी परन्तु उन सूत्रों का मायावादी भाष्य अत्यन्त विनाशकारी है। परिणामवाद तो व्यास के सूत्रों के अनुकूल है, परन्तु कल्पना कर के विवर्त्तवाद स्थापित किया जाता है।[6] वेदान्त सूत्रों का इस प्रकार का भाष्य आखिर शंकराचार्य ने किया ही क्यों! चैतन्यदेव कहते हैं कि इसमें उनका दोष नहीं है। उन्हें ईश्वर ने ही आज्ञा दी थी जिससे उन्होंने कल्पना करके नास्तिक शास्त्र बनाए।[7]

इस प्रकार बंगाली वैष्णव साहित्यकार शब्द प्रमाण को ही मानते हैं। वेदों को छोड़ कर क्योंकि उनके अर्थ गूढ़ हैं, भागवत, गीता, महाभारत और पुराणों का प्रमाण मानते हैं।

---

१. प्रभु कहे सूत्रेर अर्थ बुझिये निर्मल।

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

२. भाष्य कह तुमि सूत्रेर अर्थ आच्छादिया।

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

३. सूत्रेर मुख्य अर्थ ना करह व्याख्यान।
कल्पनार्थे तुमि ताहा कर आच्छादन॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

४. उपनिषद् शब्दे जेइ मुख्य अर्थ हय।
सेइ मुख्य अर्थ व्यास सूत्रे सब कय॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

५. मुख्यार्थ छांड़िया कर गौणार्थ कल्पना।
अभिधा-वृत्ति छाड़ि कर शब्देर लक्षणा॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

६. जीवेर निस्तार लागि सूत्र कैल व्यास। मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश॥
परिणामवाद व्यासेर सूत्रेर सम्मत।
विवर्त्तवाद स्थापियाछे कल्पना करिया॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३२)

७. आचार्येर दोष नाहि ईश्वर आज्ञा हैल।
अतएव कल्पना करि नास्तिक शास्त्र कैल॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३३)

भागवत को जीव गोस्वामी व्यासदेव प्रणीत वह भाष्य बताते हैं जो व्यास ने स्वयं प्रस्तुत किया। इस प्रकार की श्रुतियों की महत्ता और उन पर अनन्य विश्वास की भावना, बंगाली लेखकों को अपने विचारों को प्रस्तुत करने की शैली को एक खास विशेषता प्रदान करती है जो हिन्दी कवियों में नहीं ही पाई जाती है। बंगाली लेखक अपना विचार स्वतंत्र रूप से नहीं रखते। वे एक बात कहते हैं परन्तु उसे तर्क से सिद्ध नहीं करते। वे अपनी मान्य श्रुतियों में से उस तथ्य का समर्थन करने वाले वाक्य या श्लोक ढूंढ कर रखते जाते हैं। इन्हीं प्रमाण वाक्यों से उनकी विचारधारा की पुष्टि होती है। कदाचित् इस प्रकार ये लेखक अपने कथन का मंडन करके उसको मान्य बनाने की चेष्टा करते हैं। परन्तु ऐसा करने से उनके कथन में विचार-स्वातंत्र्य नहीं रह जाता। ऐसा ज्ञात होता है कि यह समस्त विचारधारा उनकी अपनी नहीं है। वे दूसरों की बातों को अपने शब्दों में कह रहे हैं। वैसे तो प्रायः सभी प्राचीन दार्शनिक अपने दार्शनिक सिद्धान्त वेदान्त सूत्रों की अपनी दृष्टि से व्याख्या करके प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार वह उनकी अपनी वस्तु हो जाती है। परन्तु गौड़ीय वैष्णव लेखक अपनी श्रुति पर इतनी अधिक श्रद्धा रखते ज्ञात होते हैं कि वे कोई भी कथन स्वतंत्र रूप से नहीं कहते। उदाहरणस्वरूप कृष्णदास कविराज कहते हैं, "तुरीय कृष्णेर नाहि मायार गंध" इसी पंक्ति के नीचे श्रीधर स्वामी की श्रीमद्भागवत का एक श्लोक देते हैं :—

> विराट् हिरण्यगर्भश्च कारणं चेत्युपाधयः।
> ईशस्य यत् त्रिभिर्हीनं तुरीयं तत् पदं विदुः॥

श्लोक के ऊपर जिस ग्रंथ का प्रमाण वाक्य देते हैं उसका नाम भी दे देते हैं। ऊपर दिए श्लोक के ऊपर जिस प्रकार "तथाहि श्रीमद्भागवते एकादशस्कंधे पंचदशाध्याये षोडशांकधृते नारायणे तुरीयाख्ये इत्यस्य व्याख्यायां श्रीधरस्वामिधृत श्लोकः" लिखा है उसी प्रकार प्रत्येक विचार को रख कर उसके नीचे इसी प्रकार ग्रंथ और अध्याय इत्यादि का प्रसंग बताकर तब श्लोक दिए गए हैं। यह पद्धति केवल कृष्णदास ने ही नहीं अपनाई है, वृन्दावनदास के "चैतन्यभागवत" में भी ऐसा ही है। रूप, सनातन और जीव गोस्वामी ने भी यही पद्धति अपनाई है। इस प्रकार की पद्धति हिन्दी के वैष्णव कवियों ने नहीं प्रयोग की। तुलसी-सूर जब आध्यात्मिक विचार प्रस्तुत करते हैं तब स्वतंत्र रूप से ही कहते हैं, प्रमाण वाक्य नहीं देते।

कृष्णदास कविराज चैतन्यदेव को कृष्ण बताते हैं। गौड़ीय वैष्णव समाज में सब ही का ऐसा विश्वास है। चैतन्यदेव क्या हैं, उनके गुण इत्यादि क्या हैं, यह सब प्रत्यक्ष रूप से कोई भी नहीं कहता। कृष्ण का स्वरूप, गुण, इत्यादि बताकर परोक्ष रूप से वे सब गुण चैतन्यदेव में बता दिए गए मान लिए जाते हैं। चैतन्य कृष्ण हैं अतः जो कुछ कृष्ण हैं वही चैतन्य भी हैं। कृष्ण स्वयं भगवान हैं अतः चैतन्य भी वही हैं। ऐसा क्यों किया गया है, इसका उत्तर कृष्णदास यों देते हैं :—अवतार ज्ञात होता है परन्तु अवतारी अज्ञात होता है। ज्ञात से ही अज्ञात की ओर जाया जाता है। अतः जो प्रत्यक्ष दीख रहा है, उसको देख कर ही यह समझा जा सकता है कि उसका वास्तविक स्वरूप क्या है। चैतन्य को देख कर उनमें अलौकिक भाव पाकर उन्हें कृष्ण समझा जा सकता है; कृष्ण के स्वरूप को भी कृष्ण के

अवतार से समझा जा सकता है। ज्ञात वस्तु को अनुवाद और अज्ञात वस्तु को विधेय कहते हैं।[1] अनुवाद कह कर विधेय कहना चाहिए। प्रत्यक्ष से परोक्ष का ज्ञान हो सकता है, परोक्ष से प्रत्यक्ष का नहीं। जैसे कृष्ण का स्वयं भगवान होना तो कृष्ण को देख कर साध्य है परन्तु स्वयं भगवान का कृष्णत्व समझा नहीं जा सकता।[2] इस प्रकार एक सिद्धान्त सा बन जाता है जो कुछ इस तरह रक्खा जा सकता है : चैतन्य देव ज्ञात, उनका कृष्णत्व ज्ञात, परन्तु कृष्ण अज्ञात। अवतारी कृष्ण ज्ञात, उनका स्वयं भगवान होना ज्ञात, परन्तु भगवान अज्ञात। यदि चैतन्यदेव को पहचान लिया तब कृष्ण का स्वरूप ज्ञात होगा, फिर भगवान का। परन्तु पहले भगवान का स्वरूप ज्ञात कर लेना कठिन है। इसी सिद्धान्त को लेकर कृष्णदास कविराज ने अपने समस्त आध्यात्मिक विचार उपस्थित किए हैं।

सूरदास, तुलसीदास, नंददास, इत्यादि ने इस प्रकार से अपनी विचारधारा को प्रस्तुत करने की शैली के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। कृष्ण अथवा राम का स्वरूप बताते समय न तो उन्होंने प्रमाण वाक्य ही उद्धृत किए हैं और न प्रत्यक्ष से परोक्ष को जानना चाहा है। कृष्ण क्या हैं, राम क्या हैं, यह वे यों ही सहज भाव से कह जाते हैं। कृष्णदास के बराबर विशद व्याख्या भी इन लोगों ने नहीं की है।

यह तो हुई विचार प्रस्तुत करने की शैली की बात। अब क्रमशः इष्टदेव, संसार, माया, जीव और भक्ति इत्यादि पर इन लेखकों के विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

---

१. चैतन्यचरितामृत, पृ. १५

२. अतएव कृष्ण शब्द आगे अनुवाद।
स्वयं भगवत्व पिछे विधेय संवाद ॥
कृष्णेर स्वयं भगवत्व इहा हैल साध्य।
स्वयं भगवानेर कृष्णत्व हैल बाध्य ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १५)

२. इष्टदेव

सोलहवीं शती के प्राप्त वैष्णव साहित्य में स्पष्ट रूप से तीन इष्टदेव दीखते हैं। गौड़ीय वैष्णव साहित्य में कृष्ण और चैतन्य तथा हिन्दी वैष्णव साहित्य में कृष्ण और राम। इष्टदेव कृष्ण को इष्टदेव राम की अपेक्षा बहुत अधिक भक्तों ने ग्रहण किया है। गौड़ीय वैष्णव साहित्य में तो इष्टदेव राम के प्रायः कहीं भी दर्शन नहीं होते। कहा जाता है कि चैतन्य के अनन्य भक्त और जीवनीकार मुरारि गुप्त उनके सम्पर्क में आने से पहले राम-भक्त थे[1] परन्तु उनके प्राप्त पदों में राम का उल्लेख नहीं है।[2] वासुदेव घोष चैतन्य देव को अवतार बताते समय अवतारों में राम का उल्लेख कर देते हैं और उन्हें पूर्व-अवतार में राम बता देते हैं,[3] परन्तु राम साहित्य प्रायः नहीं के ही बराबर है। कृत्तिवास की रामायण बहुत पहले की रचना है। सोलहवीं शती में प्राप्त प्रायः कोई भी रचना ऐसी नहीं है जो इष्टदेव राम का दार्शनिक स्वरूप स्पष्ट रूप से विवेचना करके बताती हो। कृष्ण के स्वरूप के विषय में दार्शनिक विचारों की तो कमी नहीं है। राम साहित्य में दो तीन उल्लेखनीय रचनाएं हैं।[4] परन्तु उनमें भी राम का दार्शनिक रूप नहीं ज्ञात होता। सोलहवीं शती के गौड़ीय वैष्णव समाज ने राम को किस रूप में देखा यह कहना कठिन है। राम को विष्णु का अवतार बताया है और कुछ राक्षस, जिनमें अतिकाय मुख्य है, उन्हें उस रूप में देखते हैं परन्तु उन राम-कथाकारों ने राम का जो रूप रक्खा है वह अपना स्वतंत्र रूप नहीं ज्ञात होता। इस सम्बन्ध में दीनेशचन्द्र सेन का मत उल्लेखनीय है। वे कहते हैं :—

"The battle fields in the hands of the poets were changed into pulpits. and the Rakshas into reformed Vaishnavas of the Gaudiya order. The influence of Chaitanya is so apparent that we feel inclined to support the theory that it was Kavichandra who brought this flow of Bhakti. It appears that these sinners threw their mantle of the Rakshas of the Bengali Ramayans while Ram and Laksman were made to play the parts of Chaitanya and Nityanand. The Lanka Kand is saturated with Vaishnava ideas and Ram appears as orthodox Vaishnava...."[5]

राम विष्णु के अवतार थे, राक्षसों के मन में उन्हें देख कर भक्ति-भावना उदित होती थी। परन्तु वह भक्ति भावना वही रस-भक्ति है जिसके पुरोहित चैतन्यदेव थे। हिंदी वैष्णव साहित्य में भी राम को इष्टदेव के रूप में देखने वाले कम हैं। परन्तु इस कमी को एक अकेले तुलसीदास ने ही पूरा कर दिया है।

---

१. मुरारि गुप्त मुखे शुनि राम गुण ग्राम।
ललाटे लिखिल तार रामदास नाम॥ (चै. च., आदिलीला, परि. १७, पृ. ८१)

२. पदकल्पतरु में संगृहीत पद ७५१, २१२१, २२३१, २२३५, २२३४

३. (क) सेतु बंध कैला तुमि राम अवतारे। (प. क. त., पद २२९२
(ख) केहो बले पुरवेते रावण बधिला। (प. क. त., पद २१९२)

४. कवि रामचन्द्र की रामायण, चन्द्रावती की रामायण, शंकर देव का नाट्।

5. B. R., page 84.

कृष्ण इष्टदेव के रूप में प्राय: समस्त वैष्णव भक्तों के आराध्य हैं। तुलसीदास ने भी कृष्ण गीतावली लिख कर अपनी कृष्ण भक्ति का परिचय दिया है। अन्य सब छोटे बड़े कवियों ने जिनकी संख्या सैकड़ों तक पहुंचती है कृष्ण को इष्टदेव और एकमात्र आराध्य मान कर रचनाएं की हैं। कृष्ण के दार्शनिक रूप की विवेचना सबने नहीं की है। पर उनके ईश्वर होने का उल्लेख, और उस प्रकार लीला गुण गान प्राय: सबने किया है। दार्शनिक विवेचनापूर्ण व्याख्या मुख्यतया कृष्णदास कविराज ने और प्रसंगानुसार सूरदास और नंद-दास ने की है।

गौड़ीय वैष्णव समाज में चैतन्यदेव भी उसी प्रकार इष्टदेव के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं जिस प्रकार कृष्ण। सोलहवीं शती के प्रत्येक वैष्णव कवि ने चैतन्यदेव का लीला गुण गान किया है। मानो उनकी लीला गुण गान और भक्ति कृष्ण की ही गुण गान और भक्ति है। वासुदेव घोष, मुरारि गुप्त, नरहरि इत्यादि ने तो केवल चैतन्य पर ही पद लिखे हैं। जिन लोगों ने कृष्ण पर रचनाएं की हैं उन्होंने "तदुचित गौर-चन्द्रिका" कह कर चैतन्य पर भी समानान्तर रचनाएं की हैं। चैतन्य तत्त्व हैं, कृष्ण हैं यह उन लोगों का विश्वास है। हिन्दी वैष्णव साहित्य में वल्लभाचार्य पर भी कुछ पद मिलते हैं। उनमें उन्हें परब्रह्म, कृष्ण, अवतार सब बताया है।[1] उक्तियों की समानता होते हुए भी उनमें से उनके ईश्वरत्व की भावना दृढ़ विश्वास के रूप में परिलक्षित नहीं होती। कृष्णदास कविराज चैतन्य-तत्व की भी व्याख्या करते हैं और नित्यानंद एवं अद्वैत की भी। परन्तु जिस प्रकार चैतन्य उस व्याख्या के फलस्वरूप "कृष्ण" हो जाते हैं, और नित्यानंद, और अद्वैत नहीं हो पाते, उसी प्रकार उक्तियों की समानता होते हुए भी वल्लभ 'कृष्ण' नहीं हो जाते। सूरदास ने तो केवल एक पद ही उन पर लिखा है। वह गुरु वंदना मात्र है।[2]

---

१. (क) श्री वल्लभ सुखकारी।
पुरुषोत्तम लीला अवतारी ॥
काल अकाल तें न्यारे।
रसनिधि प्रेम भक्ति प्रतिपारे।
गोविंद प्रभु गिरिराज उद्धरण।
श्री वल्लभ सुखकारी ॥
(की. सं., भाग २ जो, पृ. २१०)

(ख) शोभा शिरोमणि प्रकट पुरुष
प्रमाण भूतल आवीया।
कृष्णदास के प्रभु आय प्रगटे
ब्रज सुन्दरी मन भावीया ॥
(की. सं., भा. २ जो, पृ. २१६ इत्यादि)

२. भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन सब जग मांझ अंधेरो ॥
साधन और नाहिं या कलि में जासों होत निबेरो। . . . . . इत्यादि

३. इष्टदेव—चैतन्य और वल्लभ

चैतन्य—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है चैतन्यदेव और वल्लभाचार्य की भावना में भेद है। यह भेद तात्कालीन दोनों वैष्णव समाजों में उन लोगों को प्राप्त स्थान के कारण है। हिन्दी वैष्णव समाज में वल्लभ वे नहीं हैं जो गौड़ीय समाज में चैतन्य हैं। दोनों के विषय में कथनों की समानता के कारण दोनों का विवरण एक साथ ले लिया गया है।

चैतन्यदेव के जीवन काल में उनके नदिया निवासी भक्तगणों ने उन्हें ईश्वरत्व की श्रेणी तक पहुंचा दिया था और उन्हें 'स्वयं कृष्ण' माना था। यह भावना नदिया तक ही सीमित नहीं रही, आगे भी बढ़ी। वृन्दावन स्थित षट् गोस्वामी गौड़ीय वैष्णव धर्म के व्यवस्थाकार थे। इन लोगों ने कृष्ण की भगवत्ता और उनके एकमात्र सत्य होने को सिद्धान्त रूप में बड़े विशद तर्कों द्वारा, अन्य प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर स्थापित किया है, परन्तु चैतन्य के देवत्व के बारे में वे लोग प्रायः मौन हैं। इन गोस्वामियों ने अपने काव्यों के प्रारंभ में जो संस्कृत में हैं, नमस्-क्रियाओं में चैतन्य की वंदना ईश्वर, कृष्ण इत्यादि के रूप में अवश्य की है।[1] परन्तु अपने सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से जिसके द्वारा वे कृष्ण को परम सत्य मानते हैं इस भावना का संतुलन करने की चेष्टा नहीं की। या तो उस समय चैतन्य का स्वयं कृष्णत्व और परम तत्व होना इतना अधिक निर्विवाद था कि उन लोगों ने इसे सिद्ध करने की चेष्टा ही नहीं की अथवा जब वे कृष्ण के परम तत्व होने को बड़ी गवेषणापूर्ण रचनाओं द्वारा प्रतिपादित कर चुके थे तब दूसरे को परतत्व सिद्ध करके स्वमत का ही खंडन कैसे करते! जो कुछ भी हो भाषा में प्राप्त साहित्य चैतन्य देव के बारे में

---

१. (क) हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्त्तितोऽहं वराक-रूपोऽपि।
तस्य हरेः पदकमलं वंदे चैतन्य-देवस्य॥ (रूप गोस्वामी, भ. र. सि.)

(ख) अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ।
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्॥
हरिः पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-संदीपितः।
सदा हृदय-कंदरे स्फुरतु वः शचीनंदनः॥ (रूप गोस्वामी, ल. मा.)

(ग) स्वदयितनिज-भावं यो विभाव्य स्वभावात्।
सुमधुरमवतीर्णो भक्तरूपेण लोभात्॥
जयति कनकधामा कृष्ण-चैतन्य-नामा।
हरिरिहजतिवेशः श्री शचीसूनुरेषः॥ (सनातन गो., बृ. भा.)

(घ) वंदे श्रीकृष्णचैतन्यं भगवंतं कृपामयम्।
प्रेम-भक्ति वितानार्थं गौड़ेष्ववततार यः॥ (सनातन गो., बै. तो.)

(ङ) निजामुज्ज्वलितां भक्ति-सुधामर्पयितुं क्षितौ।
उदितं तं शची-गर्भ-व्योम्नि पूर्णं विधुं भजे॥ (रघुनाथदास, मुक्ताचरित्र)

बहुत कुछ कहता है।

चैतन्य परतत्व हैं—वेदादि शास्त्र और उपनिषद् में जिसे अद्वैत ब्रह्म कह कर निर्देश करते हैं वह इन्हीं चैतन्य की अंगकांति है; जिसे परमात्मा या अंतर्यामी पुरुष कहते हैं वह इन्हीं का अंश स्वरूप है। जो जगत् की उत्पत्ति और प्रलय करता है, जीवों की अगति और गति दोनों हैं, ज्ञान-गम्य और ज्ञानातीत, पुरुष-प्रधान, षडैश्वार्यशाली पूर्ण भगवान हैं वह यही चैतन्य हैं। इन कृष्ण-चैतन्य से भिन्न अन्य कोई भी परतत्व नहीं है।[1] चैतन्य अद्वैत ब्रह्म से भी ऊपर हैं क्योंकि वह तो केवल उनकी अंगकांति ही है। परमात्मा चैतन्य का अंश है अतः अंशी चैतन्य उससे बहुत बड़े हैं। यह परतत्व ब्रह्म, आत्मा और भगवान्, ये तीन रूप प्रकाश विशेष से धारण करता है।[2] चैतन्य देव यह सब हैं। वे देवी-देवों के वंदनीय और योगी-यती के परम ध्येय हैं।[3] वे समस्त संसार के पिता अचिंत्य अगम्य तत्व हैं।[4] कृष्ण जो स्वयं भगवान हैं, पूर्ण ज्ञान, पूर्णानन्द एवं परतत्व हैं, वही कृष्ण-चैतन्य देव के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। अर्थात् चैतन्य परतत्व हैं।[5] उपनिषद् जिस ब्रह्म को सुनिर्मल और शुद्ध प्रकाश से युक्त बताते हैं और जिस ब्रह्म की विभूति करोड़ों ब्रह्मांडों में भरी है वह ब्रह्म गोविंद की अंगकांति मात्र है। वही गोविन्द चैतन्य है।[6] यह गोविंद षडैश्वर्य से पूर्ण हो कर, लक्ष्मी सहित 'नारायण' नाम धारण करके परव्योम में बैठता है। यह नारायण भगवान हैं और भक्त को ही उपलब्ध होते हैं। क्योंकि चैतन्य और गोविंद में कोई भेद नहीं है,

---

१. यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा।
य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांशविभवः॥
षडैश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान् स स्वयमयम्।
न चैतन्यात् कृष्णाज्जगति परतत्वं परमिह॥
(चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ. १)

२. प्रकाश विशेषे तेंह धरे तिन नाम।
ब्रह्म परमात्मा आर स्वयं भगवान॥ (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११)

३. ब्रह्म आत्म भगवान्, जांरे सर्वशास्त्रे गान, देव-देवीर चरणबंदन।
जोगी जति सदा ध्याय तवु जांरे नाहि पाय, वंदो सेइ शचीर नंदन॥
(गौ. प. त. १।२।६१)

४. जय आदि हेतु जय जनक सवार।
.. .. ..
जय जय अचिंत्य अगम्य आदि तत्व। जय जय परम कोमल शुद्ध सत्व॥
(गौ. प. त. १।२।६५)

५. स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व। पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व॥
नंदसुत बलि जांरे भागवते गाइ। सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोंसाञि॥
(चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ. ११)

६. तांहार अंगेर शुद्ध किरण मंडल।
उपनिषद् कहे तांरे ब्रह्म सुनिर्म्मल॥

अतः चैतन्य और नारायण भी एक ही हैं। चैतन्य देव भी षडैश्वर्य-पूर्ण लक्ष्मीकांत भगवान हैं। यह अनंत जीवों में प्रकाशित हैं, अतः चैतन्य भी अनन्त जीवों में प्रकाशित हैं। वे भी परव्योम के स्वामी हैं।[1]

चैतन्य विष्णु हैं—विष्णु परब्रह्म का गुणावतार मात्र हैं। चैतन्य क्योंकि परब्रह्म और परतत्व हैं, अतः वे विष्णु भी हैं।[2] यह क्षीर-सागर-शायी, रमापति और सिंधु-सुता के स्वामी हैं। चैतन्य बैकुंठ के नाथ हरि हैं।

चैतन्य ने ही समस्त अवतार लिए—वासुदेव घोष, गोविन्ददास, वृंदावनदास इत्यादि ने इस मत का बार-बार उल्लेख किया है। चैतन्य केवल कृष्ण ही नहीं हैं, राम, कृष्ण, हिरण्यकश्यप इत्यादि सब हैं। वे जानकी-वल्लभ राम थे, जिन्होंने सेतु बांधा था।[3] ये चैतन्य धनुषधारी राम हैं जिन्होंने रावण का वध किया था।[4] ये चैतन्य अखिल भुवनपति

कोटि कोटि ब्रह्मांडे जे ब्रह्मेर विभूति।
सेइ ब्रह्म गोविंदेर हय अंगकांति॥

.. .. ..

सेइत गोविंद साक्षात् चैतन्य गोसाञि। (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११-१२)

१. (क) सेइत गोविंद साक्षात् चैतन्य गोसाञि।
जीव निस्तारिते एछे दयालू आर नाञि॥
परव्योमेते वैसे नारायण नाम।
षडैश्वर्य पूर्ण लक्ष्मीकांत भगवान॥ (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १२)

(ख) अनंत स्फटिके जैछे एक सूर्य भासे। तैछे जीवे गोविंदेर अंश परकाशे॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १२)

(ग) तुमि से वेदांत वेद तुमि नारायण।.... (गौ. प. त. १।२।६३)

२. (क) विष्णु अवतारे तुमि प्रेमेर भिखारी। शिव शुक नारद लैया जना चारि॥
(वासुदेव घोष, प० क० त०, पद २२९२)

(ख) तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण तुमि यज्ञेश्वर।
तोमार चरण युगे गंगातीर्थ वर॥ (वृंदावनदास, गौ. प. त. १।२।६३)

३. (क) केह कहे जानकी वल्लभ छिल राम।....
(गोविन्ददास, गौ. प. त. १।२।१७)

(ख) केह बोले गोरा, जानकीवल्लभ।.... (नयनानंद, गौ. प. त. १।२।४)

(ग) जानकी-जीवन तुमि, तुमि नरसिंह।... (वृंदावनदास, गौ. प. त. १।२।६३)

(घ) सेतु बंध कैला तुमि राम अवतारे।......
(वासुदेव घोष, प० क० त०, पद २२९२)

४. (क) राम अवतार, धनुक धरिया।.... (रामानंद, गौ. प. त. १।२।४९)

(ख) केह बले पूरबे रावण बधिला (वासुदेव घोष, गौ. प. त. १।२।३)

(ग) तुमि रक्ष-कुलहंता जानकीजीवन। तुमि प्रभु वरदाता, अहिल्या मोचन॥
(वृंदावनदास, गौ. प. त. १।२।६४)

हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर सब में अवतार लेकर ध्यान, यज्ञ, पूजा का प्रकाश किया और अब चैतन्य रूपमें आए हैं।[1] वृंदावनदास कहते हैं कि 'तुम नरसिंह हो,तुमने प्रह्लाद केलिए अवतार लिए, हिरण्यकश्यप का वध किया, इसलिए नृसिंह कहलाए। तुम अनंतशयन हो, नारायण हो, तुम्हीं ने छल करके वामनरूप में बलि को छला। तुम मत्स्य हो, तुम कूर्म हो, और तुम्हीं वाराह हो। तुम इसी प्रकार अवतार लेकर प्रति युग में देवताओं का पालन करते हो। तुम्हीं ने अजामिल का उद्धार किया। तुम महाकाल स्वरूप हो। तुम इच्छामय महामहेश्वर हो। तुम सर्वकाल में सत्य हो।[2]' वासुदेव घोष कहते हैं कि जो जगन्नाथ हैं वे ही चैतन्य हैं। नीलाचल में जगन्नाथ शंखचक्र धारण करके निवास करते हैं परंतु नदिया में दंड और कमंडल लिए हैं। बस इतना ही अंतर है। वे ही एक ईश्वर हैं, उन्हें ब्रह्म और शिव भी भक्ति कर के नहीं पाते।[3] इस प्रकार ईश्वर के जितने भी अवतार स्वरूप हो सकते हैं वे सब चैतन्य हैं।

चैतन्य कृष्ण हैं---चैतन्य देव के कृष्णत्व को सिद्ध करने के लिए तर्कपूर्ण प्रयत्न कृष्णदास कविराज ने किया है। अन्य वैष्णव कवियों ने भी यत्रतत्र इसका उल्लेख किया है। चैतन्य और कृष्ण अभिन्न हैं ऐसा सब का ही विश्वास है। मंगलाचरण के सर्वप्रथम श्लोक में ही कृष्णदास चैतन्य न कह कर कृष्ण चैतन्य कहते हैं।[4] चैतन्य तत्त्व का निरूपण करने में इसीलिए कृष्ण तत्व का निरूपण किया गया है। कृष्ण तत्त्व का निरूपण ही चैतन्य तत्त्व का निरूपण है।[5] चैतन्य स्वयं भगवान ब्रजेन्द्रनंदन हैं। जो कृष्ण स्वयं भगवान परतत्व, पूर्णानिन्द , पूर्ण ज्ञान हैं और भागवत नंदसुत कह कर जिनका गान करती है वही कृष्ण चैतन्य रूप में अवतीर्ण हुए हैं। उन्हीं ब्रजेन्द्र कुमार अवतारी कृष्ण ने चैतन्य अवतार लिया है। और आगे चल कर कृष्णदास कहते हैं कि चैतन्य साक्षात् शृंगार, एवं रसमय मूर्ति कृष्ण हैं। स्वयं भगवान कृष्ण नंदात्मज हैं, एक ईश्वर हैं, रास करने वाले हैं, सबको नचाते हैं, वही कृष्ण चैतन्य हैं।[6]गोविंददास कविराज कहते हैं कि जो पहले गोकुल में गोपाल थे वे

---

१. (क) अखिल भुवनपति, गोलोके जांहार स्थिति।
(गोविंददास, गौ. प. त. १।२।२२)

(ख) सत्य त्रेता द्वापर, सत्ययुगेर ईश्वर, ध्यान यज्ञ, पूजा, प्रकाशिला।
नवद्वीपे अवतरि, सेइ हैल गौरहरि...।
(माधवदास गौ. प. त. १।२।२६)

२. गौरपदतरंगिणी, द्वितीय उच्छ्वास, पद संख्या ६३, ६४, ६५, ६६, ६७।

३. पदकल्पतरु, पद १६३४, २१९२

४. तत् प्रकाशांश्च तच्छक्तीः कृष्णचैतन्य संज्ञकं।
(चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ. १)

५. चैतन्य प्रभु महिमा कहिबार तरे।
कृष्णेर महिमा कहि करिया विस्तारे॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १७)

६. (क) चैतन्य गोसाञिर एइ तत्त्व निरूपण।
स्वयं भगवान चैतन्य ब्रजेन्द्रनंदन॥(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १७)

ही श्रीकृष्ण चैतन्य गौरांग शची के दुलारे हैं; जो ब्रजेन्द्र नंदन थे वे ही शची सुत हैं।[1] शिवानंद कहते हैं कि पहले जो गोपीनाथ श्रीमती राधिका के साथ थे, वे ही अब सुखदायी चैतन्य हैं। पहले हाथ में वंशी थी, अब दंड कमण्डल है।[2] नरहरि कहते हैं कि यह तो तुम्हारी चतुराई है कि तुम ब्रजभूमि को शून्य करके, नदिया में अवतीर्ण हुए हो। न तो शिखि पुच्छ है, न पीत वस्त्र है, न हाथ में वंशी है, परन्तु इस रूप में भी मेरा मन भ्रम में नहीं डाला जा सकता। तुम वही ब्रज के कन्हाई हो, जिसे विश्वास न हो आकर देख जाय।[3] जो कृष्ण परतत्व हैं

(ख) स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व।
पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व॥
नंद सुत बलि जांरे भागवते गाइ।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसाञि॥ (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११)

(ग) सेइ कृष्ण अवतारी ब्रजेन्द्रकुमार।
आपना चैतन्यरूपे कैल अवतार॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १६)

(घ) श्रीकृष्ण चैतन्य गोसाञि ब्रजेन्द्र-कुमार।
रसमय मूर्ति कृष्ण साक्षात् श्रृंगार॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. ३१)

(ङ) स्वयं भगवान कृष्ण एकले ईश्वर।
अद्वितीय नंदात्मज रसिक-शेखर।
रासादि विलासी ब्रज ललना-नागर।
आर जत सब देख तांर परिकर॥
सेइ कृष्ण अवतीर्ण श्रीकृष्ण चैतन्य।
सेइ परिकर गण अंशे सब धन्य॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ७, पृ. ४६)

(च) एकले ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य॥
एइमत चैतन्य गोसाञि एकले ईश्वर।
आर सब पारिषद् केह वा किंकर॥
(चै. च., आ. ली., परि. ५, पृ. ३८)

१. (क) श्रीकृष्ण चैतन्य गोरा शचीर दुलाल।
एइ जे पूरवे छिल गोकुलेर गोपाल॥
(गोविन्ददास, गो. प. त. १।२।१७)

(ख) ब्रजेन्द्र नंदन जेई शची सुत हैल सेइ।..
(गोविन्ददास, गौ. प. त. १।२।१८)

२. गौ. प. त., पृ. १५

३. गौ. प. त., पृ. १२

वे ही चैतन्य हैं अतः चैतन्य परतत्व की सीमा है।[१] ये श्रीकृष्ण-चैतन्य पंच-तत्व स्वरूप हैं। वे भक्ति-रूप, भक्ति स्वरूप, भक्तावतार-रूप, भक्ताख्या रूप, और भक्ति-शाक्तिक रूप है।[२]

प्राय: ये समस्त उक्तियां वल्लभाचार्य के लिए भी प्राप्त हैं। उनके भक्त भी उन्हें केवल अलौकिक पुरुष ही नहीं, ब्रह्म, कृष्ण सब मानते हैं।

वल्लभ पूर्ण ब्रह्म हैं—नंददास कहते हैं कि श्री लक्ष्मण के गृह पर बधाई बजती है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म प्रगट हुए हैं।[३] वे पूर्ण परमानंद पुरुष हैं जिनका स्मरण करने मात्र से सब पवित्र हो जाते हैं।[४] वे अनन्त लीला पूर्ण सनातन ब्रह्म हैं।[५] वे पूर्ण पुरुषोत्तम, सकल कला-गुण-निधान हैं, जिनका यश वेद गाते हैं और जो समस्त श्रुतियों के सार हैं।[६] इन पूर्ण-काम पुरुषोत्तम की ज्योति करोड़ों सूर्य भी नहीं दिखा सकते। निगम इन्हें नेति नेति कह कर

---

१. सेइ कृष्ण अवतारी ब्रजेन्द्रकुमार।
आपना चैतन्यरूपे कैल अवतार॥
अतएव चैतन्य गोसाञि परतत्त्व सीमा।······
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १६)

२. चैतन्यचरितामृत, आदिलीला, परि. १, पृ. ३)

३. श्री लक्ष्मण गृह बजत बधाई।
पूरण ब्रह्म प्रकटे पुरुषोत्तम श्री वल्लभ सुखदाई॥ (की. र., पृ. २७१)

४. पुरुष परमानन्द पूरण भक्तहित वपु धारियो।
नाम सुमरत भये पावन सकल खल कलिके जिया।
कृष्णदास प्रभु की गाय लीला मन मनोरथ कर लिया॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २७५)

५. पूरणब्रह्म सनातन माधो।
कलि केशव अवतार वहां॥
... ...
गोपालदास अनन्त लीला प्रकट श्री वल्लभ भया॥
(गोपालदास, की. र., पृ. २७४)

६. (क) श्री वल्लभ पूरण पुरुषोत्तम सकल वेद यश गावे।
श्रीविट्ठल गिरिधरनलालसों, अहर्निश प्रीति बढ़ावे॥
(की. सं., भाग २ जो, पृ. २०५)

(ख) श्री लक्ष्मण गृह आइ नवनिधि।
प्रगटे जान पूरण पुरुषोत्तम द्वार बुहारत फिरत अष्टसिधि॥
(की. र., पृ. २७४)

(ग) प्रगट भये पूरण पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार।
रामदास प्रभु सब भक्तन के जीवन प्राण आधार॥
(रामदास, की. सं., भाग २ जो, पृ. २०७)

पुकारते हैं। सनकादिक शुक, शिव, शेष, नारद, शारदा सब वर्णन करके पागल हो गए पर पार नहीं मिला।[१] इन ब्रह्म ने इस बार ब्राह्मण का शरीर धारण किया है। वे ईश्वर के स्वरूप हैं, अखंड अवतारी हैं, युगावतार धारण किया है आसुरी जीवों का उद्धार करने के लिए।[२] वे ही सब के आदि अंत हैं।[३]

वल्लभ विष्णु हैं—वल्लभ के विष्णुत्व का अधिक उल्लेख नहीं है। वे गरुड़गामी हैं, यही कह दिया गया है। षोडश-ग्रंथ-संग्रह में यह कहा गया है कि वल्लभ विष्णु के मुख की अग्नि लेकर प्रकट हुए हैं। इस बात का उल्लेख कई जगह है कि वे अग्नि-स्वरूप हो कर उत्पन्न हुए हैं।[४] कुंभनदास 'रमापति' कह कर उनके विष्णु होने का उल्लेख करते हैं।[५]

वल्लभ कृष्ण हैं—वल्लभ के कृष्णत्व का तो अनेक पदकर्ताओं ने उल्लेख किया है। कुंभनदास कहते हैं कि मैं वल्लभ अवतार का वर्णन करता हूं। गोकुलपति फिर से गोकुल में प्रगट हुए हैं, वे सकल विश्व के आधार हैं।[६] कमल दल के से नेत्र वाले हैं और मधुर बाणी बोलते हैं। वे भक्तों के प्राणाधार सकल सुख-दाता श्री गोकुल नाथ हैं।[७] उनके भजन से मन निर्मल होता है। यह भजन भी बड़े भाग्य से मिलता है। यह निश्चय रूप से गोकुलपति हैं।[८] वृन्दावन के वे ही इंदु प्रगट हुए हैं जिन्होंने रस की वर्षा की थी और जिन्होंने गोवर्धन धारण किया था और जिनका मुख देख कर गोपी ग्वाल जीवित रहते थे।[९] इस जन्म में

---

१. कृष्णदास का पद, कीर्तन संग्रह, पृष्ठ २१६

२. नमो श्री वल्लभाधीश स्वामी।
अखंड अवतार जुगधार लीला करी।
आसुरी जीव सब मोह पामी॥ (कृष्णदास, की. र., पृ. ३६५)

३. सकल कला संपूरण गुणनिधि आदि अन्त जय नमो नमो।
(कृष्णदास, की. र., पृ. २८६)

४. आज जगती पर जय जय कार।
प्रगट भये श्री वल्लभ पुरुषोतम वदन अग्नि अवतार॥
(गिरिधर, की. र., पृ. २७१)

५. अष्टसिधि नवनिधि रमापति अखिल भुवन के मुकुट मनी।
(की. र., पृ. ३६३)

६. बरनों श्री वल्लभ अवतार।
गोकुल पति प्रगटे फिर गोकुल सकल विश्व आधार।
(कुंभनदास, की. सं., भाग २ जो, पृ. २०६)

७. कृष्णदास, कीर्तन-रत्नाकर, पृ. २७५

८. रसिकदास, कीर्तन-रत्नाकर, पृ. २८०

९. उदित भयो इन्दु वृन्दाविपिन को हरण बरख रस,
बचन सुन श्रवण निजजन पिये।
कृष्णदासनि नाथ हाथ गिरिधर धर्‌यो साथ सब,
गोप मुख निरख नैनन जिये॥ (कृष्णदास, की. र., पृ. २८१)

लक्ष्मण के पुत्र जो हैं वे अगम निगम में वर्णित देवता और मुनि को भी अप्राप्य, सकल कला और गुणों के निधान पूर्ण पुरुष नंदनंदन हैं। वे स्मरण करते ही तीनों तापों का हरण कर लेते हैं।[1] यशोदा के पुत्र ने भक्तों को अपना सुख देने के लिए वल्लभ के रूप में अपनी मूर्ति प्रगट की है।[2] कृष्णदास कहते हैं कि शोभा-शिरोमणि, व्रज सुन्दरियों के मनभावन, प्रमाण पुरुष, पृथ्वी पर आए हैं।[3] कोई उन्हें कुछ कहे परन्तु कृष्णदास (स्वकीयजन) उन्हें कृष्ण ही कहते हैं।[4]

---

१. अगम निगम कहत जाहि सुर नर मुनि न लहे ताहि
सकल कला गुणनिधान पूरण उर लाऊं।
गोविन्द प्रभु नन्दनन्दन श्रीलक्ष्मण सुत जगत वन्दन
सुमरत त्रय ताप हरत चरण रेणु पाऊं ॥
(गोविन्द स्वामी, की. र., पृ. २८२)

२. यशोमतिसुत निज सुखदेवेको मुख मूरति प्रगटाई ॥
(रसिकदास, की. सं., भाग २ जो, पृ. २०४)

३. शोभा शिरोमणि प्रकट पुरुष प्रमाण भूतल आवीया।
कृष्णदास के प्रभु आयप्रगटे व्रज सुन्दरी मन भावीया ॥
(की. सं., भाग २ जो, पृ. २१६)

४. कोउ कहे विप्र कोउ विविध पंडित कहे
कोउ कहे अंश कोउ आत्मारामी ।
स्वकीय जन एक निर्धार निश्चे कीये
वस्तुतः कृष्ण जो वन्वे दामी ॥
(की. र., पृ. ३६५)

४. चैतन्य और वल्लभ के अवतारों के कारण

गौड़ीय वैष्णव साहित्य में और हिन्दी वैष्णव साहित्य में ही चैतन्य और वल्लभ अवतार बताए गए हैं। उनके-कृष्ण अवतार होने का विश्वास अधिक स्पष्ट है। प्रश्न उठता है कि इन अवतारों का कारण क्या है। कृष्ण को क्यों ऐसी आवश्यकता आ गई कि वे पृथ्वी पर फिर से अवतरित हों। वल्लभ अवतार के लिए जो कुछ कारण बताए गए हैं वे निम्न हैं :—

१. **भक्तों का हित करने के लिए**—श्रीकृष्ण ने जो श्रीमुख से वचन कहे थे कि मैं भक्तों के लिए आता हूं, वे ही वचन पूरे करने के लिए गोवर्धनधारी कृष्ण ने पृथ्वी पर शरीर धारण किया है। भक्तों के प्राणाधार श्री वल्लभ भक्तों के उद्धार के लिए प्रगट हुए हैं।[1]

२. **भागवत का प्रकाश करने के लिए**—शुक के मुख से अमृतरस रूपी जो भागवत निकली है उसके अर्थ अत्यन्त गूढ़ हैं। उन गूढ़ अर्थों का प्रकाश करने के लिए वल्लभ ने जन्म लिया है। उस भागवत में जो आत्म अंग है अर्थात् कृष्ण और कृष्ण भक्ति का अंग है, उसे प्रगट करने के लिए आए हैं।[2]

३. **पुष्टिमार्ग का प्रकाश करने के लिए**—श्री वल्लभ उस पुष्टि का रस देने और प्रगट करने आए हैं जो पाखंड को दूर करती है। पुष्टि का प्रकाश करके माया मत को दूर

---

१. (क) श्री मुख वचन कहे प्रतिपाले भक्त भय हरे आप धनी।
ताहीते दासत्व दिखायो, श्रीकृष्ण वदन प्रकटे अगनी।
याहीते भूतल बपुधार्‌यो, दैविकी विघ अधिक बनी।
कुंभनदास प्रभु गोवर्द्धन धर मिट गये रविसुत त्रास रनी।।
(की. र., पृ. ३६३)

(ख) प्रगट्या प्रानअधार श्री वत्सल भक्त हित वपु धारियो।
दैवीजीव उद्धारण कारण करुणासिन्धु विचारियो।।
(विष्णुदास, की. सं., भाग २ जो, पृ. २१४)

२. (क) शुक मुख द्रवित सुधारस मथ के गूढ़भाव दशविध कर ले।
(की. र., पृ. २८६)

(ख) श्रीभागवत गूढ़ रस प्रकटन कारण क्रीयो विचार।।
(रसिक, की. सं., भाग २ जो, पृ. २०४)

(ग) सकल पतित उद्धारन कारन प्रकट कियो अवतरन।
गूढ़ श्री भागवत प्रति पद अरथ प्रकट करन।।
(हरिदास, की. र., पृ., ३६३)

(घ) श्री भागवत आत्म अंग जिनके प्रगट करन विस्तार।
(गिरिधर, की. र., पृ. २७९)

करेंगे, इस प्रकार मर्यादा की रक्षा करने के लिए वे अवतरित हुए हैं।[1]

संक्षेप में वल्लभाचार्य के अवतार के ये ही तीन कारण हैं। चैतन्यदेव के अवतार के कारणों का विवरण इतने संक्षिप्त रूप में नहीं दिया गया है। उनके अवतार के कारणों का विशेष विवरण कृष्णदास कविराज ने दिया है। वे उनके कृष्ण-अवतार होने के कई कारण बताते हैं। ये कारण बहिरंग और अन्तरंग दो प्रकार के हैं।[2] इन्हीं कारणों के वश कृष्ण फिर से चैतन्य रूप में आए।

१. बहिरंग कारण

(१) प्रेम-भक्ति प्रचार
(२) संकीर्तन प्रचार
(३) अपनी भक्ति देना
(४) भक्तों का ऋण परिशोध करना

२. अंतरंग कारण

(१) जिस प्रकार राधा कृष्ण-प्रेम का आस्वादन करती थीं उसी प्रकार स्वप्रेम आस्वादन करने के लिए।
(२) अपनी रूप माधुरी का आस्वादन उसी प्रकार करने के लिए जैसे राधा करती थीं।
(३) राधा के महाभाव का वास्तविक रूप समझने के लिए।

१. बहिरंग कारण—कृष्णदास कहते हैं कि बहिरंग कारण मुख्य कारण नहीं है। यह सब भी सत्य हैं। द्वापर युग के अन्त में अठ्ठाइस चतुर्युग जब हो गए, तब कृष्ण ने अवतार लिया। वे ब्रज लोक और भक्त सबको लेकर प्रकाशित हुए। वे दास्य, सख्य,

---

१. (क) प्रकटे पुष्टि महारस देन।
श्री वल्लभ हरि भाव अति मुख रूप समर्पित लेन ।।
(रसिकदास, की. र., पृ. २८७)

(ख) मायामत को दूर करेंगे पुष्टिभक्ति प्रकटाई।
(सगुणदास, की. र., पृ. २८८)

(ग) फल्यो जन भाग्य पथ पुष्टि प्रकट करण
दुष्ट पाखंड मत खंड खंडन किये।
.. ..
सकल मर्याद मंडन प्रभु अवतरे ।।
(कृष्णदास, की. र., पृ. २८१)

२. सत्य एइ हेतु किन्तु एहो बहिरंग।
आर एक हेतु शुन आछे अंतरंग ।।
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २२)

वात्सल्य, श्रृंगार चारों भावों के भक्तों के वश में रहते हैं।[1] दास, सखा, माता-पिता, और प्रेयसी गण इन सब के साथ प्रेमाविष्ट हो कर कृष्ण ब्रज में क्रीड़ा करते थे। यथेच्छ विहार करके वे अन्तर्ध्यान हो गए। अंतर्ध्यान होने के बाद वे मन में विचार करते हैं कि मैंने चिर-काल से प्रेम-भक्ति का दान नहीं किया। भक्ति के बिना जगत का कल्याण नहीं है। समस्त संसार वैधी भक्ति कर रहा है। इस भक्ति से ब्रज भाव को शक्ति नहीं मिलती। सारा संसार मेरे ऐश्वर्य ज्ञान से भरा है और इस ऐश्वर्य भाव से अद्भुत भक्ति मुझे अच्छी नहीं लगती। ऐसे भक्त चार प्रकार की भक्ति पाकर बैकुंठ जाते हैं परन्तु मेरा भक्त ब्रह्म-सायुज्य नहीं चाहता जो वैधी भक्ति से मिलता है।[2] अतः मैं शुद्ध भक्ति को सिखाने के लिए जन्म लूंगा।[3] इसके साथ ही साथ युग-धर्म-संकीर्तन का प्रचार करूंगा और चार भाव की भक्ति देकर संसार को नचाऊंगा। चैतन्यदेव कृष्ण थे परन्तु वे स्वयं कृष्ण-भक्ति क्यों करते थे? इसका उत्तर कृष्णदास यह कह कर देते हैं कि अपने आप न करे तो संसार में कोई कुछ

---

१. अष्टाविंश चतुर्युगे द्वापरेर शेषे। ब्रजेर सहित हय कृष्णेर प्रकाशे ॥
दास्य, सख्य, वात्सल्य श्रृंगार चारि रस। चारि भावे भक्त जत कृष्ण तार वश ॥
दास सखा पिता माता प्रेयसी गण लआ। ब्रजे क्रीड़ा करे कृष्ण प्रेमाविष्ट हआ ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १७)

२. यथेच्छ विहार कृष्ण करि अन्तर्धान।
अन्तर्धान करि मने करे अनुमान ॥
चिरकाल नाहि करि प्रेम भक्ति दान।
भक्ति बिना जगते नाहि अवस्थान ॥
सकल जगते मोरे करे विधि भक्ति।
विधि भक्तये ब्रजभाव पेते नाहि शक्ति ॥
ऐश्वर्य ज्ञानेते सब जगत मिश्रित।
ऐश्वर्यशिथिल प्रेमे नाहि मोर प्रीत ॥
ऐश्वर्य ज्ञानेते विधि भजन करिया।
बैकुंठेते जाय चतुर्विध मुक्ति पाआ ॥
सार्ष्टि सारूप्य आर सामीप्य सालोक्य।
सायुज्य ना लय भक्त जाते ब्रह्म ऐक्य ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १७)

३. एई शुद्धभक्ति लये करिनु अवतार।
करिव विविध विधि अद्भुत विहार ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २२)

४. युग धर्म प्रवर्त्ताव नाम संकीर्तन। चारि भाव भक्ति दिया नाचाव भुवन ॥
आपनि करिव भक्तभाव अंगीकारे। आपनि आचरि भक्ति शिखाव सवारे ॥
आपनि ना कैले धर्म शिखान ना जाय। एइत सिद्धांत गीता भागवते गाय ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १७)

सिखा नहीं सकता। अतः मैं स्वयं वैसा आचरण करूंगा। अतः मैं अपने भक्तगण साथ लेकर धरती पर अवतरित हूंगा और नाना प्रकार की लीला करूंगा। ऐसा सोच कर कलिकाल की प्रथम संध्या को वे नदिया में अवतरित हुए।[1] कलियुग का युग-धर्म ही नाम-प्रचार है। उसीलिए पीतवर्ण चैतन्य आए।[2] एक मुख्य हेतु भक्तों का उद्धार और ऋण परिशोध करना भी है। अद्वैत आचार्य ने जन्म लेकर देखा कि संसार में कृष्ण-भक्ति नहीं है। लोग पाप पुण्य करके विषय भोग कर रहे हैं, भक्ति का नाम निशान भी नहीं है जिससे भय-रोग नष्ट हो सकें। भक्त तुलसी जल से कृष्ण की पूजा करते हैं। भगवान कृष्ण उनका ऋण मानते हैं। वे आत्मा बेच कर भी भक्तों का ऋण परिशोध करेंगे। अतः मैं उनका आवाहन करूं, वे अवश्य आएँगे। अद्वैत भक्त की भावना और आवाहन के फलस्वरूप भी कृष्ण आए।[3]

२. **अंतरंग कारण**—अंतरंग कारण एकमात्र प्रेम-रस का आस्वादन है। चाहे वह राधा भाव का हो, चाहे गोपी भाव का हो। प्रश्न यह उठता है कि कृष्ण ने ब्रज अवतार में क्या इस प्रेम का अनुभव नहीं किया था जो अब आए। इस प्रेमास्वादन को कृष्णदास मूल कारण बताते हैं। वे कहते हैं, कि शास्त्र बराबर कहते हैं कि कृष्ण का अवतार पृथ्वी का भार हरण करने के लिए हुआ था, परन्तु स्वयं भगवान का कार्य पृथ्वी का भार हरण नहीं है। यह तो सृष्टिकर्ता विष्णु का काम है। परन्तु वह समय (भारहरण का) कृष्ण के अवतार का था। इस प्रकार भार हरण का काल और कृष्ण अवतार का काल एक साथ मिल गए। जिस समय पूर्ण भगवान का अवतार होता है उस समय सब अवतार आकर उससे मिल जाते हैं। अतः नारायण, विष्णु इत्यादि सब पूर्ण भगवान कृष्ण में स्थित थे। उन्हीं विष्णु के द्वारा कृष्ण ने असुरों का संहार किया। यह असुर मारना अवतार का आनुषंगिक कारण है। रसिक शेखर कृष्ण के अवतार लेने का मुख्य हेतु तो प्रेम रस का आस्वादन और राग-मार्गी भक्ति का प्रचार है। इन्हीं दोनों इच्छाओं से उन्हें कलियुग में अवतार लेने की इच्छा हुई। चैतन्य अवतार का समय संयोग से युग धर्म प्रचार का भी समय था। अतः कृष्ण जो प्रेम रस का आस्वादन करने आए थे, युग धर्म (नाम संकीर्त्तन) का भी प्रचार करने

---

१. ताहाते आपन भक्तगण करि संगे ।
पृथिवीते अवतरि करिब नाना रंगे ॥
एत भावि कलिकाले प्रथम संध्याय ।
अवतीर्ण हैला कृष्ण निजे नदियाय ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १८)

२. कलियुगे युग धर्म नामेर प्रचार ।
तथि लागि पीतवर्ण चैतन्यावतार ।
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १८)

३. चैतन्येर अवतार एई मुख्य हेतु ।
भक्तेर इच्छाय अवतार धर्मसेतु ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. २१)

लगे थे।[१] कृष्ण कहते हैं, कि मेरा पुत्र, मेरा सखा और मेरा प्राणपति कह कर जो मेरी भक्ति करते हैं, वह शुद्ध भक्ति है। मैं उन्हीं के वशीभूत रहता हूं। मां का पुत्र-भाव का बंधन और मुझे दीन समझना, सखाओं का समता करना, प्रिया की भर्त्सना करना, सब मुझे वेदों की स्तुति से भी अधिक अच्छा लगता है। मैं इसी शुद्ध भक्ति के लिए अवतार लूंगा।[२] ब्रज की इस निर्मल राग-भक्ति को सुनकर सब भक्त धर्म-कर्म छोड़ कर राग-मार्ग से भजन करेंगे।[३]

कृष्ण की तीन शक्तियों में एक ह्लादिनी शक्ति है। उसका सार प्रेम है। प्रेम का सार भाव है। भाव की पराकाष्ठा महाभाव है। महाभाव-स्वरूपा श्री राधा है। राधा कृष्ण से प्रेम करती हैं जो महाभाव-स्वरूप हैं।[४] कृष्ण सोचते हैं, कि न जाने राधा का वह प्रेम

---

१. चैतन्यचरितामृत, आदिलीला, परि. ४, पृ. २२

२. मोर पुत्र मोर सखा मोर प्राणपति।
एइ भावे जेइ मोरे करे शुद्धभक्ति॥
आपनाके बड़ माने मोरे समहीन।
सेइ भावे हइ आमि ताहार अधीन॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २२)

३. ब्रजेर निर्मल राग शुनि भक्तगण।
रागमार्गे भजे जेन छाड़ि धर्म्म कर्म्म॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २२)

४. (क) ह्लादिनीर सार प्रेम प्रेम सार भाव।
भावेर परमकाष्ठा नाम महाभाव॥
महाभाव स्वरूपा श्रीराधाठाकुरानी।
सर्व्व गुणखनि कृष्णकांता शिरोमणि॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

(ख) सेइ प्रेमेर राधिका परम आश्रय।
सेइ प्रेमेर आमि हइ केवल विषय॥
विषय जातीर सुख आमार आस्वाद।
आमा हैते कोटिगुण आश्रये आह्लाद
आश्रय जातीय सुख जेते मन धाय।
जत्ने नारि आस्वादिते कि करि उपाय॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २६-२७)

(ग) एइ एक शुन आर लोभेर प्रकार। स्वमाधुर्य देखि कृष्ण करेन विचार।
अद्भुत अनन्त पूर्ण मोर मधुरिमा। त्रिजगते एर केह नाहि पाय सीमा।
.. ..
दर्पणाद्ये देखि जदि आपन माधुरी। आस्वादिते हय लोभ आस्वादिते नारि॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २७)

कैसा है। राधा प्रेम का आश्रय है, मैं उनके प्रेम का विषय हूं। मैं केवल 'विषय' जाति का सुख अनुभव करता हूं परन्तु 'आश्रय' का सुख कोटि गुना अधिक होता है। यत्न करके भी उसे आस्वादन नहीं कर सकता। अच्छा हो, यदि किसी प्रकार कर सकूं। उस प्रणय में कैसी शक्ति है जो मुझे भी नचा लेती है। अतः कृष्ण ने राधा भाव जानने के लिए चैतन्य का अवतार लिया। फिर आगे कृष्ण सोचते हैं, कि मेरी मधुरिमा अद्भुत, अनंत और पूर्ण है। उसे राधा और भक्त अपने अपने भाव से आस्वादन करते हैं। मैं उसे कैसे अनुभव करूं। दर्पण से भी नहीं अनुभव कर सकता। अच्छा हो, यदि किसी प्रकार कर सकूं। इसलिए भी चैतन्य का अवतार लिया। राधा ने चैतन्य को स्वप्न में देखा और व्याकुल हो कर कृष्ण से पूछने लगी, यह कौन है। कृष्ण ने कहा, वह मैं हूं।[१]

चतन्यदेव और वल्लभाचार्य के अवतार के दिए कारणों में भिन्नता है। भक्ति प्रचार करने दोनों आए, यह तो गौड़ीय लेखक और हिन्दी लेखक दोनों ही मानते हैं। परन्तु प्रेम प्रचार, प्रेम आस्वादन इत्यादि कारणों में केवल कृष्ण-चैतन्य का ही अवतार बताया गया है। चैतन्यदेव के अवतारों के अंतरंग कारणों ने एक नई भावना उत्पन्न कर दी है। यदि कृष्ण राधाभाव से कृष्ण के प्रेम का आस्वादन करना चाहते हैं, यदि वे राधा के समान ही अपनी रूप माधुरी का सुख लेना चाहते हैं, तब कृष्ण होकर आने से क्या होगा। ऐसा तो वृन्दावन में हो ही चुका है। आश्रय जाति का सुख कैसे प्राप्त हो। उसके लिए मन दौड़ता है, पर उपाय क्या है। विचार करके कृष्ण देखते हैं, कि यदि कोई उपाय है तो वह राधा का स्वरूप लेकर अवतार लेना ही है।[२] अतः राधा कृष्ण का स्वरूप और कांति लेकर चैतन्य रूप में आए।[३] कृष्णदास कविराज कहते हैं कि चैतन्यदेव ने रामानन्द राय को रसराज (अर्थात् कृष्ण) और महाभाव (अर्थात् राधा) का संयुक्त रूप अपने में अवस्थित दिखाया।[४] इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि चैतन्यदेव अकेले स्वयं कृष्ण न होकर कृष्ण-राधा संयुक्तावतार हैं।

---

१. मोहे करबि हेन रूप ॥
कैछन तुया प्रेमा, कैछन मधुरिमा, कैछन सुखे तुहुं भोर।
ए तिन वांछित धन, ब्रजे नहिल पूरण कि कहब न पाइया ओर।
........नदीयाते करब उदय ॥ (गौ. प. त. १।१।२)

२. आश्रय जातीय सुख पेते मन धाय ।
यत्ने नारि आस्वादिते कि करि उपाय ॥
.. .. ..
विचार करिये यदि आस्वाद उपाय। राधिका स्वरूप हुते तवे मन धाय ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २७)

३. राधा भाव कांति दुइ अंगीकार करि ॥
श्रीकृष्ण चैतन्य रूपे कइल अवतार। (चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २५)

४. तवे हासि प्रभु निज देखाल स्वरूप ।
रसराज महाभाव दुइ एक रूप ॥

संयुक्तावतार की यह भावना चैतन्य के गौरवर्ण से मुख्य रूप से संबंधित ज्ञात होती है। कृष्ण का रंग तो नीला है। यह गुण आरोपित नहीं है परन्तु स्वयं विदित है। तब चैतन्य-देव जो स्वयं कृष्ण हैं नीलवर्ण न होकर पीतवर्ण (गौरवर्ण) क्यों हैं। कृष्णदास कविराज कहते हैं कि राधा-कृष्ण वैसे तो एक ही रूप हैं, केवल लीला करने के लिए दो रूप धारण करते हैं।[1] अतः प्रेम भक्ति प्रचार करने के लिए जब कृष्ण आए तब राधा का भाव और वर्ण दोनों लेकर आए। यदि राधा का भाव लेकर न आते तो प्रेम करना, जो आश्रय जाति का काम है, कृष्ण विषय होकर अकेले कैसे सिखाते। अतः चैतन्यदेव के रूप में कृष्ण राधा-संयुक्त होकर अवतरित हुए।[2] उनका अन्तर का वर्ण तो भिन्न है (कृष्ण है), बाहर का वर्ण श्री राधा की अंगकांति है।[3]

इस प्रकार गौड़ देश के वैष्णव-भक्त चैतन्यदेव के स्वयं कृष्णत्व में बाधा देने वाले उनके गौर वर्ण की समस्या को सुलझा लेते हैं। यह मत उन्होंने निर्विवाद रूप से और दृढ़ विश्वास के रूप में माना है। कृष्णदास एक स्थान पर भागवत से उद्धरण लेकर यह भी कह देते हैं कि चैतन्य का अवतार उसमें दिया ही है, क्योंकि भागवत कहती है कि भगवान का जो अवतार कलियुग में होता है वह पीतवर्ण का होता है।[4] परन्तु अन्य अभक्त तो शंका करेंगे ही। कृष्णदास कहते हैं कि चैतन्यदेव ही कृष्ण हैं, वे ही राधा हैं, यह परम विरोधी मत ज्ञात होते हैं परन्तु तर्क करके संशय मत करो। कृष्ण की अचिंत्य शक्ति इसी प्रकार की है।

---

१. राधाकृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २५)

२. प्रेम भक्ति शिखाइते आपने अवतरि।
राधाभाव कांति दुइ अंगीकार करि॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २५)

३. अंतरे बरण भिन्न, बाहिरे गौरांग चिह्न,
श्री राधार अंगकांति राजे।
(गौ. प. त. १।३।११)

४. (क) प्रमाण वाक्य जो कृष्णदास ने श्रीमद्भागवत से उद्धृत किया है :—
आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥
(चै. च. आदिलीला, परि. ३, पृ. १८)

(ख) शुक्ल रक्त पीत वर्ण एइ तिन द्युति।
सत्य, त्रेता, कलिकाले धरेन श्रीपति॥
इदानीं द्वापरे तिहों हैला कृष्ण वर्ण।
एइ सब शास्त्रागम पुराणेर मर्म्म॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १८)

इसी प्रकार कृष्ण-चैतन्य का विहार भी है। तर्क से इसे नहीं जाना जा सकता। जो नहीं जानता वह कुंभीपाक में पड़ता है, उसका निस्तार नहीं होता।[1]

---

१. सेइ कृष्ण सेइ गोपी परम विरोध।
अचिंत्य चरित्र प्रभु अति सुदुर्व्वोध ॥
इथे तर्क करि केह ना कर संशय।
कृष्णेर अचिंत्य शक्ति एइमत हय ॥
अचिंत्य अद्‌भुत कृष्ण चैतन्य विहार।
चित्र भाव चित्र गुण चित्र व्यवहार ॥
तर्क इहा नाहि जाने जेइ दुराचार।
कुंभीपाके पचे सेइ, नाहिक निस्तार ॥

(चै. च., आदिलीला, परि. १७, प. ८९)

५. इष्टदेव--कृष्ण और राम

कृष्ण--गौड़ीय वैष्णव समाज में इष्टदेव कृष्ण का बहुत बड़ा स्थान है। वे ही एकमात्र इष्टदेव हैं, वे ही उपास्य हैं। वे विष्णु के या ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। स्वयं भगवान हैं। वे परतत्व, अद्वय ज्ञान हैं। द्वितीय-रहित ज्ञान को अद्वय ज्ञान कहते हैं। इसी को तत्व कहते हैं।[1] स्वयं भगवान कृष्ण ईश्वर हैं। सर्व अवतारी और समस्त सृष्टि के प्रधान कारण हैं।[2] अनन्त बैकुंठों के अनंत अवतारों के और अनंत ब्रह्मांडों के आधार हैं। ये ब्रजेन्द्रनंदन हैं, सच्चिदानंद रूप हैं, सर्वैश्वर्यशाली, सर्वशक्तिमान और समस्त रसों से पूर्ण हैं। वे ही एकमात्र तत्व वस्तु हैं। समस्त शास्त्र कहते हैं कि कृष्ण स्वयं भगवान हैं। वे सब के आश्रय हैं। वे परम ईश्वर हैं। वे पूर्ण भगवान हैं और ब्रजेन्द्र कुमार हैं। वे ब्रज में गोलोक सहित विहार करते हैं। ये ब्रजेन्द्र कुमार कृष्ण अवतारी नहीं हैं, स्वयं भगवान हैं।

---

१. (क) स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व ।
पूर्ण ज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११)

(ख) प्रभु कहे भट्ट तुमि ना कर संशय ।
स्वयं भगवान कृष्ण एइ त निश्चय ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६१)

(ग) अद्वय ज्ञान तत्त्ववस्तु कृष्णेर स्वरूप।
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १४)

२. ईश्वर परम कृष्ण स्वयं भगवान ।
सर्व्व अवतरी सर्व्व कारण प्रधान ॥

(क) अनंत बैकुंठ आर अनंत अवतार ।
अनंत ब्रह्मांड इहा सवार अधार ॥
सच्चिदानन्द तनु ब्रजेन्द्रनन्दन ।
सर्वैश्वर्य, सर्व्वशक्ति, सर्व्वरसपूर्ण ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४८)

(ख) तत्त्व वस्तु कृष्ण, कृष्ण भक्ति.....
(चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ. १०)

(ग) स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय ।
परम ईश्वर कृष्ण सर्व शास्त्रे कय ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १६)

(घ) पूर्ण भगवान कृष्ण ब्रजेन्द्रकुमार ।
गोलोके ब्रजेर सह करेन विहार ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १७)

अन्य अवतार उनके कला अंश मात्र हैं।[१] परव्योम में जो नारायण स्वयं भगवान हैं, वह भी कृष्ण में आकर अवतार लेता है।[२] कृष्ण ही एकमात्र ईश्वर हैं और सब उनके सेवक हैं। जिसे जैसा नचाते हैं वह वैसे ही नाचता है।[३] वे अवतारी हैं और सब अवतार भी, अतः उनमें किसी को कुछ दीखता है और किसी को कुछ। कोई कहता है––कृष्ण साक्षात् नारायण हैं, कोई कहता है––वामन हैं, कोई कहता है––क्षीरोदकशायी अवतार हैं। सब के ही वचन सत्य हैं। कृष्ण में जब जो अवतार आकर मिल जाता है वे वही हो जाते हैं। उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं है।[४] वे कृष्ण ही सर्वाश्रय हैं, उन्हीं में समस्त ब्रह्मांड अवस्थित है।[५]

कृष्ण का यह अद्वय-ज्ञान-तत्व-वस्तु का स्वरूप जो है वह प्रकाश विशेष से ब्रह्म, परमात्मा और भगवान तीन रूप धारण करता है।[६] अब यह देखना है कि ब्रह्म, परमात्मा

१. अवतार सब पुरुषेर कला अंश।
स्वयं भगवान कृष्ण सर्व्व अवतंस ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १४)

२. परव्योमे नारायण स्वयं भगवान।
तिंह आसि कृष्ण रूपे करे अवतार ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १४)

३. एकले ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३८)

४. केह कहे कृष्ण हय साक्षात् नारायण।
केह कहे कृष्ण हय साक्षात् वामन ॥
केह कहे क्षीरोदकशायी अवतार।
असंभव नहे सत्य वचन सवार ॥
कृष्ण जबे अवतरे सर्व्वांश आश्रय।
सर्व्वांश आसि तवे कृष्णेते मिलय ॥
जेइ जेइ रूपे जाने सेइ ताहा कहे।
सकल संभवे कृष्णे किछु मिथ्या नहे ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३८)

५. कृष्ण एक सर्व्वाश्रय कृष्ण सर्व्वधाम।
कृष्णेर शरीरे सर्व्व विश्वेर विश्राम ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १६)

६. (क) अद्वय ज्ञान तत्व वस्तु कृष्णेर स्वरूप।
ब्रह्म, आत्मा, भगवान तिन तार रूप ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १४)

(ख) प्रकाश विशेषे तेहं धरे तिन नाम।
ब्रह्म परमात्मा आर स्वयं भगवान ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. ११)

और भगवान क्या हैं। जो कुछ ये हैं वे ही सब कृष्ण भी हैं। कृष्णदास कविराज ने इन तीनों की कुछ विशेष व्याख्या नहीं की है। जो उल्लेख हैं वे भी अधिक स्पष्ट और विशद नहीं हैं। चैतन्यदेव ने सनातन को आध्यात्मिकता की शिक्षा दी थी। उनकी यह शिक्षा कृष्णदास कविराज ने चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला के बीसवें परिच्छेद में दी है। चैतन्यदेव कहते हैं––हे सनातन, कृष्ण के स्वरूप का विचार सुनो। ब्रजेन्द्र नन्दन अद्वय-ज्ञान-तत्व-वस्तु हैं। सबके आदि, सर्वांशी, किशोर, शेखर, चिदानन्द स्वरूप, सर्वाश्रय और सर्वेश्वर हैं। वे स्वयं भगवान हैं,इनका दूसरा नाम गोविन्द है, सर्वैश्वर्यपूर्ण हैं, गोलोक धाम में हैं।[1] ये कृष्ण ज्ञान, योग और भक्ति तीनों साधनों से वश होते हैं। ब्रह्म, आत्मा, भगवान उनका त्रिविध प्रकाश है।[2] चैतन्यदेव कहते हैं, कि ब्रह्म उन कृष्ण की निर्विशेष प्रकाशयुक्त अंगकांति है। वह उसी प्रकार ज्योतिमय दीखता है जैसे सूर्य चर्मचक्षुओं को दीखता है।[3] परमात्मा के लिए भी चतन्यदेव कहते हैं, कि परमात्मा जो है वह भी कृष्ण का एक अंश है। आत्मा की आत्मा कृष्ण सर्व-अवतंश हैं।[4] फिर भगवान के लिए वे कहते हैं कि भक्त भगवान का अनुभव पूर्ण रूप से ही करता है। भगवान का विग्रह एक ही है पर वह अनंत रूपों में है।[5] इतना उल्लेख इन त्रिविध प्रकाशों का मिलता है। फिर इस प्रकार की व्याख्यायें जो मिलती हैं उनमें कहीं ब्रह्म, कहीं ईश्वर, कहीं भगवान कह कर जो उल्लेख है वे सब जिस ब्रह्म से संबंध रखते हैं वह वही अद्वय-ज्ञान-तत्व-वस्तु है। प्रकाश विशेष ब्रह्म नहीं। काशी के मायावादी संन्यासियों

---

१. कृष्णेर स्वरूप विचार शुन सनातन।
　अद्वयज्ञानतत्व वस्तु ब्रजेन्द्रनंदन॥
　सर्व्वादि सर्व्वअंशी किशोर शेखर।
　चिदानंद देह सर्व्वाश्रय सर्व्वेश्वर॥
　स्वयं भगवान कृष्ण गोविंद परनाम।
　सर्व्वैश्वर्य्यपूर्ण जांर गोलोक नित्य धाम॥
　　　(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६१)

२. ज्ञान योग भक्ति तिन साधनेर वशे।
　ब्रह्म आत्मा भगवान त्रिविध प्रकाशे॥
　　　(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६१)

३. ब्रह्म अंग कांति तांर निर्व्विशेष प्रकाशे।
　सूर्य जेन चर्मचक्षे ज्योतिर्मय भासे॥
　　　(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६१)

४. परमात्मा जिहों तिहों कृष्ण एक अंश।
　आत्मार आत्मा हय कृष्ण सर्व्व अवतंस॥
　　　(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६१)

५. भक्त्ये भगवानेर अनुभव पूर्णरूप।
　एकइ विग्रहे तांर अनंत स्वरूप॥
　　　(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६२)

को समझाते हुए चैतन्यदेव व्यास-सूत्रों में वर्णित ब्रह्म की स्वमत से व्याख्या करते हैं। उसी में बहुतसी बातें स्वरूप आदि की आ जाती हैं। वे कहते हैं—ब्रह्म शब्द का मुख्य अर्थ भगवान है। वह चिदैश्वर्य से परिपूर्ण अनूर्द्ध समान है। उनकी विभूतिमयी चिदाकार देह है। चिद्विभूति से आच्छादित होने के कारण ही उसे निराकार कहते हैं। उस चिदानन्दमयी देह में स्थान भेद से प्राकृत सत्व और गुण के विकार आ जाते हैं।[1] वृंदावन से प्रस्थान करते समय चैतन्यदेव ने एक यवन पीर से तर्क किया। वे ईश्वर के संबंध में कहते हैं—"तुम्हारे शास्त्र में निर्विशेष ब्रह्म की स्थापना की गई है। मैं उसका खंडन करता हूं। जो कुछ शेष रहता है वह सविशेष ईश्वर है। तुम्हारे शास्त्र में भी तो एक ही ईश्वर बताया गया है। (मेरा स्थापित) ईश्वर सर्वैश्वर्यपूर्ण श्याम कलेवर वाला है। वह पूर्ण ब्रह्म स्वरूप, सच्चिदानन्द देहवाला, सर्वात्मा, सर्वज्ञ, नित्य और सर्वादि स्वरूप है।[2] उसी में सृष्टि और प्रलय स्थित है। स्थूल और सूक्ष्म जगत् का वही आश्रय है। वह सर्वश्रेष्ठ, सबका आराध्य, कारण का भी कारण है।" वही ब्रह्म, भगवान् और कृष्ण है।

---

१. ब्रह्म शब्दे मुख्य अर्थे कहे भगवान ।
चिदैश्वर्य्य परिपूर्ण अनूर्द्ध समान ॥
तांहार विभूति देह सब चिदाकार ।
चिद्विभूति आच्छादिया कहे निराकार ॥
चिदानंद देह तांर स्थान परिवार ।
तांरे कहे प्राकृत सत्व गुण विकार ॥

(चै० च०, आदिलीला, परि० ७, पृ० ४९)

२. (क) प्रभु कहे तोमा शास्त्र कहे निर्विशेष ।
ताहा खंडि सविशेष स्थापियाछे शेष ॥
तव शास्त्रे कहे शेषे एकइ ईश्वर ।
सर्व्वैश्वर्यपूर्ण तिंह श्याम कलेवर ॥
सच्चिदानंद देह पूर्ण-ब्रह्मस्वरूप ।
सर्वात्मा सर्व्वज्ञ नित्य सर्व्वादिस्वरूप ॥
सृष्टि स्थिति प्रलय तांहा हैते हय ।
स्थूल सूक्ष्म जगतेर तिंहो समाश्रय ॥
सर्व्वश्रेष्ठ सर्वाराध्य कारणेर कारण ।
तांर भक्त्ये हय जीवेर संसारतारण ॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४३)

(ख) ब्रह्म शब्देर अर्थ तत्त्व सर्व्व बृहत्तम ।
स्वरूप ऐश्वर्य करि नाहि जार सम ॥
सेइ ब्रह्म शब्दे कहे स्वयं भगवान् ।
अद्वितीय ज्ञान जाहा बिना नाइ आन ॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २९६)

ऊपर कहा गया है कि कृष्ण और नारायण एक ही हैं, क्योंकि परमतत्त्व नारायण नाम से परव्योम में बैठता है। प्राकृत-अप्राकृत, जितनी जीव रूपी सृष्टि में सब की जो आत्मा है, कृष्ण उसके मूल रूप हैं। पृथ्वी जैसे घड़े का कारण-आश्रय है उसी प्रकार जीवों का निदान और सर्वाश्रय कृष्ण हैं। 'नार' शब्द का अर्थ जीव है और 'अयन' का आश्रय। कृष्ण जीवों के आश्रय हैं, अतः नारायण हैं। जीवों से, ईश्वर से, पुरुषादि अवतार से, सबसे कृष्ण का ऐश्वर्य अपार है। कृष्ण अधीश्वर हैं, सर्वपिता हैं, उनकी शक्ति से समस्त जगत् रक्षित है। जीवों (नार) के आश्रय 'अयन' होकर वे पालन करते हैं अतः वे नारायण हैं। अनंत ब्रह्माण्ड में जितने बैकुंठ आदि धाम हैं और उनमें जितने जीव हैं उनके त्रिकाल के कर्मों के वे साक्षी हैं, तथा सब मर्म जानते हैं। कृष्ण के दर्शन से ही सब जगत् स्थित है। वे न देखें तो किसी की भी स्थिति या गति न रह जाय। जीवों (नार) के आश्रय (अयन) इसी से सब उन्हें देखते हैं अतः कृष्ण मूल नारायण हैं।[1] जीव हृदिरूप जल में निवास करने वाला नारायण कृष्ण ही है। यह नारायण सृष्टि करने के लिए तीन जलों में शयन करता है। यह

---

१. प्राकृताप्राकृत सृष्टि जत जीव रूप।
ताहार जे आत्मा तुमि मूल स्वरूप॥
पृथ्वी जैछे घटकुलेर कारण आश्रय।
जीवेर निदान तुमि तुमि सर्व्वाश्रय॥
'नार' शब्दे कहे सर्व जीवेर निचय।
'अयन' शब्देते कहे तांहार आश्रय॥
अतएव तुमि हओ मूल नारायण।
एइ एक हेतु शुन द्वितीय कारण॥
जीवेर ईश्वर पुरुषादि अवतार।
ताहा सबा हैते तोमार ऐश्वर्य अपार॥
अतएव अधीश्वर तुमि सर्व्व पिता।
तोमार शक्तिते तारा जगत् रक्षिता॥
नारेर अयन जाते करह पालन।
अतएव हओ तुमि मूल नारायण॥
... .
तृतीय कारण शुन श्री भगवान्।
अनंत ब्रह्मांड बहु बैकुंठादि धाम॥
इथे जत जीव तार त्रिकालिक कर्म्म।
ताहा देख साक्षी तुमि जान सब मर्म्म॥
तोमार दर्शने सर्व्व जगतेर स्थिति।
तुमि ना देखिले कार नाहि स्थिति गति॥
नारेर अयन जाते कर दरशन।
ताहातेओ हओ तुमि मूल नारायण॥ (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १३)

ब्रह्माण्ड की आत्मा पुरुष कारणाब्धि, क्षीरोदक और गर्भोदक तीन जलों में शयन करता है। यह सर्व-अंतर्यामी है। यह माया द्वारा सृष्टि करता है अतः मायी है। हिरण्यगर्भ (सूक्ष्मदेह) की आत्मा होकर गर्भोदकशायी है। जीवों की अंतर्यामी व्यष्टि होकर क्षीरोदकशायी है। यद्यपि तीनों रूपों में माया का व्यवहार करता है परन्तु माया का उसमें स्पर्श भी नहीं है, सबसे पार है।[1] नारायण कृष्ण की विलास मूर्ति है।[2]

कृष्ण की अनंत शक्तियां हैं। इन शक्तियों में से तीन शक्तियां प्रधान है। इनके नाम चिच्छक्ति, मायाशक्ति और जीवशक्ति हैं। इन्हें अंतरंगा, बहिरंगा और तटस्था शक्ति भी कहते हैं। अंतरंगा या स्वरूपशक्ति सर्वश्रेष्ठ हैं। कृष्ण का स्वरूप सत्, चित् और आनंदमय है अतः यह स्वरूप शक्ति भी तीन प्रकार की है। आनन्द अंश से उद्भूत शक्ति ह्लादिनी, सत् अंश से उद्भूत संधिनी, और चिद् अंश से उद्भूत शक्ति संवित् कहलाती है।[3] बहिरंगा मायाशक्ति है जो जगत् की कारण है, इसका वैभव ब्रह्माण्ड में है। तटस्था शक्ति जीवशक्ति

---

१. कारणाब्धि, क्षीरोद, गर्भोदकशायी।
मायाद्वारे सृष्टि करे ताते सब मायी ॥
सेइ तिन जलशायी सर्व्व अंतर्य्यामी।
ब्रह्मांड वृन्देर आत्मा पुरुष नामी ॥
हिरण्यगर्भेर आत्मा गर्भोदकशायी।
व्यष्टि जीव अंतर्यामी क्षीरोदकशायी ॥

. . . . . .

जद्यपि तिनेर माया लइया व्यवहार।
तथापि तत्स्पर्श नाइ सबे माया पार ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ., १३)

२. प्रभु कहे भट्ट तुमि ना कर संशय।
स्वयं भगवान् कृष्ण एइ त निश्चय ॥
कृष्णेर विलास मूर्त्ति श्री नारायण ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६१)

३. कृष्णेर अनंत शक्ति ताते तिन प्रधान।
चिच्छक्ति मायाशक्ति जीवशक्ति नाम ॥
अंतरंगा बहिरंगा तटस्था कहि जारे।
अंतरंगा स्वरूपशक्ति सबार उपरे ॥
सच्चित् आनंदमय कृष्णेर स्वरूप।
अतएव स्वरूप शक्ति हय तिन रूप ॥
आनंदांशे ह्लादिनी सदंशे सन्धिनी।
चिद्अंशे संवित् जारे ज्ञान करि मानि ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४९)

है जो अनन्त है।[१] ह्लादिनी शक्ति कृष्ण के प्रेम का विकार है, संधिनी कृष्ण के शुद्ध तत्त्व का विकार है, संवित् कृष्ण की भगवत्ता का ज्ञान है।

भक्त इन स्वयं भगवान कृष्ण का अनुभव पूर्ण रूप में करता है। ये कृष्ण एक विग्रह वाले हैं परंतु उनके स्वरूप अनन्त हैं। कृष्ण मुख्य तीन रूपों में प्रकाशित होते हैं,—स्वयंरूप, तदेकात्म रूप, और आवेश रूप। स्वयं रूप में कृष्ण का स्वयं प्रकाश है। यह केवल द्वापर में था। यह प्रकाश 'प्रभाव' और 'वैभव' दो रूपों में भासता है। 'प्रभाव' प्रकाश में कृष्ण का एक वपु अनेक रूपों में दीखता है, जैसे रास के समय एक कृष्ण वपु है, परंतु प्रत्येक गोपी उन्हें अपने पास देखती है। 'वैभव' प्रकाश में वही वपु और वही रूप होता है, परन्तु अलग सा ज्ञात होता है। यह वैभव प्रकाश बलराम हैं। तदेकात्म रूप में 'विलास' और 'स्वांश' दो प्रकार हैं। विलास भी 'प्राभव' और 'वैभव' दो हैं। कृष्ण के प्राभव विलास संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। वपु वही है परन्तु आवास और आकार कुछ भिन्न है। इन चारों की तीन तीन मूर्तियां हैं। यह केवल चक्रादि धारण के भेद से है। वासुदेव की मूर्तियां केशव, नारायण, और माधव हैं। संकर्षण की गोविंद, विष्णु और मधुसूदन हैं। प्रद्युम्न की त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर हैं। अनिरुद्ध की हृषिकेष, पद्मनाभ और दामोदर हैं।[२] स्वांश का दर्शन प्रायः

---

१. चिच्छक्ति, स्वरूप शक्ति, अंतरंगा नाम।
तांहार वैभवानन्त बैकुंठादि धाम॥
माया शक्ति बहिरंगा जगत्-कारण।
तांहार वैभवानन्त ब्रह्मांडेर गण॥
जीवशक्ति तटस्थाख्य नाहि जार अंत।
मुख्य तिन शक्ति तांर विभेद अनंत॥ (चै. च., आदिलीला, परि. २०, पृ. १६)

२. भक्त्ये भगवानेर अनुभव पूर्ण रूप।
एकइ विग्रहे तांर अनंत स्वरूप॥
स्वयं रूप तदेकात्मरूप आवेश नाम।
प्रथमेइ तिन रूपे रहे भगवान॥
स्वयं रूपे स्वयं प्रकाश दुइ रूपे स्फूर्ति।
स्वयं रूपे एक कृष्ण ब्रजे गोपमूर्त्ति॥
प्रभाव वैभवरूपे द्विविध प्रकाशे।
एक वपु बहु रूप जैछे हैल रासे॥
.. ..
वैभव प्रकाश कृष्णेर श्री बलराम।
वर्णमात्र भेद सब कृष्णेर समान॥
.. ..
सेइ वपु भिन्नावासे किछु भिन्नाकार।
भावावेशाकृतिभेदे तदेकात्म नाम तार॥
तदेकात्मरूपेर विलास स्वांश दुइ भेद।
विलास स्वांशेर भेद विविध विभेद॥

अवतारों के रूप में होता है। स्वांश के एक भेद में एक पुरुषावतार संकर्षण और दूसरे भेद में लीलावतार, गुणावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार और शक्त्यावेशावतार हैं। इन सब विग्रहों के बाल्य और पौगंड दो ही धर्म हैं।[1] सृजन करने के लिए जो अवतार है, वह पुरुषावतार संकर्षण हैं। लीलावतार अगणित हैं। इसमें मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन, वाराह आदि हैं।[2] गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन हैं।[3] मन्वन्तरावतार

प्राभव वैभव भेदे विलास द्विधाकार।
विलासेर विलास भेदे अनंत प्रकार॥
प्राभव विलास वासुदेव संकर्षण।
प्रद्युम्न अनिरुद्ध मुख्य चारि जन॥
... ...
चारि जनेर पुनः पृथक् तिन तिन मूर्त्ति।
केशवादि जाहा हैते विलासेर स्फूर्त्ति॥
चक्रादि धारण भेदे नाम भेद सब।
वासुदेव मूर्त्ति केशव नारायण माधव॥
संकर्षण मूर्त्ति गोविन्द विष्णु श्री मधसूदन।
ए अन्य गोविन्द नहे ब्रजेन्द्रनन्दन॥
प्रद्युम्न मूर्त्ति त्रिविक्रम वामन श्रीधर।
अनिरुद्ध मूर्त्ति हृषिकेश पद्मनाभ दामोदर॥ (चै.च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६२-६३)

१. प्रकाश विलासेर एइ कैल विवरण।
स्वांशेर भेद एवे शुन सनातन॥
संकर्षण मत्स्यादिक दुइ भेद तार।
पुरुषावतार संकर्षण मत्स्यादि अवतार॥
अवतार हय कृष्णेर षड्विध प्रकार।
पुरुषावतार एक लीलावतार आर॥
गुणावतार आर मन्वन्तरावतार आर।
युगावतार आर शक्त्यावेशावतार॥
बाल्य औ पौगंड हय विग्रहेर धर्म। (चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६४)

२. लीलावतार कृष्णेर ना जाय गणन।
प्रधान करिया कहि दिग्दरशन॥
मत्स्य कूर्म रघुनाथ नृसिंह वामन।
वराहादि लेखा जार ना जाय गणन॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६६)

३. लीलावतारेर कैल दिग्दरशन।
गुणावतारेर एवे शुन विवरण॥
ब्रह्मा विष्णु शिव तिन गुण अवतार।
त्रिगुणांगीकरि करे सृष्ट्यादि व्यवहार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६७)

चौदह हैं। ये यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, बैकुंठ, अजित, वामन, सार्व्वभौम, ऋषभ, विष्व-बसेन, धर्मसेतु, सुधामा, योगेश्वर, और बृहद्भानु हैं।[१] युगावतार चारों युगों में होते हैं। शुक्ल, रक्त, कृष्ण और पीतवर्ण धारण करके कृष्ण अवतार लेते हैं।[२] शक्त्यावतार अनंत हैं। इनमें से कुछ मुख्य अवतार सनकादिक, नारद, पृथु, परशुराम इत्यादि हैं।[३]

ऊपर कृष्ण के अनेक स्वरूप जो वैभव, प्रभाव इत्यादि से भासते हैं बताए गए हैं। परन्तु उनका एकमात्र अधिकारी, स्वतः सिद्ध नित्य स्वरूप जो अन्यापेक्षी नहीं है, नंदसुत ब्रजेन्द्रनंदन गोप मूर्ति, द्विभुज कृष्ण का ही रूप है।[४] यही भक्तों का आधार है। भक्त इसी स्वरूप की उपासना करता है। इससे भिन्न किसी की भी नहीं। यही उनका स्वयं रूप है। उसकी समस्त लीलाओं में नरलीला सर्वश्रेष्ठ है।[५] ये रसमय मूर्ति और साक्षात् शृंगार हैं।[६]

संक्षेप में गौड़ीय वैष्णव समाज में मान्य इष्टदेव कृष्ण का परिचय पीछे के पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। राम की विवेचना प्रायः नहीं ही मिलती है। राम को अवतार तो माना गया है। चैतन्यदेव और इष्टदेव का रूप जो पीछे बताया गया, उसे बताते समय उनके कई अवतारों में राम का अवतार भी कह कर उल्लेख आया है। अब दोनों साहित्यों में वर्णित इष्टदेवों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है सोलहवीं शती के वैष्णव साहित्य में तीन इष्टदेव हैं। चैतन्यदेव और वल्लभ उस काल के कुछ भक्तों के समकालीन थे। इन चैतन्य-देव और वल्लभ की भावना (concept) में अन्तर है। दूसरे इष्टदेव जो कृष्ण हैं या राम हैं, किसी भी भक्त के सम्मुख स्थूल देह से उपस्थित नहीं थे। ये इष्टदेव आध्यात्मिक हैं, युगों युगों से पूजित हैं। दोनों के भक्त असंख्य हैं। भक्त अपनी दृष्टि और भक्ति-भावना

---

१. चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६८

२. युगावतार कहि एवे शुन सनातन।
सत्य त्रेता द्वापर कलिजुग वर्णन॥
शुक्ल रक्त कृष्ण पीत क्रमे चारि वर्ण।
चारि वर्ण धरि कृष्ण करे जुग धर्म॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६८)

३. चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २७०

४. स्वयंरूपे स्वयं प्रकाश दुइ रूपे स्फूर्त्ति।
स्वयंरूपे एक कृष्ण ब्रजे गोपमूर्त्ति॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६२)

५. कृष्णेर जतेक खेला, सर्व्वोत्तम नरलीला, नरवपु ताहार स्वरूप।
गोपवेश वेणु कर, नवकिशोर नटवर, नवलीला, हय अनुरूप॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २१, पृ. २७५)

६. रसमय मूर्त्ति कृष्ण साक्षात् शृंगार॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. ३१)

विशेष से अपने इष्टदेव की भक्ति-उपासना करते रहे हैं। वे स्वमत अनुकूल उनकी मूर्ति के दर्शन कराते रहे हैं। परन्तु दोनों ही स्थानों में इष्टदेवों का जो स्वरूप बताया है उसमें प्रायः सबकी ही विचारधारा अविच्छिन्न और एकरस है। मूल रूप से इष्टदेव अमित-शक्तिवान्, अमित रूपवान्, अखंड, अमित-ऐश्वर्यपूर्ण, पूर्ण भगवान्, एवं परम तत्त्व ही हैं। भक्त अपने भावों के चरम उत्कर्ष में कभी कुछ, कभी कुछ कह कर लीलागान करते हैं, वह दूसरी बात है। कृष्ण रसमूर्ति हैं। राम शीलमूर्ति हैं। परन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मूलतः दोनों एक ही हैं। इष्टदेवों के स्वरूप इत्यादि का विवरण मुख्यतया कृष्णदास कविराज, तुलसीदास, सूरदास और नन्ददास की रचनाओं में मिलता है। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य-चरितामृत में इष्टदेव का जो तत्त्व निरूपण दिया है, वह अधिक विशद और क्रमपूर्वक है। तुलसीदास और सूरदास ने जो कुछ निरूपण किया है वह प्रसंगप्राप्त है। दार्शनिकता और तत्त्वचिंतन की उतनी प्रवृत्ति उसमें नहीं है। वैसे केवल दार्शनिकता और तत्त्वचिंतन की प्रवृत्ति कृष्णदास में भी उतनी नहीं है जितनी रूप और जीव गोस्वामी में। परन्तु सूर या तुलसी से अधिक अवश्य है। क्योंकि राम और कृष्ण मूलतः एक ही हैं, इसलिए दोनों को साथ ही ले लिया गया है।

इष्टदेव परब्रह्म है--कृष्णदास कविराज कहते हैं कि चैतन्य और कृष्ण एक ही हैं। वे चैतन्य को अद्वैत ब्रह्म परतत्त्व यही कह कर सिद्ध करते हैं कि कृष्ण यह सब हैं।[1] ये पर-ब्रह्म कृष्ण परतत्त्व हैं। ये ही पूर्ण ज्ञान, पूर्णानन्द, सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म हैं। यह ब्रह्म अद्वैत हैं, सब की आत्मा और सब का आदि कारण हैं। कृष्ण अधंकार से हीन परम ब्रह्म हैं। ये परमात्मा और स्वामी हैं। यह ब्रह्मण्य ज्ञान-विज्ञान के प्रकाशक सच्चिदानन्द नंदनंदन हैं। कृष्ण प्रकट पुरुषोत्तम पूर्ण ब्रह्म अविनाशी अलख पुरुष हैं। इनकी शोभा अपार है, ये अविगत हैं, आदि-अन्त से हीन हैं।[2] ये इष्टदेव कृष्ण घट-घट-व्यापी आदि सनातन परब्रह्म

---

१. यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा ।
य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांशविभवः ।।
(चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ० १)

२. श्रीपुरुषोत्तम, परमेश्वर प्रभु, परम-ब्रह्म परमेष्टि अधारे ।।
(परमानंद का पद, प. क. त., पद २९७४)

(क) स्वयं भगवान कृष्ण कृष्ण परतत्त्व,
पूर्ण ज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ।
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११)

(ख) सच्चिदानंद देह पूर्ण-ब्रह्मस्वरूप ।
सर्वात्मा सर्वज्ञ नित्य सर्वादिस्वरूप ।
(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४३)

(ग) कृष्न अनावृत परम ब्रह्म, परमातम स्वामी ।
(नंददास, सिद्धान्त-पंचाध्यायी, पृ. १८६)

(घ) जैसेंई कृष्न अखंड रूप, चिदरूप उदारा ।
(नंददास, सिद्धान्त-पंचाध्यायी, पृ. १९१)

हैं। वे पूर्ण ब्रह्म हैं।[1] ठीक उसी प्रकार इष्टदेव राम भी परब्रह्म हैं। वे परमानन्द, निरंजन, निर्गुण, सुख-दुःख-रहित, अलख, अविनाशी, चिदानन्द, व्यापक ब्रह्म हैं। वे परमार्थ ब्रह्म हैं, वे विकाररहित हैं। वेद उन्हें नेति नेति कहते हैं।[2]

इष्टदेव अद्वैत या अद्वय हैं—गौड़ीय वैष्णव भक्त और हिन्दी के वैष्णव भक्त दोनों ही यह बात कहते हैं कि इष्टदेव—कृष्ण अथवा राम—एक हैं।[3] उनके दो रूप नहीं हैं। वे

(ङ) परम धाम ब्रह्मण्य, ग्यान विज्ञान प्रकासी।
(नंददास, सिद्धान्त-पंचाध्यायी, पृ. १८४)

(ट) सघन सच्चिदानंद नंद नंदन ईश्वर जस।
(नंददास, सिद्धान्त-पंचाध्यायी, पृ. १८४)

(ठ) पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी।
अबिगत, आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अबिनाशी॥ (सू. सा.)

१. (क) आदि सनातन परब्रह्म प्रभु घट-घट अंतरजामी।
सो तुम्हरैं अवतरे आनि कैं, सूरदास के स्वामी कैं (सू.सा. १०।८६, पृ. २९०)

(ख) आदि सनातन, हरि अबिनासी। सदा निरंतर घट-घट बासी॥
पूरन ब्रह्म, पुरान बखानैं। चतुरानन सिव अन्त न जानैं॥
(सू. सा. १०।३, पृ. २५५)

(ग) पूरन ब्रह्म सनातन वेई, मैं भूल्यो संसार।
(सू. सा. १०।९७४, पृ. ५९५)

२. (क) ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौंसल्या कें गोद॥
(रा. च. मा., बा. १९८, पृ. १००)

(ख) ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुनु गुनुरासी॥
(रा. च. मा., बा. ३४१, पृ. १६९)

(ग) रामु ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥
(रा. च. मा., अ. ९३, पृ. २१८)

(घ) तात राम कहुं नर जनि मानहुं। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
(रा. च. मा., कि. २६, पृ. ३६७)

३. (क) कृष्णेर स्वरूप विचार शुन सनातन।
अद्वयज्ञानतत्ववस्तु व्रजेन्द्र नंदन॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६१)

(ख) अद्वय ज्ञान तत्ववस्तु कृष्णेर स्वरूप।
(चै. च., आदिलीला परि. २, पृ. १४)

(ग) तत्त्ववस्तु कृष्ण, कृष्ण-भक्ति प्रेमरूप।
(चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ. १०)

अद्वितीय हैं। उनके समान कोई भी नहीं है। उस अद्वितीय इष्टदेव को गौड़ीय वैष्णव साहित्य में 'अद्वय' कहा है और हिन्दी वैष्णव साहित्य में वह अद्वैत है। इष्टदेव कृष्ण अद्वय-ज्ञान-तत्त्व-वस्तु हैं। द्वितीय-रहित ज्ञान ही अद्वय ज्ञान या तत्त्व है और यह कृष्ण हैं। भागवत के श्लोकों की स्वमत से व्याख्या करते हुए चैतन्यदेव प्रकाशानन्द से, जो मायावादी संन्यासी थे, कहते हैं:--भगवान् ने स्वयं ब्रह्मा से कहा है कि सृष्टि के आरम्भ में मैं ही था। समस्त प्रपंच और प्रकृति, पुरुष इत्यादि सब मुझ में ही हैं। सृष्टि करके उसके मध्य में मैं ही बैठता हूं। प्रलय के अन्त में भी मैं ही रह जाता हूं। यह सब प्रपंच जो दीखता है मेरा ही है।[1] क्योंकि कृष्ण एकमात्र तत्त्व स्वयं भगवान् हैं,[2] अतः यह एकमात्र भगवान् भी वही हैं अर्थात् कृष्ण अद्वितीय हैं। इष्टदेव कृष्ण ही अकेले ईश्वर हैं और सब देवता उनके सेवक हैं।[3] सूरदास भी इसी प्रकार कहते हैं। प्रसंग भी वही भागवत के भगवान् ब्रह्म के संवाद का है। भगवान् कहते हैं:—मैं पहले एक ही था। मैं अमल, अकल, अज हूं, परन्तु एक होने पर भी अनेक रूपों में अनेक वेशों में दीखता हूं। अन्त में अपने इन गुणों को छोड़कर मैं ही रह जाऊंगा। हरि आदि सनातन अविनाशी और निरंतर घटघटवासी हैं। पुराण उन्हें पूर्ण ब्रह्म कहते हैं। वे ही एकमात्र पुरातन पुरुष हैं। वे कृष्ण जो सूर के इष्टदेव हैं, आदि-अनादि-रूप-रेख-हीन हैं, इससे भिन्न और कोई प्रभु नहीं है।[4] इष्टदेव राम भी अद्वितीय हैं। अगणित भुवनों में

---

१. सृष्टि पूर्वे षडैश्वर्य्य पूर्ण आमित हइये।
प्रपंच प्रकृति पुरुष आमातेइ लये॥
सृष्टि करि तार मध्ये आमित वसिये।
प्रपंच जे देख सब सेह आमि हइये॥
प्रलये अवशिष्ट आमि पूर्ण हइये।
प्राकृत प्रपंच पाय आमातेइ लये॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २५, पृ. ३१३)

२. स्वयं भगवान कृष्ण कृष्ण, परतत्व।
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११)

३. एकले ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
(चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३८)

४. (क) पहिले हौं ही हौं तब एक।
अमल, अकल, अज, भेद बिवर्जित सुनि विधि बिमल बिवेक।
सो हौं एक अनेक भांति करि सोभित नाना भेष।
ता पाछैं इन गुननि गए तैं, हौं रहिहौं अवसेष॥
(सू. सा., २१३८, पृ. १२७)

(ख) आदि सनातन, हरि अबिनासी।
सदा निरंतर घट-घट बासी॥ (सू. सा., १०१३, पृ. २५५)

(ग) आदि अनादि रूप-रेखा नहिं,
इनतैं नहिं प्रभु और बियौ॥ (सू. सा., १०८५, पृ. २८९)

असंख्य देवता हैं परन्तु अकेले राम एक ही हैं। उनके समान न तो किसी का रूप ही है और न कोई स्वामी ही है। वे राम उन सब देवताओं से पूजित हैं, पर वे एक ही हैं।[1]

इष्टदेव सगुण हैं या निर्गुण—प्रायः सब भक्त लेखकों ने जिन्होंने अपने अपने इष्ट-देवों का तत्त्व-विश्लेषण किया है और उन पर अपने विचार प्रकट किए हैं उन्होंने इष्टदेव को 'सगुण' ही बताया है। वे जिस ब्रह्म के स्वरूप हैं वह तो निर्गुण है। परब्रह्म कृष्ण भी निर्गुण हैं, परब्रह्म राम भी निर्गुण है, परन्तु इष्टदेव कृष्ण सगुण हैं, इष्टदेव राम भी सगुण ही हैं। वह निर्गुण ब्रह्म ध्यान की वस्तु है, परन्तु उपासना की नहीं। वह ज्ञान से जाना जा सकता है पर उससे प्रेम नहीं किया जा सकता। बिना प्रेम किए भक्त को संतोष कहां! अतः निर्गुण ब्रह्म सगुण कृष्ण और सगुण राम हो कर आता है। ऐसा वह भक्तों के लिए ही करता है। वेद-उपनिषद् जिसे निर्गुण बताते हैं वही सगुण होकर नन्द की दांवरि में बंधता है।[2] गोपाल नन्द के आगे हंसते हैं, निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप रख कर हंस रहा है परन्तु वे उसे पुत्र कर के समझते हैं। जो ब्रह्म व्यापक, निरंजन, निर्गुण, और विनोदरहित है वह प्रेम भक्ति के

(घ) मोहि भावे देवाधि देवा।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन, गोकुल नाथ एक मेवा॥
(परमानंद दास का एक पद)

१. (क) पूजहिं प्रभुहिं देव बहु वेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा॥
(रा. च. मा., बाल., ५५, पृ. ३२)

(ख) अगनित भुवन फिरेउं प्रभु राम न देखेउं आन॥
(रा. च. मा., उ. ८१, पृ. ५३३)

(ग) जाकी कृपा लव लेस तें मतिमंद तुलसीदास हूं।
पाएउ परम बिस्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूं॥
(रा. च. मा., उ. १३०, पृ. ५६८)

(घ) हो प्रभु सुद्ध तत्व मय रूप।
एक रूप पुनि नित्य अनूप॥ (नंददास, दशमस्कंध, अ. २७, पृ. ३१५)

२. (क) बेद-उपनिषद जासु कौं निर्गुनहिं बतावै।
सोइ सगुन ह्वै नंद की दांवरी बंधावै॥ (सू. सा., १।४, पृ. २)

(ख) हंसत गोपाल नंद के आगैं नंद सरूप न जान्यौ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन लीलाधर सोई सुत करि मान्यौ॥
(सू. सा., १०।२६३, पृ. ३४९)

(ग) व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥
(रा. च. मा., बा. १९८, पृ. १००)

(घ) व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥
(रा. च. मा., बा. २०५, पृ. १०३)

कारण ही कौशल्या की गोदी में है। तुलसीदास ने बार बार राम को सगुण-निर्गुण रूप कहा है।[1] वे निर्गुण होते हुए भी 'गुनरासी' हैं। ये हिन्दी वैष्णव कवि अपने इष्टदेवों को निर्गुण मूल रूप में तो मानते हैं परन्तु उपास्य इष्टदेव के रूप में वह सगुण ही हैं। सूरदास कहते हैं कि अविगत की गति तो उसी प्रकार कहते नहीं बनती जैसे गूंगा मीठा खाकर उसका स्वाद नहीं कह सकता, वह अविगत मन वाणी से अगोचर है। जान कर पाया ही जा सकता है, परन्तु रूप-रेखा-गुण-जाति से विहीन वस्तु की ओर किस अवलंबन से जाया जाय! वह निर्गुण विचार के लिए सब तरह से अगम है। अतः 'सूर' 'सगुण' लीला गाता है।[2] तुलसीदास कहते हैं, सगुण, अगुण में कुछ भेद ही नहीं है। अगुण-अरूप-अलख जो है वह भक्त के प्रेम के वश में सगुण हो जाता है। जो गुणरहित है, वह सगुण कैसे है,—जैसे जल और हिम अलग अलग होते हुए भी एक ही हैं।[3]

गौड़ीय वैष्णव भक्तों की विचारधारा इस संबंध में कुछ दूसरे प्रकार की ही दीखती है। उसमें इष्टदेव के निर्गुणत्व पर कुछ अधिक विश्वास नहीं दीखता। चैतन्यदेव भी ब्रह्म हैं, कृष्ण भी ब्रह्म हैं, परन्तु निर्गुण ब्रह्म हैं या नहीं इसका स्पष्ट कथन प्रायः नहीं ही है। कृष्णदास कविराज कहते हैं, कि उपनिषद् जिसे निर्गुण अद्वैत ब्रह्म कहते हैं वह चैतन्य की अंगकांति हैं। अर्थात् चैतन्य तो देहधारी सगुण इष्टदेव हैं, निर्गुण ब्रह्म चैतन्य नहीं है। हो भी कैसे सकता है। वह उनकी अंगकांति मात्र है।[4] कृष्ण ही तो प्रकाश विशेष से तीन

---

१. (क) जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
(रा. च. मा., अर. २२, पृ. ३४३)
(ख) जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
(रा. च. मा., उ. १३, पृ. ४९६)
(ग) जय निर्गुन जय जय गुन सागर।
(रा. च. मा., उ. ३४, पृ. ५०९)

२. अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूंगें मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै॥
.. .. ..
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति जुगति-बिनु निरालंब कित धावै॥
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै॥ (सू. सा. १।२, पृ. १)

३. सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा।
गावहि मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें।
जलु हिम उपल बिलग नहि जैसें॥
(रा. च. मा., बा. ११५, पृ. ६२)

४. यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा। (चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ. १)

रूप रखते हैं, जिनमें एक ब्रह्म भी है ।[१] फिर आगे चलकर यह विचार और अधिक स्पष्ट किया गया है । चैतन्यदेव ब्रह्म को भी सविशेष ही मानते हैं । व्यास-सूत्र अथवा वेद सबके मुख्य अर्थ लो, तो वे भी भगवान् को निर्विशेष (निर्गुण) नहीं बताते । वे भी उन्हें सविशेष कहते हैं । जो उसे निर्विशेष बताते हैं वह प्राकृत अर्थ को छोड़कर अप्राकृत की स्थापना करते हैं । ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति है, उसी से जीता है और उसी में लय हो जाता है । इसके साथ जो अपादान, करण और अधिकरण कारक हैं, ये ब्रह्म का सविशेष होना बताते हैं ।[२] निर्गुण ब्रह्म तो कृष्ण की अंगकांति है । नंददास भी ऐसा ही कहते हैं ।[३] भगवान् ने जब अनेक होने का मन किया तब प्राकृत शक्ति की ओर देखा । परन्तु यह तो नहीं कहा जाता कि उस समय उनके प्राकृत नेत्र हो गए जिससे उन्होंने देखने की क्रिया की । उस ब्रह्म के नेत्र आदि इंद्रियां एवं मन तो हैं परन्तु अपांचभौतिक हैं । अर्थात् ब्रह्म अपांचभौतिक रूप से सगुण है । श्रुति कहती है कि ब्रह्म 'अपाणिपादः' है, परन्तु फिर कहती है कि वह जल्दी चलता है और सब ग्रहण कर लेता है । अर्थात् सब कार्य करता है अतः वह निर्विशेष कैसे हुआ ? वह तो सविशेष है । यह ब्रह्म पूर्ण स्वयं भगवान् है, कृष्ण है । जिनका विग्रह ही षडैश्वर्य, पूर्णानंद है । उस समय भगवान् को निराकार कैसे कहा जा सकता है । जिस ब्रह्म में

---

१. प्रकाश विशेषे तेंह धरे तिन नाम ।
ब्रह्म, परमात्मा, आर स्वयं भगवान ॥ (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११)

२. वेद पुराणे करे ब्रह्म निरूपण ।
सेइ ब्रह्म बृहद्वस्त्त ईश्वर लक्षण ॥
सर्वैश्वर्य परिपूर्ण स्वयं भगवान ।
तांरे निराकार करि करह व्याख्यान ॥
निर्विशेष तांरे कहे जेइ श्रुतिगण ।
प्राकृत निषेधि करे अप्राकृत स्थापन ॥
ब्रह्म हैते जन्मे विश्व ब्रह्मोते जीवय ॥
सेइ ब्रह्मे पुनरपि ह'ये जार लय ॥
अपादान करणाधिकरण कारण तिन ।
भगवानेर साविशेष एइ चिह्न तिन ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

३. (क) तांहार अंगेर शुद्ध किरण मंडल ।
उपनिषद कहे तांरे ब्रह्म सुनिर्मल ॥
... ...
कोटि कोटि ब्रह्मांडे जे ब्रह्मेर विभूति ।
सेइ ब्रह्म गोविंदेर अंगकांति ॥ (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११)

(ख) मोहन अद्भुत रूप, कहि न आवै छबि ताकी ।
अखिल अंड व्यापी जु ब्रह्म, आभा है जाकी ॥
(नंददास, रासपंचाध्यायी, अ. १, पृ. १५८)

स्वाभाविक रूप से तीन शक्तियां हैं, उसे निर्गुण कहने से वह शक्तिहीन हो जाता है।[1] यवनपीर से तर्क करते हुए भी चैतन्यदेव निर्गुण का निवारण करके सगुण की स्थापना करते हैं। एक ही ईश्वर है परन्तु वह निर्विशेष नहीं है, सविशेष है।[2] वह सर्वैश्वर्यपूर्ण श्याम कलेवर है। ब्रह्म शब्द के दो अर्थ हैं, एक तो सर्व महत्व तत्व और दूसरा स्वयं भगवान। उस अद्वितीय ब्रह्म के बराबर और कोई नहीं है। स्वयं भगवान कृष्ण यह दोनों ही हैं। नि विशेष ब्रह्म ज्ञान का विषय है। भगवान तो भक्ति से प्रकाशित होते हैं। भक्ति निर्गुण निराकार की नहीं होती। अतः कृष्ण सगुण ही हैं।[3] मुख्यार्थ लो तो वेदांत भी साकार

---

१. भगवान बहु हैते जबे कैल मन।
प्राकृत शक्ति के तवे कैल विलोकन ॥
से काले नाहि जन्मे प्राकृत मन नयन।
अतएव अप्राकृत ब्रह्मेर नेत्र मन ॥
ब्रह्म शब्दे कहे पूर्ण स्वयं भगवान।
स्वयं भगवान कृष्ण शास्त्रेर प्रमाण ॥
वेदेर निगूढ़ अर्थ बुझने ना जाय।
पुराण वाक्ये सेइ अर्थ करये निश्चय ॥
अपाणि श्रुति वर्ज्जे प्राकृत पाणि चरण।
पुनः कहे शीघ्र चले करे सर्व्वग्रहण ॥
अतएव श्रुति कहे ब्रह्म सविशेष।
मुख्य छाड़ि लक्षणाते माने निर्विशेष ॥
षडैश्वर्य पूर्णानन्द विग्रह जांहार।
हेन भगवाने तुमि कह निराकार ॥
स्वाभाविक तिन शक्ति जेइ ब्रह्मे हय।
निःशक्ति करिया तारे करह निश्चय ॥
(चै. चै., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१-३२)

२. प्रभु कहे तोमा शास्त्र कहे निर्विशेष।
ताहा खंडि सविशेष स्थापियाछे शेष ॥
तव शास्त्रे कहे शेषे एकइ ईश्वर।
सर्व्वैश्वर्य पूर्ण तिंह श्याम कलेवर ॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४३.)

३. ब्रह्म शब्देर अर्थ तत्व सर्व्वबृहत्तम।
स्वरूप ऐश्वर्य करि नाहि जार सम ॥
सेइ ब्रह्म शब्दे कहे स्वयं भगवान।
अद्वितीय ज्ञान जाहा बिना नाइ आन ॥
सेइ दुइ तत्व कृष्ण स्वयं भगवान।
तिनकाले सत्य सेइ शास्त्रेर प्रमाण ॥

ब्रह्म का निरूपण करता है।[1] वह इष्टदेव सर्वश्रेष्ठ सर्वाराध्य, कारण का कारण है। उसकी भक्ति से संसार से तर जाते हैं। उसकी चरणसेवा पूर्णानंद की प्राप्ति है, मोक्षादि उसके सामने तुच्छ हैं। निर्विशेष की व्याख्या की जाती है परन्तु सेव्य तो साकार ही है।[2] इस प्रकार के कथनों का तात्पर्य यही है कि गौड़ीय वैष्णवों के इष्टदेव सविशेष (सगुण) भगवान हैं, वे ब्रह्म रूप में अद्वितीय तो हैं पर निर्गुण नहीं हैं। वे पुरुषोत्तम हैं, परमेश्वर हैं।[3]

इष्टदेव नारायण हैं——इष्टदेव कृष्ण नारायण हैं, इस बात को कृष्णदास कविराज ने कुछ अधिक विस्तार से कहा है। यह सब तर्क पीछे दिए जा चुके हैं। कृष्ण प्राणियों के रक्षक, पालक और उनके कर्मों के देखने वाले हैं। अतः नारायण हैं। हिन्दी वैष्णव कवि भी इस बात को कहते हैं। हरि अपने अंश को लेकर प्रगटे हैं, अति आनंद स्वरूप नारायण ने इस रूप में भू का भार हरण किया है।[4] मोहन अद्‌भुत रूप वाले हैं, वे परमात्मा, परब्रह्म, सब के स्वामी हैं, नारायण भगवान हैं।[5]

ज्ञानमार्गे निर्व्विशेष ब्रह्म प्रकाशे।
योगमार्गे अंतर्यामी स्वरूपेते भासे॥...
राग भक्ते ब्रजे स्वयं भगवान पाय। (चैं. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २९६)

१. वेदांत मते ब्रह्म साकार निरूपण।
निर्गुण व्यतिरेके तेँह हयत सगुण॥ (चैं. च., मध्यलीला, परि. २५, पृ. ३११)

२. सर्व्वश्रेष्ठ सर्व्वाराध्य कारणेर कारण।
तांर भक्त्ये हय जीवेर संसारतारण॥
तांर सेवा बिना जीवे ना जाय संसार।
तांहार चरणे प्रीति पुरुषार्थ सार॥
मोक्षादि आनंद जार नहे एक कण।
पूर्णानन्द प्राप्ति तांर चरण सेवन॥
... ...
निर्विशेष गोंसाञि लञा करेन व्याख्यान।
साकार गोंसाञि सेव्य कार नाहिं ज्ञान॥ (चैं. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४३)

३. श्री पुरुषोत्तम, परमेश्वर प्रभु
परम ब्रह्म परमेष्ठि अधारे। (प. क. त. पद २९७४.)

४. अपने अंश आप हरि प्रकटे पुरुषोत्तम निज रूप।
नारायन भुव-भार हरो है अति आनन्द-स्वरूप॥
(अष्ट. व. स., पृ. ४०९ से उद्धृत)

५. (क) मोहन अद्‌भुत रूप....
परमात्मा परब्रह्म, सबन के अन्तर्जामी।
नाराइन भगवान, धर्म करि सबके स्वामी।
(नंददास, रासपंचाध्यायी, अ. १, पृ. १५९.)

इष्टदेव विष्णु हैं--इस बात का स्पष्ट उल्लेख दोनों ही के साहित्य में मिलता है कि विष्णु कृष्ण के एक गुणावतार हैं। कृष्ण के अनेक अवतार हैं। उनमें से कुछ गुणावतार हैं। ये गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं। यज्ञ पुरुष कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र ये तीनों ही मेरे रूप हैं। शंभु, विरंचि और विष्णु भगवान उसी अंश से जन्मे हैं।[1] इन उल्लेखों से यह ध्वनि निकलती है कि कृष्ण और राम विष्णु से बड़े हैं। वे अंशी हैं और विष्णु अंश,[2] परन्तु हिन्दी में कई स्थलों पर विष्णु और राम अथवा कृष्ण एक ही बताए गए हैं। राम की वंदना करते हुए अत्रि उन्हें 'इंदिरापति' कहते हैं, शिव उन्हें विष्णु मान कर 'जय राम रमा रमनं समनं' कह कर उनकी वंदना करते हैं। तुलसीदास स्वयं उन्हें 'रमा निवासा' कहते हैं।[3] सूरदास कृष्ण लीला वर्णन में कृष्ण के उन पदों के बारे में कहते हैं जो पद काली के फन पर नृत्य करते हैं कि ये पद रमा अपने हृदय में रखती हैं और गंगा उन्हें स्पर्श करके आई हैं।[4] कृष्णदास ने विष्णु का नाम तो कई स्थानों पर लिया है; चैतन्य के पिता, स्वयं वे, एवं उनकी माता सब विष्णु की पूजा

(ख) षट गुन अरु अवतार धरन नाराइन जोई।
सबकौ आश्रय अवधि-भूत नंद नन्दन सोई।
(नंददास, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ. १८३)

१. (क) अवतार हय कृष्णेर षडविध प्रकार।
पुरुषावतार एक लीलावतार आर॥
गुणावतार आर मन्वन्तरावतार आर।....
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६४)

(ख) जज्ञ प्रभु प्रगट दरसन दिखायौ।
बिष्नु-विधि-रुद्र मम रूप ये तीनिहूं, दच्छ सौं बचन यह कहि सुनायौ।
(सू. सा., ४।६, पृ. १४१)

(ग) संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।
(रा. च. मा., बा. १४४, पृ. ७५.)

२. पालनार्थ स्वांश विष्णुरूपे अवतार। सत्वगुण दृष्टांत ताते गुण मायापार॥
स्वरूप ऐश्वर्य्य पूर्ण कृष्णमय प्राय। कृष्ण अंशी तिंहो अंश वेदे हेन गाय।
(चै. च., मध्यलीला., परि. २०, पृ. २६७)

३. (क) नमामि इंदिरापतिम् (रा. च. मा., अर. ४, पृ. ३२१)

(ख) जय राम रमा रमनं समनं।
भव ताप भयाकुल पाहि जनं। (रा. च. मा., उ. १४, पृ. ४९७)

(ग) प्रनमामि निरंतर श्री रमनं।.... (रा. च. मा., उ. १४, पृ. ४९८)

४. ठाढ़े देखत हैं ब्रजबासी।
.. .. ..
जे पद-कमल रमा उर राखति,
परसि सुरसरी आई। (सू. सा., १०।५६८, पृ. ४५४)

करते थे, पर उन्हें वे कृष्ण के बराबर नहीं बताते। हां, चैतन्य को 'तुमि विष्णु' वृंदावन-दास कहते हैं। चैतन्य कृष्ण हैं अतः कृष्ण भी विष्णु हुए। हिन्दी वैष्णव भक्त कई स्थलों पर कुछ इस प्रकार का वर्णन करते हैं, जहां विष्णु ही कृष्ण अथवा राम से बड़े ज्ञात होते हैं और भू-भार हरने के लिए कृष्ण और राम का अवतार लेते हैं।[1] परन्तु गौड़ीय वैष्णव कवियों ने इस प्रकार कहा हो, ऐसा प्रायः ज्ञात नहीं होता। तुलसी और सूर की रचनाओं में कई स्थानों पर ऐसी ध्वनि निकलती थी कि एक भगवान हैं जो अच्युत हैं, क्षीरसागरशायी हैं, रमा सेवित हैं, भृगुलता उनके हृदय पर है, गंगा उनके चरणों से निसृत हुई है। यही रूप विष्णु का भी है। अतः ये भगवान और कोई नहीं, विष्णु हैं। वे विष्णु, राम और कृष्ण के रूप में आए। परन्तु गौड़ीय वैष्णव समाज के कृष्ण तो स्वयं भगवान हैं, परतत्व हैं, अतः वे विष्णु के अवतार नहीं हैं। विष्णु उनके अंश हैं। पालन करने के लिए कृष्ण स्वरूप होकर प्रकाशित होते हैं। ब्रह्मा-शिव भी कृष्ण के आज्ञाकारी भक्त अवतार हैं।[2] ये लोग विष्णु को कृष्ण के स्वांश का अवतार मानते हैं, जब कि हिन्दी वैष्णव भक्त विष्णु को

---

१. (क) कंस बंस कौ नास करत हौं, कहं लौं जीव उबारौं।
यह बिपदा कब मेटहिं श्रीपति, अरु हौं काहि पुकारौं॥
धेनु-रूप धरि पुहुमि पुकारी, सिव बिरंचि कैं द्वारा।
सब मिलि गए जहां पुरुषोत्तम, जिहिं गति अगम अपारा॥
छीर समुद्र मध्य तें यौं हरि, दीरघ बचन उचारा।
उधरौं धरनि असुर कुल मारौं, धरि नर-तन-अवतारा॥
(सू. सा., १०।६४, पृ. २५७)

(ख) चरन-कमल नित रमा पलोवैं।
चाहति नैंकु नैन भरि जोवैं॥
अगम अगोचर लीला-धारी।
सो राधा-बस कुंज-बिहारी॥ (सू. सा. १०।३, पृ. २५६)

(ग) सुनि बिरंचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मति धीर॥
जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवन्ता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कंता॥

.. .. ..

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा।
तुम्हहिं लागि धरिहौं नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेहौं दिनकर बंस उदारा॥
(रा. च. मा., बा. १८५-१८७, पृ. ९३-९५)

२. ब्रह्मा शिव आज्ञाकारी भक्त अवतार।
पालनार्थे विष्णु कृष्णेर स्वरूप आकार॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६७)

कृष्ण-राम रूप में अवतरित बताते हैं। यहां पर ये विष्णु राम-कृष्ण से भी ऊंचे परम ब्रह्म, ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाते हैं। जय विजय जो विष्णु के द्वारपाल थे, मुनि के शाप से कुंभकर्ण और रावण होकर जन्मे थे, उनके उद्धार के लिए विष्णु राम होकर आए। नारद के शाप के कारण भी विष्णु राम होकर आए।[1] ब्रज में कृष्ण भी वपुधारी श्रीपति हैं।[2] चैतन्यचरितामृत में विष्णु को मायातीत गुणातीत परमेश कहा गया है। चैतन्य-जन्म से पहले संसार विष्णु-भक्ति-शून्य था, यवन विष्णु-द्रोही थे, यह वृंदावनदास ने कहा है।[3] परन्तु इन कथनों से विष्णु का श्रेष्ठत्व तो सिद्ध होता है परन्तु उनका और कृष्ण का अभेद नहीं सिद्ध होता। प्रकाशानंद ने चैतन्यदेव को ब्रह्म कह कर प्रणाम किया और वंदना की। इस पर चैतन्यदेव ने कहा, "विष्णु ! विष्णु ! मैं हीन जीव हूं। जीव को विष्णु मानना अपराध का चिह्न है। जो जीव में विष्णु-बुद्धि करता है वह ब्रह्म-रुद्र को नारायण के बराबर मानता है, वह पाखंडी है।"[4] इस कथन से भी विष्णु की श्रेष्ठत्व तो सिद्ध होता है परन्तु वे नारायण हैं या नहीं, यह नहीं जाना जाता। गोविंद-कृष्ण नारायण नाम से परव्योम में बैठते हैं, यह तो पीछे कहा जा चुका है। परन्तु विष्णु कृष्ण नहीं हैं, प्रायः ऐसा ही आभास मिलता है।

इष्टदेव अवतारी हैं या अवतार--गौड़ीय वैष्णव कवि इस बात का अत्यन्त दृढ़ विश्वास के रूप में प्रतिपादन करते हैं कि इष्टदेव कृष्ण-अवतार नहीं हैं। वे स्वयं भगवान

---

१. द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ।
जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र स्राप तें दूनौ भाई।
तामस असुर देह तिन्ह पाई॥

.. .. ..

एक बार तिन्ह कें हित लागी।
धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

(रा. च. मा., बा. १२२-१२३, पृ. ६५)

२. तुम जानत जब धरनि पुकारी। पापहिं पाप भई अति भारी॥
पौढ़ें सेष संग श्री प्यारी। ते ब्रज भीतर हैं बपुधारी॥

(सू. सा., १०।९४५, पृ. ५८५)

३. (क) मायातीत गुणातीत विष्णु परमेश।...

(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६७)

(ख) अन्येर कि दाय विष्णुद्रोही जे यवन।... (चै. भा., आदिखंड, अ. ३, पृ. २१)

४. प्रभु कहे विष्णु विष्णु आमि जीव हीन।
जीवे विष्णु मानि एइ अपराध चिह्न॥
जीवे विष्णुबुद्धि करे जेइ ब्रह्म रुद्र सम।
नारायणे माने तार पाखंडे गणन॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. ३१२)

हैं। चैतन्य के रूप में अथवा गोप-वंशी-कृष्ण के रूप में जो इष्टदेव हैं वे नित्य-धाम-अवस्थित कृष्ण ही हैं, अर्थात् कृष्ण ही कृष्ण का अवतार हैं। वे ही अवतार हैं, वे ही अवतारी। वे ही अंश हैं, वे ही अंशी। पुरुष के कला-अंश समस्त अवतार हैं परन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान हैं, अतः सब अवतार उन्हीं में अवस्थित हैं।[1] कोई कृष्ण को वामन कहता है, कोई नारायण। कृष्ण तो पूर्ण भगवान हैं, अवतारी हैं, उनके लिए सब संभव है।[2] एक कृष्ण ही ब्रज में पूर्णतम भगवान हैं और सब स्वरूप या तो पूर्णतर हैं या पूर्ण हैं।[3] ये अवतार या अंश कैसे हो सकते हैं? चैतन्यचरितामृत के कृष्ण-तत्व-निरूपण और चैतन्य-तत्व-निरूपण इन दोनों स्थलों में यही भावना है। कृष्ण ही ब्रह्म हैं, कृष्ण ही परतत्व हैं, कृष्ण ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। वे जब चाहते हैं, लीला करते हैं। जब चाहते हैं, अंतर्धान हो जाते हैं। उनकी लीला अनंत ब्रह्मांडों में चलती रहती है। इसी से वह नित्य लीला कहलाती है।[4] अद्वय-ज्ञान-तत्व-वस्तु स्वयं भगवान श्रीकृष्ण का स्वरूप और शक्ति रूप से अवस्थान है। स्वांश से वे अनेक रूप धारण करते हैं और अनंत ब्रह्मांडों में और वैकुंठों में विहार करते हैं। स्वांश का विस्तार चतुर्व्यूह अवतार है।[5] जो नारायण है, वह कृष्ण का अंश है। वह नारायण माया को लेकर सृष्टि करता है और उसमें विकार आ जाता है परन्तु कृष्ण तुरीय हैं। उनमें तो माया की गन्ध भी नहीं है। तीनों जलों में शयन करने वाले जो पुरुष हैं, उन तीनों का अंशी तो नारायण है,

---

१. अवतार सब पुरुषेर कला अंश ।
स्वयं भगवान् कृष्ण सर्व्व अवतंस ।।
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १४)

२. सकल संभवे ताते जाते अवतारी। (चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३८)

३. एक कृष्ण ब्रजे पूर्णतम भगवान ।
आर सब स्वरूप पूर्णतर पूर्ण नाम ।।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २७१)

४. किशोर-शेखर धर्मी ब्रजेन्द्रनन्दन ।
प्रकटलीला करिवारे जवे करे मन ।।
आदौ प्रकट कराय माता पिता भक्तगणे।
पाछे प्रकट हय जन्मादिक लीलाक्रमे ।।
पूतना वधादि जत लीला क्षणे क्षणे ।
सब लीला नित्य प्रकट करे अनुक्रमे ।।
.. .. ..
कोन ब्रह्मांडे कोन लीला हय अवस्थान ।
ताते नित्य लीला कहे निगम पुराण ।।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २७०-२७१)

५. अद्वय ज्ञान तत्व कृष्ण स्वयं भगवान। स्वरूप-शक्तिरूपे तांर हय अवस्थान ।।
स्वांश विभिन्नांश रूपे हइया विस्तार। अनंत वैकुंठ ब्रह्मांडे करेन विहार ।।
स्वांश विस्तार चतुर्व्यूह अवतारगण। (चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

परन्तु नारायण भी कृष्ण का प्रकाश-मात्र हैं। नारायण अवतारी हैं, कृष्ण अवतार हैं, अंतर केवल इतना ही है कि नारायण चतुर्भुज हैं और कृष्ण द्विभुज, ऐसा कह कर जो नाना प्रकार से पूर्व-पक्ष स्थापित करते हैं उन्हें भागवत वर्जित करती है। शुक ने सब अवतारों का सामान्य लक्षण करके कृष्ण को उसमें रक्खा तो, परन्तु फिर सब से अलग-अलग लक्षण देते समय बता दिया कि कृष्ण सर्वावतंश हैं। पूर्व-पक्ष वाले फिर कहते हैं कि तुम्हारी व्याख्या अच्छी है परन्तु परव्योम में जो नारायण हैं, वे स्वयं भगवान हैं। वे कृष्ण रूप में अवतार लेते हैं। परन्तु जब शुक स्वयं ही कृष्ण को स्वयं-भगवान सर्वावतंश कहते हैं, तब यह अर्थ कुतर्कानुमान ही है। कृष्ण अवतारी और अवतार सब के आश्रय हैं।[1] नंददास ने भी ऐसा

---

१. (क) ब्रह्मा कहे जले जीवे जेइ नारायण ।
से सब तोमार अंश ए सत्य वचन ॥
कारणाब्धि क्षीरोद गर्भोदकशायी ।
मायाद्वारे सृष्टि करे ताते नव मायी ॥

.. ..

एसवार दर्शनेते आछे माया गंध ।
तुरीय कृष्णेर नाहि मायार संबंध ॥

(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १३)

(ख) सेइ तिनेर अंशी परव्योम नारायण ।
तेहं तोमार प्रकाश तुमि मूल नारायण ॥

.. ..

अवतारी नारायण कृष्ण अवतार ।
तिंह चतुर्भुज इंह मनुष्य आकार ॥
एइ मते नानारूप करे पूर्व्वपक्ष ।
ताहारे निर्ज्जिते भागवत पद्यदक्ष ॥

.. ..

सर्व्व अवतारेर करि सामान्य लक्षण ।
तार मध्ये कृष्णचन्द्रेर करिल गणन ॥
तबे शुकदेव मने पाञा बड़ भय ।
जार जे लक्षण ताहा करिल निश्चय ॥
अवतार सब पुरुषेर कला अंश ।
स्वयं भगवान कृष्ण सर्व्व अवतंश ॥
पूर्वपक्ष कहे तोमार भालत व्याख्यान ।
परव्योमे नारायण स्वयं भगवान ॥
तिंह आसि कृष्ण रूपे करे अवतार ।
एइ अर्थ श्लोके देखि, कि आर विचार ॥

उल्लेख एक स्थान पर किया है।[१] अवतारी, अवतार और अन्य जितनी विभूतियां हैं, सब के आश्रय और आधार कृष्ण हैं। नारायण तो कृष्ण का परव्योम में चतुर्भुज-प्रकाश मात्र हैं।[२]

हिन्दी के वैष्णव भक्त विष्णु और नारायण को एक ही मानते हैं, ऐसा ज्ञात होता है। यह नारायण विष्णु क्षीर-सागर में रहते हैं, भक्तों की पुकार पर भू भार हरने राम-कृष्ण के रूप में अवतरित हुए, यह पीछे कहा है। कंस के अत्याचारों से दुःखी पृथ्वी और देवता क्षीर-सागर के शेषशायी विष्णु के पास गए थे। उन्होंने वचन दिया था कि मैं अवतार लूंगा। इसी प्रकार देवता राम-अवतार के लिए भी विष्णु के ही पास गए थे। उन्होंने परम शक्ति के सहित अवतार लेने को कहा था। यह सब विवरण पीछे दिया जा चुका है। हरि अपना अंश लेकर स्वयं कृष्ण रूप में प्रगट हैं। नारायण ने अति आनंद रूप धारण करके भू का भार हरण किया है। कृष्ण पूर्ण अवतार हैं, जब जब दानव प्रगट हुए हैं तब तब कृष्ण ने अवतार धर कर असुरों का संहार किया। यद्यपि वे परम हंस, अच्युत, अविगत, अविनाशी परमानंद हैं, परन्तु शरीर धारण करके भू का भार हरते हैं।[३] तुलसीदास के राम भी अनीह,

---

तारे कहि केन कर कुतर्कानुमान ।
शास्त्र विरुद्धार्थ कभु ना हय प्रमाण ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १४)

(ग) कृष्ण एक सर्वाश्रय कृष्ण सर्व्वधाम ।
कृष्णेर शरीरे सर्व्व विश्वेर विश्राम ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १६)

१. अवतारी अवतार-धरन, अरु जितक बिभूती ।
इह सब आश्रय के अधार, जग जिहि की ऊती ॥
(नन्ददास, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ. १९०)

२. परव्योम मध्ये करि स्वरूप प्रकाश। नारायण रूपे करे विविध विलास ॥
स्वरूप विग्रह कृष्णेर केवल द्विभुज। नारायण रूपे सेइ तनु चतुर्भुज ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३४)

३. (क) अपने अंश आप हरि प्रगटे पुरुषोत्तम निज रूप ।
नारायण भव भार हरो है अति आनन्द स्वरूप ॥
वासुदेव यों कहत वेद में, हैं पूरन अवतार ॥
सेष सहस मुख रटत निरन्तर तऊ न पावत पार ॥
(सूर सारावली, सू० सा०, (वें० प्रे०) पृ० ६)

(ख) जब जब हरि माया ते दानव प्रकट भये हैं आय ।
तब तब धरि अवतार कृष्ण ने कीन्हीं असुर संहार ॥
(सूर सारावली, सू० सा०, (वें० प्रे०), पृ० २)

(ग) तुम अच्युत अविगत अविनासी। परमानन्द सदा सुख रासी।
तुम तनुधारि हरयो भुव भार, नमो नमो तुम्हें बारंबार ॥
(सू० सा० १०।४२९७, पृ० १७०९)

अरूप, अनाम, अज, सच्चिदानन्द, व्यापक भगवान हैं परन्तु वे भी जब धर्म की हानि होती है, तब प्रभु 'विविध शरीर' धारण करके सज्जनों का दुःख दूर करते हैं।[1] इस प्रकार हिन्दी वैष्णव साहित्य में इष्टदेव निर्गुण ब्रह्म हैं, विष्णु हैं, एवं नारायण हैं, यह बताया गया है, परन्तु साथ ही यह भी आभास मिलते हैं कि राम और कृष्ण निर्गुण ब्रह्म, विष्णु, अथवा नारायण के देहधारी अवतार हैं।

गौड़ीय वैष्णव साहित्य में कृष्ण को अवतार माना है, इसका आभास कहीं नहीं मिलता। कृष्ण नारायण के अंशी हैं, यह पीछे बताया जा चुका है। परम-ईश्वर कृष्ण स्वयं भगवान हैं। उनसे बड़ा तो क्या, उनके समान भी अन्य कोई नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव, ये सब सृष्टि आदि के ईश्वर हैं परन्तु ये तीनों ही कृष्ण के आज्ञाकारी दास हैं। कृष्ण अधीश्वर हैं।[2] ऐसी भावना सूर-तुलसी ने भी दर्शायी है।[3] परन्तु राम-कृष्ण 'श्रीपति', 'रमानिवास' एवं 'हरि' के अवतार हैं, यह भावना भी प्रत्यक्ष होती है। परन्तु गौड़ीय भक्त इसका आभास प्रायः कहीं भी नहीं देते कि कृष्ण अवतार हैं। भू-भार हरने के लिए विष्णु कृष्णावतार लेते हैं वे इसे नहीं मानते।[4] उनके कृष्ण तो स्वयं ईश्वर परम तत्व हैं।

(घ) प्रकट ब्रह्म निकुंज नायक भक्त हेत अवतार। परमानन्द दास,
(अष्ट० ब० स०, फुटनोट पृ० ४१०)

(ङ) कलिमल दूर करन के काजै, तुम लीन्हीं जग में अवतार।
(सू० सा०, १।४१, पृ० १४)

१. (क) एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा॥
व्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
(रा. च. मा., बा. १३, पृ. ९)

(ख) जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
... ...
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
(रा. च. मा., बा., १२१, पृ. ६४)

२. परम ईश्वर कृष्ण स्वयं भगवान।
ताते बड़ तांर सम केह नाहि आन॥
ब्रह्मा विष्णु हर एइ सृष्ट्यादि ईश्वर॥
तिने आज्ञाकारी कृष्णेर कृष्ण अधीश्वर॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २१, पृ. २७३)

३. (क) करै जो सेव तुम्हारी, सो मम सेव है।
विष्णु शिव ब्रह्म मम रूप सारी॥
(सू. सा., दशमस्कंध, वैं. प्रे., पृ. ५९०)

(ख) जाकें बल बिरंचि हरि ईसा।
पालत सृजत हरत दससीसा॥ (रा. च. मा., सु. २१, पृ. ३८२)

४. स्वयं भगवानेर कर्म्म नहे भार हरण।
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २२)

वे अवतारी हैं।[१] हिन्दी के वैष्णव भक्त राम-कृष्ण को निर्गुण विष्णु-नारायण की देहधारी सगुण मूर्ति बताते हैं। परन्तु बंगाली वैष्णव देहधारी अथवा विदेह का प्रश्न ही नहीं उठाते ज्ञात होते। कृष्ण का नाम, कृष्ण की देह और कृष्ण का स्वरूप सब समान हैं। उनके नाम, विग्रह, और स्वरूप तीनों एक ही रूप हैं। इन तीनों में भेद नहीं है। सब ही चिदानंद स्वरूप हैं। देह-देही और नाम-नामी का भेद कृष्ण में नहीं है। नाम, देह और स्वरूप का भेद तो जीव में है। कृष्ण के नाम में ही उनकी देह का विलास अवस्थित है, परन्तु इस देह में प्राकृत अर्थात् पांचभौतिक इंद्रियों का अंश नहीं है। उनकी देह स्वप्रकाश से युक्त है। कृष्ण के नाम, गुण, लीला, सब कृष्ण के स्वरूप के समान ही चिदानंदमय हैं।[२] तात्पर्य यह हुआ कि कृष्ण किसी के अवतार नहीं हैं। गोपवेशी कृष्ण गोलोक निवासी कृष्ण का स्वप्रकाशयुक्त देह विलास हैं; वे ब्रह्म, विष्णु अथवा नारायण किसी के भी अवतार नहीं हैं।[३]

यद्यपि हिन्दी में भी इस प्रकार की भावना मिलती है कि इष्टदेव निर्गुण ब्रह्म हैं, सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं परन्तु साथ ही यह भी भावना मिलती है कि वे निर्गुण ब्रह्म अथवा एक अपार शक्ति के जिसे हरि, भगवान, श्रीपति, नारायण इत्यादि नाम से अभिहित किया है, अवतार भी हैं। परन्तु बंगाली साहित्य में इस भावना का अभाव-सा ही है। कृष्ण स्वयं भगवान हैं। विष्णु उनके गुणावतार हैं। नारायण उनका अंश हैं। तुलसीदास राम को चिदानंद[४] देह वाले और 'विधि हर शंभु' नचावन-हारे कहते तो हैं, परन्तु वहीं पर वे गगन

---

१. ईश्वर परम कृष्ण स्वयं भगवान ।
सर्व्व अवतरी सर्वकारण प्रधान ।।
अनंत बैकुंठ आर अनंत अवतार ।।
अनंत ब्रह्मांड इहा सवार आधार ।।
सच्चिदानंद तनु ब्रजेन्द्रनंदन ।
सर्वैश्वर्य सर्व्वशक्ति सर्व्वरस पूर्ण ।।

(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४८)

२. कृष्ण नाम कृष्ण स्वरूप दुइत समान ।
नाम विग्रह स्वरूप तिन एकरूप ।
तिने भेद नाहि तिन चिदानंद रूप ।।
देह देही नाम नामी कृष्णे नाहि भेद ।
जीवेर धर्म नाम देह स्वरूप विभेद ।।
अतएव कृष्णेर नाम देह विलास ।
प्राकृतेन्द्रिय ग्राह्य नहे हय स्वप्रकाश ।।
कृष्णनाम कृष्णगुण कृष्णलीलावृंद ।
कृष्णेर स्वरूप सम सब चिदानंद ।।

(चै. च., मध्यलीला, परि. १७, पृ. २३३)

३. देखो "इष्टदेव नारायण हैं।"

४. चिदानंद मय देह तुम्हारी । (रा. च. मा., अ. १२७, पृ. २३३)

गिरा से देवताओं की—जिसमें ब्रह्मा-शिव भी सम्मिलित हैं, विष्णु नहीं—प्रार्थना के उत्तर में कहलाते हैं कि मैं परम शक्ति सहित अवतार लूंगा।[१] बंगाली साहित्य में कृष्ण 'अवतार' हैं यह शब्द प्रायः नहीं आया है। हिन्दी में तो है। इन्हीं अवतारी कृष्ण ने अन्य समस्त अवतार लिए। ये गोविंद देवकीनंदन हैं, इन्होंने काली का मर्दन किया, कंस को मारा; इन्हीं ने मत्स्य, कच्छ, शूकर, नरहरि, वामन और परशुराम के अवतार लिए। ये ही बुद्ध और कल्कि नारायण हैं।[२] चतुर्व्यूह इत्यादि भी कृष्ण के ही अवतार हैं।[३] उसके लिए तो सब ही संभव है जो अवतारी है।[४] सूरदास ने ब्रह्मा के मुख से कहलाया है

---

१. (क) जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा।
तुम्हहि लागि धरिहौं नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेहौं दिनकर बंस उदारा॥
... ...
नारद बचन सत्य सब करिहौं।
परम सक्ति समेत अवतरिहौं॥ (रा.च.मा., बा. १८७, पृ. ९५)

(ख) आदि सनातन पर ब्रह्म प्रभु।
घट घट अंतरजामी॥
सो तुम्हरें अवतरे आनि कै॥
सूरदास के स्वामी॥ (सू.सा., १०।१०८६, पृ. २९०)

(ग) तिहि कुल में ईस्वर अवतरे, अंस कला बिभूति करि भरे।
मच्छ-कच्छ अवतार बिभावन, भूतन के भावन, मनभावन॥
(नंददास, दशम स्कंध, अ. १, पृ. १९९)

२. हरे हरे गोविन्द हरे।
कालिय-मर्दन, कंस-निसूदन, देवकि-नंदन राम हरे॥ ध्रु.॥
मत्स्य कच्छवर, शूकर नरहरि, वामंन भृगुपति रक्ष-कुलारे॥
श्रीबल बौद्ध, कल्कि नारायण, देव जनार्दन श्री कंसारे॥
... ...
दुखिते दयां कुरु, देव देवकिसुत, दुर्मति परमानंद परिहारे॥
(प. क. त., पृ. २९७४)

३. (क) देखो "इष्टदेव २"।
(ख) वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्ध॥ सर्व चतुर्व्यूह अंशी तुरीय विशुद्ध॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३४)

४. अथवा भक्तेर वाक्य मानि सत्य करि।
सकल संभवे ताते जाते अवतारी॥
अवतार अवतारी अभेद जे जाने।
पूर्व्वे जैछे कृष्णकेहो काहो करि माने॥

कि जो हरि करता है, सोई होता है। राम हरि कर्त्ता हैं। आदि-निरंजन निराकार सृष्टि रचने के लिए आदि-पुरुष हुआ। इसी आदि-पुरुष से मच्छ, कच्छ, वाराह, नरसिंह, वासुदेव और बुद्ध हुए, फिर कल्कि भी होंगे। ये ही मन्वन्तर अवतार भी हुए।[1] पार्वती मोह को दूर करते समय शिव ने उनसे बताया कि राम ने अनेक जन्म लिए हैं। हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष को मारने के लिए उन्होंने नरहरि और वाराह का अवतार लिया; फिर जालंधर जो रावण होकर जन्मा था, उसे मारने के लिए कौशल्या के घर जन्मे।[2]

इष्टदेव का स्वरूप—इष्टदेव राम और इष्टदेव कृष्ण का दार्शनिक रूप क्या है यह अब तक बताया जा चुका है। वे अद्वितीय, षडैश्वर्यपूर्ण, चिदानंद, सच्चिदानंद, सर्वाश्रय, सर्वव्यापक इत्यादि हैं। वे नेति हैं परन्तु उनका यह रूप भक्त को आकर्षित नहीं करता। यह रूप चिन्तन का आधार हो सकता है, प्रेम और उपासना करने का नहीं। सोलहवीं शती तो प्रमुख रूप से भक्ति का युग है ही। सब वैष्णव भक्त इष्टदेव के इस रूप को आस्था की दृष्टि से देखते तो हैं परन्तु वे इस रूप से भिन्न ही स्वरूप को उपास्य इष्टदेव बताते हैं। सूरदास ने गोपी-उद्धव संवाद में तो इस निर्गुण ब्रह्म की और ब्रह्म ज्ञान की अच्छी हंसी की है और सगुण देहधारी कृष्ण की ओर गोपियों की दृढ़ रति बताई है। कृष्णदास कहते हैं कि राधा कुरुक्षेत्र में कृष्ण को देखने गई, परन्तु उनका नारायण, योगी राज रूप देख कर बड़ी संतप्त हुई, और चली आई। भक्त को इष्टदेव का जो रूप प्रिय है, वह नराकार है। कृष्ण[3] के जितने खेल हैं उन सब में नरलीला सर्वश्रेष्ठ है। नरवपु उनका स्वरूप है। ये कृष्ण द्विभुज विग्रह वाले हैं। यही उनका एक मात्र स्वरूप है। कृष्ण का गोप-वेशी वृन्दावन स्थित

केह कहे कृष्ण हय साक्षात् नारायण।
केह कहे कृष्ण हय साक्षात् वामन॥
केह कहे क्षीरोदकशायी अवतार।
असंभव नहे सत्य वचन सवार॥

(चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३८)

१. सूरसागर द्वितीय स्कंध पृ. १३६.

२. राम चरित मानस, पृ. ६५.

३. (क) कृष्णेर जतेक खेला, सर्व्वोत्तम नरलीला, नरवपु ताहार स्वरूप॥
गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर, नव लीला हय अनुरूप॥
कृष्णेर मधुर रूप शुन सनातन॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २१, पृ. २७५)

(ख) स्वरूप विग्रह कृष्णेर केवल द्विभुज।
नारायण रूपे सेइ तनु चतुर्भुज॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३४)

(ग) स्वयंरूपे स्वयं प्रकाश दुइ रूपे स्फूर्ति।
स्वयंरूपे एक कृष्ण ब्रजे गोपमूर्ति॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६२)

रूप ही एक मात्र सत्य है। यही रूप उनका स्वयं रूप एवं वास्तविक रूप है। गोपवेशी, वेणुधारी, नवकिशोर नटवर अपने अनुरूप ही नवलीला करते हैं। इन इष्टदेव की देह चिदानंदमयी है, विकारों से रहित है, और इन्होंने देवताओं के हित के लिए नर-शरीर धारण किया है।[1] तुलसीदास कहते हैं कि कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं, उस निर्गुण ब्रह्म का जिसे श्रुति अव्यक्त कहती है, परन्तु मुझे कौशल के भूप राम का सगुण स्वरूप ही भाता है।[2] इन नराकृति द्विभुज इष्टदेव राम का देह-धर्म चिदानंद के अतिरिक्त और भी कुछ है या नहीं, यह प्रायः कहीं भी तुलसीदास ने नहीं बताया है। इष्टदेव कृष्ण की देह का धर्म बाल्य और पौगंड है। स्वयं अवतारी कृष्ण का स्वरूप नित्य किशोर ही है।[3] ये कृष्ण आनंद की निधि हैं, नंदकुमार हैं, परम ब्रह्म हैं, जगमोहन लीला के लिए नराकृति धारण की है।[4] इष्टदेव राम कोशलपति दशरथ के पुत्र हैं। इष्टदेव कृष्ण नंदकुमार, ब्रजेन्द्रनंदन हैं, यह कई बार कहा गया है।[5] ये कृष्ण मोहन हैं, गोपियों के नाथ और गोपाल हैं। ये यशोदा

---

१. (क) चिदानंद मय देह तुम्हारी।
बिगत बिकार जान अधिकारी॥

नर तनु धरेहु संत सुर काजा।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥ (रा. च. मा., अ. १२७, पृ. २३३)

(ख) भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
(रा. च. मा., उ. ७२, पृ. ५२८)

२. कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।
मोहि भाव कोसल भूप। श्री राम सगुन सरूप॥
(रा. च. मा., लं., ११३, पृ. ४७९)

३. (क) अंश शक्त्यावेश रूपे द्विविधावतार।
बाल्य औ पौगंड धर्म दुइत प्रकार॥
किशोर स्वरूप कृष्ण स्वयं अवतारी॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १६)

(ख) सिसु कुमार पौगंड धरम पुनि बलित ललित लस।
धरमी नित्य-किसोर नवल चित-चोर एकरस॥
(नंददास, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ. १८३)

४. आनंद की निधि नंदकुमार।
परम ब्रह्म भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार।
... ...
चरण कमल मकरंद पान कों,
अलि आनंद परमानंद दास॥ (अष्ट. व. स., फुटनोट, पृ. ४११)

५. "नंद सुत बलि जोर भागवते गाय"
"स्वयं भगवान कृष्ण ब्रजेन्द्र नंदन" (कृष्णदास की उक्तियां)
"नंद नंदन पद कमल छांड़ि कैं"

के बाल और नंदलाल हैं।[1] लोचनदास कहते हैं कि उन हरि का भजन मन दृढ़ करके करो जो ब्रजेन्द्रनंदन हैं, जो गोपियों के प्राण-धन हैं और भुवन-मोहन श्याम वर्ण हैं; उनका नाम मुख से बार बार लो। सूरदास कहते हैं कि सुर-नर-मुनि जिसका ध्यान करते हैं, वह ठाकुर ब्रज में विहार करने वाला गोप है। यह रूप-रतन जो है, वह भक्तों का गूढ़ धन है जिसे कृष्ण ने अपनी लीला प्रकट करने के लिए प्रगट किया है। भगवन्ता का सार जो माधुर्य है उसे उन्होंने ब्रज में प्रचारित किया है, उन्हीं का भजन करो। इन्हीं से प्रीति करो।[2] ये इष्टदेव श्याम वर्ण के हैं। यह श्याम रंग नील वर्ण सघन मेघ जैसा है। इस नील वर्ण कलेवर के सौन्दर्य का अन्त नहीं है।[3] यह श्याम वर्ण अत्यन्त मनोहर है और सुरंग है। इसी की छवि

---

१. सब तजि भजिये नंदकुमार। (सूर)
परमानंद प्रभु तुम चिरजिवो,
नंद गोप के लाल। (परमानंद दास)

२. श्री कृष्ण कृपालु कृपा निधि, दीन बंधु दयाल।
दामोदर बनवारी मोहन गोपी नाथ गुपाल॥
राधारमन बिहारी, नटवर सुन्दर, जसुमति बाल।
माखन चोर गिरिधर मनहारी सुखकारी नंदलाल॥
... ...
छीत स्वामी सोई अब प्रगटे कलि में वल्लभ लाल॥ (अष्ट. व. स., फुटनोट, पृ. ४२१)

३. (क) भज भज हरि, मन दृढ़ करि, मुखे बोल तार नाम।
ब्रजेन्द्रनंदन गोपी-प्राण-धन, भुवन मोहन श्याम॥
(प. क. त., पद पृ. ३०४३)

(ख) सुर नर मुनि जाको ध्यान धरत हैं शंभु समाधि न टारी।
सोई प्रभु सूरदास को ठाकुर गोकुल गोप बिहारी॥ (की. र., पृ. ७३)

(ग) एइ रूप रतन, भक्तगणेर गूढ़ धन, प्रकट कैल नित्य लीला हैते॥
... ...
माधुर्य भगवन्ता सार, ब्रजे कैल परचार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २१, पृ. २७५, २७६)

(घ) देखौ री नँद-नंदन आवत।
... .
तन घन स्याम कमल-दल-लोचन, अंग अंग छबि पावत॥
(सू. सा., १०।१२३५, पृ. ४७९)

(ङ) कन्हैया हेरी दै।
सुभग सांवरे गात की मैं, सोभा कहत लजाउँ॥
(सू. सा., १०।१०६९, पृ. ४१६)

(च) पीत बसन चंदन तिलक, मोर-मुकुट कुंडल झलक।
स्याम-घन-सुरंग छलक, यह छबि तन लिये॥
(सू. सा., १०।१०७८, पृ. ४१८)

(छ) प्रगटे मथुरा मांझ हरी।

लिये हुए जो गाता है, उसकी शोभा कहते ही नहीं बनती। सूरदास कहते हैं, कि शोभा कहने में मैं लज्जित होता हूं। इष्टदेव राम भी नीलवर्ण हैं। यह नीलवर्ण भी घन के समान ही है।[1] अभिराम लोचन वाले राम जो तनु घन श्याम हैं, अपने चारों आयुध लिए हैं। वे शोभा के सिन्धु हैं। चैतन्य देव यवन के मत का खंडन करते हुए कहते हैं कि तुम्हारा शास्त्र ईश्वर को निर्विशेष बताता है। मैं उसका खंडन करता हूं। मैं सविशेष ईश्वर की स्थापना करता हूं। तुम्हारा शास्त्र कहता है कि ईश्वर एक है। मैं एक ही ईश्वर मानता हूं। परन्तु वह सर्वैश्वर्य-पूर्ण श्याम कलेवर है।[2] कृपामय कृष्ण केशी और कंस को मारने वाले हैं। सुन्दर तन, घन के समान सुन्दर है, परन्तु अंधकार को दूर करता है। घनश्याम कह कर उनका यश

श्यामवर्ण वपु उरपर भृगुपद जटित कंचन शिरक्रीट खरी ॥

... ...

गोविन्द प्रभु गिरिधर जसुमतिसुत भक्तन हित आये नंदघरी ॥

(की. सं., भाग १, पृ. २५)

(ज) सो गोविंद तिहारे ब्रज बालक ।
प्रगट भये घनश्याम मनोहर धरें रूप बनुज कुल कालक ॥

... ...

परमानंददास को ठाकुर बहोत पुन्य तप के फल पाये ॥

(की. सं., भाग १, पृ. २५)

१. (क) लोचन अभिरामं, तनुघन स्यामं, निज आयुध भुज चारी ।
भूषन बनमाला, नयन बिसाला, सोभासिन्धु खरारी ॥

(रा. च. मा., बा. १९२, पृ. ९७)

तेहि अवसर आए दोऊ भाई। गए रहे देखन फुलवाई ॥

(ख) स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा ॥

(रा. च. मा., बा. २१५, पृ. १०८)

२. (क) प्रभु कहे तोमा शास्त्र कहे निर्व्विशेष ।
ताहा खंडि सविशेष स्थापियाछे शेष ॥
तव शास्त्रे कहे शेषे एकइ ईश्वर ।
सर्वैश्वर्यपूर्ण तिह श्याम कलेवर ॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. १२, पृ. २४३)

(ख) ब्रजेन्द्र-नंदन, गोपी-प्राण-धन,
भुवन-मोहन श्याम ॥

... ...

दास लोचन, भावे अनुक्षण,
मिछाइ जनम गेल ॥ (प. क. त., पद ३०४३)

घोषित है।[1] श्याम जलधर के से अंग वाले कृष्ण की जय हो।[2]

इष्टदेव की सहचरी—इष्टदेव कृष्ण और इष्टदेव राम दोनों ही अपनी अपनी सहचरियों के साथ हैं। कृष्ण की सहचरी राधा हैं और राम की सीता। सीता का स्वरूप तुलसीदास ने निरूपण किया है। भौतिक रूप में सीता जनक की पुत्री हैं। इन्हीं जनक की पुत्री के लिए स्वयंवर हुआ था।[3] सीता का वास्तविक रूप कुछ और ही है। वे वह आदि-शक्ति हैं जिससे विश्व की उत्पत्ति होती है। यह आदि-शक्ति छबि की निधि और संसार का मूल हैं। उनके भृकुटि-बिलास से संसार उत्पन्न होता है। संसार को उपजाने वाली आदि-शक्ति राम की माया है, यही सीता हैं।[4] राम मर्यादा के पालक हैं और जानकी जगदीश की माया हैं। यह माया सृजन करती है, पालन करती है, और संहार करती है।[5] यह आदि-

---

१. कृष्ण कृष्ण कमलेश कृपा मय केशि मथन कंसारि।
 ... ...
 घन-तनु-सुन्दर घोर-तिमिर-हर घोषित-यश घनश्याम॥
 ... ...
 मनहर मदनमोहन मधु-सूदन, गाओत गोकुल दास॥
 (प. क. त., पद २९७५)

२. जय जय जलधर श्यामर अंग।
 हिलन कलपतरु ललित त्रिभंग॥
 ... ...
 तरुण, अरुण रुचि पद अरविंद।
 नख मणि नीछनि दास गोविन्द॥ (प. क. त., पद १९)

३. तात जनकतनया यह सोई।
 धनुष जज्ञ जेहि कारन होई॥
 (रा. च. मा., बा. २३१, पृ. ११५)

४. (क) बाम भाग सोभति अनुकूला।
 आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला॥
 ... ...
 भृकुटि बिलास जासु जग होई।
 राम बाम दिसि सीता सोई॥
 (रा. च. मा., बा. १४८, पृ. ७६)

 (ख) आदिसक्ति जेंहि जग उपजाया।
 सोउ अवतरिही मोरि यह माया॥
 (रा. च. मा., बा. १५२, पृ. ७८)

५. श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
 जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
 (रा. च. मा., अ., १२६, पृ. २३२)

शक्ति सीता राम की परम शक्ति हैं।[1] तुलसीदास सीता को परम शक्ति बताते हैं परन्तु कहीं कहीं वे उन्हें लक्ष्मी के समान, अथवा यों कहना चाहिए, लक्ष्मी ही बताते हैं। वे कहते हैं कि जनकपुरी की शोभा का वर्णन कोई नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें लक्ष्मी निवास करती हैं।[2] कुछ स्थलों पर ये सीता लक्ष्मी से भिन्न और उनसे श्रेष्ठ बतायी गई हैं। यह सीता जब वधू के रूप में सम्मुख दीखीं, तब लक्ष्मी-सहित विष्णु भी मोहित हो गए। ये सीता उमा, रमा और ब्रह्माणी द्वारा वंदित हैं।[3] चैतन्य देव सीता को ईश्वर की प्रियतमा और चिदानन्द मूर्ति वाली बताते हैं।[4]

कृष्णदास कविराज ने कृष्ण और चैतन्य के समान ही राधा तत्व का निरूपण किया है।[5] वे कहते हैं कि कृष्ण की तीनों शक्तियों में एक ह्लादिनी शक्ति है। इस शक्ति का जन्म कृष्ण के परमानंदमय रूप से हुआ है।[6] राधा यही स्वरूप-शक्ति ह्लादिनी है और कृष्ण के प्रणय का विकार हैं।[7] ह्लादिनी शक्ति का सार प्रेम है, प्रेम का सार भाव है और भाव की पराकाष्ठा का नाम महाभाव है। राधा ठकुरानी महाभाव-स्वरूपा हैं और

---

१. नारद बचन सत्य सब करिहौं।
परम सक्ति समेत अवतरिहौं॥
(रा. च. मा., बा. १८७, पृ. ९५)

२. बसै नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु॥
(रा. च. मा. बा. २८९, पृ. १४२)

३. (क) हरि हित सहित रामु जब जोहे।
रमा समेत रमापति मोहे॥ (रा. च. मा., बा. ३१७, पृ. १५४)
(ख) उमा, रमा, ब्रह्मानि बंदिता।
जगदम्बा संततमनिंदिता॥ (रा. च. मा., उ. २४, पृ. ५०३)

४. ईश्वर-प्रेयसी सीता चिदानंद मूर्त्ति।
प्राकृत इन्द्रिये तांरे देखिते नाहि शक्ति॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६३)

५. संक्षेपे कहिल एइ कृष्णेर स्वरूप।
एबे संक्षेपे कहि राधातत्वरूप॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८ पृ. १४९)

६. सच्चित् आनंदमय कृष्णेर स्वरूप। अतएव स्वरूप शक्ति हय तिन रूप॥
आनंदांशे ह्लादिनी, सदंशे संधिनी। चिदंशे संवित् जारे ज्ञान करि मानि॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४९)

७. राधिका हवेन कृष्णेर प्रणय विकार।
स्वरूपशक्ति ह्लादिनी नाम जांहार॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

सब गुणवान हैं।[1] वे प्रेम का साक्षात् स्वरूप हैं। उनकी देह प्रेम से ही प्रभावित है। वे कृष्ण की प्रेयसी हैं, यह समस्त संसार में विदित है।[2] राधा का काम कृष्ण की वांछा पूर्ण करना है, इसी की वे आराधना करती हैं अतः उनका नाम राधिका है। यह बात पुराण भी बखानते हैं।[3] इन राधा का चित्त, इंद्रियां और काया, सब ही कृष्ण-प्रेम से भरी हैं और वे जो कृष्ण की निज शक्ति हैं, कृष्ण की क्रीड़ा में सहायता देकर रस आस्वादन कराती हैं।[4] जिस प्रकार अवतारी कृष्ण अवतार धारण करते हैं, उसी प्रकार अंशिनी राधा भी तीन गणों का विस्तार करती है। एक लक्ष्मीगण, दूसरा महिषीगण और तीसरा कांतागण। लक्ष्मीगण उनका वैभव विलासांश है, महिषीगण प्रभाव अंश हैं, कांतागण जो व्रज देवियां हैं यह आकार-स्वभाव भेद से राधा का ही काय-व्यूह रूप हैं। ये ही रस का कारण हैं। राधा इन्हीं की सहायता से कृष्ण को रस का आस्वादन कराती हैं।[5] ये राधा गोविन्द को आनन्द देने वाली और गोविन्द मोहिनी हैं। गोविन्द की सर्वस्व हैं और समस्त कांताओं की शिरोमणि हैं। ये

---

१. ह्लादिनीर सार प्रेम प्रेम सार भाव। भावेर परमकाष्ठा नाम महाभाव॥
महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठाकुरानी। सर्व्व गुणखनि कृष्णकान्ता शिरोमणि॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

२. प्रेमेर स्वरूप देह प्रेमे विभावित। कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठ जगते विदित॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४९)

३. कृष्ण वांछा पूर्त्तिरूप करे आराधने। एहेत राधिका नाम पुराणे बाखाने॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २५)

४. (क) कृष्णप्रेमे भावित जांर चित्तेन्द्रिय काय।
कृष्ण निज शक्ति राधा क्रीड़ार सहाय॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

(ख) कृष्णके कराय श्याम रस मधुपान।
निरंतर पूर्ण करे कृष्णेर सर्व्वकाम॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५०)

५. अवतारी कृष्ण जैछे करे अवतार।
अंशिनी राधा हैते तिन गणेर विस्तार॥

... ...

लक्ष्मीगण तांर वैभव विलासांश रूप।
महिषीगण प्रभाव प्रकाश स्वरूप॥
आकार स्वभाव भेदे व्रजदेवीगण।
कायव्यूह रूप तांर रसेर कारण॥

... ...

तार मध्ये व्रजे नाना भाव रस भेदे।
कृष्णके कराय रासादिक लीला स्वादे॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

राधा कृष्णमयी हैं, वे सब जगह कृष्ण को ही देखती हैं। राधा सर्वपूज्य परम देवता हैं, सभी की पालनकर्त्तृ, जगत माता हैं। कृष्ण स्वयं जगत् मोहन हैं। राधा इन्हें भी मोहित करती हैं। अतः वे सबसे श्रेष्ठ हैं। राधा पूर्ण शक्ति हैं; कृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। इन दोनों में उसी प्रकार कोई भेद नहीं है, जैसे मृगमद और उसकी गंध में और अग्नि और उसकी ज्वाला में भिन्नता नहीं है। राधाकृष्ण एक ही स्वरूप हैं, केवल लीला रस के आस्वादन करने के लिए दो रूप धारण किए हैं।[1] ये कृष्ण के विशुद्ध प्रेम की आकार हैं। अनुपम गुणों से इनका कलेवर परिपूर्ण है। जिस राधा के गुणों और सौभाग्य की आकांक्षा सत्यभामा करती हैं, जिनसे ब्रज-बालायें कलायें सीखती हैं, जिनके सौंदर्य की वांछा लक्ष्मी करती हैं, जिसके पातिव्रत धर्म की इच्छा अरुंधती करती हैं और जिसके सद्गुणों का पार कृष्ण भी नहीं पाते हैं, उन राधा के गुणों का वर्णन कौन कर सकता है।[2]

हिन्दी के वैष्णव साहित्य में भी कृष्ण-सहचरी राधा की भावना बहुत कुछ इसी प्रकार की है। ये राधा रूप की राशि, सुख की राशि, शील और गुणों की राशि हैं। जगनायक

---

१. गोविन्दानन्दिनी राधा गोविन्द मोहिनी ।
गोविंद-सर्व्वस्व सर्व्व कांता-शिरोमणि ।।
... ...
कृष्णमयी कृष्ण जांर भितरे बाहिरे ।
जांहा जांहा नेत्र पड़े तांहा कृष्ण स्फुरे ।।
... ...
अतएव सर्व्वपूज्या परम देवता ।
सर्व्वपालिका सर्व्व जगतेर माता ।।
... ...
जगत-मोहन कृष्ण तांहार मोहिनी ।
अतएव समस्तेर परा ठाकुराणी ।।
राधा पूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्णशक्तिमान ।
दुइ वस्तु भेद नाहि शास्त्रेर प्रमाण ।।
मृगपद तार गंध जैछे अविच्छेद ।
अग्नि ज्वालाते जैछे कभु नाहि भेद ।।
राधाकृष्ण एछे सदा एकइ स्वरूप ।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप ।।
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४–२५)

२. कृष्णेर विशुद्ध प्रेम रत्नेर आकर । अनुपम गुणगणे पूर्ण कलेवर ।।
... ...
जांहार सौभाग्य गुण वाञ्छे सत्यभामा । जांर ठाञि कला विलास शिखे ब्रजरामा ।
जांर सौन्दर्यादि गुण वाञ्छे लक्ष्मी पार्व्वती । जांर पतिव्रता धर्म वाञ्छे अरुंधती ।
जांर सद्गुणगणेर कृष्ण ना पाय पार । तांर गुण गणिवे केमने जीव छार ।।
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५०)

जगदीश की प्रिय हैं और स्वयं जगत् की माता और जग की रानी हैं। ये राधा वृंदावन में नित्य ही कृष्ण के साथ विहार करती हैं और गतिहीनों की गति हैं, भक्तों की स्वामिनी हैं, और मंगल देने वाली हैं। राधा अशरण को शरण देने वाली, संसार के भय को दूर करने वाली हैं, यह वेद पुराण कहते हैं। जिह्वा तो एक है और उसकी शोभा अपार है, वह कैसे वर्णन की जाय। सूरदास कहते हैं कि मुझे कृष्ण की भक्ति दीजिए।[1] ये राधा समस्त गुणों से पूर्ण हैं, कृष्ण इनके अधीन हैं।[2] यह समस्त संसार इन राधा का धाम है और समस्त शक्तियां उनकी दासी हैं।[3] ये राधा आनन्द की निधि हैं।[4] कृष्णदास कविराज भी राधा को कृष्ण की वह ह्लादिनी शक्ति बताते हैं जो उनके आनन्द रूप में उद्भूत है। कृष्णदास राधा को महाभाव-स्वरूपा बताते हैं, रसिकदास भी राधा को महारस का अवतार बताते हैं।[5]

---

१. रूपरासि, सुख रासि राधिके, सील महा गुन-रासी।
कृष्न-चरन ते पावहिं स्यामा, जे तुव चरन उपासी॥
जग-नायक जगदीस-पियारी, जगत-जननि जग रानी॥
नित विहार गोपाललाल-संग, बृन्दावन रजधानी॥
अगतिनी की गति, भक्तनि की पति राधा मंगलदानी॥
असरन-सरनी, भवभय-हरनी, बेद पुरान बखानी॥
रसना एक नहीं सत कोटिक, सोभा अमित अपार॥
कृष्न-भक्ति दीजै श्री राधे, सूर दास बलिहार॥
(सू. सा. १०।१०५५, पृ. ६२४)

२. श्री राधिका सकल गुन पूरन,
जाके स्याम अधीन॥ (सू. सा. १०।१०६०, पृ. ६२६)

३. (क) सब जग धाम, धाम पुनि जाको शेष धाम जाहि मानें।
नन्ददास सुख को सुखसागर प्रगटी हे बरसानें॥
(नंददास, की. सं., पृ. १८७)

(ख) शक्ति सबै दासी हैं जाकी सी याहूतें अधिक सुहाई॥
... ...
नंददास प्रभु पलना पोढ़े किलकत कुंवर कन्हाई॥
(नंददास, की. स., पृ. १८७)

४. चलो वृषभान गोप के द्वार।
जन्म लियो मोहन हित कारन आनंद निधि सुकुमार।
... ...
हित हरिवंश दूध दधि छिरकत मांझ हरिद्रा डार॥
(की. सं., पृ. १९०)

५. महारस पूरन प्रगट्यो आय।
... ...
रस की निधि ब्रजरसिक राय सों करो सकल दुख हानि॥
(की. सं., पृ. १९१)

य राधा कृष्ण से अभिन्न हैं। पुरुषोत्तम ही राधाकृष्ण दो रूप बनाकर आए हैं।[1] राधाकृष्ण की जोड़ी है।[2] गोविन्ददास कहते हैं, 'सिन्धु सुता गिरि सुता सची रति' कोई भी इनके समान नहीं हैं। सूरदास कहते हैं, कि न कमला, न शची, न रति और न रमा, किसी की भी उपमा मेरे हृदय में नहीं समाती।[3] गौड़ीय भक्तों की राधा परकीया हैं। परन्तु ब्रज के भक्तों की राधा स्वकीया हैं। जन्म होते ही वे कृष्ण की जोड़ी मान ली गयीं। यशोदा ने रीतिपूर्वक सगाई मांगी और फिर विवाह हुआ।

---

१. प्रकटे पुरुषोत्तम श्रीराधा द्वैविधि रूप बनाई।

... ...

छीतस्वामी गिरिधर को चेरो जुग जुग यह सुख पाई।

(की. सं., पृ. १९८)

२. (क) चतुर्भुज प्रभु गिरिधर यह जोरी त्रिभुवन शोभा तोलि लई।

(की. सं., पृ. २००)

(ख) परमानंद वृषभाननंदिनी जोरी नंद दुलार ॥

(की. सं., पृ. १९९)

३. की. सं., पृ. १९० और १९२।

६. जीव

शक्तिमत कृष्ण की तीन शक्तियां हैं, अंतरंगा, बहिरंगा और तटस्था। तटस्था शक्ति का दूसरा नाम जीव शक्ति है।[१] अद्वय ज्ञान तत्त्व कृष्ण स्वयं भगवान हैं, जीव उनकी ही शक्ति है। इन कृष्ण का अवस्थान अंतरंग स्वरूप शक्ति में है। स्वांश और विभिन्नांश से ये अपना विस्तार करते हैं और अनंत ब्रह्मांडों में विहार करते हैं। स्वांश का विस्तार चतुर्व्यूह अवतार स्वरूप में होता है। विभिन्नांश से जो विस्तार होता है वह जीव है, जिसकी उनकी शक्ति में गणना की जाती है।[२] यह जीव कृष्ण की शक्ति तो है परन्तु कृष्ण नहीं है। दोनों में भेद है। गीता शास्त्र भी जीव को शक्ति कर के ही मानते हैं परन्तु इस जीव का कृष्ण से अभेद नहीं मानना चाहिए।[३] यह जो कहा जाता है कि जीव में 'आत्मबुद्धि' है अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूं' यह मिथ्या कथन है। तत्त्वमसि जो जीव के लिए कहा जाता है यह प्रादेशिक (आंशिक) वाक्य है। जो 'प्रणव' को नहीं मानते वे ही इसे महावाक्य कहते हैं।[४] अधम जीव को कृष्ण के समान नहीं कहना चाहिए। षडैश्वर्यपूर्ण कृष्ण सूर्य के समान हैं और जीव उनकी एक किरण-कण है। जीव और ईश्वर तत्त्व कभी भी एक नहीं हैं। जलती अग्नि के समान कृष्ण

---

१. कृष्णेर अनंत शक्ति ताते तिन प्रधान।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीव शक्ति, नाम ॥
अंतरंगा, बहिरंगा तटस्था कहि जारे। इत्यादि

(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४९)

२. अद्वय ज्ञानतत्व कृष्ण स्वयं भगवान।
स्वरूप शक्तिरूपे तांर हय अवस्थान ॥
स्वांश, विभिन्नांश रूपे हइया विस्तार।
अनंत वैकुंठ ब्रह्मांडे करेन विहार ॥
स्वांश विस्तार चतुर्व्यूह अवतारगण।
विभिन्नांश जीव तांर शक्तिते गणन ॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

३. गीता शास्त्रे जीवरूप शक्ति करि माने।
हेन जीवे अभेद कर ईश्वरेर सने ॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३२)

४. जीवेर देहे आत्मबुद्धि सेइ मिथ्या हय।
जगत् जे मिथ्या नहे नश्वर मात्र हय ॥

.. .. ..

तत्वमसि जीव हेतु प्रादेशिक वाक्य
प्रणव ना मानि तारे कहे महावाक्य ॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३३)

हैं और जीव एक स्फुलिंग कण मात्र है।[१] जीव और ईश्वर में मायावश और मायाधीश का भेद है।[२] अर्थात् जीव माया के अधीन है और ईश्वर माया का अधीश्वर है। जीव ईश्वर से भिन्न है परन्तु वह ईश्वर की अंश-विभूति तो है। यह अंतर्यामी जीव गोविंद के प्रकाश से युक्त है। जिस प्रकार एक ही सूर्य अनंत स्फटिकों में चमकता है उसी प्रकार एक गोविंद अनंत जीवों में प्रकाशित है।[३] कृष्ण के इस विभिन्नांश से विस्तारित जीव दो प्रकार के हैं। एक नित्य मुक्त और दूसरा नित्यबद्ध।[४]

नित्यमुक्त जीव प्रतिदिन कृष्ण चरणोन्मुख रहता है और कृष्ण-पार्षद कहला कर उनकी सेवा का सुख पाता है। नित्यबद्धजीव कृष्ण से विमुख रहता है और नित्यप्रति संसार के कामों में ही लगा रहता है और नरकादि के दुःख भोगता है। इस नित्यबद्ध जीव को पिशाचिनी माया दुःख देती है। तीनों ताप उसे जलाकर मारते हैं। वह काम-क्रोधादि का दास हो जाता है और आवागमन में पड़ा रहता है। एक बार जन्म होता है, बार-बार मरता है। परन्तु इतने पर भी वह कृष्ण-भजन नहीं करता। माता के गर्भ में अनेक व्यथायें भोगता है, तब पिछले सैकड़ों जन्मों की कथा याद आती है। ऊपर पैर और नीचे शीश करके बंधन में पड़ा रहता है। उस विपत् के समय में कृष्ण याद आते हैं परन्तु जन्म होते ही महामाया के बंधन में पड़ जाता है, तब कृष्ण का भजन करना विस्मृत हो जाता है। भ्रमते भ्रमते यदि साधुसंग मिल जाता है तब उसके उपदेश से कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है और

---

१. प्रभु कहे विष्णु विष्णु इहा ना कहिय।
जीवाधमे कृष्णज्ञान कभु ना करिह॥
सन्यासी चित्कण जीव किरणकण सम।
षडैश्वर्यपूर्ण कृष्ण हय सूर्योपम॥
जीव आर ईश्वरतत्त्व कभु नहे सम।
ज्वलदग्नि राशि जैछे स्फुलिंगेर कण॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४१)

२. मायाधीश मायावश ईश्वरे जीवे भेद।
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३२)

३. आत्मा अंतर्यामी जारे योगशास्त्रे कय।
सेइ गोविंदेर अंश विभूति जे हय॥
अनंत स्फटिके जैछे एक सूर्य भासे।
तैछे जीवे गोविंदेर अंश परकाशे॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २, पृ. १२)

४. सेइ विभिन्नांश जीव दुइत प्रकार। एक नित्यमुक्त एकेर नित्य संसार॥
नित्य मुक्त नित्य कृष्ण चरणे उन्मुख। कृष्ण पारिषद नाम भुंजे सेवा सुख॥
नित्यबद्ध कृष्ण हैते नित्य बहिर्मुख। नित्य संसारी भुंजे नरकादि दुःख॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

माया भागती है। उसी समय कर्म के बंधन भी छूटते हैं।[1] स्वाभाविकतया जीव कृष्ण का दास है, इसे वह भूल जाता है। इसी से माया उसका गला बांधती है। कृष्ण के भजन और गुरु-चरण-सेवन से यह माया जाल छूटता है और कृष्ण-चरण की प्राप्ति होती है। जीव कृष्ण की तटस्थता शक्ति का भेदाभेद प्रकाश है।[2]

हिंदी वैष्णव भक्तों ने भी प्रायः इसी प्रकार के भाव जीव के लिए प्रस्तुत किए हैं। जीव ईश्वर की शक्ति है, ऐसा कथन स्पष्ट रूप से तो नहीं किया गया है, परन्तु जीव ईश्वर का अंश है, उससे उद्भूत है, यह प्रायः सर्वमान्य है। तुलसीदास राम के मुख से कहलाते हैं कि विविध प्रकार के चराचर जीव मेरी माया से संभूत हैं। वे सब मेरे उपजाए हैं और मुझे प्रिय हैं। समस्त तत्त्व, ब्रह्मांड, देवता, माया, समस्त जीव, प्रकृति इत्यादि सब गोपाल

---

१. (क) सेइ दोषे मायापिशाची दंड करे तारे ॥
आध्यात्मिक तापत्रय तारे जारि मारे ॥
काम क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते जदि साधु वैद्य पाय ॥
तार उपदेश-मंत्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय तबे कृष्ण निकटे जाय ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

(ख) एक बार जनमये आर बार मरे।
तथापिओ हरि-पद भजन ना करे ॥
थाकिया मायेर गर्भे पाय नाना वेथा।
तखन पड़ये मने शत जन्मेर कथा ॥
ऊर्ध्वपदे हेट माथे रहये बंधने।
विपद समय लखन कृष्ण पड़े मने ॥
जन्म-मांत्र पड़े महामायार बंधने ॥
भजिते कृष्णेर पद ना पड़ये मने ॥

... ...

कोन मते कृष्ण पद नहिल भजन। चौराशि लक्ष जोनिते पुन करये भ्रमण ॥
भ्रमिते भ्रमिते जदि देखे कृष्णदास। सेइ क्षणे हय तार कर्म-बंधन-नाश ॥
(प. क. त., पद २९९९)

२. (क) कृष्णेर नित्य दास जीव ताहा भुलि गेल।
एइ दोषे माया तार गलाय बांधिल ॥
ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे पाय कृष्णेर चरण। (चै.च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८०)

(ख) जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।
कृष्णेर तटस्थशक्ति भेदाभेद प्रकाश।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २५९)

के अंश हैं, यह सूरदास कहते ह।[1] नंददास ने स्पष्ट रूप से गौड़ीय मत के अनुरूप ही कथन किया है। व्यक्त अव्यक्त जो अनुपम विश्व हैं उसमें के सब भूतों के तुम विस्तार हो। तुम सब के परमेश्वर और स्वामी हो। समस्त विश्व तुम्हारे हाथ है। तुमसे हम सब उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं[2] जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग उत्पन्न होते हैं। मैं तुम्हारा दास हूं। मेरा जन्म तुम से है। जीव कर्म करके बार-बार जन्म पाता है। परंतु फिर भी वह दुष्कर्म नहीं छोड़ता। इसी से उसका फिरना बंद नहीं होता। स्थूल या दुबला, (अर्थात् पुष्ट या नष्ट)तो शरीर होता है, परम आत्मा को ये दोनों बातें नहीं होतीं। तनु तो मिथ्या और क्षणभंगुर है। चेतन जीव सदा ही स्थिर है। जीव का दुःख सुख तो तनु के संग होता है। ज्ञानी जीव अपने को अलिप्त मानता है। जीव कर्मबंधन में पड़ कर अनेक शरीर धारण करता है। अज्ञानी उन देहों को देख कर भुलावे में पड़ जाता है। परंतु ज्ञानी शरीर के भेदों को नहीं मानता, सब जीवों को एक रस मानता है। आत्मा तो अजन्म और अविनाशी है, उसके लिए सबसे बड़ी फाँसी देह का मोह ही है।[3]

---

१. (क) मम माया संभव संसारा।
जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। (रा. चः मा., उ. ८६, पृ. ५३६)

(ख) येहि बिधि जीव चराचर जेते।
त्रिजग देव नर असुर समेते॥
अखिल बिस्व यह मोर उपाया।
सब पर मोहि बराबर दाया॥ रा. च. मा., उ. ८७, पृ. ५३६

(ग) सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल॥
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब हैं अंश गुपाल॥
(सूर सारावली, सू. सा., बे. प्रे., पृ. ३८)

२. (क) व्यक्त अव्यक्त जु बिस्व अनूप, बेद बदत प्रभु तुम्हरौ रूप।
तुम सब भूतनि कौ बिस्तार, देह प्रान इन्द्री अहंकार।
(नंददास, दशमस्कंध, पृ. २४१)

(ख) तुम परमेस्वर सब के नाथ, बिस्व समस्त तिहारे हाथ।
तुम तें हम सब उपजत ऐसें, अगिनि तें बिस्फुलिंग गन जैसें॥
(नंददास, दशमस्कंध, पृ. २०८)

(ग) अब कहत कि हौं तुम्हरौ चेरौ, तुमतें प्रगट जनम यह मेरौ॥
(नंददास, दशमस्कंध, पृ. २६३)

३. जिय करि कर्म जन्म बहु पावे।
फिरत फिरत बहुतै स्रम आवे॥
अरु अजहुं न कर्म परिहरे।
जातें याकौ फिरिबौ टरे।
तन स्थूल अरु दूबर होइ॥
परमातम कों ये नहि दोइ॥

इस प्रकार के बंधनों में पड़ा जीव कृष्णदास या साधु को पा जाय तो उसके कष्ट मिट जाते हैं, यह कृष्णदास ने कहा है, ऐसा पीछे कहा जा चुका है। तुलसीदास भी ऐसा ही कहते हैं।[1] परंतु गौड़ीय वैष्णव और हिन्दी वैष्णवों की जीव की भावना (concept) में अंतर है। कृष्णदास स्पष्ट रूप से जीव को ईश्वर से भिन्न मानते हैं, उसमें ईश्वर में अंतर है। यद्यपि वह कृष्ण की बहिरंगा शक्ति से उद्भूत है परंतु वह स्वांश का विस्तार नहीं है, विभिन्नांश का है। अतः ईश्वर जीव एक नहीं है यह सब पीछे कहा जा चुका है। परंतु ऊपर दिए गए हिन्दी वैष्णव कवियों के उल्लेख जीव को वास्तविक रूप में ब्रह्म से भिन्न नहीं मानते। जीव और ईश्वर में वस्तुतः कोई भेद नहीं है। जो भेद ज्ञात होता है वह मिथ्या है और मायाजनित है। दोनों का अंतर केवल अज्ञानवश है। यदि जीव को एकरस ज्ञान की प्राप्ति हो जाय तब ईश्वर-जीव में भेद ही न रह जाय। यदि जीव ईश्वर की ओर देखे तो उलट कर उसी निधि में समा जायगा, जहां से आया था।[2] यह भेद अपने सच्चे स्वरूप की आत्मानुभूति से नष्ट हो जाता है। आत्मानुभूति-प्राप्त संत और अनंत में कोई

तनु मिथ्या, छन भंगुर जानौ।
चेतन जीव, सदा थिर मानौ॥
जिय कौं सुख-दुख तन संग होइ।
जौ बिचरै तन कैं संग सोइ॥
देहऽभिमानी जीवहिं जानै।
ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै॥
... ...
जीव कर्म करि बहु तन पावै। अज्ञानी तिहिं देखि भुलावै॥
ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन के भेद भेद नहिं मानै॥
आत्म अजन्म सदा अबिनासी। ताकौं देह-मोह बड़ फांसी॥ (सू.सा. ५१४, पृ.१५३-५४)

१. सद्गुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न विषय कै आसा।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
येहि बिधि भलेहि कुरोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥
(रा. च. मा., उ. १२२, पृ. ५६३)

२. (क) ज्ञान अखंड एक सीताबर।
मायाबस्य जीव सचराचर॥
जौं सब के रह ग्यान एक रस।
ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस॥ (रा. च. मा., उ० ७८, पृ. ५३१)
(ख) जौ मन कबहुंक हरि कौं जांचै॥
.. .. ..
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं,
बहुरि न उलटि जग मैं नाचै॥
(सू. सा. २।३११, पृ. ११८)

अंतर नहीं है।[1] तुलसीदास फिर कहते हैं कि ईश्वर जीव में कुछभेद नहीं है परंतु मायाकृत एक झूठा भेद ज्ञात होता है। इस अंश के रूप जीव का स्वरूप पांचभौतिक शरीर नहीं है। ईश्वर के समान ही यह जीव नित्य है और जन्म मरण के बंधन में नहीं पड़ता है। जीव चेतन है, वह प्रत्येक घट में है। घट उत्पन्न होते हैं और फिर नष्ट हो जाते हैं परंतु चेतन जीव नित्य ही रहता है,–जिस प्रकार प्रत्येक घट में सूर्य का प्रकाश रहता है परंतु उस घट के नष्ट हो जाने पर सूर्य नष्ट नहीं होता, वह नित्य ही रहता है। ईश्वर का अभिन्न अछेद रूप जो है, वही सब घटों में एक रूप से स्थित है। जो आत्मा इन्द्रियों को चेतन करती है, वह ईश्वर का ही रूप है।[2] हरि का स्वरूप सब घटों में उसी प्रकार है जैसे ऊख में रस। खोई तो शरीर है, रस आत्मा है। परंतु यह जीव अपना असली स्वरूप भूल जाता है और संसार में उलझ जाता है। वह माया को,ईश्वर को,अपने को, किसी को भी नहीं जानता। माया उसे मोह लेती है। इस जीव का धर्म ही हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, अभिमान इत्यादि हो जाते हैं।[3] ब्रह्म का अंशरूप जीव अपने आप ही माया के चक्कर में पड़ जाता है। फिर उसकी दशा कांच की कोठरी में स्थित श्वान की सी हो जाती है। चारों तरफ अपने

---

१. (क) आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तव भव मूल भेद भ्रम नासा॥ (रा. च. मा., उ. ११८, पृ. ५५८)

(ख) जानेसु संत अनंत समाना। (रा. च. मा. उ. १०९, पृ. ५५०)

२. (क) छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥ (रा. च. मा., कि. ११, पृ. ३६०)

(ख) चेतन घट-घट है या भाइ,
ज्यौं घट-घट रवि प्रभा लखाइ।
घट उपजै बहुरौ नसि जाइ।
रवि नित रहै एकहीं भाइ॥ (सू. सा. ३।१३, पृ. १३४)

(ग) अभिद अछेद रूप मम जान।
जो सब घट है एक समान॥
... ...
करत इन्द्रियनि चेतन जोइ।
मम स्वरूप जानौ तुम सोइ॥ (सू. सा. ३।१३, पृ. १३२)

३. (क) माया ईस न आपु कहुं, जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्ब पर, माया प्रेरक सीव॥
(रा. च. मा., अ. १५, पृ. ३३०)

(ख) नाथ जीव तव माया मोहा।
सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा॥ (रा. च. मा., कि. ३, पृ. ३५४)

(ग) हरष बिषाद ज्ञान अज्ञाना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥ (रा. च. मा., बा. ११६, पृ. ६२)

को ही देखता है और भ्रमवश भूंकता भूंकता मर जाता है।[1] इस माया से पिंड तभी छूटता है जब ईश्वर की भक्ति होती है। यह भक्ति साधु-संगति और गुरु सेवा की कृपा से मिलती है।[2]

तुलसी और सूर ने स्पष्ट रूप में यह कहा है कि जीव वास्तव में तो ब्रह्म है। वह जब ईश्वर से, जो अंशी है, अंश-रूप में अलग होता है तब से देह को ही अपना घर समझता है। मायावश अपना स्वरूप भूल जाता है और दारुण दुःख पाता है। उसका निवास तो आनंद के सिंधु में है। बिना जाने ही वह प्यासा मरता है। अपने हाथ से ही वह कर्म की डोरी में दृढ़ गाँठें देता है; उसी के कारण परवश है; और उसी के फलस्वरूप बार-बार जन्म लेता है। यदि देहजनित सब विकार त्याग दे तो अपना स्वरूप देख लेगा, वह स्वरूप जो निर्मल, निरामय और एकरस है, जिसे हर्ष शोक कुछ भी नहीं व्यापता[3] और जो देहवंत नहीं है। अभिमानी जीव माया के वश है और माया ईश्वर के वश है। जीव परवश है और भगवान्

---

१. अपुनपौ आपुन ही बिसर्‍यौ।
जैसें स्वान, कांच मंदिर में भ्रमि-भ्रमि भूकि पर्‍यौ।
... ...
सूरदास नलिनी कौ सुवटा कहि कौनैं पकर्‍यौ ॥ (सू. सा. २।२६, पृ. १२२)
.. ..

२. तुलसीदास हरि-गुरु-करुना-बिनु, बिमल बिबेक न होई।
बिनु बिबेक संसार घोर निधि, पार न पावै कोई ॥ (वि. प., पद ११५)

३. जिय जबतें हरि तें बिलगान्यो।
तब तें देह गेह निज जान्यो ॥
मायाबस सरूप बिसरायो।
तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो ॥
... ...
आनंदसिंधु मध्य तव बासा।
बिनु जाने गस मरसि पियासा ॥
मृगभ्रम-बारि सत्य जिय जानी।
तहं तू मगन भयो सुख मानी ॥
तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्हीं।
अपने करनि गांठि गहि दीन्हीं ॥
तातें परबस पर्‍यो अभागे।
ताफल गर्भबास दुख आगे ॥
.. ..
देह जनित विकार सब त्यागे।
तब फिरि निज स्वरूप अनुरागे ॥
.. ..
निर्मल निरामय एकरस तेहि हर्ष सोक न व्यापई। (वि. प., पद १३६)

स्ववश है। जीव अनंत हैं, ईश्वर एक है। यह भेद झूठा है और मायाजनित है। परंतु झूठा होते हुए भी यह भेद बिना हरि-कृपा के नहीं जाता। जीव तो ईश्वर का अंश है। उसी प्रकार अविनाशी, चेतन, अमल और सहज आनंदमय है। वह माया के वश में होकर बंदर की तरह बंधा फिरता है। इसी कारण उन दोनों में जड़ और चेतन की गांठ पड़ गई है। यद्यपि यह भेद-गांठ झूठी है, परंतु छुटने में कठिनाई उपस्थित करती है। यदि श्रद्धा धेनु हो, उसका धर्ममय दूध हो, उससे नवनीत वैराग्य निकले, उससे ज्ञानमय बुद्धि घृत निकले और उससे दीपक जलाया जाय, और फिर उस दीपक की प्रचंड लौ 'सोऽहमस्मि' हो, तब जीव आत्म-बुद्धि वाला हो जाता है और संसार का मूल-भेद जोकि भ्रम है वह नष्ट होता है।[1]

जीव और ईश्वर में मायावश और मायाधीश का अंतर कृष्णदास जी बताते[2] हैं, परंतु यह अंतर झूठा है, मायाजनित है यह वे नहीं कहते। तुलसीदास 'सोऽहमस्मि' में विश्वास करते हैं, ऐसा ज्ञात होता है। परंतु 'तत्त्वमसि' को कृष्णदास ने चैतन्य देव के अनुसार प्रादेशिक वाक्य (आंशिक सत्य)-मात्र माना है। वे प्रत्यक्ष रूप से कहते हैं कि जीव और ईश्वर तत्व कभी भी एक समान नहीं हैं। अग्नि राशि से उद्‌भूत स्फुलिंग के समान जीव है और ईश्वर अग्नि राशि है। ये दोनों समान नहीं हैं[3]। नंददास सिद्धांत-पंचाध्यायी में ठीक

---

१. (क) मायाबस्य जीव अभिमानी।
ईस बस्य माया गुनखानी॥
परबस जीव स्वबस भगवंता।
जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधाभेद जद्यपि कृत माया।
बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥ (रा. च. मा., उ. ७८, पृ. ५३१)

(ख) ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो मायाबस भएउ गोसाईं।
बंध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
... ... (रा. च. मा., उ. ११७, पृ. ५५७)

(ग) सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भव भूल भेद भ्रम नासा॥ (रा. च. मा., उ. ११८, पृ. ५५८)

(घ) सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा।
वारि बीचि इव गावहिं वेदा॥

२. मायाधीश मायावश ईश्वरे जीवे भेद। (चै.च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३९)

३. जीव आर ईश्वर तत्त्व कभू नहे सम।
ज्वलदग्नि राशि जैछे स्फुलिंगेर कण। (चै.च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४१)

इसी प्रकार का विचार प्रस्तुत करते हैं जैसा कृष्णदास कविराज। वे कहते हैं कि जो काल, और माया के अधीन हैं वे जीव हैं। वे विधि-निषेध एवं पाप-पुण्य में फंसे रहते हैं। ज्ञान, कर्म और विज्ञान का प्रकाशक जो परम ब्रह्म है वह जीव के समान कैसे कहा जा सकता है।[१]

इस भेद के अतिरिक्त अन्य सब बातें जिनसे जीव का संबंध है, दोनों ही साहित्यों में समान हैं। जीव अंश है, उसके प्रकाश से युक्त है, माया के वश दुःख भोगता है और साधु संगति से भक्ति पाकर दुःख से मुक्ति पाता है, इस भावना में कहीं भी अंतर नहीं है।[२]

---

१. काल करम माया अधीन ते जीउ बखाने।
विधि-निषेध अरु पाप पुन्य तिन मैं सब साने॥
परम धरम ब्रह्मन्य ग्यान-विग्यान-प्रकासी।
ते क्यों कहियं जीउ-सदृस श्रुति-सिखर-निवासी॥
(नंददास, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ. १८४)

२. साधु-शास्त्र-कृपाय जदि कृष्णोन्मुख हय।
सेइ जीव निस्तारे माया ताहारे छाड़य॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २५९)

७. माया

माया की भावना के संबंध में दोनों साहित्यों में मूलतः कोई भी भेद नहीं जान पड़ता है। वर्णन करने की शैली और भावना को उपस्थित करने में विभिन्नता है परंतु माया का स्वरूप, कार्य इत्यादि क्या है इसमें कोई विशेष मतभेद नहीं दिखाई पड़ता है। तुलसीदास और कृष्णदास ने माया के कार्य और भेद इत्यादि बताए हैं। सूरदास ने उल्लेख मात्र से कार्य बताया है परंतु माया के दिए दुःख इत्यादि पर उन्होंने अपेक्षाकृत अधिक कहा है।

माया इष्टदेव की है—कृष्णदास कविराज कहते हैं कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण की तीन स्वाभाविक शक्तियां हैं। इनमें एक माया-शक्ति भी है। यह माया-शक्ति बहिरंगा है और जगत् की कारण है। सूरदास कहते हैं कि मुझे सबसे बड़ी लज्जा तो इस बात की है कि लोग इस माया को तुम्हारी बताते हैं। तुलसीदास इस माया से तंग आकर कहते हैं कि हे माधव! तुम्हारी यह माया ऐसी है कि उपाय करके मरने पर भी तुम्हारी कृपा बिना इससे छुट्टी नहीं मिलती। सूरदास कहते हैं कि हे हरि! तुम्हारा भजन नहीं किया जाता, तुम्हारी प्रबल माया मन को भ्रम में डाल देती है। नंददास कृष्ण से कहलाते हैं कि यह माया मेरी है। मोहनलाल की माया समस्त संसार को मोहनेवाली है[1]। यद्यपि यह माया इष्ट-देव की है परंतु इष्टदेव इससे बिल्कुल स्वतंत्र हैं। उनके ऊपर उसका रत्ती भर भी प्रभाव नहीं है। इष्टदेव तो मायाधीश हैं, तुरीय हैं।[2] यह माया इष्टदेव की दासी है, उनसे डरती

---

१. (क) कृष्णेर स्वाभाविक तिन शक्ति परिणति।
चिच्छक्ति, जीवशक्ति आर मायाशक्ति ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २५९)
मायाशक्ति बहिरंगा जगत्-कारण।
तांहार वैभवानंत ब्रह्मांडेर गण ॥ (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १६)
(ख) इहिं लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारी (हो)।
सूर स्याम इहिं बरजि कै मेटौ अब कुल-गारी (हो)॥ (सू. सा., १।४४, पृ. १६)
(ग) माधव! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया॥ (वि.प., पद ११६)
(घ) हरि तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कह करौं तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ॥ (सू० सा० १।४५, पृ० १६)
(ङ) सकल बिस्व अपबस करि, मो माया सोहति है।
(नंददास, रास पंचाध्यायी, अ. ४, पृ. १७५)
(च) माया छल माया दया, माया नेह कहंत।
माया मोहनलाल की, जिहिं मोहे सब जंत॥ (नंददास, अ. म., पृ. ११२)
२. (क) मायाधीस ज्ञानगुन धामू। (रा. च. मा., बा. ११७, पृ. ६३)
(ख) तुरीय कृष्णेर नाहि मायार संबंध। (चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १३)

है,यद्यपि कृष्ण इस माया को साथ लेकर सृष्टि करते हैं। इसी का साथ लेकर शिव रूप से संहार करते हैं परंतु उन्हें यह स्पर्श भी नहीं करती। इष्टदेव राम की आज्ञा से और उनका बल प्राप्त करके माया संसार की रचना करती है परंतु उनसे सदा भय खाती है। यह माया हरि के वश में है।[1]

माया क्या है—माया का वास्तविक स्वरूप क्या है, इसको तुलसीदास ने कुछ अधिक व्याख्या करके बताया है। सूरदास माया के दुष्ट कर्मों की गणना और उसकी विगर्हणा करते हैं, उसी में से माया के स्वरूप के बारे में कुछ विचार झलक जाते हैं। तुलसीदास तो माया का बड़ा व्यापक और विशद स्वरूप बताते हैं। वे कहते हैं कि जहां तक मन और इन्द्रियां पहुंचती हैं,वह सब माया है।[2] मैं और मेरा, तू और तेरा, यह सब भी माया है।[3] नंददास कहते हैं कि माया छल है, माया दया है, और माया ही नेह है।[4] कृष्णदास कविराज कहते हैं कि माया का वैभव अनंत ब्रह्मांडों में है। यह माया निमित्त, और उपादान दो अंशों वाली है।[5] तुलसीदास छल, कपट, मत्सर, ममता, मोह इत्यादि को माया

---

१. (क) निजांशे कलाय कृष्ण तमोगुण अंगीकरि।
संहारार्थ माया संगे रुद्ररूप धरि ॥
माया संगे विकारे रुद्र भिन्नाभिन्न रूप।
जीवतत्त्व हय तिंह कृष्णेर स्वरूप ॥
... ...
शिव मायाशक्ति संगी तमोगुणावेश।
मायातीत गुणातीत विष्णु परमेश।
... ...
पालनार्थ स्वांश विष्णुरूपे अवतार।
सत्व गुण दृष्टांत ताते गुण मायापार ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६७)

(ख) सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया।
पाइ जासु बल विरचति माया। (रा. च. मा., सु. २१, पृ. ३८२)
जीव चराचर बस कै राखे।
सो माया प्रभु सों भय भाखे ॥ (रा. च. मा., बा. २००, पृ. १०१)

(ग) अगिनि दहे जाके भय नाहि।
सो हरि माया जा बस माहि ॥ (सू. सा. ३११३, पृ. १३४)

२. गो गोचर जहं लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहुं भाई ॥ (रा. च. मा., अ. १५, पृ. ३३०)

३. मैं अरु मोर तोर तें माया।
जेहि बस कीन्हें जीव निकाया ॥ (रा. च. मा., अ. १५, पृ. ३३०)

४. माया छल माया दया, माया नेह कहंत।
माया मोहनलाल की जिहिं मोहे सब जंत ॥ (नंददास, अ. म., पृ. ११२)

५. (क) माया जैछे दुइ अंश निमित्त उपादान। (चै.च., आदिलीला, परि. ६, पृ.४२)

का परिवार बताते हैं। वे माया के विद्या और अविद्या दो रूप बताते हैं।[1] अन्य कविगण माया के इस प्रकार नाम लेकर दो भेद तो नहीं बताते परंतु वे बताते हैं कि विद्या, और अविद्या माया के ही कार्य हैं।

माया के कार्य––तुलसीदास कहते हैं कि यह विद्या और अविद्या माया दो विभिन्न कार्य करती हैं। एक तो (अर्थात् अविद्या) अत्यन्त दुष्ट है और अतिशय दुःखदायी है, इसके वश में पड़ कर ही जीव भवकूप में पड़ता है। दूसरी संसार की रचना करती है, उसके वश में तीनों गुण हैं अर्थात् यह माया त्रिगुणात्मिका है, परन्तु सृष्टि रचना यह प्रभु की प्रेरणा से ही करती है। उसमें अपना बल कुछ नहीं है।[2] सूरदास और कृष्णदास दोनों भी माया के ये ही कार्य बताते हैं। माया त्रिगुणात्मिका है। सत, रज और तम उसके गुण हैं। अंड को चेतन करने के लिए माया ने भगवान की वंदना की, तब अंड में शक्ति आई और विराट सृष्टि उत्पन्न हुई।[3] कृष्णदास कविराज कहते हैं कि गोलोक के बाहर कारणाब्धि सागर है। माया इसके बाहर रहती है,अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती। परम-तत्व संकर्षण रूप से इस कारणाब्धि में शयन करते हैं। वे माया को देख कर आकृष्ट हुए और उसके सहारे सृष्टि रचना की। यह माया संसार का उपादान कारण मात्र है,निमित्त नहीं; जैसे घड़े का निमित्त हेतु कुंभकार होता है, दंड इत्यादि नहीं; ये तो साधन मात्र हैं।

(ख) सेइ त मायार दुइविध अवस्थिति।
जगतेर उपादान प्रधान प्रकृति॥ (चै.च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३५)

(ग) मायार जे दुइ वृत्ति माया आर प्रधान।
माया निमित्त हेतु विश्वेर प्रकृति उपादान॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६५)

१. तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।
विद्या अपर अविद्या दोऊ॥ (रा. च. मा., अ. १५, पृ. ३३०)

२. एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा।
जा बस जीव परा भव कूपा॥
एक रचै जग गुन बस जाकें।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें। (रा. च. मा., ब. १५, पृ. ३३०)

३. (क) माया कौं त्रिगुनात्मक जानौ। सत रज तम ताके गुन मानौ॥
तिन प्रथमहिं महतत्व उपायौ। तातैं अहंकार प्रगटायौ॥
अहंकार कियौ तीन प्रकार। सत तें मन सुर सातऽरुचार॥
रजगुन तैं इन्द्रिय बिस्तारी। तमगुन तैं तन्मात्रा सारी॥
तिन तैं पंचतत्व उपजायौ। इन सब कौ इक अंड बनायौ॥
... ...
यह अंडा चेतन नहिं होइ। करहु कृपा सो चेतन होइ॥
तामैं सक्ति आपनी धरी। चच्छ्वादिक इन्द्रीय बिस्तरी॥
चौदह लोक भए ता माहिं।...इत्यादि, (सू. सा., ३।३९४, पृ. १३४)

(ख) लोक सृष्टि सिरजत यह माया... (नंददास, दशम स्कंध, अ. २८, पृ. ३१९)

इसी प्रकार स्वयं कृष्ण संकर्षण रूप में जगत् के कारण हैं। माया तो सहायता करती है।[1] कृष्णदास कविराज के कथनानुसार कृष्ण संहार-कार्य भी माया की सहायता से करते हैं।[2] ये तो कृष्ण ब्रह्म की संगिनी, सृष्टि की उपादान-कारण-स्वरूपा विद्या माया के कार्य हैं।

अविद्या माया का कार्य जीव को भुलावा देकर चक्कर में डालना और इष्टदेव से दूर रखना है। इस माया से सब भक्त परेशान हैं। सूरदास कहते हैं, कि हरि! तुम्हारा भजन करते ही नहीं बनता, तुम्हारी प्रबल माया मन को भरमा देती है।[3] यह माया कोटि कोटि नाच नचाती है। संसार के लाभ के लिए दर-दर नाना स्वांग बनाकर घुमाती है। हे प्रभु! तुम से कपट करवाती है और मेरी बुद्धि को चक्कर में डाल देती है।[4] यह माया अत्यन्त प्रबल है, किसी को नहीं छोड़ती।[5] कृष्णदास कविराज कहते हैं कि कृष्ण सूर्य के समान है

१. सेइ त कारणार्णवे सेइ संकर्षण।
आपनार एक अंशे करेन शयन॥
महत् सृष्टा पुरुष तिंहो जगत्-कारण।
आद्य अवतार करे मायार दर्शन॥
मायाशक्ति रहे कारणाब्धिर बाहिरे।
कारण समुद्र माया परशिते नारे॥
... ...
घटेर निमित्त हेतु जैछे कुंभकार।
तैछे जगतेर कर्त्ता पुरुषावतार॥
कृष्णकर्त्ता माया तांर करेन सहाय।
घटेर कारण जेन दंडादि उपाय॥
... ...
एक अंगाभासे करे मायाते मिलन।
माया हैते जन्मे तवे ब्रह्मांडेर गण॥ (चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३५)

२. निजांशे कलाय कृष्ण तमोगुण अंगीकरि।
संहारार्थं माया संगे रुद्र रूप धरि॥
माया संगे विकारे रुद्र भिन्नाभिन्न रूप। (चै.च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६७)

३. हरि तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कहा करौं तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ॥ (सू. सा., १।४५, पृ. १६)

४. माया नटी लकुट कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति नाना स्वांग बनावै।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू मेरी बुधि भरमावै॥ (सू. सा., १।४२, पृ. १५)

५. (क) हरि तुव माया को न बिगोयौ?
सौ जोजन मरजाद सिंधु की पल में राम बिलोयौ॥
(सू. सा., १।४३, पृ. १५)
(ख) तुम्हरी माया महाप्रबल जिहिं सब जग बस कीन्हौ।
(सू. सा., १।४४, पृ. १५)

और माया अंधकार है।[१] यह पिशाची माया जीव को त्रास देती है। उसके कारण वह काम-क्रोध का दास होकर उसकी लाठी खाता है।[२] बलरामदास कहते हैं कि जन्म लेते ही सब जीव माया के बन्धन में पड़ जाते हैं और कृष्ण भजन याद ही नहीं रहता और ८४ लाख योनियों में भटकना पड़ता है।[३]

प्रश्न यह उठता है कि इस प्रबल माया का वास्तविक स्वरूप क्या है। क्या यह सत्य है और इसकी स्वतंत्र स्थिति है ? अथवा यह केवल भ्रम-मात्र है ? तुलसीदास, सूरदास और कृष्णदास तीनों ही यह कहते हैं कि माया सृष्टि की रचना करती है परन्तु अपने स्वतंत्र बल से नहीं। कृष्ण या राम उसकी सहायता से सृष्टि रचते हैं। इसकी अपनी स्वतंत्र स्थिति है या नहीं, यह तो साफ-साफ कोई नहीं कहता। तुलसीदास कई बार कहते हैं कि माया की अपनी कोई शक्ति नहीं है। उसमें प्रभु का बल है।[४] तुलसीदास स्पष्ट रूप से यह भी कहते हैं कि यह माया जड़ है परन्तु यह भगवान की सत्यता से ही सत्य भासती है।[५] यह माया यद्यपि रघुवीर की दासी है परन्तु मिथ्या है।[६] सूरदास भी माया को जड़ बताते हैं।[७] परन्तु कृष्णदास कविराज ने माया को जड़ नहीं कहा और न मिथ्या ही कहा है। तुलसीदास

---

१. कृष्ण सूर्य सम माया हय अंधकार।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८०)

२. सेइ दोषे मायापिशाची दंड करे तारे।
आध्यात्मिक तापत्रय तारे जारि मारे॥
काम क्रोधेर दास हआ तार लाथि खाय।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

३. जन्म-मात्र पड़े महामायार बंधने।
भजिते कृष्णेर पद ना पड़ये मने॥
... ...
कौन मते कृष्ण-पद नहिल भजन।
चौराशि लक्ष जोनिते पुन करये भ्रमण॥ (प. क. त., पद २९९९)

४. (क) लव निमेष महुं भुवन निकाया।
रचै जासु अनुसासन माया॥ (रा. च. मा. बा. २२५, पृ. ११२)
(ख) सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया।
पाइ जासु बल बिरचति माया॥ (रा. च. मा., सु. २१, पृ. ३८२)
(ग) एक रचै जग गुन बस जाकें।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥ (रा. च. मा., अ. १५, पृ. ३३०)

५. जासु सत्यता तें जड़ माया।
भास सत्य इव मोह सहाया॥ (रा. च. मा., बा. ११७, पृ. ६३)

६. सो दासी रघुवीर कै समुझें मिथ्या सोपि। (रा. च. मा., उ. ७१, पृ. ५२७)

७. जड़ स्वरूप सब माया जानौ।
ऐसौ ज्ञान हृदै मैं आनौ॥ (सू. सा., ३।१३, पृ. १३४)

ने जैसे कहा है कि माया स्वतः तो जड़ है परन्तु राम के आश्रय से सत्य भासती है, वैसे कृष्णदास कहीं नहीं कहते। वे तो माया को कृष्ण की बहिरंगा शक्ति बताते हैं। जिस प्रकार कृष्ण की दोनों अन्य शक्तियां अंतरंगा और तटस्था (जीव) सत्य हैं, उसी प्रकार बहिरंगा भी है। कृष्ण की तीन स्वाभाविक शक्तियां हैं।[1] वेदान्त की समीक्षा करते हुए चैतन्यदेव कहते हैं कि वेदांत सूत्रों की विवर्त्तवादी व्याख्या ग़लत है, परिणामवादी व्याख्या ठीक है। मायावादी भाष्य तो सर्वनाशकारी है।[2] एक स्थान पर कृष्णदास माया को जगत् का उपादान कारण बताते हैं और कहते हैं, कि जड़-रूपा प्रकृति जगत् का कारण नहीं है, परन्तु वे माया को जड़ नहीं बताते।[3]

---

१. कृष्णेर स्वाभाविक तिन शक्ति परिणति।
चिच्छक्ति, जीवशक्ति आर मायाशक्ति ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २५९)

२. जीवेर निस्तार लागि सूत्र कैल व्यास।
मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश ॥
परिणामवाद व्यासेर सूत्रेर सम्मत।
अचिंत्य शक्ति ईश्वर जगद्रूपे परिणत ॥
... ...
व्यास भ्रांत बलि सेइ सूत्र दोष दिया।
विवर्त्तवाद स्थापियाछे कल्पना करिया ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३२)

३. मायाद्वारे सृजेन तिंहो ब्रह्मांडेर गण।
जड़रूपा प्रकृति नहे ब्रह्मांड-कारण ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६५)

८. भक्ति-भावना

वैष्णव धर्म की अपनी विशेषता 'भक्ति-भावना' ही है। भक्ति की भावना ही उसे अन्य धर्मों और मतों से विशेष रूप से पृथक् करती है। गौड़ीय वैष्णव समाज और ब्रज का वैष्णव समाज दोनों ही भक्ति की महत्ता, आवश्यकता और उपादेयता को मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं। ब्रज मंडल के वैष्णव कवि भक्ति की महत्ता पर तो बहुत कुछ कहते हैं, उसे ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ बताते हैं, परन्तु भक्ति की शास्त्रीय व्याख्या या विवेचना बहुत कम करते हैं। तुलसीदास ने भक्ति के बारे में अपेक्षाकृत कुछ अधिक कहा है। कृष्णदास कविराज ने भक्ति की शास्त्रीय व्याख्या दी है और उसे एक स्वतंत्र रस बताया है। यह समस्त व्याख्या चैतन्यदेव ने रूप और सनातन के आगे की थी। कृष्णदास ने वही अपनी रचना 'चैतन्य-चरितामृत' में दी है। यही कारण है कि उनकी यह सब व्याख्या 'भक्ति-संदर्भ', 'प्रीति-संदर्भ' और 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' के अनुरूप है। भक्ति को स्वतंत्र रस मान कर मधुर भक्ति को श्रेय देना बंगाल वैष्णव मत की अपनी विशेषता है। उनकी यह भक्ति-भावना ही उनके धर्म का मूल है। यदाकदा हिन्दी के वैष्णव कवि प्रेम भक्ति को श्रेष्ठ बताते हैं परन्तु उनका झुकाव दास्य भक्ति की ओर अधिक जान पड़ता है। यों तो दोनों स्थानों के भक्तों के लिए भक्ति किसी भी रूप में वरेण्य है।

गौड़ीय वैष्णव मत में परकीया भाव की मधुर भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है। उनका कहना है इसी प्रेम भक्ति के द्वारा, जिसे रागानुगा भी कहा गया है, कृष्ण को ब्रज में पाया जा सकता है। कृष्ण की भक्ति ही प्रेम रूप है।[२] हिन्दी वैष्णव समाज भक्ति को उसके समस्त रूपों में मान्यता देता है। किसी भी भाव से भजन करो इष्टदेव प्रसन्न ही होंगे परंतु दास्य भक्ति की ओर वे लोग अधिक झुकते हैं। तुलसीदास ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि सेवक और सेव्य भाव के बिना संसार से उद्धार नहीं हो सकता। अतः इसी भाव से राम को भजो।[३] सूरदास का हृदय इस बात को सुनकर 'सिराता' है कि सब कोई उन्हें श्याम का

---

१. "The idea of the stages of distinct personal relationship of the deity and his parikars is a fundamental postulate with the Bengal School of Vaishnavism, because otherwise the relationship would be reduced to one of colourless identity, which cannot be posited in view of the theory of difference in non-difference accepted by the school." V. F. M. P. 286.

२. (क) रागानुगा मार्गे तांरे भजे जेइ जन।
सेइ जन पाय ब्रजे ब्रजेन्द्रनंदन ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५३)

(ख) तत्त्व वस्तु कृष्ण, कृष्ण-भक्ति प्रेम रूप।
(चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ. १०)

३. सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि ॥ (रा.च.मा., उ.११९, पृ. ५६०)

गुलाम कहते हैं। यदि उनकी जूठन खाकर जीने को मिल जाय तो सूरदास को और बड़ा सुख हो जाय।[1] वैसे तो सूर कहते हैं 'जन तें प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हियें'। परंतु ऊपर लिखे का यह निष्कर्ष नहीं है कि गौड़ीय मत केवल मधुर भक्ति को ही मानता है। भक्ति मात्र वरेण्य है, श्रेष्ठ है परंतु मधुर भक्ति सर्वश्रेष्ठ है, इतना ही वे कहते हैं।

भक्ति क्या है—भक्ति इष्टदेव और भक्त का सम्बन्ध है। भक्त और उसके इष्टदेव के बीच में अगर कोई नाता है तो वह भक्ति ही है। भक्त भगवान् से इसी लिए भक्ति का वरदान मांगता है क्योंकि उससे ही भक्त का इष्टदेव से एकमात्र नाता जुड़ता है।[2] इसी भक्ति के नाते से इष्टदेव राम अत्यन्त शीघ्रता से द्रवित हो जाते हैं और भक्त पर कृपा करते हैं।[3] तुम्हारा हूं कहते ही कृष्ण उसे अपनी शरण में ले लेते हैं और माया से मुक्त कर देते हैं फिर उसे अपने में लय कर लेते हैं।[4] कृष्णदास कविराज कहते हैं कि कृष्ण प्राप्ति के तीन साधन हैं। एक भक्ति, दूसरा ज्ञान और तीसरा योग। इन तीनों साधनों से इष्टदेव तीन स्वरूपों में भासते हैं। ज्ञान मार्ग से निर्विशेष ब्रह्म के रूप में भासते हैं। योग मार्ग से परमात्मन् के रूप में भासते हैं। परंतु भक्ति से जो रागात्मिका और वैधी दो प्रकार की है स्वयं भगवान् की प्राप्ति होती है।[5] अतएव भक्ति कृष्ण प्राप्ति का उपाय अर्थात् साधन

---

१. सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हियो।
सूरदास को और बड़ो सुख जूठन खाइ जियो॥ (सू. सा. १।१७१, पृ. ५६)

२. (क) भगवान सम्बन्ध भक्ति अभिधेय ह्य।
प्रेम प्रयोजन वेदे तिन वस्तु कय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३३)

(ख) कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानौं एक भगति कर नाता॥ (रा. च. मा., अ. ३५, पृ. ३४५)

(ग) अपनी प्रभु भक्ति देहु, जासों तुम नाता। (सू. सा., १।१२३, पृ. ४१)

३. जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई। (रा. च. मा., अ. १६, पृ. ३३०)

४. (क) कृष्ण तोमार हङ जदि बले एक बार।
मायाबंध हैते कृष्ण तारे करे पार।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८०)

(ख) शरण लञा करे कृष्णे आत्मसमर्पण।
कृष्ण तारे करे तत्काले आत्मसम॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८४)

५. सेइ कृष्ण-प्राप्ति हेतु त्रिविध साधन।
ज्ञानयोग भक्ति तिनेर पृथक् लक्षण॥
... ...
तिन साधने भगवान् तिनस्वरूपे भासे।
ब्रह्म परमात्मा भगवत्त्वे प्रकाशे॥
... ...

है।[१] इष्टदेव को शीघ्र ही प्रसन्न करने वाली भक्ति ही है, यह तुलसीदास कहते हैं। बिना हरि भजन के क्लेश दूर नहीं होते और न भव-भय नष्ट होता है। हरि की भक्ति के बिना सुख नहीं मिलता।[२] अर्थात् भक्ति कृष्ण या राम की प्राप्ति का सुख पाने का और संसार के दुःखों का नाश करने का साधन है, परंतु क्या यह साध्य भी है ? तुलसीदास तो इस भक्ति को साध्य बताते हैं। जितने साधन हैं उन सब में एक फल मांगा जाता है, वह है रामचरण में रति। समस्त साधनों के फलस्वरूप, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कुछ नहीं चाहिये। भक्त को तो जन्म-जन्म सीताराम के चरणों में रति चाहिये। इस प्रकार भक्ति साध्य भी है।[३] यद्यपि अन्त में वह साधन ही है। कृष्णदास कविराज ने भक्ति को अभिधेय बताया है जो भगवान् और भक्त का संबंध है और जिसका प्रयोजन केवल कृष्णप्रेम की प्राप्ति है, दारिद्रय नाश और भव नाश नहीं। यह कृष्ण प्राप्ति की उपाय भक्ति अभिधेय है, यह सब शास्त्र

ज्ञान मार्गे निर्व्विशेष ब्रह्म प्रकाशे।
योगमार्गे अंतर्यामी स्वरूपेते भासे॥
रागभक्ति विधिभक्ति हय दुइ रूप।
स्वयं भगवत्त्व प्रकाश दुइत स्वरूप॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९६-२९७)

१. (क) अतएव भक्ति कृष्ण प्राप्तिर उपाय।
अभिधेय बलि तारे सर्व्व शास्त्रे गाय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६०)

(ख) कृष्ण प्राप्ति संबंध भक्ति प्राप्तिर साधन।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६०)

२. (क) जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई॥ (रा. च. मा., अ. १६, पृ. ३३०)

(ख) बिनु हरि भजन न जाहि कलेसा (रा. च. मा., उ. ८९, पृ. ५३७)

(ग) सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।
(रा. च. मा., उ. ८९, पृ. ५३७)

(घ) बिनु हरि भजन न भवभय नासा।
(रा. च. मा., उ. ९०, पृ. ५३८)

३. (क) सबु करि मांगहिं एकु फलु राम चरन रति होउ।
(रा. च. मा., अ. १२९, पृ. २३४)

(ख) अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद येह बरदानु न आन॥
(रा. च. मा., अ. २०४, पृ. २६६)

(ग) तव पद पंकज प्रीति निरंतर।
सब साधन कर येह फल सुन्दर॥
(रा. च. मा., उ. ४९, पृ. ५१५)

कहते हैं, परंतु यह अन्य किसी काम के लिए नहीं है। धन प्राप्त होने से मनुष्य सुख भोग फल पाता है, सुख भोग होने से दुःख अपने आप भाग जाता है। उसी प्रकार भक्ति-फल कृष्णप्रेम को उपजाता है, इस प्रेम के द्वारा कृष्ण का अनुभव होता है और भव स्वयं नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार धन की प्राप्ति स्वयं दारिद्र्य नाश का फल नहीं देती उसी प्रकार कृष्णप्रेम का सीधा फल भवक्षय नहीं है। धन का मुख्य प्रयोजन जैसे भोग है उसी प्रकार प्रेम का मुख्य प्रयोजन कृष्ण सुख है।[1]

कृष्णदास भक्ति को साध्य कदाचित् नहीं मानते। उन्होंने कहीं भी ऐसा नहीं कहा। चैतन्य चरितामृत मध्य लीला के २२वें परिच्छेद में एक वाक्य आया है 'नित्य सिद्धि कृष्ण प्रेम साध्य कभु नय' अर्थात् कृष्णप्रेम नित्य सिद्ध (eternally existing) है। यह साध्य नहीं है। यहां साध्य शब्द का अर्थ साधन का ध्येय (realisable) नहीं है। रूप गोस्वामी ने साध्य शब्द की व्याख्या इसीलिए 'नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता' कह कर दी है। अर्थात् नित्य सिद्ध कृष्ण भक्ति का प्राकट्य ही साध्य है। इसी प्रकार का अर्थ कृष्णदास कविराज ने भी लिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि भक्ति साध्य नहीं है, यह वे कहीं नहीं कहते परंतु जिस प्रकार तुलसीदास सब साधनों का फल रामचरणमें रति बताते हैं उस प्रकार कृष्णदास नहीं कहते। वे कहते हैं वेद शास्त्र भक्ति को सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन बताते हैं। यह भक्ति कृष्ण प्राप्ति संबंध है और प्राप्ति का साधन है, यह अभिधेय है और इसका प्रयोजन प्रेम है। यह पुरुषार्थ का सार है और प्रेम महाधन, कृष्ण माधुर्य, और कृष्ण सेवानंद की प्राप्ति का कारण है। भक्ति के द्वारा कृष्ण की सेवा भी केवल कृष्ण प्रेम का आस्वादन करने के लिए की जाती है।[2] यह भक्ति परम

---

१. अतएव भक्ति कृष्णप्राप्तिर उपाय ।
अभिधेय बलि तारे सर्व्वशास्त्रे गाय ॥
धन पेले जैछे सुख भोग फल पाय ।
सुख भोग हैते दुःख आपनि पलाय ॥
तैछे भक्ति फल कृष्णे प्रेम उपजाय ।
प्रेमे कृष्णास्वाद हैले भव नाश पाय ॥
दारिद्रनाश भवक्षय प्रेम-फल नय ।
भोग प्रेम सुख मुख्य प्रयोजन हय ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६०)

२. वेद शास्त्रे कहे संबंध अभिधेय प्रयोजन ।
कृष्ण प्राप्ति संबंध भक्ति प्राप्तिर साधन ॥
अभिधेय नाम भक्ति प्रेम प्रयोजन ।
पुरुषार्थ शिरोमणि प्रेम महाधन ॥
कृष्ण माधुर्य सेवानंद प्राप्तिर कारण ।
कृष्ण सेवा करे कृष्ण रस आस्वादन ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६०)

पुरुषार्थ है।[1] यद्यपि भक्ति का प्रधान उद्देश्य कृष्ण प्रेम की प्राप्ति है, इसी से पूर्णानन्द मिलता है परन्तु जीव का उद्धार संसार से इसी भक्ति से होता है।[2] अतः भक्ति साधन है।

भक्ति की महिमा--इष्टदेव और भक्ति का संबंध जो भक्ति है उसकी सर्वश्रेष्ठता में क्या सन्देह हो सकता है। वैष्णव मत में इसकी बहुत महिमा गाई गई है। भक्ति के बिना कोई भी साधन फल नहीं देते, न सुख देते हैं।[3] अकेली भक्ति ही सब फलदात्री है। यह स्वतंत्र है और अत्यन्त प्रबल है।[4] कर्मयोग और ज्ञान इसके अधीन हैं और इसका मुख देखते हैं। कर्मयोग और ज्ञान इत्यादि साधनों के फल यद्यपि अत्यन्त तुच्छ हैं फिर भी इन साधनों को अपने तुच्छ फलों की प्राप्ति के लिए भक्ति से ही बल मिलता है। ज्ञान और विज्ञान सब भक्ति के साधन हैं। जप, तप, नियम, योग, श्रुति में वर्णित नाना शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम, तीर्थाटन, स्नान इत्यादि जितने धर्म बताये गये हैं इन सबका और वेद पुराण पढ़ने सुनने का एकमात्र फल है भगवान के चरणों में प्रीति। इस प्रकार ज्ञान इत्यादि सब बेकार हैं, अन्त में सब भक्ति के अधीन ही हो जाते हैं।[5] ज्ञान का पंथ अत्यन्त कठिन है, उसके साधन और कठिन हैं। बड़े बड़े कष्ट उठाकर ही लोग उसे पाते हैं, परंतु भक्तिहीन होने

---

१. प्रभु कहे भट्टाचार्य ना कर विस्मय।
भगवाने भक्ति परम पुरुषार्थ हय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३३)

२. (क) मोक्षादि आनंद जांर नहे एक कण।
पूर्णानन्द प्राप्ति तांर चरण सेवन॥
तांर सेवा बिना जीवे ना जाय संसार।
तांहार चरणे प्रीति पुरुषार्थ सार॥
(ख) ..तांर भक्त्ये हय जीवेर संसार तारण॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४३)

३. (क) भक्ति बिना कोन साधन दिते नारे फल।
सब फल देय भक्ति स्वतंत्र प्रबल॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९७)
(ख) बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा।
(रा. च. मा., उ. ८९, पृ. ५३७)
(ग) सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।
(रा. च. मा., उ. ८९, पृ. ५३७)

४. (क) सब फल देय भक्ति स्वतंत्र प्रबल।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९७)
(ख) सो सुतंत्र अवलंब न आना। (रा. च. मा., उ. १६, पृ. ३३०)
(ग) भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। (रा. च. मा., उ. ४५, पृ. ५१४)

५. (क) कृष्ण भक्ति हय अभिधेय प्रधान।
भक्ति मुख निरीक्षक कर्म योग ज्ञान॥

से वह ज्ञानी भी भगवान् को प्रिय नहीं। ज्ञानी समझता है कि उसने जीवनमुक्त-दशा पा ली है परंतु यह उसका भ्रम है। भक्ति के विना उसकी बुद्धि तक तो शुद्ध होती नहीं।[1] अतः ज्ञान भक्ति के सामने तुच्छ है और बेकार भी है। जितने भी भक्त हैं उनकी भक्ति के कारण भगवान वश में हो जाते हैं। भक्ति से युक्त नीच से नीच प्राणी भी भगवान् को प्रिय है।[2]

भक्तिहीन प्राणी को अन्य किसी भी साधन से सुख नहीं मिलता। चारों प्रकार के वर्णाश्रम-धर्मी स्वकर्म का पालन करते हुए भी यदि कृष्ण को नहीं भजते तो वे रौरव नरक में ही पड़ते हैं। कृष्ण ने पूर्व आज्ञा दे रक्खी थी कि वेद वर्णित धर्म,कर्म और ज्ञान की साधना करनी चाहिये, परंतु फिर भी आगे चलकर आज्ञा दी कि यदि भक्त में श्रद्धा हो तो उसे सब छोड़ छाड़ कर कृष्ण का भजन करना चाहिये। अकेली कृष्ण भक्ति से समस्त

एइ सब साधनेर अति तुच्छ फल।
कृष्णभक्ति बिना ताहे दिते नारे बल॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

(ख) तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना।

(रा. च. मा., अ. १६, पृ. ३३०)

(ग) जप तप नियम जोग निज धर्मा।
श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन।
जहं लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका।
पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर।
सब साधन कर यह फल सुन्दर॥

(रा. च. मा., उ. ४९, पृ. ५१५)

१. (क) ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुं टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्तिहीन प्रिय मोहि न सोऊ॥

(रा. च. मा., उ. ४५, पृ. ५१४)

(ख) ज्ञानी जीवन्मुक्त दशा पाइनु करि माने।
वस्तुतः बुद्धि शुद्ध नहे कृष्ण भक्ति बिने॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८०)

२. (क) दास्य सख्य वात्सल्य शृंगार चारि रस।
चारि भावे भक्त जत कृष्ण तार वश॥

(चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १७)

(ख) भगतिवंत अति नीचो प्रानी।
मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥

(रा. च. मा., उ. ८६, पृ. ५३६)

कृत्य अपने आप होजाते हैं।[1] मुक्ति, भुक्ति, और सिद्धियों की कामना करने वाले कभी भी शांति नहीं पाते। केवल कृष्ण भक्ति से ही शांति मिलती है। भक्ति अनुपम सुखों की मूल है।[2] अविद्या का बंधन कर्मके साधनों से नहीं छूटता और भी दृढ़ हो जाता है। मोह में पड़कर मनुष्य नाना प्रकार के पाप करते हैं। उन पापों का फल उन्हें मिलता है। भगवान् उन अशुभ कर्मों का फल देते हैं, इसलिए जो चतुर व्यक्ति हैं वे शुभाशुभ दायक कर्मों का त्याग करके भगवान् की भक्ति करते हैं। वे सब प्रकार से अपने भक्त की रखवाली करते हैं। विधि धर्म (कर्म) छोड़कर कृष्ण का भजन करने से भक्त का मन निषिद्ध कर्मों और पापाचार की ओर कभी जाता ही नहीं। यदि अज्ञान के कारण कभी पापाचार हो भी जाय तो कृष्ण उसे शुद्ध कर लेते हैं। प्रायश्चित्त नहीं करवाते। भगवान् अपने भक्त की सर्वदा उसी प्रकार रखवाली करते हैं जिस प्रकार माता अपने बालक की करती है।[3]

---

१. (क) चारि वर्णाश्रमी जदि कृष्ण नाहि भजे।
स्वकर्म करिलेओ से रौरवे पड़ि मजे॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८०)

(ख) पूर्व आज्ञा वेदधर्म्म कर्म्म योग ज्ञान।
सब साधि अवशेषे आज्ञा बलवान॥
एइ आज्ञाबले भक्तेर श्रद्धा जदि हय।
सर्व्व कर्म्म त्याग करि से कृष्ण भजय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८२)

२. (क) कृष्ण-भक्त निष्काम अतएव शांत।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी सकलि अशांत॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५०)

(ख) भगति तात अनुपम सुख मूला। (रा. च. मा., अ. १६, पृ. ३३०)

३. (क) करहिं मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना॥
काल रूप तिन्ह कहुं मैं भ्राता।
सुभ अरु असुभ कर्म फलदाता॥
अस बिचारि जे परम सयाने।
भजहिं मोहि संसृति दुख जाने॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक।
भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक॥
(रा. च. मा., सु. ४१, पृ. ५१२)

(ख) सुनि मुनि तोहि कहौं सह रोसा।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा।
करौं सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखै महतारी॥ (रा. च. मा., अ. ४३, पृ. ३५०)

इस प्रकार भक्ति में कर्मकांड और ज्ञान इत्यादि की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। भगवान् की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय भक्ति है। इसमें न योग साधन है, न यज्ञ है, न जप तप है, और न उपवास इत्यादि ही है। इसमें तनिक भी प्रयास नहीं करना पड़ता। यह तो अत्यन्त सुगम पथ है, जिससे राम मिलते हैं। यह पथ तो इतना सुगम है कि "कृष्ण मैं तुम्हारा हूं" कहते ही कृष्ण भक्त का माया बंध दूर कर देते हैं और अपने समान कर लेते हैं।[१]

भक्ति में ज्ञान और कर्म कांड की अनावश्यकता तो ये लोग बताते हैं, परंतु वैसे स्वतंत्र रूप से ये निंद्य हैं, यह भावना भी नहीं है। अकेली भक्ति भगवान् की प्राप्ति करा देती है। यह ज्ञान और कर्म जो झंझट की वस्तुयें हैं अनावश्यक हैं। तुलसीदास कहते हैं भक्ति और ज्ञान में कुछ भेद नहीं है क्योंकि दोनों ही संसारसे उत्पन्न दुःखों को दूर करते हैं। परंतु ज्ञान अगम है। उसके प्रत्यूह अनेक हैं, उनकी साधना कठिन है अतः उनमें मन नहीं टिकता। ज्ञान का पंथ कहने में कठिन, समझने में कठिन और साधन करने में कठिन है। ज्ञान का पंथ तो कृपाण की धार है। उसमें पड़कर पार होना अत्यन्त कठिन है। जो निर्विघ्न इस पथका निर्वाह कर ले जाता है वह अंत में कैवल्य पद प्राप्त करता है। यह कैवल्य परम पद अत्यन्त दुर्लभ है। इतनी कठिनाइयों के बाद जो परम पद प्राप्त होता है वह राम

(ग) विधिधर्म्म छाड़ि भजे कृष्णेर चरण।
निषिद्ध पापाचारे तार कभु नहे मन॥
अज्ञानेओ जदि हय पाप उपस्थित।
कृष्ण तारे शुद्ध करे ना करान प्रायश्चित॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८६)

१. (क) कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न मख जप तप उपवासा॥
(रा. च. मा., उ. ४६, पृ. ५१४)

(ख) सुलभ सुखद मारग येह भाई।
भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥
(रा. च. मा., उ. ४६, पृ. ५१४)

२. (क) भगति के साधन कहौं बखानी।
सुगम पंथ मोहिं पावहिं प्रानी॥
(रा. च. मा., अ. १६, पृ. ३३१)

(ख) कृष्ण तोमार हङ जदि बले एकबार।
मायाबंध हैते कृष्ण तारे करे पार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २८०)

(ग) शरण लआ करे कृष्णे आत्मसमर्पण।
कृष्ण तारे करे तत्काले आत्मसम॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८४)

भक्त को भजन करते अनायास ही प्राप्त हो जाता है।[१] कृष्णदास कविराज ज्ञान कर्म को त्याज्य बताते हैं। वे कई बार कहते हैं कि वेद शास्त्र इन दोनों को त्याज्य बताते हैं क्योंकि कर्म से कृष्ण की ओर प्रेम नहीं होता।[२] चैतन्य देव कहते हैं कर्मी ज्ञानी तो भक्तिहीन ही हैं।[३] ज्ञान वैराग्य भक्ति के अंग कभी भी नहीं हो सकते।[४] ज्ञान मोक्ष को देने वाला है यह वेद कहते हैं, परंतु यह मोक्ष-सुख भक्ति को छोड़कर रहता ही नहीं। योग, जप, दान तप, इत्यादि के रहते हुए भी राम उस पर उतनी कृपा नहीं करते जितनी उस पर करते है जो केवल प्रेम करता है। इसलिये जो चतुर हरि भक्त हैं वे मुक्ति का निरादर करके भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं।[५] ज्ञान मोक्ष देता है परंतु वह तो भक्ति के अधीन है अतः वह

---

१. (क) भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥ (रा. च. मा., उ. ११५, पृ. ५५६)

(ख) ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका।
साधन कठिन न मन कहुं टेका॥ (रा. च. मा., उ. ४५, पृ. ५१४)

(ग) कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक॥
(रा. च. मा., उ. ११८, पृ. ५५९)

(घ) ज्ञान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जौं निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।
राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
(रा. च. मा., उ. ११९, पृ. ५५९)

२. कर्म्मनिन्दा कर्म्मत्याग सर्व्वशास्त्रे कहे।
कर्म्म हैते प्रेम भक्ति कृष्णे कभु नहे॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६६)

३. प्रभु कहे कर्म्मी ज्ञानी दुइ भक्तिहीन।
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६७)

४. ज्ञान वैराग्य भक्तिर कभु नहे अंग।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८६)

५. (क) ज्ञान मोच्छप्रद बेद बखाना। (रा. च. मा., अर. १६, पृ. ३३०)

(ख) तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने।
मुकुति निरादर भगति लुभाने॥ (रा. च. मा., उ. ११९, पृ. ५५९)

(ग) उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहि करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥
(रा. च. मा., लं. ११७, पृ. ४८२)

अकेला मुक्ति नहीं दे सकता। भक्ति स्वतंत्र है अतः अकेली मुक्ति दे सकती है।[1] ज्ञान कर्म इत्यादि में इतनी शक्ति ही नहीं है कि वे कृष्ण को वश में कर सकें। वे तो प्रेम से वश में होते हैं।[2] हरि का सुयश गाने से संसार के भार नष्ट हो जाते हैं और जीव उलट कर फिर इस संसार में नहीं नाचता अपनी निधि में समा जाता है।[3]

माया के बंधन से भक्ति ही छुड़ाती है। अन्य किसी में भी यह शक्ति नहीं है। ईश्वर की माया के उपजाये हुए दोष हों अथवा गुण कोई भी बिना हरि भजन (भक्ति) किये जाते ही नहीं।[4] भक्ति करने से बिना किसी प्रयास के समस्त दुःखों की मूल जो अविद्या माया है वह नाश हो जाती है।[5] नित्य बद्ध जीव कृष्ण से बहिर्मुख हो जाता है। प्रति दिन प्रति क्षण संसार में लिप्त रह कर नरकादि का दुःख भोगता है। इसी दोष के कारण माया पिशाची उसका गला बांधती है और आध्यात्मिक त्रयतापों से उसे जलाती रहती है। जीव काम क्रोध का दास हो कर उसकी मार सहता है। यदि भ्रमते भ्रमते साधु वैद्य की प्राप्ति हो जाती है तो उसके उपदेश मंत्र से वह भागती है, साधु का उपदेश कृष्ण भक्ति उपजा देता है अतः माया को भागना पड़ता है।[6] कृष्ण के भजन (भक्ति) और गुरु की

---

१. (क) केवल ज्ञान मुक्ति दिते नारे भक्ति बिने।
कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय बिना ज्ञाने॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

(ख) भक्ति बिना मुक्ति नाहि भक्त्ये मुक्ति हय।
(चै. च, मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९९)

२. (क) ज्ञाने कर्म्म योगे धर्म्मे नहे कृष्ण वश।
कृष्ण वश हेतु एक कृष्ण प्रेमरस॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १७, पृ. ८२)

३. (क) सूर हरि कौ सुजस गावत, जाहि मिटि भव-भार।
(सू. सा., २।४, पृ. ११६)

(ख) जाइ समाइ सूर वा निधि मैं बहुरि जगत नहिं नाचै।
(सू. सा., १।८१, पृ. २७)

४. हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं। रा.च.मा., उ. १०४, पृ. ५४६

५. भगति करत बिनु जतन प्रयासा।
संसृति मूल अविद्या नासा। (रा. च. मा., उ. ११९, पृ. ५५९)

६. नित्यबद्ध कृष्ण हैते नित्य बहिर्मुख।
नित्य संसारी भुंजे नरकादि दुःख॥
सेइ दोषे मायापिशाची दंड करे तारे।
आध्यात्मिक तापत्रय तारे जारि मारे॥
काम क्रोधेर दास हआ तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते जदि साधु वैद्य पाय॥
तार उपदेश-मंत्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय तवे कृष्ण निकटे जाय॥ (चै.च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

सेवा से माया भागती है, उसका जाल छूटता है और कृष्ण मिलते हैं।[१] वह माया जो सारे संसार को दुःख देती है भक्त के पास फटकती भी नहीं।[२] (माया जनित) भ्रम सबसे बलवान है। यह भ्रम तभी जाता है जब भक्त भगवान को पहचान लेता है।[३] जीव को माया नचाती है और भक्ति छुड़ाती है।[४]

भक्ति का स्वरूप—जीव और भगवान का संबंध भक्ति के द्वारा है। इस भक्ति का वास्तविक स्वरूप क्या है। यह भक्ति प्रेम रूप है।[५] विना प्रीति के भक्ति नहीं उत्पन्न होती। अतः प्रीति इस भक्ति का एक आवश्यक अंग है।[६] प्रेममयी भक्ति अहैतुकी है। इसका फल न तो मुक्ति की प्राप्ति है और न धन सम्पत्ति की प्राप्ति।[७] भक्ति तो इष्टदेव के प्रेम प्राप्ति के लिए है,[८] और उन्हीं को सुख देने के लिए है। यह अपने सुख के लिए भी नहीं है वरन् कृष्ण को वशमें करनेके लिए है। यह कृष्ण के माधुर्य और सेवानंद की प्राप्ति के लिए है अतः कामनाहीन है।[९]जप, तप, और साधन इन सबका एकमात्र फल भक्ति है, और इष्टदेव के चरणों में प्रीति है।[१०]कामनाहीन होना भक्ति का प्रधान गुण है और वास्तविक

---

१. ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे पाय कृष्णेर चरण॥ (चै. च., मध्यलीला., परि. २२, पृ. २८०)

२. हरि माया सब जग संतापै।
ताकौं माया-मोह न व्यापै॥ (सू. सा., ३।१३, पृ. १३३)

३. भरम ही बलवंत सब मैं, ईसहूं कै भाइ।
जब भगत भगवंत चीन्हें भरम मन तैं जाइ॥ (सू. सा., १।७०, पृ. २३)

४. देखी भगति जो छोरै ताही। (रा. च. मा., बा. २०२, पृ. १२२)

५. तत्ववस्तु कृष्ण, कृष्णभक्ति प्रेमरूप। (चै.च., आदिलीला, परि.२, पृ. १०)

६. जाने बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। (रा. च. मा., उ. ८९, पृ. ५३७)

७. एक भुक्ति कहे भोग अनंत प्रकार।
सिद्ध अष्टादश मुक्ति पंचविधाकार।
एइ जाहां नाहि सेइ भक्ति अहैतुकी।
जाहा हैते वश हय श्रीकृष्ण कौतुकी॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९४)

८. (क) सबु करि मांगहिं एकु फलु रामचरन रति होउ।
(रा. च. मा., अ. १२९, पृ. २३४)
(ख) अपनी प्रभु भक्ति देहु जासौं तुम नाता। (सू.सा., १।१२४, पृ. ४१)
(ग) कृष्ण प्राप्ति संबंध भक्ति प्राप्तिर साधन।
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६०)

९. कृष्णमाधुर्य सेवानंद प्राप्तिर कारण।
कृष्णसेवा करे कृष्णरस आस्वादन॥ (चै.च., मध्यलीला, परि.२०, पृ.२६०)

१०. देखो पीछे 'भक्ति क्या है'।

भक्ति यही है। रामचन्द्र स्वयं कहते हैं "भजु मोहिं, परिहरि आसभरोस सब।" यद्यपि भक्ति अहैतुकी है और कामनाहीन भक्ति का प्रतिपादन मिलता है परन्तु कामनायुक्त भक्ति की स्थिति भी बताई गई है। कृष्णदास कविराज कहते हैं कामनायुक्त भक्ति भी अच्छी है। उससे कृष्ण का 'रस' तो प्राप्त होता है और आगे चल कर काम छोड़ कर दास होने की अभिलाषा हो जाती है।[1] सूरदास कहते हैं कामी भक्त का भी क्रम क्रम करके उद्धार हो जाता है।[2] तुलसीदास कहते हैं सकाम भक्त को रामयश सुनकर सुख सम्पत्ति मिलती है, परन्तु विरक्त को राम भक्ति मिलती है।[3] भक्ति का असली स्वरूप अहैतुकी होना ही है।

भक्ति कर्म और ज्ञान से अलग है। कृष्णदास कविराज कहते हैं ज्ञान वैराग्य भक्ति के अंग नहीं हैं।[4] सूरदास कदाचित् ऐसा नहीं मानते वे कहते हैं भक्ति पथ का जो व्यक्ति अनुसरण करता है उसे अष्टांग योग करना चाहिए।[5] फिर वे और कहते हैं कि भक्ति पथ का जो अनुसरण करता है उसे सुत कलत्र से नाता छोड़ देना चाहिए। अर्थात् वैराग्य को ग्रहण करना चाहिए।[6] सूरदास आगे चल कर त्रिविध भक्ति का वर्णन करते हैं। कहते हैं एक भक्ति कर्म योग है। उसमें वर्णाश्रम धर्म को लेकर चलते हैं, अधर्म कभी नहीं करते। दूसरी भक्ति, भक्ति योग है। इसमें हरि का स्मरण और हरि से प्रीति करते हैं। तीसरी भक्ति ज्ञान योग है जिसमें सब को ब्रह्म जान कर सबका हित करते हैं।[7] इस विवरण से ज्ञात होता है कि सूरदास ज्ञान और कर्म को भक्ति का ही प्रकार मानते हैं। तुलसीदास भी कहते हैं कि हरि भक्ति पथ विरति और विवेक से संयुक्त है।[8] परन्तु ये दोनों ज्ञान, कर्म

---

१. चै. च., पृ. २८०।

२. सू. सा., पृ. १३७।

३. रा. च. मा., पृ. ४९९।

४. ज्ञान वैराग्य भक्तिर कभु नहे अंग। (चै.च., मध्यलीला, परि.२२, पृ.२८६)

५. भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरे।
सो अष्टांग जोग कौं करै॥ (सू. सा., २।२१, पृ. १२१)

६. भक्ति पंथ कौं जो अनुसरै।
सुत कलत्र सौं हित परिहरै॥ (सू. सा., २।२०, पृ. १२०)

७. एकै कर्म-जोग कौं करैं।
बरन-आसरम धर बिस्तरैं॥
अरु अधर्म कबहूं नांहि करैं।
ते नर याही बिधि निस्तरैं॥
हरि-पद-पंकज प्रीति लगावैं।
ते हरि-पद कौं या बिधि पावैं॥
एकै ज्ञान योग बिस्तरैं।
ब्रह्म जानि सबसौं हित करैं। (सू. सा., २।१३ पृ. १३७)

८. श्रुति संमत हरि भगति पथ,
संजुत बिरति बिबेक। (रा. च. मा., उ. १००, पृ. ५४४)

और वैराग्य को भक्ति का अंग मानते हों ऐसी ध्वनि नहीं निकलती । सूरदास कहते हैं ज्ञान, ध्यान और स्मरण बस इतना ही है कि हरि का रूप देख कर नाम लो ।[१] अर्थात् ज्ञान का वास्तविक कार्य इतना ही है कि वह मन में हरि का रूप जगा कर प्रीति उत्पन्न कर दे । तुलसीदास तो ज्ञान को भक्ति से भिन्न नहीं मानते । वे कहते हैं 'दोनों ही भव संभव खेद' को नष्ट करते हैं, परन्तु भक्ति का अंग ज्ञान नहीं है । विरक्ति (वैराग्य) की ढाल और ज्ञान की तलवार से मोह इत्यादि को मार कर हरि भक्ति मिलती है । ज्ञान होने से मोह दूर होता है तब राम के चरणों में अनुराग होता है । ज्ञानी सज्जन जब ज्ञान वैराग्य के नेत्र लेकर सुमति कुदाल से खोदते हैं तब भक्ति मणि मिलती है ।[२] अर्थात् ज्ञान वैराग्य इत्यादि भक्ति-प्राप्ति में सहायक हैं । चैतन्य देव ने भक्ति-स्मृति-शास्त्र सब को बताया, उन्होंने वैराग्य युक्त भक्ति करने को सिखाया, परन्तु शुष्क वैराग्य और ज्ञान का निषेध किया ।[३] अर्थात् वैराग्य और ज्ञान की भक्ति के लिए उपादेयता तो है परन्तु भक्ति, ज्ञान कर्म और वैराग्य से युक्त नहीं है ।

यह भक्ति मोक्ष वांछा से हीन है । मोक्ष की वांछा तो ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग में है । भक्त को मोक्ष नहीं चाहिए । मोक्ष की वांछा भक्ति में नहीं है । यह तो बड़ा भारी "कैतव" (अज्ञान) है । इससे भक्ति अंतर्धान हो जाती है ।[४] कैवल्य परम पद ज्ञान पंथ को निर्विघ्न पार करने पर मिलता है, भक्ति से उससे कोई सम्बन्ध नहीं है । भक्त उस मुक्ति का निरादर

---

१. कह्यौ, यह ज्ञान, यह ध्यान, सुमिरन यहै,
निरखि हरि रूप मुख नाम लीजै । (सू. सा., ४।११ पृ. १४६)

२. (क) बिरति चर्म असि ज्ञान मद लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि ॥
(रा. च. मा., उ. १२०, पृ. ५६१)

(ख) होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा ।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥ (रा. च. मा., अ. ९३, पृ. २१८)

(ग) मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ।
ज्ञान बिराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्राणी ।
पाव भगति मनि सब सुखखानी ॥ (रा. च. मा., उ. १२०, पृ. ५६०)

३. वृन्दावने कृष्णसेवा वैष्णव आचार्य ।
भक्तिस्मृति-शास्त्र करि करिह प्रचार ॥
जुक्त वैराग्यस्थिति सब शिक्षाइल ।
शुष्क वैराग्य ज्ञान सब निषेधिल ॥ (चै. च., मध्यलीला, परि २४, पृ. २९२)

४. अज्ञान तमेर नाम कहिये कैतव ।
धर्म-अर्थ-काम-वांछा आदि एइ सब ॥
तार मध्ये मोक्ष वांछा कैतव प्रधान ।
जाहा हैते कृष्णभक्ति हय अंतर्धान ॥ (चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ. ९)

करके भक्ति की ओर आकर्षित होता है।[1] इसका यह अर्थ नहीं है कि भक्ति से मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति की वांछा से भक्ति तो हीन है परन्तु मुक्ति उसके पीछे भागती है।[2]

भक्ति की प्राप्ति—भक्ति परम पुरुषार्थ है। परन्तु अकेले भक्त के वश का यह पुरुषार्थ नहीं है। यह भक्ति जीव के मन में बड़ी कठिनाई से उत्पन्न होती है। उसे तो माया भ्रम में डाले रहती है। वह तभी भागती है जब इष्टदेव कृपा करते हैं। अर्थात् भक्ति की प्राप्ति इष्टदेव की कृपा से ही होती है।[3]

भक्ति के प्रकार—हिन्दी के वैष्णव कवियों ने भक्ति का विभाजन करके उसके प्रकार इत्यादि की कोई क्रमबद्ध विवेचना नहीं की है। कुछ उल्लेख कहीं कहीं मिल जाते हैं। कृष्णदास कविराज ने भक्ति पर अच्छी विवेचना दी है। उसके प्रकारों पर भी क्रमबद्ध रूप से प्रकाश डाला है। यद्यपि इसे वे सूक्ष्म विवेचन ही बताते हैं, परन्तु हिन्दी में इतना भी नहीं है। तुलसीदास ने राम-लक्ष्मण संवाद और राम-शवरी मिलन के समय भक्ति की कुछ विवेचना अवश्य की है। कृष्णदास कविराज ने कई प्रकार से भक्ति के विभाजन किये हैं। प्रत्येक विभाजन का आधार अलग-अलग है। एक विभाजन भक्त की विभिन्न भावनाओं के आधार पर है, दूसरा इष्ट के प्रति रति भेद से उद्भूत है, तीसरा भक्ति की साधना के अनुरूप है, और चौथा कृष्ण के स्वरूप ज्ञान के कारण है। किसी किसी का हिन्दी में भी उल्लेख मिलता है।

१. भक्त भेद से—कृष्णदास कविराज ने भक्ति के चार प्रकार भक्त की विभिन्न भावनाओं के आधार पर बताये हैं। ये दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार हैं। वे कहते हैं ये चारों भाव चार प्रकार के भक्तों के आधार हैं। वे सब अपने अपने भाव को श्रेष्ठ करके मानते हैं और उसी भाव से कृष्ण सुख का आस्वादन करते हैं।[4] सूरदास भी भक्ति की

---

१. अस बिचारि हरि भगत सयाने।
मुकुति निरादर भगति लुभाने॥ (रा. च. मा., उ. ११९, पृ. ५५९)

२. (क) राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं।
अनइच्छत आवइ बरिआईं॥ (रा. च. मा., उ. ११९, पृ. ५५९)

(ख) कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय बिना ज्ञाने।
(चैं. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २७९)

३. (क) कृष्ण तोमार हउं यदि बले एक बार।
मायाबंध हैते कृष्ण तारे करे पार॥ (चैं. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २९)

(ख) महत्कृपा बिना कोन कर्म्मे भक्ति नय।
(चैं. च., मध्य लीला, परि. २२, पृ. २८१)

(ग) सो जाने जेहि देहु जनाई (रा. च. मा.)

(घ) अब मो पै प्रभु कृपा करीजै।
भक्ति अनन्य आपुनी दीजै॥ (सू. सा., ३।१३, पृ. १३६)

४. दास्य सख्य वात्सल्य आर जे शृंगार।
चारि भावे चतुर्विध भक्त इ आधार॥

भावना के अनुसार चार प्रकार की भक्ति बताते हैं। परन्तु उनके नाम भिन्न हैं। यह चार प्रकार की भक्ति सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी और शुद्धा है। यहाँ पर वे यह भी कह देते हैं कि भक्ति एक है परन्तु बहुत प्रकार की हो जाती है जैसे पानी में कई रंग मिला देने से वह कई रंग का हो जाता है।[1] सतोगुणी भक्ति में मुक्ति की वांछा होती है, रजोगुणी में धन कुटुम्ब की वांछा होती है, तमोगुणी में बैरी नाश की वांछा होती है और शुद्धा भक्ति में केवल इष्टदेव की चाह होती है। शुद्धाभक्ति में भक्त मुक्ति नहीं चाहता। मन, वचन, क्रम से इष्टदेव की सेवा करता है।[2] शुद्ध भक्ति का उल्लेख कृष्णदास ने भी किया है, यद्यपि सूर का सा पूरा विभाजन उन्होंने नहीं दिया है। शुद्ध भक्ति अन्य सब कामनाओं को छोड़ कर केवल कृष्ण का अनुशीलन करती है। इससे कृष्ण के प्रति प्रेम उपजता है।[3]

२. रति भेद से—दूसरा विभाजन कृष्ण रति भेद से है। यह विभाजन केवल कृष्णदास ने किया है। इस विभाजन का मुख्य आधार वास्तव में भक्तों के भेद से है। भक्तों के विभिन्न रूपों के कारण ही कृष्ण के प्रति रति में भी भेद है। कुछ भक्त जैसे नंद, यशोदा, कृष्ण को पुत्र रूप से देखते हैं और स्नेह करते हैं। कुछ भक्त जैसे सखागण मित्र के रूप में उन्हें स्नेह करते हैं। कुछ भक्त जैसे राधा और गोपियां केवल शृंगार भाव से उन्हें स्नेह करती हैं। कुछ उनके दास हैं और कुछ वैराग्य भावना से उन्हें भजते हैं। इस प्रकार वात्सल्य, सख्य, मधुर, दास्य और शांत ये पांच प्रकार की भक्तियां हुईं।[4] मधुर भक्ति

निज निज भाव सबे श्रेष्ठ करि माने।
निज भावे करे कृष्ण सुख आस्वादने॥ (चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. २३)

१. माता भक्ति चारि परकार।
सत रज तम गुन सुद्धा सार॥
भक्ति एक पुनि बहुबिधि होई।
ज्यों जल रंग मिलि रंग सु होई॥ (सू. सा., ३।१३ पृ. १३३)

२. भक्ति सात्विकी, चाहत मुक्ति।
रजोगुनी, धन कुटुंबऽनुरक्ति॥
तमो गुनी चाहै या भाइ।
मम बैरी क्यों हूं मरि जाइ॥
सुद्धा भक्ति मोहि कौं चाहै।
मुक्तिहुं कौं सो नहिं अवगाहै॥
मन क्रम बच मम सेवा करै। (सू. सा., ३।१३ पृ. १३३)

३. अन्य वांछा अन्य पूजा छाड़ि ज्ञानकर्म।
आनुकूल्ये सर्व्वेन्द्रिय कृष्णानुशीलन॥
एइ शुद्ध भक्ति इहा हैते प्रेम हय।
पंचरात्रे भागवते ए लक्षण कय॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २९, पृ. २५१)

४. भक्त भेदे रति भेद पंच परकार।
शांतिरतिदास्यरति सख्य रति आर॥

को प्रेम भक्ति भी कहा गया है। वैसे तो सभी भावों की भक्तियां अच्छी हैं परन्तु प्रेम भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। उसके बिना जगत् का कल्याण नहीं है।[१] चैतन्य अवतार का कारण बताते समय कृष्णदास बार बार यही कहते हैं कि कृष्ण को प्रेम अत्यन्त अच्छा लगता है। उसी राधा प्रेम को अनुभव करने वे चैतन्य रूप में आये।[२] शृंगार रस में सर्वाधिक माधुरी है अतः मधुर भक्ति अर्थात् प्रेम भक्ति सर्वोत्तम है।[३] सूरदास, नंददास और तुलसीदास ने भी प्रेम भक्ति का उल्लेख किया है परन्तु वह रति भेद से उद्भूत भक्तियों में से एक है, यह नहीं कहा। सूरदास कहते हैं प्रेम भक्ति के बिना भक्ति नहीं मिलती। नंददास कहते हैं भगवान् प्रेम से ही वश में होते हैं। तुलसीदास कहते हैं प्रेम भक्ति जल के बिना मन का मैल नहीं जाता।[४]

३. **साधन भेद से**—तीसरा विभाजन भक्ति की साधना के अनुसार है। कृष्णदास ने साधन भक्ति के दो रूप बताये हैं, एक वैधी और दूसरी रागानुगा। सूर, तुलसी, तथा परमानंददास इस प्रकार का उल्लेख तो नहीं देते परन्तु भक्ति के साधनों को नवधा भक्ति, दशधा भक्ति कह कर उल्लेख वे भी करते हैं।[५] कृष्णदास कहते हैं यह साधन

वात्सल्यरति मधुररति पंच विभेद।
रतिभेदे कृष्णभक्ति रस पंचभेद॥
शांत दास्य सख्य वात्सल्य मधुर रस नाम। (चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

१. दास्य सख्य वात्सल्य शृंगार चारि रस।
चारि भावे भक्तजन कृष्ण तार वश॥
... ...
चिरकाल नाहि करि प्रेम भक्ति दान।
भक्ति बिना जगतेर नाहि अवस्थान॥ (चै. च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १७)

२. चैतन्यचरितामृत, आदिलीला, चतुर्थ परिच्छेद।

३. तटस्थ हैया हृदि विचार जदि करि।
सब रस हैते शृंगारे अधिक माधुरी॥
अतएव मधुर रस कहि तार नाम।
स्वकीया परकीया-भावे द्विविध संस्थान॥
... ...
प्रौढ़ निर्मल भाव प्रेम सर्वोत्तम।
कृष्णेर माधुर्य रस आस्वाद कारण॥ (चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २३)

४. (क) प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई।
नाथ कृपा करि दीजै सोई (सू० सा०, पृ०)
(ख) ऐसे प्रभु बस होत जिहिं सुनहुं प्रेम की बात।
(नंददास, दशम स्कंध, पृ. ३२६)
(ग) प्रेम भगति जल बिनु खगराई।
अभिअंतर मल कबहुं न जाई॥ (रा० च० मा०,)

५. (क) नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं। (रा. च. मा., उ. ३५, पृ. ३४५)
(ख) तातें दशधा भक्ति भली। (परमानंददास)

भक्ति दो प्रकार की है, एक वैधी और एक रागानुगा। रागहीन जन शास्त्र की आज्ञा से जिस शास्त्रोक्त विधि से कृष्ण का भजन करते हैं उसे वैधी भक्ति कहते हैं।[1] इस वैधी भक्ति के ६४ अंग हैं। ये ६४ अंग ये हैं। एक साधु संग तो उसका सार है ही फिर अन्य गुरु पदाश्रय, गुरु दीक्षा, गुरु सेवन, सद्धर्म शिक्षा, पृच्छा, साधुमार्गानुगम, कृष्ण प्रीति, भोग त्याग, कृष्ण तीर्थवास, यावत् निर्वाह, प्रतिगृह, एकादश्योपवास धात्र्यश्वथ पूजन, गोपूजन, विप्र पूजन, वैष्णव पूजन, सेवा और नामापराध विसर्जन, अवैष्णव संग त्याग, बहुत शिष्य न करना, बहुग्रंथ कलाभ्यास और व्याख्यान वर्जन, हानि लाभ में समभाव, शोकादि के वश में न होना, अन्य देव तथा अन्य शास्त्र की निन्दा न करना, विष्णु वैष्णव की निन्दा न सुनना, किसी की निन्दा न करना, प्राणिमात्र को मनोवाक्य से दुख न देना, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, बंदन, परिचर्या, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन, मूर्ति के आगे नृत्य गीत, विज्ञप्ति और दंडवत, अभ्युत्थान, अनुव्रज्या तीर्थ गृह गमन, परिक्रमा, स्तव पाठ, जप, संकीर्त्तन, धूपमाल्य गंध ग्रहण तथा महाप्रसाद भोजन, रात्रि महोत्सव, श्री मूर्त्ति दर्शन, निज प्रिय वस्तु दान, ध्यान, इष्टदेव का सेवन, तुलसी अर्पण, वैष्णव सेवा, मथुरा सेवा, भागवत सेवा, समस्त चेष्टा कृष्णार्थ, उनकी कृपा की इच्छा, कृष्ण जन्म उत्सव में भाग लेना, सर्वदा शरणापत्ति, कार्त्तिक इत्यादि व्रत ये चौसठ अंग हैं।[2] इनमें से साधु संग, नाम कीर्तन, भागवत श्रवण, मथुरा वास, श्री मूर्त्ति सेवन ये पांच अंग सर्वश्रेष्ठ हैं।[3] तुलसीदास ने राम-शबरी मिलन में राम से जिस भक्ति का उल्लेख करवाया है वह साधन भक्ति है। वे कहते हैं, मैं नवधा भक्ति कहता हूं। तुम सावधान हो कर सुनो। यह नवधा भक्ति इस प्रकार है।[4] संतों की सेवा, मेरी कथा में रति, गुरु सेवा, इष्टदेव गुणगान, मंत्र जाप, इष्टदेव में दृढ़ विश्वास, वेद वर्णित भजन, छठा अंग दम शील और बहुत से कर्मों से बिरक्ति

---

१. एइत साधन भक्ति दुइत प्रकार।
एक वैधी भक्ति रागानुगा भक्ति आर॥
रागहीन जन भजे शास्त्रेर आज्ञाय।
वैधी भक्ति बलि तारे सर्वशास्त्र गाय॥ (चै.च., मध्यलीला, परि. २२, पृ.२८४)

२. चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८५

३. साधु संग नाम कीर्त्तन, भागवत श्रवण।
मथुरावास श्री मूर्त्तिर श्रद्धाय सेवन॥
सकल साधन श्रेष्ठ एइ पंच अंग। (चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ० २८५)

४. नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपटतजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा।
पंचम भजनु सो वेद प्रकासा॥

और सद् धर्म में निरंतर रति, सातवां अंग जग को ईश्वरमय देखना और भगवान से अधिक करके संत को मानना, आठवां यथालाभ में संतोष और परदोष न देखना और नवां अंग सबसे छल हीनता, भगवान में भरोसा तथा हर्ष और दीनता (दुख) से उदासीनता है। लक्ष्मण से भक्ति के बारे में बताते हुए राम प्रायः उन सब अंगों का ही दूसरे शब्दों में वर्णन करते हैं। उसमें विप्र के चरणों में प्रीति, निज निज कर्मों और श्रुति की रीति में अनुरक्ति, भगवान के गुण गान में शरीर में पुलक, ये और अंग बताये हैं। इसके अलावा वे कहते हैं कि विप्रों के चरणों की प्रीति के फलस्वरूप 'स्रवनादिक नव भगति' दृढ़ होती हैं।[1]

परमानंद दास दशधा भक्ति बताते हैं। इसमें वे श्रवण, कीर्त्तन, सुमरिन, पदसेवन, अर्चन, बंदन, दासभाव, सखाभाव, आत्म-समर्पण, और प्रेम इतने अंग बताते हैं।[2] सूरदास भी इसी प्रकार दशधा भक्ति बताते हैं।[3] ऊपर दिये अंगों के अलावा कृष्णदास कविराज भी एक जगह 'दशविधाकार' भक्ति का उल्लेख करते हैं। भक्ति शब्द का अर्थ दशविधा-

---

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा।
निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥
सातव सम मोहिमय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठव जथालाभ संतोषा।
सपनेहुं नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हिअं हरष न दीना॥ (रा. च. मा., उ. ३५-३६, पृ. ३४५-४६)

१. येहि कर फल पुनि बिषय बिरागा।
तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
स्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं।.. (रा. च. मा., अ. १६, पृ. ३२१)

२. तातें दसवा भक्ति भली।
जिन जिन कीनी तिनके मनते नेकु न अनत चली।
श्रवण परीक्षत तरे राजरिषि कीर्त्तन करि शुकदेव।
सुमरिन करि प्रह्लाद निर्भय भयो कमला करी पद सेव।
प्रथु अरचन, सुफलक सुत बंदन, दास भाव हनुमंत।
सखा भाव अर्जुन बस कीने श्री हरि श्री भगवंत।
बलि आत्म समर्पन करि हरि राखे अपने पास।
अविरल प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानंद दास।
(अष्ट. व. सं., पृ. ५४३)

३. श्रवण कीर्त्तन स्मरण पाद रत, अरचन बंदन दास।
सख्य और आत्म निवेदन, प्रेम लक्षणा जास॥
(सूर सारावली, सू. सा.,वै. प्रे., पृ. ५९)

कार हैं, उनमें एक साधन प्रेम-भक्ति है और अन्य नव प्रकार और हैं।[1] इससे यह नहीं ज्ञात होता कि यह नव प्रकार क्या हैं।

तुलसी की नवधा भक्ति निरूपण में जो अंग दिए हैं उनमें से कुछ कृष्णदास के चौंसठ अंगों में भी दिए हैं। श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद सेवा, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्म-समर्पण ये अंग कृष्णदास, तुलसी, सूर, परमानंद, सब ने दिए हैं।

यह तो हुई वैधी भक्ति। कृष्ण दास कविराज इसे सबसे हीन प्रकार की भक्ति मानते हैं परन्तु बेकार नहीं मानते। भक्ति-हीनता से तो यह अच्छी ही है क्योंकि इसके साधन से कृष्ण-प्रेम ही उपजता है। कोई एक अंग साधता है, कोई अनेक। इससे निष्ठा उपजती है और प्रेम उत्पन्न होता है।[2]

रागानुगा भक्ति के अधिकारी तो सभी हैं परन्तु गोपी-भाव की रागानुगा भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। राय रामानन्द और चैतन्यदेव के प्रश्नोत्तरों में यह बात सिद्ध की गई है। चैतन्यदेव ने रामानन्द से कहा कि तुम साध्य का निर्णय करो। अर्थात् वास्तविक साध्य क्या है,यह बताओ। रामानंद ने कहा कि स्वधर्माचरण,विष्णु-भक्ति साध्य है,स्वधर्म त्याग साध्य है, ज्ञान-मिश्रा भक्ति साध्य है, ज्ञान-शून्य भक्ति साध्य है, प्रेम-भक्ति साध्य है, दास्य-प्रेम साध्य है, सख्य-प्रेम साध्य है, वात्सल्य-प्रेम साध्य है। इन सबको चैतन्यदेव ने बाह्य बता कर अधिक महत्व नहीं दिया। तब रामानंद ने कहा, "कांता भाव सर्व साध्य सार है"। कृष्ण की सम्पूर्ण रूप से प्राप्ति इसी प्रेम से होती है। कृष्ण में रूप और माधुर्य की कमी नहीं है परन्तु यह माधुर्य ब्रजदेवियों का साथ पाकर और बढ़ जाता है। राधा का प्रेम जो है वह साध्य-शिरोमणि है। चैतन्यदेव कहते हैं कि यही निश्चय रूप से 'साध्यावधि' है।[3] आगे चल कर रामानंद कहते हैं कि राधाकृष्ण-लीला अत्यन्त गूढ़ हैं, दास्य वात्सल्यादि भक्तियों से यह दृष्टिगोचर नहीं होती। केवल सखियों को ही इसका अधिकार है। सखियों से ही इस लीला का विस्तार होता है।[4] सखियों के बिना इस लीला की पुष्टि नहीं होती। सखीभाव जिसमें

---

१. भक्ति शब्देर अर्थ हय दशविधाकार।
एक साधन प्रेमभक्ति नव प्रकार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९४)

२. साधुसंग नामकीर्त्तन भागवत श्रवण।
मथुरावास श्रीमूर्त्तिर श्रद्धाय सेवन॥
सकल साधन श्रेष्ठ एइ पंच अंग।
कृष्ण प्रेम जन्माय एइ पांचेर अल्प संग॥
... ...
एक अंग साधे केह साधे बहु अंग।
निष्ठा हैते उपजय प्रेमेर तरंग॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८५)

३. चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४४-४६

४. राधाकृष्णलीला एइ अति गूढ़तर। दास्य वात्सल्यादि भावे ना हय गोचर॥
सबे एक सखिगणेर इहा अधिकार। सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, प. १५१)

होगा वही राधा कृष्ण की कुंज सेवा की साधना कर सकता है।[१] इस मधुर भक्ति की साधना का अन्य कोई भी उपाय नहीं है। गोपीभाव की रागानुगा भक्ति ही श्रेष्ठ है। इसी भाव से राधा-कृष्ण के चरणों की प्राप्ति होती है। गोपी-भाव के बिना कृष्ण का ऐश्वर्य-ज्ञान मात्र होता है, और उस भाव से भजन करने पर भी ब्रज-स्थित कृष्ण की प्राप्ति नहीं होती।[२]

गोपी-भाव के प्रेम से युक्त रागानुगा भक्ति एक दूसरे भाव से भी श्रेष्ठ है। यह निष्काम प्रेम है, अतः यह अहैतुकी भक्ति है। गोपी-भाव का प्रेम केवल कृष्ण को सुख देने के लिए है। इस प्रेम का सबसे बड़ा बल कृष्ण को सुख देना है। गोपी-प्रेम कृष्ण को सुख देने मात्र का संबंध है। अपने सुख के लिए गोपियां कुछ नहीं करतीं। वे अपने सुख-दुःख का कुछ भी विचार नहीं करतीं। कृष्ण को छोड़ कर अन्य सब का वे परित्याग कर देती हैं। उन्हें सुख पहुंचाने के लिए उनसे शुद्ध प्रेम करती हैं।[३] कृष्ण के साथ लीला करने की भी उनकी इच्छा नहीं होती, वे तो कृष्ण और राधा की लीला करवाती हैं और उसी में सुख पाती हैं। गोपियों का यह प्रेम इसीलिए प्रकृत-काम नहीं है। उनकी क्रीड़ा में काम क्रीड़ा से कुछ साम्य है अतः उसे 'काम' नाम दे दिया जाता है। परन्तु वास्तव में गोपी-प्रेम काम नहीं है। उसका रूढ़ नाम 'भाव' है। अपनी इन्द्रियों को सुख देने की कामना जिस

---

१. सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहि हय ॥
सखीलीला विस्तारिया सखी आस्वादय ॥
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे जेइ तारे करे अनुगति ॥
राधाकृष्ण-कुंजसेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय ॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५२)

२. अतएव गोपीभाव करि अंगीकार। रात्रि दिन चिंते राधाकृष्णेर विहार ॥
सिद्ध देह चिंति करे ताहाञि सेवन। सखी भावे पाय राधाकृष्णेर चरण ॥
गोपी अनुगति बिना ऐश्वर्य ज्ञाने। भजि लेह नाहि पाय ब्रजेन्द्रनंदने ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५३)

३. (क) सर्व्व त्याग करि करे कृष्णेर भजन।
कृष्ण सुख हेतु करे प्रेमेर सेवन ॥ (चै.च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २८)

(ख) कृष्ण-सुख तात्पर्य मात्र प्रेम महाबल ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २८)

(ग) कृष्ण-सुख लागि मात्र कृष्ण से सम्बन्ध
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २८)

(घ) आत्मसुख दुःख गोपी ना करे विचार।
कृष्णसुख हेतु करे सब व्यवहार ॥
कृष्णबिना आर सब करि परित्याग।
कृष्णसुख हेतु करे शुद्ध अनुराग ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २८)

प्रेम में होती है वह प्रेम तो काम है, परन्तु जिस प्रेम में कृष्ण को सुख देने की कामना है वह काम नहीं है।[1] गोपियों में अपनी इंद्रियों को सुख देने की वांछा तो है ही नहीं। वे तो जो कृष्ण को सुख दे, ऐसा ही विहार करती हैं।[2]

नंददास—भिन्न हिन्दी वैष्णव साहित्य में इस रागानुगा भक्ति का जो गोपी-भाव से युक्त होती है कहीं भी उल्लेख नहीं है। यह प्रेम काम नहीं है, और कृष्ण की तुष्टि के लिए जितने काम किए जाते हैं वे व्यभिचार नहीं हैं, यह नंददास ने 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' में एक स्थान पर कहा है।[3] बस इस कथन के अतिरिक्त और किसी प्रकार का उल्लेख या विवेचना वे नहीं करते।

४. कृष्ण के स्वरूप-ज्ञान से—कृष्ण के स्वरूप-ज्ञान से दो प्रकार की रतियां उत्पन्न होती हैं। कृष्ण का एक स्वरूप तो वह है जो द्वारिका या मथुरा में है, अर्थात् ऐश्वर्यवान कृष्ण। दूसरा स्वरूप, जो ब्रज में है, इस ऐश्वर्य से हीन है। ये दोनों स्वरूप भक्ति उपजाते हैं। ऐश्वर्यवान् कृष्ण का स्वरूप जिस भक्ति को उपजाता है वह 'ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रा' भक्ति है और ऐश्वर्यहीन प्रेममय कृष्ण का स्वरूप जिस भक्ति को उपजाता है वह 'केवलाभक्ति' है।[4] ऐश्वर्य-ज्ञान-मिश्रा-भक्ति में प्रीति का विस्तार नहीं हो पाता, वरन् संकोच ही होता

---

१. (क) सखीर स्वभाव एइ अकथ्य कथन।
कृष्णसह निज लीलाय नाहि सखीर मन॥
कृष्णसह राधिकार लीला जे कराय।
निज सुख हैते ताते कोटि सुख पाय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५२)

(ख) सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम।
कामक्रीड़ा-साम्ये तार कहि काम नाम॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५२)

(ग) गोपीगणेर प्रेमेर रूढ़ भाव नाम।
शुद्ध निर्मल प्रेम कभु नहे काम॥
... ...
आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २८)

२. निजेन्द्रिय सुख हेतु कामेर तात्पर्य। कृष्णसुखेर तात्पर्य गोपीभाववर्य॥
निजेन्द्रिय सुख वांछा नाहि गोपिकार। कृष्णे सुख दिते करे संगम विहार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५२)

३. कृष्न तुष्टि करि कर्म करै जो आन प्रकारा॥
फल बिभिचार न हौइ, हौइ सुख परम अपारा॥
(नंददास, सिद्धांतपंचाध्यायी, पृ. १८६)

४. पुनः कृष्णरति हय दुइ त प्रकार।
ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा केवला भेद आर॥
गोकुले केवलारति ऐश्वर्यज्ञानहीन।
पुरीद्वये बैकुंठाद्ये ऐश्वर्य प्रवीण॥ (चै.च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

है, क्योंकि इसमें कृष्ण के ऐश्वर्य ज्ञान की प्रधानता रहती है। यह भावना भय उत्पन्न करती है, प्रीति नहीं। शांत और दास्य रस में तो ऐश्वर्य ज्ञान कभी कभी उद्दीप्त होता है परन्तु वात्सल्य, सख्य और मधुर रस में यह संकोचन का ही काम करता है। वसुदेव और देवकी कृष्ण की ओर वात्सल्य भाव से उन्मुख हैं। परन्तु उनके उस ऐश्वर्य के ज्ञान के कारण ही भयभीत हो जाते हैं, जब कृष्ण उनकी चरण वंदना करते हैं। इसी प्रकार अर्जुन अपने सखा कृष्ण का विराट रूप देखते ही भयभीत हो गए और उनसे अपनी धृष्टता की क्षमा मांगी। कृष्णदास कविराज कहते हैं कि कृष्ण यदि रुक्मिणी से परिहास मात्र करते हैं तो वह यह सोच कर कि कृष्ण मुझे त्याग देंगे डर जाती है। केवला-भक्ति ऐश्वर्य का आतंक नहीं मानती। उसमें शुद्ध प्रेम होता है।[१]

इन सब प्रकार की भक्तियों का विवरण देकर कृष्णदास कविराज एक की दूसरेसे श्रेष्ठता बताते हैं। वे कहते हैं कि शांत-भक्ति के दो गुण हैं,एक तो कृष्ण में निष्ठा और दूसरा तृष्णात्याग। वैसे तो ये दोनों गुण उसी प्रकार सब भक्तों में होते हैं जिस प्रकार आकाश का शब्द गुण समस्त भूतों में व्याप्त रहता है। परन्तु भक्त-विशेष से अंतर हो जाता है। शांत-भक्ति का स्वभाव ही है कि वह कृष्ण के केवल परम ब्रह्मत्व, परमात्मत्व और ज्ञान-प्रवीणत्व को अनुभव करके कृष्ण में निष्ठा रखती है। उसमें कृष्ण के प्रति ममत्व की झलक भी नहीं होती। शांत-भक्त में केवल स्वरूपज्ञान ही होता है। दास्य-भक्ति में ये दोनों गुण तो हैं परन्तु प्रभु के पूर्णैश्वर्य का ज्ञान और होता है। इस प्रकार के ज्ञान से भक्त में संभ्रम और गौरव की भावना उठ खड़ी होती है और उसके फलस्वरूप वह सेवा करके कृष्ण को निरंतर सुख देता है। इस प्रकार दास्य-भक्ति में शांत-भक्ति की अपेक्षा सेवन का गुण अधिक होता है। सख्य-भक्ति में शांत के गुण और दास्य का सेवन तो होता ही है, विश्वासमय मित्रता भी होती है। सखागण कृष्ण को कन्धे पर चढ़ाते हैं और स्वयं उनके कंधे पर चढ़ते हैं। सख्य भक्ति 'विश्रम्भ प्रधान' है और 'गौरव-सम्भ्रमहीन' है।

---

१. ऐश्वर्यज्ञानप्राधान्ये संकोचित प्रीति।
देखिले ना माने ऐश्वर्य केवलार रीति॥
शांतदास्यरसे ऐश्वर्य कांहाओ उद्दीपन।
वात्सल्ये सख्ये मधुर रसे संकोचन॥
वसुदेव-देवकीर कृष्ण चरण वंदिल।
ऐश्वर्यज्ञाने दुंहार मने भय हैल॥
कृष्णेर विश्व रूप देखि अर्जुनेर हैल भय।
सखाभावे धार्ष्ट्य क्षमाय करिया विनय॥
... ...
कृष्ण जदि रुक्मिणीरे कैल परिहास।
कृष्ण छाड़िबेन जानि रुक्मिणीर हैल त्रास॥
केवलार शुद्ध प्रेम ऐश्वर्य ना जाने॥
ऐश्वर्य देखिले निज संबंध ना माने॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, प. २५२-२५३)

इसमें कृष्ण के प्रति ममता अधिक होती है और उन्हें अपने समान समझने का ज्ञान भी होता है। वात्सल्य भक्ति में शांत के गुण और दास्य का सेवन जिसे इसमें पालन कहना चाहिए और सख्य का असंकोच और गौरवहीनता है । ममता का आधिक्य होता है। मधुर भक्ति में कृष्ण निष्ठा, अतिशय सेवा, सख्य का असंकोच, वात्सल्य का लालन, ममता ये सब हैं। परन्तु कांत-भाव से अपने शरीर से भी सेवा करते हैं, अतः मधुर भक्ति में पांच गुण हैं। इसलिए मधुर भक्ति में सब भावों का समाहार हो जाता है।[१]

कृष्णदास कविराज फिर कहते हैं कि साधन-भक्ति के द्वारा रति का उदय होता है, रति के गाढ़े होने पर उसका नाम प्रेम हो जाता है। प्रेमवृद्धि क्रम से स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव हो जाती है। य सब कृष्ण भक्ति के रस के स्थायी भाव हैं। जब इनमें विभाव-अनुभाव मिल जाते हैं तब कृष्ण-भक्ति-रस अमृत के समान हो जाता है।[२] इस प्रकार भक्ति को रस की श्रेणी तक पहुंचा देने की भूमिका प्रारंभ होती है। भक्त के लिए तो शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रस, ये पांच रस प्रधान हैं। हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स और भय, ये सब रस गौण हैं। भक्त के मन में तो वे ही पांच रस स्थायी रूप से रहते हैं, अन्य रस कारण पाकर आ जाते हैं।[३]

---

१. चैतन्यचरितामृत पृ., २५४

२. साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ़ हैले तार प्रेम नाम कय॥
प्रेमवृद्धि क्रमे नाम स्नेह मान प्रणय।
राग अनुराग भाव महाभाव हय॥
... ...
एइ सब कृष्ण भक्ति रस स्थायी भाव॥
स्थायी भावे मिलि जदि विभाव अनुभाव॥
सात्विक व्याभिचारी भावेर मिलने।
कृष्णभक्ति रस हय अमृत आस्वादने।

(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

३. शांत दास्य सख्य वात्सल्य मधुर रस नाम।
कृष्ण भक्ति रस मध्ये ए पंच प्रधान॥
हास्याद्भुत वीर करुण रौद्र वीभत्स भय।
पंचविध भक्ते गौण सप्तरस हय॥
पंचरस स्थायी व्यापि रहे भक्त सने।
सप्त गौण आगंतुक पाइये कारणे॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

९. भक्तिरस

चैतन्यदेव के समकालीन और परवर्ती वृंदावन-स्थित षट्-गोस्वामी गौड़ीय वैष्णव मत के व्यवस्थाकार थे। इन्होंने इस मत के सिद्धान्तों, विश्वासों और आचारों की विद्वत्तापूर्ण विशद व्याख्या की है। भक्ति-भावना को धार्मिक दृष्टि से एक स्वतंत्र रस मान कर रूप गोस्वामी ने सबसे पहले व्याख्या की। उन्होंने इस विषय पर 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' और 'उज्ज्वल-नील-मणि' दो ग्रंथ रचे। भक्ति को इन्होंने स्वतंत्र रस बताया है। चैतन्यदेव ने इस भक्ति रस का परिचय स्वयं ही रूप गोस्वामी को कराया था। कृष्णदास कविराज ने उसे चैतन्यचरितामृत में संक्षिप्त रूप से दिया है। हिन्दी वैष्णव साहित्य में भक्ति की इस प्रकार की शास्त्रीय व्याख्या नहीं पाई जाती।

कृष्णदास कविराज कहते हैं कि साधन भक्ति के द्वारा मन में कृष्ण रति का उदय होता है। यह रति गाढ़ हो कर प्रेम की संज्ञा धारण करती है। प्रेमवृद्धि को क्रम से स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव, इत्यादि नाम दिया जाता है।[1] ये सब कृष्ण-भक्ति-रस के स्थायी भाव हैं, इन स्थायी भावों को उपयुक्त सामग्री मिल जाय तो ये कृष्ण भक्तिरस का स्वरूप पा लेते हैं। यह सामग्री विभाव, अनुभाव और सात्विक व्यभिचारी है। स्थायी भाव में इनके मिल जाने से कृष्ण भक्ति-रस-अमृत का आस्वादन कराते हैं। विभाव के उद्दीपन और आलम्बन, दो रूप, जो क्रम से वंशी-स्वरादि और कृष्णादि हैं; तथा स्मित, नृत्य, गीतादि अनुभाव, एवं स्तम्भादि सात्विक अनुभाव और निर्व्वेद, हर्षादि, तेंतीस व्यभिचारी ये सब मिल कर यह रस अत्यन्त चमत्कारी हो जाता है।[2]

---

१. (क) साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ़ हैले तार प्रेम नाम कय॥
प्रेम वृद्धि क्रमे नाम स्नेह मान प्रणय।
राग अनुराग भाव महाभाव हय॥
... ...
एइ सब कृष्ण भक्ति रस स्थायी भाव।
स्थायी भावे मिलि जदि विभाव अनुभाव॥
सात्विक व्याभिचारी भावेर मिलने।
कृष्णभक्ति रस हय अमृत आस्वादने॥ (चै.च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

(ख) प्रेमादिक स्थायी भाव सामग्री मिलने।
कृष्णभक्ति-रसरूपे पाय परिणामे॥
विभाव अनुभाव सात्विक व्यभिचारी।
स्थायी भाव रस हय मिलि एइ चारि॥ (चै.च., मध्यलीला, परि.२३, पृ.२९०)

२. द्विविध विभाव आलंबन उद्दीपन।
वंशीस्वरादि उद्दीपन कृष्णादि आलंबन॥

यह भक्ति रस पांच प्रकार का है—शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर नामी श्रृंगार रस। श्रृंगार रस अन्य रसों से प्रबल है। शांत और दास्य रस के योग और वियोग दो भेद हैं। सख्य और वात्सल्य के योगादिक अनेक विभेद हैं परन्तु 'रूढ़' या 'अधिरूढ़' भाव केवल मधुर रस (श्रृंगार रस) में ही है। महिषीगणों का भाव रूढ़ है, अधिरूढ़ भाव केवल गोपियों में है। यह अधिरूढ़ महाभाव दो प्रकार का है। संयोग में यह '**मादन**' कहलाता है और वियोग में '**मोहन**'। मादन अधिरूढ़ भाव के चुम्बनादि अनेक भेद ह। मोहन अधिरूढ़ भाव के 'उद्घूर्णा' और चित्र-जल्प दो भेद हैं। चित्र-जल्प के प्रजल्पादि नाम से दश अंग हैं। उद्घूर्णा के विरह,चेष्टा और दिव्योन्माद दो अंग हैं। विरह में अपने को कृष्ण समझ लेते हैं।[1]

कृष्णदास कविराज श्रृंगार रस की और अधिक व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं, कि "श्रृंगार रस के संभोग और विप्रलम्भ दो प्रकार हैं। सम्भोग श्रृंगार के अनंत अंग हैं जिनका पार नहीं मिलता। विप्रलम्भ श्रृंगार के चार प्रकार पूर्वराग, मान, प्रवासाख्य और प्रेम वैचित्य हैं"।[2]

अनुभाव स्मित नृत्य गीतादि उद्भास्वर।
स्तम्भादि सात्विक अनुभावेर भितर॥
निर्व्वेद हर्षादि तेत्रिश व्यभिचारी॥
सब मिलि रस हय चमत्कार कारी॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २३, पृ. २९०)

१. पंचविधि रस शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य।
मधुर नाम श्रृंगार रस सावाते प्राबल्य॥
... ...
शान्तादि रसेर जोग वियोग दुइ भेद।
सख्य वात्सल्य जोगादिर अनेक विभेद॥
रूढ़ अधिरूढ़ भाव केवल मधुरे।
महिषीगणे रूढ़ अधिरूढ़ गोपिकानिकरे॥
अधिरूढ़ महाभाव दुइ त प्रकार।
संभोग मादन विरहे मोहन नाम तार॥
मादने चुम्बनादि हय अनंत विभेद।
उद्घूर्णा चित्रजल्प मोहने दुइ भेद॥
चित्रजल्प दश अंग प्रजल्पादि नाम।
भ्रमरगीता दश श्लोक तहोते प्रमाण॥
उद्घूर्णा विरह चेष्टा दिव्योन्माद नाम।
विरहे कृष्ण स्फुर्त्ति आपनाके कृष्ण ज्ञान॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २३, पृ. २९०)

२. सम्भोग विप्रलम्भ द्विविध श्रृंगार।
सम्भोग अनन्त अंग नाहि अंत तार॥
विप्रलम्भ चतुर्विध पूर्वराग मान।
प्रवासाख्य आर प्रेमवैचित्य आख्यान॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २३, पृ. २९०)

कृष्ण-भक्ति-रस का स्थायी भाव--साधन भक्ति के द्वारा भक्त के हृदय में जिस रति का उदय होता है, गाढ़ी होने पर उसे ही प्रेम का नाम दिया जाता है। यही प्रेम, जो रति का प्रगाढ़ स्वरूप है, कृष्ण-भक्ति-रस का स्थायी भाव है।[१] स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव इत्यादि प्रेम की वृद्धि के क्रमिक नाम हैं। ये सब भी कृष्ण-भक्ति-रस के स्थायी भाव हैं।[२] यह कृष्णरति दो प्रकार की है। एक तो ऐश्वर्य-ज्ञान-मिश्र और दूसरी केवला। गोकुल में जो रति है वह केवला रति है और कृष्ण के ऐश्वर्य-ज्ञान से हीन है। मथुरा और द्वारिका दोनों पुरियों और बैकुंठ में यह ऐश्वर्य-ज्ञान से पूर्ण है। ऐश्वर्य-ज्ञान की प्रधानता से प्रीति का संकोचन हो जाता है। केवला की ऐसी रीति है कि वह देख कर भी ऐश्वर्य को नहीं मानती।[३] शांत और दास्य रस में तो ऐश्वर्य-ज्ञान उद्दीपन हो भी जाता है परन्तु वात्सल्य, सख्य और मधुर रस में तो यह ज्ञान संकोचन का ही काम करता है। उदाहरण के लिए वासुदेव, देवकी, और अर्जुन लिए जा सकते हैं। कृष्ण का विश्व-रूप देख कर तीनों ही डर गए। उनके वात्सल्य और सख्य को उद्दीपन नहीं मिला।[४]

इस कृष्ण रति का मन में उदय सहज भाव से नहीं होता है। बड़े भाग्य से किसी जीवात्मा में यदि श्रद्धा होती है, तब वह जीव साधु संग करता है। साधु संग होने से श्रवण कीर्त्तन होता है। यह श्रवण-कीर्त्तन रूप साधन-भक्ति समस्त अनर्थों को दूर कर देती है। अनर्थों से निवृत्ति मिल जाने पर भक्ति-निष्ठा उत्पन्न होती है। निष्ठा आ जाने से श्रवण-इत्यादि में अत्यधिक रुचि उपजती है। रुचि आसक्ति उत्पन्न करती है। आसक्ति होने से चित्त में रति का अंकुर जन्म लेता है और यह रति गाढ़ी हो कर प्रेम नाम धारण करती है जो कृष्ण-भक्ति-रस का स्थायी भाव है।[५]

---

१. कृष्णे रति गाढ़ हैले प्रेम अभिधान।
कृष्णभक्तिरसे सेइ स्थायी भाव नाम॥ (चै. च., मध्य लीला, परि. २३० पृ. २८८)

२. प्रेम वृद्धि क्रमे नाम स्नेह मान प्रणय।
राग अनुराग भाव महाभाव हय॥
... .
एइ सब कृष्ण भक्ति रस स्थायी भाव।.... (चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

३. पुनः कृष्णरति हय दुइ त प्रकार।
ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा केवला भेद आर॥
गोकुले केवलारति ऐश्वर्यज्ञान हीन।
पुरीद्वये वैकुंठाद्ये ऐश्वर्य प्रवीण॥
ऐश्वर्यज्ञान प्राधान्ये संकोचित प्रीति।
देखिले ना माने ऐश्वर्य केवलार रीति॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

४. चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२

५. कोन भाग्ये कोन जीवे श्रद्धा जदि हय।
तबे सेइ जीव साधु संग करय॥

विभाव--विभाव क दो प्रकार हैं। एक आलंबन और दूसरा उद्दीपन। वंशी-स्वरादि उद्दीपन हैं और कृष्णादि आलंबन हैं।

१. **आलम्बन विभाव**--रस के आलंबन नायक और नायिका हुआ करते हैं। कृष्ण-भक्ति रस के आलंबन जो नायक और नायिका हैं वे ब्रजेन्द्रनंदन कृष्ण और उनकी कांता राधा हैं।

(क) **कृष्ण**--ब्रजेन्द्रनंदन कृष्ण नायक शिरोमणि हैं। ये कृष्ण धीर ललित नायक ह। निरन्तर काम क्रीड़ा ही जिनका चरित्र है। ये कृष्ण रस के सदन हैं। रसमयी मूत्ति वाले साक्षात् शृंगार हैं। ये रात-दिन कुंज में राधा के संग क्रीड़ा करते हैं। इस क्रीड़ा रंग से उन्होंने अपना किशोर जीवन सफल किया। गोपवेश, वेणु धारण, और नव किशोर वयस्क यह इन कृष्ण का मधुर रूप है। मनुष्य, स्थावर, जंगम सब का चित्त ये अपनी ओर आकर्षित करते हैं। ये कृष्ण साक्षात् मन्मथ मदन हैं। विभिन्न भक्तों के हृदयों में विभिन्न प्रकार के रस उमड़ते हैं। कृष्ण उन समस्त रसों के आश्रय हैं। कृष्ण रसराज शृंगारमय

साधु संग हैते हय श्रवण कीर्त्तन।
साधनभक्त्ये हय सर्व्वानर्थ निवर्त्तन॥
अनर्थ निवृत्ति हैले भक्ति निष्ठा हय।
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये रुचि उपजय॥
रुचि हैते हय तबे आसक्ति प्रचुर।
आसक्ति हैते जन्मे चित्ते रतिर अंकुर॥
सेइ रति गाढ़ हैले धरे प्रेम नाम। (चै. च., मध्यलीला, परि. २३, पृ. २८८)
द्विविध विभाव आलंबन उद्दीपन।
वंशीस्वरादि उद्दीपन कृष्णादि आलंबन॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २३, पृ. २९०)

नायक नायिका दुइ रसेर आलंबन।
सेइ दुइ श्रेष्ठ राधा ब्रजेन्द्रनंदन॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९२)
(क) ब्रजेन्द्रनंदन कृष्ण नायक-शिरोमणि। (चै. च., मध्यलीला, परि. २३, पृ. २९१)
(ख) राय कहे कृष्ण हयेन धीर ललित।
निरंतर काम क्रीड़ा जांहार चरित॥ (चै.च., मध्यलीला, परि.८, पृ. १५१)
(ग) एइ मत पूर्वे कृष्ण रसेर सदन। (चै. च., मध्यलीला, परि. ४, पृ. २६)
(घ) रसमय मूर्त्ति कृष्ण साक्षात् शृंगार।
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. ३१)

(ङ) रात्रि दिन कुंजे क्रीड़ा करे राधासंगे।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ा रंगे॥ (चै.च., मध्यलीला, परि. ८, प. १५१)
गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर, नवलीला हय अनुरूप॥
कृष्णेर मधुर रूप शुन सनातन॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २१, पृ. २७५)

हैं, मूर्त्तिधर शृंगार हैं अतः सब आत्माओं को आकर्षित करते हैं। लक्ष्मी कांतादि का मन हरण करते हैं। अपने माधुर्य से स्वयं अपना ही मन हरण करते हैं।[1] कृष्ण के अनंत गुण हैं जिसमें ६४ गुण प्रधान हैं।[2] कृष्णदास ने समस्त गुणों की सूची तो नहीं दी है, कुछ के नाम दिए हैं। कृष्ण के सत्‌चित रूप, पूर्णानंद, ऐश्वर्य, माधुर्य, कारुण्य, स्वरूपपूर्णता, भक्तवात्सल्यता, वदान्यता, अलौकिक रूप रस सौरभादि भिन्न-भिन्न गुण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का मन हरण करते हैं। सौरभादि गुण से सनकादिक ऋषि मोहित होते हैं। शुकदेव का मन लीला सुन कर आकर्षित होता है। अपने अंग और रूप से गोपियों का मन हरण करते हैं। रूप और गुण की चर्चा सुन कर रुक्मिणी मोहित हुई थीं। वंशी से लक्ष्मी का और यथायोग्य भाव से जगत् की युवतियों का मन हरते हैं। गुरु तुल्य स्त्री गण को वात्सल्य भाव से आकर्षित करते हैं और अन्य पुरुषों को दास्य और सख्य भाव से। कृष्ण के गुण पक्षी, मृग, वृक्ष-लता, चेतन, अचेतन, सब को आकर्षित करके प्रेम में मत्त कर देते ह।[3]

---

१. पुरुष जोषित् किवा स्थावर जंगम।
सर्व्वचित्ताकर्षक साक्षात् मन्मथ मदन ॥
नाना भक्तेर रसामृत नानाविध हय।
सेइ सब रसामृतेर विषय आश्रय ॥
शृंगार रसराजमय मूर्त्तिधर।
अतएव आत्मा पर्यन्त सर्व्वचित्तहर ॥
लक्ष्मी-कांतादि अवतारेर हरे मन।
लक्ष्मी आदि नारीगणेर करे आकर्षण ॥
आपन माधुर्ये हरे आपनार मन।
आपना आपनि चाहे करिते आलिंगन ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४८-१४९)

२. अनंत कृष्णेर गुण चौषट्टि प्रधान।... (चै. च., मध्यलीला, परि. २३, पृ. २९१)

टिप्पणी :—

भक्तिरसामृत सिंधु (२।१।११) में रूप गोस्वामी ने ५० गुण दिए हैं। वे ये हैं :— सुरम्यांग, सर्व सल्लक्षणान्वित, रुचिर, तेजस्विन्, बलीयस्, वयोऽन्वित, विविधाद्‌भुत, भाषावित्, सत्यवाच्, प्रियंवद, वावदूक, सुपंडित्, बुद्धिमत्, प्रतिभान्वित, विग्दध, चतुर, दक्ष, कृतज्ञ, सुदृढ़व्रत, देशकालसुपात्रज्ञ, शास्त्रचक्षुस्, स्थिर, शुचि, वशिन्, दान्त, क्षमाशील, गंभीर, धृतिमत्, सम, वदान्य, धार्मिक, शूर, करुण, मान्यमानकृत, विनयिन्, दक्षिण, ह्रीमत्, शरणागत-पालक, सुखिन्, भक्त-सुहृत्, प्रेमवश्य, सर्वशुभंकर, प्रतापिन्, कीर्त्तिमत्, रक्तलोक, साधु-समाश्रय, नारीगणमनोहारिन्, सर्वाराध्य, समृद्धिमत, वरीयस्, और ईश्वर। इन में १४ गुण और सम्मिलित किए गए हैं :—सदास्वरूप-संप्राप्त, सर्वज्ञ, नित्यनूतन, सच्चिदानन्द-सांद्रांग, सर्वसिद्धिनिषेवित, अविचित्य-महाशक्ति, कोटिब्रह्मांड-विग्रह, अवतारावलि-बीज, हतारिगतिदायक, आत्माराम, जनाकर्षिन् लीला, प्रेम-प्रियाधिक्य, वेणु माधुर्य, और रूप माधुर्य।

३. चै. च., मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९५

(ख) **कांतागण**——कृष्ण की कांतायें तीन प्रकार की हैं।[1]

१. लक्ष्मीगण——लक्ष्मीगण उनके नारायण रूप की सहकारी है और उनकी अंश-विभूति है। ये लक्ष्मीगण कृष्ण की वैभव विलासांश रूप हैं।[2] इन्हें ब्रजलीला का सुख नहीं मिलता, यद्यपि ये वांछा करती हैं। कृष्ण तो गोप जाति के हैं, अतः गोपियां उनकी प्रेयसी हैं। देवी अथवा अन्य स्त्री उनको अंगीकार नहीं है। लक्ष्मी अपनी देवी-देह से उन्हें पाना चाहती हैं, अतः उन्हें कृष्ण-संग-सुख, एवं रास विलास नहीं मिलता।[3]

२. महिषीगण——महिषीगण कृष्ण के द्वारिका वासी रूप की सहचरी है। ये महिषी गण उनका बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप हैं और प्रभाव-प्रकाश स्वरूप हैं।[4]

३. बृजांगनागण——कृष्ण की कांतायें ब्रज देवियां हैं। ये ब्रज देवियां राधा और उनकी सखियां गोपियां हैं।[5] आकार और स्वभाव भेद से ब्रज देवियां कृष्ण के रस का कारण हैं। बहुत-सी कांताओं के बिना रस का उल्लास नहीं होता। अतः कांतायें बहुत सी हैं।[6] मधुर

---

१. कृष्णकांतागण देखि त्रिविध प्रकार।
लक्ष्मीगण एक नाम महिषीगण आर॥
ब्रजांगना रूप आर कांतागण सार। (चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

२. देखो पादटिप्पणी ४

३. (क) तांर स्पर्श नाहि जाय पतिव्रता-धर्म।
कौतुकेते लक्ष्मी चाहे कृष्णेर संगम॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६०)
(ख) गोपजाति कृष्ण गोपी प्रेयसी तांहार।
देवी बा अन्य स्त्री कृष्ण ना करे अंगीकार॥
लक्ष्मी चाहे सेइ देहे कृष्णेर संगम।
गोपीरागानुगता हञा ना कैल भजन॥
अन्य देहे ना पाइये रास विलास। (चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६१)

४. लक्ष्मीगण हन तांर अंश विभूति।
बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप महिषीर तति॥
लक्ष्मीगण तांर बभव विलासांश रूप।
महिषीगण प्रभाव प्रकाश स्वरूप॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

५. ब्रजांगना रूप आर कांतागण सार।
श्री राधिका हुंते कांतागणेर विस्तार॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

६. आकार स्वभाव भेदे ब्रजदेवीगण।
कायव्यूह रूप तांर रसेर कारण॥
बहु कांता बिना नहे रसेर उल्लास।
लीलार सहाय लागि बहुत प्रकाश॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४)

रस का संस्थान स्वकीया और परकीया दोनों प्रकार की नायिकाओं में होता है, परन्तु परकीया भाव में रस का अत्यंत उल्लास होता है। अत: रस की कारण कांतायें परकीया ही हैं। यह परकीया भाव ब्रज भिन्न और कहीं है भी नहीं। ब्रज वधुएँ इस भाव की अवधि हैं। राधा इन ब्रज वधुओं के बीच में इस भाव की अत्यंत अवधि है।[1] ये राधा गोपियों का विस्तार करके कृष्ण को रास आदि लीलाओं का आस्वादन कराती हैं। ये राधा मानों मूर्तिमान कृष्ण-क्रीड़ा हैं। ये कृष्णमयी हैं, मानों प्रेम-रस-मय कृष्ण का ही स्वरूप हैं। ये कृष्ण की वांछा पूर्ति-रूप है।[2] राधा प्रेम का स्वरूप हैं। उनकी देह प्रेम से प्रभावित है। वे कृष्ण की प्रेयसी हैं।[3] राधा कृष्ण की वांछा की पूर्ति करती हैं, यही उनका काम है। ललिता आदि सखियां उनका कायव्यूह रूप हैं।[4] सखियों के बिना लीला पुष्ट नहीं होती। सखियां ही इसका विस्तार करती हैं। सखियां ही इसका आस्वादन करती हैं। सखियों का ऐसा स्वभाव है, जो कहा नहीं जा सकता। ये तटस्थ भाव से लीला का विस्तार करती हैं। उन्हें स्वयं कृष्ण के साथ लीला करने की इच्छा नहीं होती। वे कृष्ण के संग राधा की लीला करवा के उसमें अत्यंत आनन्द पाती हैं। राधा कृष्ण की प्रेमकल्प लता है, सखियां उनकी पल्लव और पुष्प हैं। जैसे लता को सींचने से पत्तों को ही अधिक सुख होता है, उसी प्रकार राधा को कृष्ण लीला से सुख प्राप्त करा के गोपियां अधिक सुखी होती हैं। सखियां स्वयं कृष्ण सुख नहीं चाहतीं। वे यत्न करके राधा-कृष्ण का मिलन कराती हैं। अपने अन्योन्य विशुद्ध प्रेम से रस की पुष्टि करती हैं।[5]

कांता शिरोमणि राधा अत्यंत सुन्दरी हैं। कृष्ण-स्नेह रूपी उबटन लगा कर उन्होंने देह को सुगंधित और उज्ज्वल वर्ण वाला किया है। उनमें करुणा, तरुणाई और लावण्य इतना

---

१. अतएव मधुर रस कहि तार नाम ।
स्वकीया परकीया-भावे द्विविध संस्थान ॥
परकीयाभावे अति रसेर उल्लास ।
ब्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि वास ॥
ब्रजवधूगणेर एइ भाव निरवधि ।
तार मध्ये श्रीराधार भावेर अवधि ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २३)

२. चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २४-२५

३. प्रेमेर स्वरूप देह प्रेमे विभावित ।
कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठ जगते विदित ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४९)

४. सेइ महाभाव हय चिन्तामणिसार ।
कृष्णवांछा पूर्ण करे एइ कार्य तार ॥
महाभाव चिन्तामणि राधार स्वरूप ।
ललितादि सखि तार कयाव्यूह रूप ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४९)

५. चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५१-५२

है, मानों उन्होंने कारुण्यामृत, तारुण्यामृत और लावण्यामृत की धाराओं में स्नान किया हो। कृष्ण अनुराग रूपी अरुण वसन उन्होंने धारण कर रक्खा है। प्रणय मान की कांचली धारण कर रक्खी है। कृष्ण के प्रेम रस के मृगमद से शरीर चित्रित कर रक्खा है। प्रच्छन्न मान और वामता मानों उनका वेणी विन्यास हैं। धीराधीरा गुण का पटवास शरीर पर है। स्नेह रूपी तांबूल रस से अधर चर्चित हैं। प्रेम कौटिल्य का दोनों नेत्रों में कज्जल है और जितने सात्विक संचारी भाव हैं, उन सबके आभूषण धारण किए हैं। सद्‌गुण रूपी पुष्पों की मालाओं से शरीर पूरित है। प्रेम वैचित्र्य रूपी रत्न हृदय पर शोभित है। कृष्ण-नाम-गुण और यश के वर्णाभूषण धारण किए हैं। ये राधा कृष्ण को मधुर रस का पान कराती हैं।[1]

यद्यपि ये व्रजांगनायें परकीया हैं, परन्तु असली नहीं हैं। राधा के पातिव्रत धर्म की वांछा तो अरुन्धती करती हैं। राधा कृष्ण के विशुद्ध प्रेम की आकार हैं।[2] सखियों का प्रेम प्रकृत-काम नहीं है। यह तो शुद्ध निर्मल प्रेम है।[3] देह में अवस्थित काम और प्रेम उसी प्रकार भिन्न स्वरूप हैं, जिस प्रकार धातुयें लोहा और सोना विभिन्न हैं। आत्मेन्द्रिय-प्रीति इच्छा तो काम है, परन्तु कृष्णेन्द्रिय-प्रीति इच्छा जो है, वह प्रेम है। काम का तात्पर्य केवल निज संभोग मात्र होता है। कृष्ण-सुखमात्र जब तात्पर्य हो तो वह प्रेम है। गोपियां लोकधर्म, वेद धर्म, देह धर्म, लज्जा, धैर्य, आर्य पथ और स्वजन सबका परित्याग करके कृष्ण का जो भजन करती हैं, और उनके प्रेम का सेवन करती हैं, वह केवल कृष्ण सुख के लिए। ये गोपियां अपने सुख-दुःख की तो चिन्ता ही नहीं करती हैं। ये समस्त व्यवहार कृष्ण-सुख के ही लिए करती हैं। वे कृष्ण से भी केवल कृष्ण को सुख देने के लिए ही अनुराग करती हैं। गोपियां यदि अपनी देह से भी प्रीति करती हैं तो केवल कृष्ण के लिए। वे यह सोच कर ही अपनी देह का मार्जन और श्रृंगार करती हैं कि वह कृष्ण को समर्पित की हुई है और उसके दर्शन-स्पर्शन से सुख की प्राप्ति होती है। इन गोपियों के भाव का एक और स्वभाव है। बुद्धि द्वारा वह नहीं जाना जाता। गोपियां जब कृष्ण का दर्शन करती हैं, तब उन्हें सुख की वांछा न होते हुए भी अपार सुख होता है। वह सुख उन्हें इस कारण होता है कि गोपियों को देख कर कृष्ण को सुख होता है। वे यदि किसी भी प्रकार से कृष्ण-सुख का कारण होती हैं, तो उन्हें सुख होता है। उनका सुख कृष्ण से ही बढ़ता है, अतः गोपी-प्रेममें काम-दोष नहीं है। गोपी-प्रेम कृष्ण के माधुर्य की पुष्टि करता

१. चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५०

२. (क) जांर सौंदर्यादि गुण वांछे लक्ष्मी पार्व्वती।
जांर पतिव्रता धर्म वांछे अरुन्धती ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५०)

(ख) कृष्णेर विशुद्ध प्रेम रत्नेर आकर।
अनुपम गुणगणे पूर्ण कलेवर ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५०)

३. गोपीगणेर प्रेमेर रूढ़भाव नाम।
शुद्ध निर्मल प्रेम कभ नहे काम ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २८)

है। माधुर्य बढ़ने से प्रेम संतुष्ट होता है। गोपियों का प्रेम काम गंधहीन है। जिस प्रकार तप्त कंचन निर्मल, उज्ज्वल और शुद्ध होता है, उसी प्रकार गोपी-प्रेम है। कृष्ण की सहायक गोपियां उनकी बांधव, प्रेयसी, प्रिया, शिष्या, सखी और दासी हैं। इन समस्त गोपियों में राधा उत्तम हैं। वे रूप, गुण, सौभाग्य और प्रेम में सर्वाधिक हैं। राधा के साथ की हुई क्रीड़ा रस-वृद्धि का कारण है। अन्य सब गोपियां तो रस का उपकरण मात्र हैं। राधा कृष्ण की वल्लभा और उनकी प्राणधन हैं। उनके विना गोपियां भी सुख का हेतु नहीं हो पातीं।[1] गोपियों का प्रेम कम नहीं है।[2]

हिन्दी के भक्ति-साहित्य में साहित्य रस की इस प्रकार की शास्त्रीय व्याख्या नहीं मिलती है। भक्ति रस है, उसका स्थायी भाव है, विभाव है, यह सब कहीं नहीं दिया है। विभाव के आलंबन,-उद्दीपन जो हैं, उनकी शास्त्रीय ढंग से व्यवस्थित व्याख्या का विवरण तो नहीं है, परन्तु कृष्ण गोपी, गोपी प्रेम, राधा इनके बारे में उक्तियां अवश्य प्राप्त हैं, जिनमें प्रायः वही भावना परिलक्षित होती है, जो कृष्णदास की इन सबके बारे में है। कृष्णदास कविराज और अन्य गौड़ीय वैष्णव राधा और गोपियों को केवल परकीया रूप में ही देखते थे। कृष्ण गोलोक में बैठे जब चैतन्य-अवतार लेने का विचार कर रहे थे, तब वे कहते हैं कि मुझे प्रिया की मान-जनित भर्त्सना जितनी अच्छी लगती है, उतनी वेद-स्तुति भी नहीं। मेरे प्रति गोपियों का जो उपपति भाव है, उस पर योगमाया अपना और अधिक प्रभाव डालेंगी। न तो मैं उसे जानूंगा और न गोपियां ही जानेंगी। दोनों एक दूसरे के रूप-गुण से

---

१. चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २८, २९, ३०

२. सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम।
कामक्रीड़ा-साम्ये तार कहि काम नाम॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ० १५२)

टिप्पणी :—यद्यपि हिन्दी के भक्ति साहित्य में गोपियों के प्रेम की ऐसी व्याख्या और विवरण तो नहीं है, परन्तु वे भी गोपी भाव की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ और काम-हीन मानते थे, ऐसी ध्वनि निकलती है। कुछ स्फुट उक्तियां इस संबंध की मिल जाती हैं। वे नीचे दी जा रही हैं :

(क) कृष्न-तुष्टि करि कर्म करै जो आन प्रकारा।
फल बिभिचार न होंइ, हौइ सुख परम अपारा॥

(नंददास, सिद्धांत-पंचाध्यायी, पृ. १८६)

(२) गरवादिक जे कहे काम के अंग आंहि ते।
सुद्ध प्रेम के अंग नांहि, जानंहि प्राकृत जे॥

(नन्ददास, सिद्धांत-पंचाध्यायी, पृ. १८९)

(३) जो कोउ भरता भाव हृदय धरि हरि पद ध्यावें।
नारि पुरुष कोइ होइ श्रुति ऋचा गति सो पावें॥

(सू. सा., बे. प्रे., पृ. ३६४)

एक दूसरे का मन हरण करेंगे। धर्म छोड़ कर राग मार्ग से दोनों का मिलन होगा।[1] यह पीछे बताया जा चुका है कि मधुर रस का स्वकीया और परकीया दोनों भावों में अवस्थान है। परकीया भाव श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें रस का अत्यधिक उल्लास है। गौड़ीय वैष्णव मत में राधा परकीया ही हैं। हिन्दी के भक्ति साहित्य में कुछ गोपियां तो परकीया हैं, परन्तु राधा स्वकीया ही हैं। सूरदास ने रास के प्रारम्भ में राधा का कृष्ण से गंधर्व विवाह करवाया है।[2] राधा देवी-देवताओं से वर भी यही मांगती हैं कि नन्द सुत उनके पति हों।[3] नन्ददास की रचना "श्याम सगाई" में तो राधा और कृष्ण की सगाई करवाई गई है।

हिन्दी के भक्ति साहित्य में राधा अनन्य पूर्वा स्वकीया नायिका हैं परन्तु गौड़ीय वैष्णव साहित्य में वे परकीया ही हैं। अन्य गोपियों को अवश्य ही कुछ को परकीया और कुछ को स्वकीया रूप में हिन्दी भक्तों ने माना है। धर्म, कर्म, लोभ, लाज, सुत और पति त्याग कर कृष्ण के पास भागने वाली गोपियां भी हैं।[4]

गोपी प्रेम एकनिष्ठ प्रेम है। यह स्त्री-पुरुष का प्रेम होते हुए भी काम नहीं है। इस पर कृष्णदास ने बहुत जोर डाला है। हिन्दी भक्ति-साहित्य में नन्ददास की उक्ति इस प्रकार की मिलती है।[5] सूरदास भर्त्ता भाव की उपासना की महिमा गाते हैं। जो कोई भर्त्ता भाव से हरि पद का ध्यान करते हैं, वे श्रुति-ऋचा की गति पाते हैं।[6] नन्ददास गोपियों

---

१. मो विषये गोपीगण उपपति भावे ।
योग माया करिवेन आपन प्रभावे ॥इत्यादि॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २२)

२. जाकौं व्यास बरनत रास ।
है गंधर्व बिवाह चित दै सुनौ बिविध बिलास ॥
(सू. सा., १०।१०७१, पृ. ६२९)

३. नन्द-सुत पति देहु देवी पूजि मन की आस ।
(सू. सा., १०।१०७१, पृ. ६२९)

४. धर्म कर्म लोक लाज सुत पति तजि धाई ।
[चत्रभुज प्रभु गिरिधर मैं जांचे री माई ॥ (अष्ट. व. स., पृ. ४५४)

५. (क) कृष्न तुष्टि करि कर्म करै जो आन प्रकारा ।
फल बिभिचार न होइ, होइ सुख परम अपारा ॥
(नन्ददास, सिद्धांत पंचाध्यायी, पृ. १८६)

(ख) गरबादिक जे कहे काम के अंग आहि ते ।
सुद्ध प्रम के अंग नाहिं जानहिं प्राकृत जे ॥
(नन्ददास, सिद्धांत पंचाध्यायी, पृ. १८९)

६. जो कोउ भरता-भाव हृदय धरि हरि-पद ध्यावै ।
नारि पुरुष कोउ होइ स्रुति-ऋचा-गति सो पावै ॥
(सू. सा., १०।११७५, पृ. ६६४)

को प्रथम काम-रस से युक्त बताते हैं, फिर वह काम रस शुद्ध प्रेम हो गया, यह भी कहते हैं।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी के भक्ति साहित्य में गोपी प्रेम संबंधी ऐसी उक्तियां स्फुट रूप से तो मिलती हैं जो गौड़ीय भक्ति साहित्य की इस संबंध की भावना से समानता रखती हैं, परन्तु शास्त्रीय रूप से ऐसी कोई व्याख्या नहीं है, जैसी कृष्णदास कविराज ने दी है।

नायिका भेद

गोपी—जगन्नाथ पुरी की रथ यात्रा के वर्णन में चैतन्यदेव स्वरूप दामोदर से गोपियों के मान के बारे में प्रश्न करते हैं। इसी प्रसंग को कृष्णदास कविराज ने अपने चैतन्य-चरितामृत में दिया है। यहां पर मान के विभिन्न रूप और उसके अनुसार नायिका भेद दिया गया है। वे कहते हैं, "गोपी मान नदी की शत धार के समान है।" नायिकाओं के स्वभाव और प्रेम-वृत्ति के बहुत से भेद हैं। सब तो कहे नहीं जा सकते। यहां कुछ भेदों का दिग्दर्शन किया जा रहा है। इन भेदों से मान के भी कई प्रकार हो जाते हैं।[2]

मान के अनुसार गोपियों के तीन भेद हैं।[3]

१. धीरा—यह नायिका कांत को दूर देखकर प्रत्याख्यान करती है परंतु पास आने पर आसन प्रदान करती है। उसके हृदय में तो कोप रहता है, ऊपर से मधुर बचन कहती है। प्रिय के आलिंगन करने पर वह भी कर लेती है। सरल व्यवहार करती है और मान का भी पोषण करती है। परिहास वाक्यों से भी प्रत्याखान करती है।[4]

---

१. तैसेंई गोपी प्रथम काम, अभिराम रसी रस।
पुनि पाछे निःसीम प्रेम, जिहिं कृष्न भये बस॥
... ...
तैसेंई ब्रज की बाम, काम-रस उत्कट करि कैं।
सुद्ध प्रेम मय भईं, लईं गिरिधर उर धरि कैं॥
(नन्ददास, सिद्धांतपंचाध्यायी, पृ. १९३)

२. प्रभु कहे कह ब्रजे मानेर प्रकार।
स्वरूप कहे गोपीमान नदी शत धार॥
नायिकार स्वभाव प्रेमवृत्ति बहु भेद।
सेइ भेदे नाना प्रकार मानेर उद्‌भेद॥
सम्यक् गोपिकार मान ना जाय कथन।
एक दुइ भेदे करि दिग्दरशन॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ.२०४)

३. माने केह हय धीरा केहत अधीरा।
एहं तिन भेदे केह हय धीराधीरा॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०५)

४. धीरा कांत दूरे देखि करे प्रत्युत्थान।
निकट आसिते करे आसन प्रदान॥
हृदये कोप मुखे कहे मधुर वचन।
प्रिय आलिंगिते तारे करे आलिंगन॥

२. अधीरा—यह नायिका मान करने पर निष्ठुर वाक्यों द्वारा प्रिय की भर्त्सना करती है। कान पकड़ कर ताड़ना करती है और माला से बांध देती है।[१]

३. धीराधीरा—यह मानिनी नायिका वक्र वचनों द्वारा उपहास करती है। कभी स्तुति करती है, कभी निंदा करती है और कभी उदासीन हो जाती है।[२]

आगे चलकर कृष्णदास कविराज ने नायिकाओं के तीन और भेद दिए हैं। वे कहते हैं, कि मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा ये नायिकाओं के तीन भेद हैं।[३] मुग्धा मान के वैदग्ध्य विभेद नहीं जानती। वह तो मान के समय मुख ढांक कर केवल रुदन करती है। कांत के प्रिय वचन सुन कर प्रसन्न हो जाती है।[४] मध्या और प्रगल्भा के धीरादि भेद होते हैं।[५] इन सबके स्वभाव के अनुसार तीन भेद होते हैं। एक प्रखरा, दूसरी मृदु और तीसरी समा। ये अपने प्राखर्य, मार्दव, और साम्य-स्वभाव से कृष्ण को संतोष देती हैं।[६] कुछ गोपियाँ वामा हैं और कुछ दक्षिणा हैं।[७]

राधा—गोपियों के मध्य में श्रेष्ठ राधा ठकुरानी हैं। निर्मल उज्ज्वल रस और प्रेम रत्न की खान हैं। वे वयस से मध्यमा हैं, स्वभाव से समा और गाढ़ प्रेम भाव से निरंतर वामा हैं।[८]

सरल व्यवहारे करे मानेर पोषण।
किम्वा सोल्लुंठवाक्ये करे प्रिय निरसन ॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०५)

१. अधीरा निष्ठुर वाक्ये करये भर्त्सन।
कर्णोत्पले ताड़े करे मालाय बंधन ॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०५)

२. धीराधीरा वक्रवाक्ये करे उपहास।
कभु स्तुति, कभु निंदा कभु वा उदास ॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०५)

३. मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा तिन नायिका भेद।
(चै. च., मध्य लीला, परि. १४, पृ. २०५)

४. मुग्धा नाहि जाने मानेर वैदग्ध्य विभेद ॥
मुख आच्छादिया करे केवल रोदन।
कांत प्रियवाक्य शुनि हय परसन्न ॥ (चै. च., मध्य लीला, परि. १४, पृ. २०५)

५. मध्या प्रगल्भा धरे धीरादि विभेद। (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०५)

६. तार मध्ये सवार स्वभाव तिन भेद ॥
केह प्रखरा केह मृदु केह हय समा। स्व स्व भावे कृष्णेर बाड़ाय प्रेम सीमा ॥
प्राखर्य्य मार्द्दव साम्य स्वभाव निर्दोष। सेइ सेइ स्वभावे कृष्णे कराय संतोष ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०५)

७. वामा एक गोपीगण, दक्षिणा एक गण। (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, प. २०५)

८. गोपीगण मध्ये श्रेष्ठा राधा ठाकुरानी।
निर्म्मल उज्ज्वल रस प्रेमरत्न-खनि ॥
वयसे मध्यमा तिहों स्वभावेते समा।
गाढ़ प्रेमभाव तिहों निरंतर वामा ॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०५)

राधा के वामा स्वभाव के कारण उनके मन में निरंतर मान उठा करता है। उनकी इस वामता से कृष्ण के आनंद का सागर बढ़ता है। राधा का प्रेम अधिरूढ़ महाभाव है। वह वैसा ही विशुद्ध और निर्मल है जैसा दशवाण स्वर्ण। यदि वे अचानक कृष्ण का दर्शन पा जाती हैं तो वे नाना प्रकार के भाव विभूषणों से भूषित हो जाती हैं। हर्षादि आठ सात्विक व्यभिचारी और सहज प्रेम से उद्भूत किलकिंचित, कुट्टमित, विलास, ललित, विव्वोक, मोट्टायित, और मौग्ध्य चकित इत्यादि जो बीस भाव हैं उन सबसे उनके अंग भूषित हैं।[1]

राधा और गोपियों का इस प्रकार का नायिका भेद हिन्दी के भक्ति साहित्य में नहीं है। राधा-कृष्ण लीला में राधा और गोपियों के मान को दिखाने वाले पद इत्यादि तो हैं परंतु इस प्रकार की शास्त्रीय व्याख्या नहीं है।

भाव—भावों की व्याख्या जो कृष्णदास ने दी है वह राधा-प्रसंग से ही है। राधा के भावों का उदाहरण देकर उन भावों का विवरण उन्होंने दिया है। ये राधा के भाव हैं जिनकी भूषा से राधा कृष्ण का मन हरण करती हैं।[2] रूप गोस्वामी ने 'उज्ज्वल नील-मणि' में इन्हें अनुभाव के अन्तर्गत लिखा है।

१. **किलकिंचित**—राधा को देखकर कृष्ण यदि उन्हें स्पर्श करने की इच्छा करते हैं, और राह घाट पर रास्ता रोकते हैं, अथवा पुष्प उठाते हैं, अथवा सखी को आगे जाता देखकर राधा के गात पर हाथ रखते हैं, तब हर्षादि संचारी के मूल कारण से इन सब स्थानों पर 'किलकिंचित' भाव का उद्‌गम होता है।[3] (उ. नी. म., अनु. ३९)

---

१. वामा स्वभावे मान उठे निरंतर।
तार वाम्ये बाड़े कृष्णेर आनन्द सागर॥
... ...
अधिरूढ़ महाभाव राधिकार प्रेम।
विशुद्ध निर्मल जैछे दशवाण हेम॥
कृष्णेर दर्शन जदि पाय आचम्बिते॥
नानाभाव विभूषणे हय विभूषिते॥
अष्टसात्विक हर्षादि व्याभिचारी आर।
सहजप्रेम विंशति भाव अलंकार॥
किलकिंचित कुट्टमित विलास ललित।
विव्वोक मोट्टायित आर मौग्ध्य चकित॥
एत भाव-भूषाय भूषित श्री राधार अंग। (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०५)

२. किलकिंचितादि भावेर शुन विवरण।
जे भाव भूषाय राधा हरे कृष्णमन॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०६)

३. राधा देखि कृष्ण जदि छुते करे मन।
दानघाटि पथे जबे वर्ज्जेन गमन॥
जबे आसि माना करे पुष्प उठाइते।
सखी आगे चाहे जदि गाय हात दिते॥
एइ सब स्थाने किलकिंचित उद्‌गम। (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०६)

२. **विलास**—राधा चाहे घर बैठी रहें या वृन्दावन जाएँ, यदि अकस्मात् कृष्ण का दर्शन पा जाएँ तब उन्हें देखते ही उनके मन में नाना प्रकार के भावों का वैलक्षण उपस्थित हो जाता है। इन वैलक्षणों का नाम विलास है।[1] (उ. नी. म., अनु. २७)

३. **ललित**—लज्जा, हर्ष, अभिलाष, सम्भ्रम, वाम्य, भय ये सब भाव मिल कर राधा को चंचल करते हैं। उस समय राधा यदि कृष्ण के सामने उपस्थित रहें, अंग भंग करके भ्रूकुंचित करें और मुख, नेत्र इत्यादि के द्वारा नाना भाव प्रगट हों, उस कांत भाव का नाम ललितालंकार है।[2] (उ. नी. म., अनु. ५१)

४. **कुट्टमित**—ललित भूषित राधा को कृष्ण देखें और दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए उत्सुक हों और कृष्ण राधा से कुछ छेड़छाड़ करें तो मन में प्रसन्न होती हुई भी राधा उसका वर्जन करें और बाहर से वामता और क्रोध प्रदर्शित करें परंतु मन में सख्य भाव रक्खें। उनके इस भाव का नाम कुट्टमित है।[3] (उ. नी. म., अनु. ४४)

महाभाव और सात भाव—कृष्णदास ने अन्य भावों की व्याख्या नहीं दी है। इसी स्थल पर उन्होंने कहा है कि किलकिंचित भाव में सात अन्य भाव मिल जाते हैं तब वह महाभाव हो जाता है। ये सात भाव गर्व, अभिलाष, भय, शुष्करुदित, क्रोध, असूया और मंदस्मित हैं। इनकी विशेष व्याख्या नहीं दी गई है।

---

१. राधा वसि आछे किवा वृन्दावन जाय।
तांह आचम्बिते कृष्ण दरशन पाय॥
देखितेइ नाना भाव हय वैलक्षण।
से वैलक्षणेर नाम विलास-भूषण॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०६-२०७)

२. लज्जा हर्ष अभिलाष संभ्रम वाम्य भय।
एत भाव मिलि राधाय चंचल करय॥
कृष्ण आगे राधा जदि रहे दांडाइया।
तिन अंगभंगे रहे भ्रू नाचाइया॥
मुखे नेत्रे हय नाना भावेर उद्गार।
एइ कांताभावेर नाम ललितालंकार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०७)

३. ललित भूषित राधा देखे जदि कृष्ण।
दुंहु दुंहा मिलिवारे हयेन सतृष्ण॥
... ...
लोभे आसि कृष्ण करे कंचुकाकर्षण।
अंतरे उल्लास राधा करे निवारण॥
वाहिरे वामता क्रोध भितरे सख्य माने।
कुट्टमित नाम एइ भाव-विभूषणे॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०७)

अष्टसात्विक और हर्षादि व्यभिचारी—इन शब्दों का प्रयोग कृष्णदास ने दो स्थलों पर किया है[1] परंतु ये क्या हैं, यह कहीं नहीं कहा। न तो अष्टसात्विकों के नाम गिनाए हैं और न हर्षादि व्यभिचारी के ही नाम गिनाए हैं।

१०. रूप गोस्वामी की भक्ति भावना

कृष्णदास कविराज ने जो कुछ कहा है वह यद्यपि शास्त्रीय विवेचना और पद्धति का रूप तो लिए है परन्तु है प्रसंगानुसार ही। उनका ध्येय भक्ति की और भक्ति रस की व्याख्या या विवेचना करना नहीं है। उनके इन उल्लेखों की पृष्ठभूमि में चैतन्यदेव की वह भक्ति भावना है जिसको उन्होंने रूप गोस्वामी को संक्षेप में सुनाया था और जिसकी शास्त्रीय रूप से विशद व्याख्या, विवेचना और वर्गीकरण रूप गोस्वामी ने अपनी दो रचनाओं भक्ति-रसामृत-सिंधु और उज्ज्वल-नील-मणि में किया है। यहां पर संक्षेप में उन दोनों के वर्णित विषय को दे देना समीचीन होगा। उससे कृष्णदास द्वारा वर्णित यह भक्ति भावना अधिक स्पष्ट हो जायगी।

भक्ति—रूप गोस्वामी ने भक्ति का सामान्य विवरण देते हुए भक्ति के प्रकारों का वर्णन किया है।[2] इस विभाजन को नीचे दी गई तालिका से दिखाया जा सकता है :—

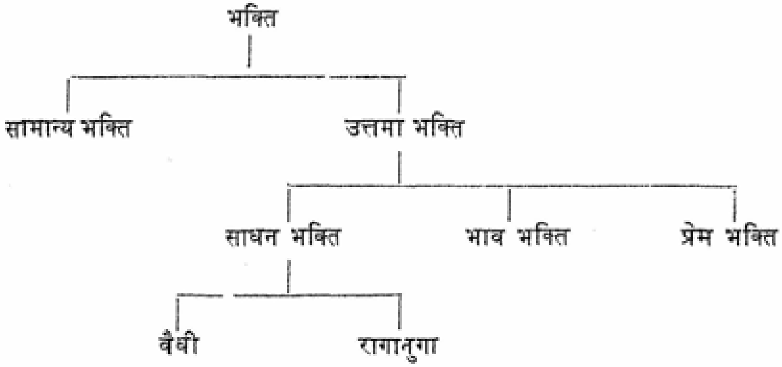

भक्ति-मात्र सामान्य भक्ति है। उत्तमा भक्ति सामान्य भक्ति से भिन्न है। उत्तमा भक्ति इसकी तुलना में श्रेष्ठ है जैसा कि नाम से स्पष्ट है। उत्तमा भक्ति उत्कृष्टतम भक्ति है। यह भक्ति कृष्ण की उनके अनुकूल उपासना है (आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन)। उत्तमा भक्ति में अन्य किसी भी वस्तु की वांच्छा नहीं होती। यह भोग वासना एवं मोक्ष-

---

१. (क) अष्ट सात्विक हर्षादि व्याभिचारी आर।
(चैं. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०६)
(ख) सात्विक व्याभिचारी भावेर मिलने।
(चैं. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

२. आद्या सामान्य भक्त्याद्या द्वितीया साधनांकिता।
भावाश्रिता तृतीयात्र तुर्य्या प्रेमनिरूपिका॥
(भ. र. सि., पृ. ११७)

वासना दोनों से ही स्वतंत्र है। उत्तमा भक्ति ज्ञान तथा कर्म से भी मुक्त है।[३] कर्म, ज्ञान, वैराग्य, यम, तथा शुचि इत्यादि भक्ति के अंग नहीं हैं, क्योंकि ये सब स्वतंत्र रूप से भक्ति उत्पन्न करने में अशक्त हैं। भोग तथा मोक्ष भक्ति का ध्येय नहीं है। उत्तमा भक्ति के छः गुण हैं।[४]

प्रथम गुण—क्लेश दूर करने की शक्ति (क्लेशघ्नत्त्व)। भक्ति के द्वारा समस्त क्लेश दूर किए जा सकते हैं जो पापजनित हैं अथवा पाप-बीज जनित हैं, अथवा अविद्याजनित हैं।

द्वितीय गुण—शुभ एवं कल्याण करने की शक्ति (शुभदत्त्व)। इसके द्वारा सद्गुणों की एवं सुख की उत्पत्ति होती है।

तृतीय गुण—मोक्ष के प्रति उदासीनता उत्पन्न करने की शक्ति (मोक्ष-लघुता-कारित्त्व)।

चौथा गुण—प्राप्ति में कठिनाई। अर्थात् ध्येय की प्राप्ति में दुर्लभता (सुदुर्लभत्त्व)।

पांचवां गुण—सान्द्रानन्द की विशेषात्मता के प्रति तन्मयता। यह सान्द्रानन्द ब्रह्म की प्राप्ति के सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं उच्च है।

छठा गुण—श्रीकृष्ण को आकर्षित करके वश में रखने की शक्ति। (श्रीकृष्ण कर्षणत्त्व और कृष्ण-वशीकरण अथवा श्रीकृष्णा कार्षिणी शक्ति)।

भक्ति करने का अधिकार वैसे तो सबको ही प्राप्त है, परन्तु वास्तविक अधिकारी वह है जो कृष्ण पर स्वभाव से ही विश्वास एवं श्रद्धा रखता है (जातश्रद्ध है), जो न तो संसार में अति आसक्त है, और न उससे अत्यंत उदासीन है (नातिसक्तो न निर्विण्णः)।

उत्तमा भक्ति के प्रकार

उत्तमा भक्ति तीन प्रकार की होती है।[१] साधन भक्ति, भाव भक्ति तथा प्रेम भक्ति।

साधन भक्ति—इसमें वाह्य साधनों द्वारा भक्त इष्टदेव की ओर उन्मुख होता है।

---

३. अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥ (भ. र. सि., पू. १।९)

कृष्णदास ने शुद्ध भक्ति का परिचय देते हुए जो कहा है, उसमें ये सब शब्द आए हैं। भाव भी यही हैं। कदाचित् शुद्ध भक्ति से उनका तात्पर्य इस उत्तमा भक्ति से है। वे पंक्तियां ये हैं :—

अन्य वाञ्छा अन्य पूजा छाड़ि ज्ञान कर्म। आनुकूल्ये सर्व्वेन्द्रिय कृष्णानुशीलन॥
मुक्ति मुक्ति आदि वाञ्छा जदि मने हय। साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५१)

४. क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्री कृष्णाकार्षिणी च सा। (भ. र. सि., पू. १।१२)

१. सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता।
(भ. र. स., पू. २।१)

साधन भक्ति-वृत्ति-साध्य है,[२] भाव-साध्य नहीं, यद्यपि यह भावभक्ति की ओर ले जाने की पहली सीढ़ी है। साधन-भक्ति दो प्रकार की होती है, एक वैधी और दूसरी रागानुगा।

१. वैधी भक्ति—वैधी साधन भक्ति शास्त्रोक्त विधि के अनुसार की जाती है अतः इसका नाम वैधी है। शास्त्र से यहां अभिप्राय मुख्यतः श्रीमद्भागवत् से है। वैधी भक्ति की उद्भावना वैष्णव शास्त्रों में वर्णित उपासना विधियों से होती है। इसमें भक्त राग की स्थिति तक नहीं पहुँचता।[३] वैधी भक्ति के चौंसठ अंग हैं, जिनमें से कुछ उल्लेखनीय निम्न हैं :—

१. गुरु पादाश्रय
२. गुरु से शिक्षा-दीक्षा
३. गुरु सेवा
४. साधु-अनुवर्तन
५. सद्धर्म-पृच्छा
६. कृष्ण हेतु से भोगादि त्याग
७. बहु-ग्रंथ-कलाभ्यास-व्याख्यावाद, इन सबका विवर्जन
८. वैष्णव चिह्न धारण
९. हरि नामाक्षर धारण
१०. दंडवत् नति
११. अर्चना
१२. परिक्रमा
१३. जप
१४. गीत
१५. संकीर्तन
१६. नैवेद्य ग्रहण
१७. पादोदक ग्रहण
१८. एकादशी आदि व्रत, जन्माष्टमी आदि उत्सवों में भाग लेना।

श्रीकृष्णदास कविराज ने अपने चैतन्यचरितामृत में पांच को विशेष महत्त्व दिया हैं। साधु संग, नाम कीर्तन, भागवत श्रवण, मथुरा वास और श्री मूर्त्ति का श्रद्धा पूर्वक सेवन।

२. रागानुगा भक्ति—रागानुगा भक्ति ब्रजवासियों की भक्ति की अनुग है। अर्थात् रागानुगा भक्ति उन ब्रजवासियों की रागात्मिका भक्ति का अनुकरण है, जो कृष्ण के समकक्ष थे। इसमें ब्रज भाव की अनुभूति करने का लोभ मुख्य वस्तु है। यद्यपि इस भाव की अनुभूति करने की इच्छा के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है, यह इच्छा स्वा-

---

२. कृति साध्या भवेन् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥ (भ. र. सि, पू. २।२)

३. यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते। (भ. र. सि., पू. २।५)

भाविक रूप से नहीं होती। ध्यान और स्मरण द्वारा कृष्ण और उनकी लीला की अनुभूति की जाती है। रागानुगा भक्ति कामानुगा और संबंधानुगा दो प्रकार की होती है।[1]

भाव भक्ति—भाव भक्ति 'साधन परिपाकेन' है। अर्थात् साधन भक्ति से विकसित होती है। परन्तु यह 'कृष्णकृपया तद् भक्त-कृपया वा'' भी होती है। अर्थात् भाव-भक्ति की प्राप्ति कृष्ण की कृपा से या उनके भक्तों की कृपा से भी होती है। भाव भक्ति या तो 'साधनाभिनिवेशज' होती है या 'कृष्ण-प्रसादज' होती है या 'कृष्ण-भक्त प्रसादज' होती है।[1] यह भाव भक्ति आन्तरिक भाव के फलस्वरूप होती है। यह 'रस' की सीमा तक नहीं पहुंचती। यह 'शुद्ध सत्व विशेष' है। यह प्रेममयी तो नहीं है परन्तु 'प्रेम सूर्यांशु-साम्य-भाक्' तो है ही अर्थात् प्रेम भक्ति उत्पन्न करती है। यह 'चित्त मासृण्य कृत' है और रुचि से उत्पन्न होती है।

प्रेम भक्ति—प्रेम भक्ति वास्तव में 'भाव-भक्ति-परिपाक' है। भाव जब परिपक्व हो जाता है, 'सान्द्रात्मा' हो जाता है, तब भाव प्रेम में बदल जाता है और चित्त सम (सम्यङमसृण स्वांत) हो जाता है और चित्त में 'अनन्य ममता' उत्पन्न हो जाती है।[2] यह प्रेम भक्ति या तो वैधी भाव या रागानुगा भाव दोनों से ही उत्पन्न हो जाती है परन्तु यह इष्टदेव के 'प्रसाद' से भी उत्पन्न हो जाती है। इष्टदेव का यह 'प्रसाद' अथवा कृपा 'केवल' हो सकता है अथवा 'माहात्म्य ज्ञान' से हो सकता है। प्रेम भक्ति का उदय इस प्रकार होता है—सर्वप्रथम श्रद्धा, इससे साधु-संग, इससे भजन-क्रिया, इससे अनर्थ-निवृत्ति, इससे निष्ठा, इससे रुचि, इससे आसक्ति, इससे भाव और इससे प्रेम का उदय होता है।

भक्तिरस

भक्ति रस का स्थायी भाव कृष्ण रति है। यह कृष्ण रति विभाव इत्यादि से परि-पुष्ट हो कर रस की श्रेणी पर पहुंच जाती है।[3]

१. **विभाव**—विभावों के द्वारा ही कृष्णरति-स्थायी भाव 'रत्यास्वाद' का हेतु होता है। ये विभाव दो प्रकार के हैं। एक 'आलंबन' और दूसरा 'उद्दीपन'।[4]

आलंबन—कृष्ण रति के आलंबन विभाव 'विषय' रूप से कृष्ण और आधार रूप से

---

१. विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु। रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते।।
रागानुगाविवेकार्थमादौ रागात्मिकोच्यते। इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता। सा कामरूपा संबंधरूपा चेति भवेद् द्विधा।।
(भ- र. सि., पू. २।१३१-१३२)

१. साधनाभिनिवेशेन कृष्णतद्भक्तयोस्तथा।
प्रसादेनातिधन्यानां भावो द्वेधाभिजायते। (भ. र. सि., पू. ३।५)

२. सम्यङ् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयांकितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते।। (भ. र. सि., पू. ४।१)

३. एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्ति रसो भवेत्। (भ. र. सि., द. १।२)

४. तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादनहेतवः।
ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्दीपनाः परे।। (भ. र. सि., द. १।५-६)

कृष्ण-भक्त हैं। कृष्ण चाहे 'स्वयं रूप' में हों अथवा अन्य रूप में, जैसे गोप बालक, आलंबन हैं। कृष्ण भक्त चाहे साधक हो, चाहे सिद्ध दोनों ही प्रकार से आलंबन हैं। कृष्ण का स्वयं रूप आवृत्त और प्राकृत दोनों प्रकार का हो सकता है।

उद्दीपन—कृष्ण रूप के उद्दीपन विभाव उनके गुण, चेष्टा, प्रसाधन और कुछ अन्य वस्तुयें हैं। कृष्ण के गुण कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार के हैं। कृष्ण का प्रसाधन तीन प्रकार का है। वसन, आकल्प और मंडन। वसन में वे कंचुक, उष्णीय इत्यादि धारण करते हैं। आकल्प प्रसाधन में केश बंध, आलेप, माला, ताम्बूल इत्यादि हैं। मंडन प्रसाधन में वे किरीट, कुंडल, हार, वलय, नूपुर इत्यादि धारण करते हैं। अन्य वस्तुओं में स्मित अंग, सौरभ, मुरली इत्यादि है।

२. **अनुभाव**—कृष्ण रति स्थायी भाव के अनुभाव नृत्य, विलुंठित, गीत, क्रोशन, तनुमोचन, हुंकार, जृम्भा, श्वास-भूमन, लोकानुपेक्षित लालास्राव, अट्टहास, घूर्णा और हिक्का हैं।[१]

३. **सात्विक भाव**—ये सात्विक वास्तव में भाव नहीं हैं। ये तो भावों के बाह्य लक्षण मात्र हैं। प्राचीन काव्य शास्त्र में दिए गए आठ सात्विक भाव रूप गोस्वामी ने भी दिए हैं। वे स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वर भंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु,और प्रलय हैं। रूप गोस्वामी इन्हें स्निग्ध, दिग्ध और रुक्ष तीन विभागों में बांटते हैं।[२]

४. **व्यभिचारी भाव**—इन्हें संचारी भाव भी कहा है। ये संख्या में तैंतीस हैं। इनके नाम ये हैं : निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिंता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध। ये संचारी भाव कभी तो कृष्ण रस से स्वतंत्र होते हैं और कभी परतंत्र।[३]

५. **स्थायी भाव**—स्थायी भाव के ९ प्रकार हैं : रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, और निर्वेद। वैष्णव भक्ति रस का प्रमुख स्थायी भाव श्री कृष्ण विषयक रति है।

रूप गोस्वामी ने भक्ति रसों को मुख्य और गौण दो भागों में बांटा है। शांत, प्रीत, प्रेयस्, वात्सल्य और मधुर, ये पांच मुख्य भक्ति रस हैं। इन पांचों का जो परिचय उन्होंने दिया है उसका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा रहा है।[४]

(१) **शांत**—शांत भक्ति रस दो प्रकार का है, परोक्ष और साक्षात्कार। इस भक्ति का स्थायी भाव 'शुद्ध कृष्ण विषया रति' है जो सम और सांद्र दो प्रकार की है। इसके आलंबन नारायण, और आत्माराम भक्त और तापस हैं। उपनिषद् पाठ और साधु संग

---

१. भ. र. सि., द. २।-१२
२. भ. र. सि., द. ३।१-२
३. भ. र. सि., द. ४।३
४. भ. र. सि., द. ५।२२
५. भ. र. सि., द. ५

उद्दीपन हैं ।

(२) **प्रीत**–प्रीत भक्ति रस दो प्रकार का है । संभ्रम प्रीत जिसमें दासत्व की भावना है और गौरव प्रीत जिसमें लालनीयत्व है ।

(क) संभ्रम प्रीत का स्थायी भाव संभ्रम या आदर से उद्भूत प्रीत है । इसके आलंबन विभाव कृष्ण और उनके दास हैं । ये दास अधिकृत, आश्रित और पार्षद होते हैं ।

(ख) गौरव प्रीत का स्थायी भाव कृष्ण से हीन होने की भावना से उद्भूत प्रीत है । इसके आलंबन विभाव कृष्ण और इनके लालनीय अन्य व्यक्ति जैसे प्रद्युम्न इत्यादि हैं ।

(३) **प्रेयस्**––इसका स्थायी भाव सख्य रति है । इसके आलंबन कृष्ण और उनके वयस अनुकूल सखागण हैं । प्रेयस् विकसित हो कर प्रणय, प्रेम, स्नेह, और राग हो जा सकता है ।

(४) **वात्सल्य**––इसका स्थायी भाव वत्सल रति या अनुकंपा की इच्छा है । इसके आलंबन-विभाव कृष्ण और उनके गुरुजन हैं ।

(५) **मधुर रस**––इसका स्थायी भाव प्रियता या मधुरा रति है । इसके आलंबन, कृष्ण और उनकी प्रिय गोपियां हैं ।

यह मधुर रस कई नामों से अभिहित किया गया है । यह शृंगार, भक्ति रस और उज्ज्वल रस भी कहलाता है । इस मधुर रस का स्थायी भाव प्रियता अथवा मधुरा रति जो है वह एकपक्षी नहीं है । यह उभय-आनंदप्रद है, 'मिथः संभोग' हैं ।[१] इस मधुर रस के आलंबन विभाव कृष्ण और कृष्ण-वल्लभा गोपियां हैं ।

मधुर रस के आलंबन **कृष्ण** 'नायक चूड़ामणि' हैं । इन नायक-कृष्ण के प्रेमी रूप में २५ गुण हैं । कृष्ण के प्रेमी के रूप में दो स्वरूप हैं । एक तो 'पतिरूप' और दूसरा 'उपपति' रूप । उपपति रूप में ही कृष्ण के प्रेम का सर्वश्रेष्ठ रूप दृष्टिगोचर होता है ।[२] उपपति भाव का प्रेम जो वर्जित है वह प्राकृत नायक के लिए है, कृष्ण के लिए नहीं । वे तो परकीया भाव की रति के लिए ही आए थे । नायक कृष्ण ब्रज में 'पूर्णतम' हैं, मथुरा में 'पूर्णतर' हैं और द्वारिका में 'पूर्ण' हैं ।

कृष्ण-वल्लभा गोपियां नायिकायें हैं । कृष्ण के पति और उपपति रूप से ये नायिकायें भी 'स्वकीया' और 'परकीया' हैं । परकीया नायिकायें या तो 'कन्यका' हैं या 'प्रौढ़ा' (विवाहिता) हैं । विवाहिता स्त्री से प्रेम करना यद्यपि लौकिक समाज में वर्जित है परन्तु वैष्णव-रस शास्त्र में यह सर्वश्रेष्ठ है । स्वकीया और परकीया दोनों ही मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा इन तीन विभागों में बांटी गई हैं । मान करने की शक्ति के अनुसार मध्या और प्रगल्भा के **धीरा, अधीरा** और **धीराधीरा** तीन रूप हैं । नायक के प्रेम करने के अनुसार ये उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा तीन प्रकार की हैं । राधा वृन्दावनेश्वरी हैं और नायिका-शिरोमणि हैं ।

---

१. मिथो हरेर्मृगाक्ष्याश्च संभोगस्यादि-कारणम् ।
मधुरापर-पर्याया प्रियताख्योदिता रतिः ॥ (उ. नी.म., पृ. ५)

२. अत्रैव परमोत्कर्षः शृंगारस्य प्रतिष्ठितः । (उ. नी. म., ना. १७, पृ. १४)

पंचम अध्याय

पदावली

विनय, वंदनायें और लीलागान

वर्ण्य विषय——पदावली साहित्य अपने प्राप्त-रूप में सर्वथा धार्मिक साहित्य ही है। कवियों ने छोटे बड़े पदों में जो विषय प्रस्तुत किया है, वह राम और कृष्ण का लीलागुण गान है। इष्टदेव राम से संबंधित पद अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। कृष्ण विषयक पद संख्या में हजारों हैं। 'पदकल्पतरु' में, जिसमें बंगाली भक्तों के कई हजार पद संगृहीत हैं, राम संबंधी केवल एक पद है जिसमें उनकी वंदना की गई है।[1] हिन्दी वैष्णव भक्तों में तुलसीदास की रचनाओं में राम संबंधी पद अधिक हैं, कुछ कृष्ण संबंधी भी हैं। परन्तु हिन्दी वैष्णव भक्त भी कृष्ण की ओर अधिक उन्मुख हुए थे ऐसा ज्ञात होता है, क्योंकि कृष्ण संबंधी पद यहां भी अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं।

वर्ण्य-विषय में भिन्नता——समस्त पदावली साहित्य की प्रवृत्तियों में मूलतः भेद न होते हुए भी भेद है। कहने का तात्पर्य यह है कि पदावली साहित्य में कवियों का उद्देश्य तो अपने इष्टदेव का लीलागान करना ही है। कौन सी लीला वे गा रहे हैं, यही भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इस भिन्नता का प्रमुख कारण दोनों भक्तों की भक्ति-भावना का अंतर है। हिन्दी के वैष्णव भक्त कवि इष्टदेव के समस्त रूपों के उपासक ज्ञात होते हैं। उनके इष्टदेव मधुर-रस-संचारक कृष्ण हैं, तो असुर-निकंदन कृष्ण भी हैं। उन्हें कृष्ण का ऐश्वर्य रूप, बाल रूप और मधुर रूप सब प्रिय है और वे उनके इन समस्त रूपों के अनुरूप उनका लीलागुण गान करते हैं। राम, जो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, पृथ्वी का भार हरने वाले हैं, तुलसी के इष्टदेव हैं, वे उनका गुणगान अपने पदों में बड़ी तन्मयता से करते हैं। उन्होंने राम के मधुर रूप को देखा अवश्य है परन्तु उसे उनके शील से ऐसा संयुक्त कर दिया है कि उसमें शृंगारिकता नाम मात्र को भी नहीं रह गई है। वैसे भी राम का चरित्र ऐसा ही है कि उसमें मधुर भावनाओं को स्थान नहीं है। कृष्ण के उपासक कवियों को कदाचित् राम-लीला-गान इसीलिए नहीं रुचा। राम के सम्बन्ध में भी यदि वे कुछ कह गए तो केवल इसीलिए कि वैष्णव-भक्ति में अपने इष्टदेव के अतिरिक्त अन्य देवों पर भी श्रद्धा-भक्ति रखना आवश्यक है। इसी भावना से प्रेरित होकर कृष्ण-भक्तों ने भी राम की वंदना की है।

गौड़ीय वैष्णव समाज की भक्ति भावना में भगवान के ऐश्वर्य-रूप से प्रभावित भक्ति को हीनतर माना गया है। वे भगवान के उस माधुर्य रस की उपासना को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं जो वृंदावन में प्रगट होता है।[2] अतः पदावली साहित्य में कृष्ण का जो लीला-गुण-गान है उसमें कुछ ही पद ऐसे हैं जो कृष्ण की वंदना करते हैं। वह वंदना भी हिन्दी पदों में प्राप्त वंदना से कुछ भिन्न है, जैसा आगे दिखाया गया है। गौड़ीय वैष्णव पदावली का सबसे बड़ा संग्रह ग्रंथ 'पदकल्पतरु' जिन पदों से परिपूर्ण है वे सब राधा-कृष्ण-लीला के ही पद हैं। कुछ ही पद ऐसे हैं, जो वंदनायें हैं। राधा-कृष्ण का रूप वर्णन भी जो है वह भी मधुर भाव

---

१. प. क. त., पद २४०७

२. देखो, पीछे दिए "आध्यात्मिक विचार"

का ही है। यहां पर पदकल्पतरु के चारों खंडों की वह सूची दी जा रही है जिनके अंतर्गत पद संगृहीत हैं। उससे यह भिन्नता अधिक स्पष्ट हो जायगी।

पदकल्पतरु — प्रथम खंड

पहली शाखा—इसमें ११ पल्लव हैं।

पल्लव	विषय
प्रथम	मंगलाचरण
द्वितीय	श्रीराधार पूर्व्वराग
तृतीय	श्री कृष्णेर पूर्व्वराग
चतुर्थ	श्री राधार पूर्व्वराग
	श्री कृष्णेर पूर्व्वराग
पंचम	वयः संधि
षष्ठ	श्री राधार पूर्व्वराग
सप्तम	" " "
अष्टम	श्री कृष्णेर पूर्व्वराग
नवम	संक्षिप्त संभोग रसोद्‌गार
दशम	प्रकारांतर रसोद्‌गार
एकादश	" "

दूसरी शाखा—इसमें २४ पल्लव हैं।

पल्लव	विषय
प्रथम, द्वितीय	रूपानुराग
तृतीय	रूपाभिसार
चतुर्थ	वसंत कालोचित वासकसज्जादि वर्णन
पंचम	हिमकालोचित अभिसारिकादि वर्णन
षष्ठ	वर्षाकालोचित अभिसारिकादि वर्णन
सप्तम	सर्वकालोचित अभिसारिकादि वर्णन
अष्टम, नवम, दशम	खंडिता-धीरा-मध्या
एकादश	खंडिता-अधीरा-मध्या
द्वादश	खंडिता-धीराधीरा-मध्या
त्रयोदश, चतुर्दश, पंचदश	कलहांतरिता
षोडश, सप्तदश	दुर्जय-मान
अष्टादश	प्रकारांतर मान
ऊनविंश, विंश	विविध मान
एकविंश	प्रकारांतर मान

पल्लव	विषय
द्वाविंश	कारणाभास मान
त्रयोविंश	अकारण मान
चतुर्विंश	संकीर्ण संभोग रसोद्गार

पदकल्पतरु--द्वितीय खंड

इस खंड में केवल तृतीय शाखा है जिसमें ३१ पल्लव हैं।

पल्लव	विषय	पल्लव	विषय
प्रथम, द्वितीय, तृतीय	स्वयं दौत्य	अष्टादश	श्रीकृष्ण जन्मलीला
चतुर्थ	स्वयं दौत्य संभोग		
पंचम	रसालस	ऊनविंश	कौमारोचित वात्सल्य
षष्ठ	रसोद्गार		
सप्तम	अभिसारानुराग	विंश	प्रकारांतर वात्सल्यरस
अष्टम	अनुराग औ कुंडे मिलन	एकविंश	सख्य रस, गोष्ठलीला
		द्वाविंश	प्रकारांतर सख्य वात्सल्य
नवम	प्रेम वैचित्य		
दशम	रूपानुराग	त्रयोविंश	गोवर्धन लीला
एकादश	आक्षेपानुराग	चतुर्विंश	शरत्कालीय महारास
द्वादश	अभिसारानुराग	पंचविंश	गोष्ठ विहार औ दान लीला
त्रयोदश	अभिसारोत्कंठा		
चतुर्दश	रूपोल्लास	षड् विंश	नौका विलास
पंचदश	सर्व्वकालोचित नित्यरास	सप्तविंश	वसंत लीला
		अष्टविंश	स्नान यात्रा
षोडश	रास रसोद्गार	ऊनविंश	रथ यात्रा
सप्तदश	श्री अद्वैतादिर जन्म लीला	त्रिंश	झूलन यात्रा
		एकत्रिंश	अभिषेक लीला

पदकल्पतरु--तृतीय खंड

इसमें चतुर्थ शाखा का प्रथम भाग है जिसमें २६ पल्लव हैं।

पल्लव	विषय	पल्लव	विषय
प्रथम	अदूर प्रवास	पंचम	अर्धबाह्य दशाय प्रलाप
द्वितीय	सुदूर प्रवास (भावी विरह)	षष्ठ	दिव्योन्माद
तृतीय	सुदूर प्रवास (भवन् विरह)		
		सप्तम	स्वप्नरसोद्गार
चतुर्थ	सुदूर प्रवास (भूत विरह)	अष्टम	वसंतादि समयोचित विरह

पल्लव	विषय	पल्लव	विषय
नवम	द्वादश मासिक विरह	षोडश से एक-विंश तक	गौर लीला
दशम	नानाविध विरह	द्वाविंश	नित्यानंद गुण-वर्णन
एकादश	विरहेर दशदशा	त्रयोविंश	नित्यानन्द-गौर-रूप-वर्णन
द्वादश	भावोल्लास	चतुर्विंश	अद्वैत-चन्द्रमहिमा वर्णन
त्रयोदश	समृद्धिमान् संभोगेर	पंचविंश	श्री गौर-चन्द्रेर भक्त-वृंदेर चरित्र वर्णन
	रसोद्गार	षड्विंश	विद्यापति चंडीदास ठाकुरेर मिलन-वर्णन
चतुर्दश	प्रकारांतर समृद्धिमान संभोग		
पंचदश	समृद्धिमान् संभोगेर रसोद्गार		

पदकल्पतरु—चतुर्थ खंड

इसमें तृतीय खंड की द्वितीय शाखा है और २७ से लेकर ३६ तक पल्लव हैं।

पल्लव	विषय	पल्लव	विषय
सप्तविंश	दशावतार वर्णन	द्वात्रिंश	प्रकारांतर अष्ट-कालीय लीला
अष्टविंश	श्रीकृष्णेर रूप वर्णन	त्रयस्त्रिंश	,, ,, ,,
ऊनत्रिंश	श्री राधार रूप वर्णन	चतुस्त्रिंश	नाम-संकीर्त्तन
		पंचत्रिंश	निज इष्टदेव ओ-भक्त गणेर वियोगे विलाप
त्रिंश	अष्टकालीय नित्य-लीला	षट्त्रिंश	प्रार्थना
एकत्रिंश	प्रकारांतर अष्टकालीय नित्य-लीला		

पदकल्पतरु वैष्णवदास द्वारा संगृहीत एक बृहद् पद-संग्रह है जिसमें डेढ़ सौ से अधिक पदकर्ताओं के पद संगृहीत हैं। पीछे दी अनुक्रमणिका से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि पदों की अधिकांश संख्या राधाकृष्ण विषयक शृंगार रस से संबंधित है। श्रीमती अपर्णा देवी ने बंगीय साहित्य सम्मेलन की पदावली साहित्य शाखा के सभानेत्रीपद से जो कहा है, वह ठीक ही है। वे कहती हैं, "वैष्णव आचार्यों ने रस (भक्ति) के पांच मुख्य विभाग किए हैं, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर। पदावली में शांत एवं दास्य रस के पदों की संख्या नितांत कम है। सख्य एवं वात्सल्य रस के पदों की संख्या भी अधिक नहीं है। मधुर अथवा

उज्ज्वल रस के पदों की संख्या ही अधिक है।"[1]

गौड़ीय वैष्णव पदावली रूप गोस्वामी की दी हुई भक्ति भावना और उनके भक्ति-रस शास्त्र के अनुसार ही रची गई है। समस्त पदावली साधारण रूप से चार विभागों में बांटी जा सकती है।

१. (क) वे पद जो कृष्ण और उनके अवतारों (चैतन्य) की प्रार्थनायें और वंदनायें हैं।

(ख) वे पद जो अन्य संतों एवं गुरुओं की वंदनायें हैं।

२. कृष्ण के गोचारण अथवा बाल लीला संबंधी पद और चैतन्यदेव की बाल्य-लीला संबंधी पद।

३. कृष्ण और चैतन्यदेव के जन्मोत्सव और बचपन संबंधी पद।

४. राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला संबंधी पद और चैतन्य-गदाधर-लीला संबंधी पद।

अंतिम विभाजन में जो पद आते हैं वे श्रृंगार रस के पद हैं। वैष्णव आचार्यों के मतानुसार श्रृंगार के जो विभाजन किए गए हैं, उन्हीं के अनुरूप राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला संबंधी पदों का पुनर्विभाजन किया जा सकता है। श्रृंगार के दो विभाग हैं:—

१. संभोग

२. विप्रलंभ

१. संभोग श्रृंगार के **संक्षिप्त, संकीर्ण, संपन्न** और **समृद्धिमान** ये चार प्रकार हैं।

२. विप्रलंभ श्रृंगार के पूर्व राग, मान, प्रेम, वैचित्य, और प्रवास ये चार प्रकार हैं। इन सबका संक्षिप्त विवरण यों है।

पूर्व राग—यह प्रेम का प्रारंभ है। यह दर्शन या श्रवण से उत्पन्न हो जाता है। दर्शन साक्षात् दर्शन, चित्रपट दर्शन अथवा स्वप्न दर्शन हो सकता है। श्रवण (रूप या गुण-वर्णन-श्रवण) सखी से, दूती से या भट्ट से किया जा सकता है।

मान—यह सहेतु और निर्हेतु दो प्रकार का होता है। निर्हेतु मान **अकारण** या **कारणाभास** द्वारा हो सकता है।

प्रेम वैचित्य—यह **अनुराग** है। इसके तीन स्वरूप हैं—

(क) **रूपानुराग**—रूप की ओर आकर्षण और अनुराग होना।

(ख) **आक्षेपानुराग**—नायिका का प्रेमाधिक्य में कृष्ण को, वंशी को, सखाओं को, सखियों को, एवं अपने को दोष देना।

(ग) **रसोद्‌गार**—पिछले आनंद का स्मरण।

प्रवास—अदूर और दूर दो प्रकार का है। **अदूर प्रवास** कालीय दमन, गोचारण,

---

१. वैष्णव-आचार्य-गण रस के पंच मुख्य भागे विभक्त करियाछेन, यथा शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर। पदावलीर मध्ये शांत एवं दास्य रसेर पदेर संख्या नितांतइ कम। सख्य एवं वात्सल्य रसेर पदेर संख्या ओ अधिक नाइ। मधुर वा उज्ज्वल रसेर पदेर संख्याइ प्रचुर।

(वंगीय साहित्य सम्मेलन का इक्कीसवां अधिवेशन, सन् १९३८.)

नंदमोक्ष, कार्यानुरोध और रास के समय अन्तर्ध्यान होने के समय होता है। **दूर प्रवास** भावी (होने वाला), भवन् (वर्तमान) और भूत तीन प्रकार का है।

राधाकृष्ण प्रेम लीला संबंधी पद ऊपर दिए शृंगार रस के विभाजनों के अनुरूप ही हैं। प्रत्येक रस और शृंगार रस के समस्त विभाजनों के अनुरूप राधा-कृष्ण सम्बन्धी पद तो हैं ही, चैतन्यदेव पर भी उसी प्रकार के पद हैं। राधा-कृष्ण लीला संबंधी पदों का गान करने से पहले चैतन्यदेव का वैसा ही पद पहले गाया जाता है। यह प्रारंभिक गान "गौर-चन्द्रिका" कहलाता है। पदों के विभाजित संग्रहों का प्रारंभिक पद "तदुचित गौरचन्द्रः" करके दिए हैं।

हिन्दी का पदावली साहित्य न तो इस प्रकार रचा गया है और न इस प्रकार के विभाजनों में संगृहीत हैं। भक्तों ने अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के लिए वंदनायें की हैं, मन को सुख देने के लिए लीला गाई है और मन को प्रबोध देने के लिए वैराग्य सूचक और संसार की निस्सारता सूचक पद बनाए हैं। शृंगार रस के पदों की संख्या भी कम नहीं है परन्तु उनकी प्रधानता दृष्टिगोचर नहीं होती। वैसे हिन्दी की पदावली का भी गौड़ीय पदावली के विभाजनों के समान ही विभाजन किया जा सकता है। इसमें भी राम-कृष्ण प्रार्थना संबंधी, गुरु संबंधी, कृष्ण बाल-लीला संबंधी, कृष्ण-वल्लभ-जन्म संबंधी और कृष्ण-राधा-लीला संबंधी पद पाए जाते हैं। यहां पर दोनों पदावली साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

विनय—कृष्ण और राम संबंधी

नाम-स्मरण—इष्टदेव का नाम-स्मरण करके वंदना करना विनय भक्ति की पहली सीढ़ी है। जीव संसार में राम अथवा कृष्ण का नाम स्मरण करने ही आता है परन्तु वह माया के झगड़े में पड़ कर सब भूल जाता है। परन्तु नाम-स्मरण ही एक ऐसी वस्तु है जो जीव को भागवतोन्मुख करती है। भक्त कहता है कि—हरि का स्मरण करो और हरि के चरण कमलों को अपने हृदय में प्रतिष्ठित करो।[1] सब लोग मिल कर हरि का स्मरण करो। हरि स्मरण से ही सब सुख होते हैं।[2] जो फल गोपाल के स्मरण से होता है वह जप, तप और तीर्थ करने से भी नहीं होता। हरि का स्मरण करो, फिर संसार में नहीं आना पड़ेगा।[3] रे मन ! हरि-हरि, स्मरण कर। हरि नाम के समान और कुछ भी नहीं है, इस पर विश्वास कर।[4] प्रातः समय उठकर हरि का नाम लो, सुख और आनन्द से दिन बीतेगा। चक्रपाणि कृष्ण करुणा के सागर हैं, सब विघ्नों का नाश करते हैं। कृष्ण नाम का स्मरण ऐसा है कि कलि के पापों का हरण करके तार देता है। ओ मूढ़ मन ! सदा राम जप, बराबर राम जप। इसे सब सुख-सौभाग्य की खान समझ। इसी के बल से श्वपच और भील सब हरिलोक को गए। तू भी राम जप।[6] राम नाम में रमो, राम राम रटो, ओ जीहा राम राम

---

१. हरि हरि, हरि हरि सुमिरन करौ।
हरि चरनारबिंद उर धरौ। (सूरदास, सू. सा., १।२२४, पृ. ७३)

२. हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ।
हरि हरि सुमिरत सब सुख होइ। (सूरदास, सू. सा., २।५, पृ. ११६)

३. जो सुख होत गुपालहिं गाएँ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हें कोटिक तीरथ न्हाएँ।
.. .. ..
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव जल आवै॥
(सूरदास, सू. सा., २।६, पृ. ११६)

४. रे मन, सुमिरि हरि हरि हरि !
सत जज्ञ नाहिन नाम सम परतीति करि करि करि।
(सूरदास, सू. सा., १।३०६, पृ. १००)

५. प्रात समें उठि हरि नाम लीजै, आनंद सौं सुख में दिन जाई।
चक्रपानि करुना को सागर विघ्न बिनासत जांदोराई॥ (रा. क. द्रु., पृ. १४२)

६. सदा राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु मूढ़ मन बारबारं।
सकल सौभाग्य सुख खानि जिय जानि सठ ! मानि बिस्वास वद वेद सारं॥
... ...
श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरि लोकगत नाम बल बिपुल मति मलिन परसी।
त्यागी सब आस संत्रास भवपास-असि-निसित हरिनाम जपु दास तुलसी॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ४६)

रटो। ओ मन! तू राम नाम नेह रूपी मेह का पपीहा हो जा।[१] ओ मन! तू अनुराग सहित राम नाम जप। इस कलियुग में वैराग्य, योग, यज्ञ, तप, त्यागकुछ भी नहीं है।[२] भाई रे! राम कहता चल, राम कहता चल,[३] नहीं तो भव की बेगार में पड़ जायगा, छूटने में अत्यन्त कठिनाई होगी। मन! गोपाल-लाल का स्मरण कर, सब जंजाल मिट जायेंगे।[४] माधव का मंगलमय नाम उचार। उनका सब कुछ मंगलमय है। मुनि उनका ही ध्यान धरते हैं, जिससे अनुदिन मंगल होता है।[५] गोविंद-गोपाल को भज। अधम-उधारण नंदलाल को भज।[६] गोविन्द माधव गिरिधारी को भज, —वे गिरधारी जो केलि-कला-रस से मन हरने वाले हैं।[७] ओ मन! राधा मदन गोपाल का भजन कर। प्रभुनंदन दीन दयाल हैं।[८] हरि कह, हरि कह, देर मत कर, सब जगह विपद बढ़ी है। मुख भर कर हरि का नाम न लेगा तो तरेगा कैसे! अपने दोष से ही मरेगा।[९] मन दृढ़ करके हरि को भजो। मुख से उनका नाम लो।

---

१. राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
राम-नाम नव नेह मेह को मन हठि होहि पपीहा॥ (तुलसीदास, वि. प., पद ६५)

२. राम नाम जपु जिय सदा सानुराग, रे।
कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग, रे॥ (तुलसीदास, वि. प., पद ६७)

३. राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे।
नाहिं तो भव बेगारि महं परिहौ छूटत अति कठिनाई रे।
(तुलसीदास, वि. प., पद १८९)

४. सुमिर मन गोपाल लाल सुन्दर अति रूप जाल।
मिटि हैं जंजाल सकल निरखत संग गोप बाल।
(छीतस्वामी, रा. क. द्रु., भाग २, पृ. ८२)

५. मंगल माधव नाम उचार।
मंगल वदन कमल कर मंगल······
अनुदिन मंगल ध्यान धरत मुनि मंगल मति परमानंददास।
(रा. क. द्रु., भाग २, पृ. ७१)

६. भज गोविन्द, गोविन्द गोपाला।
अधम-उधारण नंदलाला॥ (प. क. त., पद २९६९)

७. भज गोविन्द माधव गिरिधारि।
गिरिवर-धारि गोवर्धनधारि
केलि-कला-रस-मनोहारि॥ (प. क. त., पद २९७०)

८. भज मन राधा मदनगोपाल।
नंद-नंदन पहु दीन-दयाल॥ (प. क. त., पद २९७३)

९. वद वद हरि, छद ना करिइ, विपदे बेढ़ल देश।
······
वदन भरिया, हरि ना बलिला, शमन तरिवे किसे।
दास लोचन, कहिया फारक, मरिछ आपन दोषे। (प. क. त., पद ३०३६)

व्रजेन्द्रनन्दन गोपियों के प्राणधन हैं और भुवन मोहन हैं।[1] ओ मन ! नंदकुमार को भज। भाई, ठीक से देख लो और कोई गति है ही नहीं। उनकी लीला गान और नाम गान में मत्त हो। उनके चरणों को पाकर कृतार्थ हो जाओगे।[2] रे मन ! नंद-नंदन के अभय देने वाले चरणारविंदों का भजन करो।[3] गोविंददास इन पदों से श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, वंदन, पाद-सेवन, दास्य, पूजन, सख्य, आत्मनिवेदन इत्यादि नवधा भक्ति की अभिलाषा करते हैं।[4] सूर और तुलसी इन चरणों की बड़ी महिमा गाते हैं। तुलसीदास कहते हैं, कि हे हरि! तुम कब अपने चरण दिखाओगे, वे चरण कलि के समस्त मल को शमन करने वाले और समस्त मंगल करने वाले हैं। सूर कहते हैं, कि--मैं श्री हरि के उन चरणों की वंदना करता हूं जिनकी कृपा से पंगु पर्वत लांघ जाता है और अंधे को सब कुछ दीखता है; बहरा सुन लेता है, गूंगा बोलता है और रंक सिर पर छत्र रख कर चल सकता है; मैं तुम्हारे चरण-कमलों की वंदना करता हूं, वे पद-पद्म सदा ही शिव के धन हैं और लक्ष्मी के हृदय में निवास करते हैं। उन पद-पद्मों ने पिता के त्रास से प्रह्लाद की रक्षा की, जिनके स्पर्श से सुरसुरी का जल ऐसा पवित्र हो गया कि उससे पाप कट जाता है। उन चरणों ने बहुत से पतितों को तारा। वे ही मेरे तापों का हरण करने वाले हैं।[6] रे मन ! नंद-नंदन के चरणों का भजन कर। वे चरण कमल से भी सुन्दर हैं और सब सुख के देने वाले हैं। सनकादिक और शंकर उन चरणों का ध्यान करते हैं। शेष, सरस्वती, नारद और सब संत उन चरणों की शरण की इच्छा करते हैं। उन चरणों की धूल सुदुर्लभ है। वे लक्ष्मी का भी हित करते हैं। मन में ध्यान करने से पाप दूर करते हैं, उन चरणों का स्मरण करके न जाने कितने पापी तर गए। सूर कहते हैं, कि--इन चरणारविंदों का भजन करो, जीवन-मरण मिट जायगा।[7] परमानंददास कहते हैं, कि मैं जगदीश के उन चरण-कमलों की वंदना करता

---

१. भज भज हरि, मन दृढ़ करि, मुखे बोल तार नाम।
व्रजेन्द्र नंदन, गोपी प्राणधन, भुवन-मोहन श्याम।
. . . . . .
दास लोचन, भावे अनुक्षण, मिछाइ जनम गेल। (प. क. त., पद ३०४३)

२. भज मन नंद-कुमार।
भाविया देखइ भाइ गति नाहि आर।
. . . . . .
तांर लीला-नाम गाने सदा हओ मत्त। (प. क. त., पद ३०३३)

३. भजहुं रे मन, नंद नंदन, अभय-चरणारविंद रे।
. . . . . .
श्रवण कीर्त्तन, स्मरण वंदन, पाद-सेवन-दासि
पूजन सखिजन, आत्म-निवेदन, गोविन्द दास अभिलाषि।
(प. क. त., पद ३०३२)

४. वि. प., पद २१८
५. सू. सा. १।१
६. सू. सा. १।९४
७. सू. सा. १।३०८

हूं जो गोधन के साथ दौड़ते है और जिन धूल भरे चरणों को गोपियां हृदय से लगाती हैं। परमानंददास प्रेम-पीयूष से भरे उन्हीं चरणों का गान करते हैं जो शंभु, चतुरानन और कमला के मन में हैं, वेद-भागवत जिनका गान करते हैं और जो त्रिलोक को पावन करने वाले हैं।[१] जिस प्रकार हरि-चरणों की महिमा अपार है, उसी प्रकार हरि-नाम की भी महिमा अपार है। इस नाम का भरोसा इतना भारी है कि जो प्रेम से नाम लेता है वह सब सुखों का अधिकारी हो जाता है। इस संसार में हरि नाम का ही आधार है। इस कलि-काल में और कुछ विधि-व्यौहार है ही नहीं। हरि का यश गाने से भवभार मिट जाता है। राम नाम के अंक अद्भुत हैं। धर्म-अंकुर के ये पवित्र दो दल हैं, इनसे जन्म-मरण कट जाते हैं। अज्ञान-हरण करने के लिए ये रवि-शशि हैं। हे मन! अब तुम नाम ग्रहण करो, इससे तुम काल-अग्नि से बचोगे। सदा सर्वदा सुख सागर में रहोगे। नाम को भज लो तो भवसागर पार हो जाओगे।[२] तुलसीदास कहते हैं, कि---राम नाम गति है, राम नाम मति है, जो राम नाम के अनुरागी हैं वे बड़े बड़भागी हैं। राम नाम तो कल्पवृक्ष है जो चार फल देता है। राम नाम प्रेम और परमार्थ का सार है। राम के नाम का स्नेहपूर्वक स्मरण करो; यह निस्संबल का संबल, असहाय का सखा, अभागे का भाग्य, गुणहीन का गुण, गरीब का गाहक, दीन के लिए दयालु, अकुलीन के कुल, पंगु के हाथ-पैर, भूखे के लिए मां-बाप, निराधार का आधार, भवसागर का सेतु और सुख का हेतु है।[४]

दीनता-वर्णन---हरि का नाम स्मरण करते और महिमा गाते-गाते भक्त को अपनी दीनता स्मरण हो आती है। उसे अपने दोष स्पष्ट रूप से देख पड़ने लगते हैं और वह व्याकुल होकर उन सबका निवेदन अपने इष्टदेव के सम्मुख करता है। उन दोषों का निराकरण तो कोई कर ही नहीं सकता। भक्त के प्राण व्याकुल हो उठते हैं, यह सोच कर कि इतने दोषों और पापों का भार लादे हुए गति कैसी होगी। इतने महान् भगवान वही गति हैं। अतः भक्त अपनी तुच्छता और दीनता को याद करता है। सूरदास ने दीनतासूचक विनय पद अधिक बनाए हैं। वे कहते हैं, कि---हे प्रभु! मैं तो सब पतितों का टीका हूं, शिरोमणि हूं। और तो चार दिन के पतित हैं, मैं तो जन्म का ही पतित हूं। माधव! मुझसे अधिक पापी और कोई नहीं है। मैं घातक, कुटिल, चबाई, कपटी, महाक्रूर, संतापी, लंपट, धूर्त्त,

---

१. चरन कमल बंदौं जगदीस जे गोधन संग धाए।
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए।

.. .. ..

जे पद कमल शंभु चतुरानन हृदै कमल अंतर राखे,
जे पद कमल रमा उर भूषन बेद भागवत मुनि भाखे।
जे पद कमल लोक त्रै पावन बलिराजा के पीठ धरे,
सो पद कमल दास परमानंद गावत प्रेम पीयूष भरे।

.. .. ..

(परमानन्ददास, अष्ट. व. सं., पृ. ५८७)

२. सू. सा. १।९०, १।९१, १।१७६, २।२४७
३. वि. प., पद ६५, ६७
४. वि. प., पद ६९

दमड़ी का पूत, और विषयों का जाप करने वाला हूं। अभक्ष भक्ष कर और अपान पान करके भी इच्छा नहीं भरी। बधिक और अजामिल तो पापी हैं, सूर तो विकारों का सागर है। हे हरि, मैं तो पतितों का राजा हूं। मेरी समता करने वाला कोई दूसरा नहीं है। मेरा देश तो महामोह है, आशा मेरा सिंहासन है, दंभ का छत्र सिर पर तना है, अपयश मेरा नकीब है, काम-क्रोध मेरे मंत्री हैं, तृष्णा दासी है, अनाचार सेवक हैं, मनोरथ घोड़े हैं, गर्व हाथी, असत और कुमति रथ के सूत हैं। इन सब सेनाओं को लेकर मैं पाप करता रहता हूं। हरि! मैं सब पतितों का राजा हूं। मैंने इन्द्रियरूपी तलवार और काम कुमति मंत्री की सहायता से पाप का गढ़ दृढ़ किया है। हे गुसाईं! मुझ-सा पतित और कोई नहीं है। मुझसे आज भी अवगुण नहीं छूटते। मैं अब तक बहुत पच चुका। जन्म-जन्मांतर से भ्रमण कर रहा हूं। प्रभु! मेरा जैसा कुटिल, खल और कामी कौन है? जिसने शरीर दिया, मैं उसे ही भूल गया। ग्रामीण शूकर के समान मैं द्रोह भर कर विषयों की ओर दौड़ता हूं। सत्संग करने के लिए तो मन में आलस्य होता है, विषयी के साथ विश्राम मिलता है। हरि के चरणों को छोड़ कर हरिविमुख व्यक्तियों की रात-दिन गुलामी करता हूं। मैं परम पापी, अधम, अपराधी और सब पतितों में नामी हूं।[1] प्रभु जू! मैं तो बड़ा अधर्मी हूं। कामी, विषयी, कुकर्मी, कुटिल, क्रोधी इत्यादि सब ही तो मैं हूं।[2] भक्त कहता है, कि--ऐसा कौन सा काम है जो मैंने नहीं किया। जब से मैंने जन्म लिया और जीव नाम पाया, तब से अवगुण ही करता आया हूं। तुम्हें छोड़ कर और सब ही किया।[3] फिर भक्त कहता है, कि--आप मेरी क्या गति करोगे। मैं तो कुटिल, कुचील, 'कुदरशन' हूं। कुल-कुटुंब के हेतु दिन माया में बीतते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि--मेरा मन त्रिविध तापों में जलता रहता है और पागलपन करता फिरता है। कभी योग में रत है, तो कभी भोग में; कभी मोहवश द्रोह करता है, कभी अत्यन्त दीन हो जाता है; कभी अभिमानी राजा बन जाता है। मेरे मोहजनित मल लिपटा हुआ है, किसी भी प्रकार नहीं छूटता, वरन् जन्म-जन्म के अभ्यास से और अधिक लगता जाता है। मेरे नेत्र परस्त्री को देख कर मलिन हो गए हैं। मन विषय-सुख में लग कर

---

१. सू० सा०, १।१३८, १३९, १४०, १४१, १४४, १४७, १४८.

२. सूर सागर, पद १।१८६ में सूर ने अपने अवगुणों की एक लम्बी सूची दी है। वे यों हैं :--

अपत, उतार, अभागी, कामी, विषयी, निपट कुकर्मी, घाती, कुटिल, ढीठ, अति-क्रोधी, कपटी, कुमति, बड़ौ दुष्ट, अन्याई, बटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गांठिकटा, लठ-बांसी, चंचल, चपल, चबाइ, चौपटा, चुगुल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठा, खोटा, लोभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, कृपन, सूम, लंगर, गुमानी, ूंडक, महा-मसखरा, रूखा, मचला, निघिन, नीच कुलज, दुर्बुद्धि, भौंदू, नित का रोने वाला, बात बनाने वाला, महा कठोर, खाद्य अखाद्य भक्षी, शून्य हृदय, दोष देने वाला, बड़ा कृतघ्नी, निकम्मा, महामत्त, बुद्धि बल से हीन, मूकू, निंदा करने वाला, निगोड़ा, भोंड़ा, कायर, कलहकारी, कुही, रोगी इत्यादि।

३. सू. सा., १।१२४

मलिन हो गया है। हृदय जो है वह वासना से मलिन हो गया है। हे माधव! मुझसे नीच और कोई नहीं है। यद्यपि मछली और पतंगे हीनमति कहे जाते हैं परन्तु मैं उनकी बराबरी का भी नहीं हूं। वे बेचारे तो रूप (लौ का) और आहार (कांटे में लगा) देख कर उसे पावक और लोहा नहीं समझ पाते परन्तु मैं तो सामने विपत्ति देख कर भी नहीं संभलता। मैं तो महामोह रूपी सरिता में सर्वदा बहता फिरता हूं। तुम्हारे चरण छोड़ कर, जो नौका के समान हैं, बारंबार फेन ग्रहण करता हूं।[1] मेरा मन, वेष और वचन से साधु ज्ञात होता है पर अघों और अवगुणों का कोष है। कुसंग से मुझे प्यार है, साधु-संग से क्रोध उपजता है।.... माधव! मेरे समान हीन, मलीन, दीन और विषयलीन इस संसार में और कोई नहीं है। गोविंददास कविराज कहते हैं, कि—मैं प्रेम रत्नमणि को पाकर हार गया और विषय रूपी विषय-विष को सर्वदा ही खाता रहता हूं। इस दारुण विषय-विष में सदा मत्त हूं और मुख में ज्वलंत अंगारे भर रक्खे हैं। सत्संग छोड़ कर असत् से प्रेम किया है, इसीलिए कर्म बंधन की फांस लगती है।[2] वल्लभदास कहते हैं—मैं विषम-विषय के कारण माया-जाल में पड़ा हूं। हरि की कथा भी नहीं सुनी, साधु-संग भी नहीं किया, मैंने स्वयं अपने को खा लिया। सतत कुमति और संग दोष से ऐसा करता रहा।[3] नरोत्तमदास कहते हैं—हे गोविंद! हे गोपीनाथ! मैं काम-क्रोध इत्यादि छः गुणों को लेकर इधर-उधर मारा-मारा फिरता हूं और नाना प्रकार के विषयों में भ्रमता रहता हूं। माया का दास हो कर अनेकों इच्छाएं करता हूं। तुम्हारा स्मरण दूर चला गया है।[4] लोचनदास कहते हैं कि—हे चैतन्य-निताई! मेरे समान पापी त्रिभुवन में और कोई नहीं है। मैं अत्यन्त मूढ़मति माया का 'नफर' हूं। पापों के कारण मेरा शरीर जर्जर है। जितने म्लेच्छ, अधम और अना-

---

१. वि. प., पद ८१, ८२, ९२, ११४, १५९

२. (क) अघने जतन करि धन तेयागिलुं ।
प्रेम-रतन-मणि हेलाय हाराइलुं ॥
विषय-विषम-विष सतत खाइलुं ।
गौर-कीर्त्तन-रसे मगन ना हेलुं ॥ (प. क. त., पद २९८६)

(ख) दारुण विषय-विषे, सतत मजियां रैलुं,
मुखे दिलुं ज्वलंत अंगार ॥ (प. क. त., पद २९८७)

(ग) सत्संग छाड़िया कैलुं असते विलास ।
ते कारणे करम-बंधन लागे फांस ॥ (प. क. त., पद २९८६)

३. गौरांग पातकी उद्धार करुणाय ।
.. .. ..
साधु-संग ना करिलुं, आपना आपनि खाइलुं, सतत कुमतिग संग दोषे ॥
(प. क. त., पद ३००२)

४. हे गोविन्द, गोपीनाथ, कृपा करि राख निज पथे ।
काम क्रोध छय गुणे, लैया फिरे नाना स्थाने, विषय भुंजाय नाना मते ।
हइया मायार दास, करि नाना अभिलाष, तोमार स्मरण गेल दूरे ।
(प. क. त., पद ३०२३)

चारी हैं, उन सबसे अधिक मेरा पाप है।[१] वल्लभदास कहते हैं कि--इस ब्रह्मांड में जितने रेणु-कण हैं, उन सबसे भी अधिक मेरे पाप हैं।[२]

इष्टदेव की महत्ता--अपने पाप, वं अपनी हीनता देखकर, जिन्हें भक्तों ने खोल कर अपने इष्टदेवों के संमुख रख दिया है, वे भयभीत हो उठते हैं। उनके आकुल प्राण शांति खोजते हैं, एवं उद्धार चाहते हैं, परन्तु क्या करें जिससे उनका उद्धार हो जाय! क्या करें, कहां जायं, कौन उनकी सुनेगा! तुलसीदास कहते हैं, कि--मैं कहां जाऊं; देव! दुःखित दीन को कहां स्थान है![३] सूरदास कहते हैं, कि--किसके द्वार पर जाकर सिर नाऊं।[४] परमानंददास कहते हैं, कि--किसके द्वार पर घुस कर सिर नाऊं।[५] कौन करुण-जन है, जिससे जाकर निवेदन करूं! कब मेरा उद्धार होगा, ऐसा वल्लभदास कहते हैं।[६] वासुदेव घोष कहते हैं कि--ओ मेरे गौरांग, मेरा अपना कोई नहीं है।[७] उद्धार के लिए व्याकुल भक्त की आतुर दृष्टि के सम्मुख प्रतिबिम्बित हो उठते हैं भगवान्। उनको छोड़ कर भक्त का और कौन बल है![८] भगवान् के बिना, जो कृपानिधि हैं, दूसरे की पीर कौन जानता है![९] नरहरिदास कहते हैं, कि--गौरांग अवतार को छोड़ कर ऐसा कौन जन है जो पतित जनों का उद्धार करे।[१०] हरि विना मेरा कौन है।[११] पापों के भार से लदा हुआ जीव अपनी

---

१. एइ बार करुणा कर चैतन्य निताई।
मो समान पातकी आर त्रिभुवने नाई॥
मुञि अति मूढ़-मति मायार नफर।
एइ सब पापे मोर तनु जर जर॥
म्लेच्छ अधम जत छिल अनाचारी।
ता सभा हइते बुझि मोर पाप भारी॥ (प. क. त., पद ३००३)

२. (क) कहां जाउं, कासों कहौं, को सुनै दीन की?
त्रिभुवन तुहीं गति सब अंगहीन की। (तुलसीदास, वि.प., पद १७९)
(ख) कहां जाउं कासों कहौं और ठौर न मेरो। (तुलसीदास, वि.प., पद १४९)

३. जाउं कहां ठौर है कहां देव! दुखित दीन को?
(तुलसीदास, वि. प., पद २७४)

४ काकें द्वार जाइ सिर नाऊं, पर हथ कहां बिकाउं।
(सूरदास सू. सा. १।१६४, पृ. ५४)

५. तुम तजि कौन नृपति पै जाउं। काके द्वार पैठि सिर नाउं।
(अष्ट. व. स., पृ. ६७८)

६. के हेन करुण जन, तारे करों निवेदन,
उद्धार पाइब कत काले॥ (प. क. त., पद ३००२)

७. आरे मोर गौरांग सोना।
पाइयाछि तोमारे कत करिया कामना।
आपना बलिया मोर नाहि कोन जना। (प. क. त., पद ३००८)

८. तुम्हरो नाम तजि प्रभु जगदीसर, सु तौ कहौ मेरे और कहा बल?
(सूरदास, सू. सा. १।२०४ पृ. ६७)

९. तुम बिनु और न कोउ कृपानिधि, पावै पीर पराई।
(सूरदास, सू. सा. १।१९५ पृ. ६४)

१०. प. क. त., पद २९९४

११. तोमा बिने के आछे आमार। (प. क. त., पद २९८८)

ओर देख कर फिर भगवान् की ओर देखता है। तब वह देख पाता है कि उसका भी भगवान् से कुछ तो संबंध है ही। सब पाप-ताप से दूर भक्त-वत्सल, असीम शक्तिशाली और दयालु भगवान् जीव से तात्विक रूप में भिन्न हैं, परन्तु पावक और पापी, सबल और निर्बल, नाथ और अनाथ का संबंध तो है ही। वे महान् भगवान् या तो भक्तवत्सल न होते और यदि हैं तो जीव को जो उनकी भक्ति करता है, एवं स्मरण करता है, भूल कैसे सकते हैं और अपनेको उससे विलग कैसे मान सकते हैं। भक्त कहता है कि—(क) प्रभु तुम अजित, अनादि, लोकपति हो, मैं अजान और मतिहीन हूं।[१] कृपानिधि, तुम तो परम पवित्र हो, तुम्हारा नाम ही पावन है, मैं तो पतित हूं। तुम्हारा यह विरद सुन कर मन में धीरज आया है। (ख) मैं तो पतित हूं, तुम पतितों का उद्धार करने वाले हो। (ग) तुम दयालु हो, मैं दीन हूं; तुम दानी हो, मैं भिखारी हूं। मैं प्रसिद्ध पातकी हूं, तुम पाप-पुंज का हरण करने वाले हो। नाथ! तुम अनाथ के स्वामी हो, मेरे समान अनाथ कौन है! मेरे समान आर्त्त व्यथित नहीं है, और तुम जैसा दुःखहारी कोई नहीं है। तुम ब्रह्म हो, मैं जीव हूं; तुम ठाकुर हो, मैं दास हूं। तुम्हारे और मेरे बीच में अनेक नाते हैं। जो अच्छा लगे, उसे मान लो। (घ) भक्त फिर कहता है, कि—मैं भयों से ग्रस्त हूं, तुम समस्त भयों का हरण करने वाले हो। राम! तुम सुखधाम हो, श्रम का भंजन करने वाले हो, मैं तीन तापों के श्रम से पीड़ित हूं। (ङ) मैं अधम चांडाल हूं, तुम दया के ठाकुर हो। (च) जीव और इष्टदेव का यह

१. (क) तुम प्रभु अजित अनादि लोकपति हौं अजान मतिहीन।
(सूरदास, सू. सा. १।१८१, पृ. ५९)

(ख) परम पुनीत-पवित्र कृपानिधि, पावन नाम कहायौ।
सूर पतित जब सुन्यौ बिरद यह, तब धीरज मन आयौ॥
(सूरदास, सू. सा. १।१२५, पृ. ४२)

(ग) सूर पतित, तुम पतित उधारन, बिरद कि लाज धरे।
(सूरदास, सू. सा. १।१९८, पृ. ६५)

(घ) तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप-पुंजहारी॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो॥
ब्रह्म तू हौं जीव तुही ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन सरन पावै॥ (तुलसीदास, वि.प., पद ७९)

(ङ) हौं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कौन कृपा बिसराई॥
तुम सुखधाम राम स्रम भंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई॥
(तुलसीदास, वि. प., पद २४२)

(च) अधम चंडाल आमि, दयार ठाकुर तुमि
शुनियाछि वैष्णवेर मुखे। (प. क. त., पद ३०१९)

नाता जीव को बहुत बड़ा भरोसा देता है। उसकी व्याकुल अंतरात्मा उस इष्टदेव की ओर, चाहे वह राम हों, चाहे कृष्ण हों, चाहे गौरांग हों, देखती है और उसकी महानता का अनुभव करती है। वही तो भक्त का आलंबन है, जो शक्ति, दया और सौंदर्य से मंडित हो कर उसके हृदय में निरंतर निवास करता है। भक्तों में सूर ने कृष्ण की भक्त-वत्सलता का बहुत गान किया है।

सूरदास कहते हैं, कि--वासुदेव की बड़ी बड़ाई है। वे बिना बदला पाए उपकार करते हैं, बिना स्वार्थ के मित्रता करते हैं। भक्त के लिए कौन ऐसा करता है, जैसा जगदीश ने किया। उन्होंने प्रह्लाद की रक्षा की, क्योंकि उसने हठ-पूर्वक उन्हें भजा था। जन के हित के लिए 'यदुराई' ने क्या नहीं किया? दया के वश जो बात पहले कह दी थी, उसके कारण गोकुल में (जन्म लिया) गाय चराई। ऐसे भक्तवत्सल हैं कि नर-केहरी का शरीर धारण किया। दीनबंधु हरि ऐसे हैं, कि जो कोई जहां स्मरण करता है, वे वहीं उठ कर दौड़ते हैं। सूरदास कहते हैं, कि--प्रभु भक्तवत्सल हैं। तुम जाति, कुल, नाम, राजा, रंक, कुछ भी तो नहीं देख पाते।[१] कौन ऐसा है जो भगवान् की शरण में गया और उबरा नहीं। जब जब संतों पर विपदा पड़ी, उन्होंने सुदर्शन चक्र संभाला।[२] हरि जैसा मित्र तो देखा ही नहीं, विपत्ति में स्मरण करते ही आकर खड़े होते हैं।[३] तुम स्वयं पार्थ के सारथी हुए। निगम भी तो तुम्हारा नाम भक्तवत्सल करके गा गए हैं।[४] प्रभो! तुम्हारा वचन और भरोसा ही सच्चा है। दुःशासन ने जब द्रौपदी को पकड़ा, तब उसका वस्त्र बढ़ाया। तुम भक्तवत्सल हो, मैं तुम्हारी शरण आया हूं।[५] जहां-जहां भक्तों पर 'भीर' पड़ी, वहां-वहां सहायक होते हो। परमानंद के प्रभु भक्त-वत्सल हरि हैं।[६] अकारण ही हित करने वाला (राम को छोड़

---

१. सू. सा., १।३, ५, ७, ११

२. सरन गए को को न उबारयौ।
जब जब भीर पड़ी संतन कौं, चक्र सुदरसन तहां संभारयौ।
(सूरदास, सू. सा. १।१४, पृ. ५)

३. हरि सौं मीत न देख्यौ कोई।
बिपति-काल सुमिरत, तिहिं औसर आनि तिरीछौ होई।
(सूरदास, सू. सा. १।१०, पृ. ४)

४. पारथ के सारथि हरि आप भए हैं।
भक्त-बछल नाम निगम गाइ गए हैं। (सूरदास, सू. सा. १।२३, पृ. ८)

५. प्रभु तेरौ बचन भरोसौ सांचौ।
... ...
दुस्सासन जब गही द्रौपदी तब तिहिं बसन बढ़ायौ।
सूरदास प्रभु भक्तबछल हैं चरन सरन हौं आयौ।
(सूरदास, सू. सा. १।३२, पृ. ११)

६. जागे जग जीवन जग नायक।
... ...
जहां जहां भीर परी भक्तन को तहं तहं होत सहायक।
परमानंद प्रभु भक्त-बछल हरि जिन के मन बच कायक। (परमानंद दास)

कर) और कौन है ? उनका विरद ही 'गरीब निवाज' है, फिर किस अन्य को जोहा जाय ![1] श्री रघुवीर की तो यह बान ही है, कि वे नीच से भी स्नेह और प्रीति करते हैं।[2] दूसरे पर दयालु हो, ऐसा दूसरा देवता और कौन है ! शीलनिधान, सुजान-शिरोमणि, शरणागत को प्रिय मानने वाला, और प्रणतपाल और कौन है ![3] रघुपति विपद नाश करने वाले हैं। अत्यंत कृपालु, प्रणत-प्रतिपालक, पतित पावन हैं। क्रूर, कुटिल, कुलहीन, दीन और अत्यंत मलिन यवन, इन सबको नाम-स्मरण करते ही अपने भवन भेज दिया। गज, पिंगला, अजामिल इत्यादि खलों की गिनती कहां तक की जाय ! प्रभु ने किसे गति नहीं दी ?[4] तुलसीदास कहते हैं, कि—हरि के समान आपदा हरने वाला और कौन है ! सहज में ही कृपा करने वाला और दुःसह दुःखसागर से तारने वाला भी अन्य कोई नहीं है। गज अपना बल देख कर भगवान् की शरण में गया। उसके दीन वचन सुन कर वे गरुड़ को भी त्याग कर दौड़ पड़े। द्रौपदी पर जब दुःशासन अत्याचार करने लगा तब उसके 'हा हरि, रक्षा करो' कहने पर वस्त्र बढ़ाए।[5] कृष्णदास कहते हैं, कि—नित्यानंद और चैतन्य दोनों बड़े अवतार हैं, इनके बराबर दयालु और दाता और कोई नहीं है। म्लेच्छ, चांडाल, निदंक, पाखंडी इत्यादि जितने थे सब का करुणा से भर कर उद्धार किया।[6] वल्लभदास कहते हैं, कि— हे गौरांग ! तुम्हारा नाम ही पतित-पावन है। कलियुग में

---

१. अकारन को हितु और को है ?
बिरद गरीब-निवाज कौन की भौंह जासु जन जोहै ?
(तुलसीदास, वि. प., पद २३०)

२. श्री रघुबीर की यह बानि।
नीचहूं सो करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि।
(तुलसीदास, वि, प., पद २१५)

३. देव ! दूसरो कौन दीन को दयालु ?
सील-निधान, सुजान सिरोमनि, सरनागत-प्रिय, प्रनतपालु।
(तुलसीदास, वि० प., पद १५४)

४. रघुपति बिपति-दवन।
परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पवन।
क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन।
सुमिरत नाम राम पठए सब अपने भवन।
गज पिंगला अजामिल से खल गनै धौं कवन ?
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन।
(तुलसीदास, वि. प., पद २१३)

५. वि. प., पद २१३

६. निताइ चैतन्य दोहें बड़ अवतार।
एमन दयाल दाता ना हइबे आर ॥
म्लेच्छ चंडाल निंदुक पाखंडादि जत।
करुणाय उद्धार करिला कत कत ॥ (प. क. त., पद २९९१)

जितने पातकी जीव थे, तुमने सब को अपना धाम दिया।[1] नरोत्तमदास कहते हैं, कि—त्रिभुवन में तुम्हारे इसी यश की ख्याति है कि इस संसार में जो अधम दुर्गत जन हैं उन सबके लिए तुम्हारे मन में करुणा है।[2]

भक्तवत्सल भगवान् भक्त के परम आश्रय हैं। वे भक्त के सबसे बड़े रक्षक हैं क्योंकि वे असीम शक्तिशाली हैं। त्रिताप, माया और सांसारिक दुःखों से पीड़ित भक्त उनकी शक्ति के ही भरोसे जीवित रहता है और रक्षा पाता है। आज से नहीं, अनादि काल से वे भक्तों की रक्षा करके भक्तों को अपनी महान् शक्ति का परिचय देते आ रहे हैं। जिन भृगु ऋषि को शिव और विरंचि भी मारने दौड़े, उनके चरणों को अपने हृदय पर रख कर सुखदाई वचन कहे। हिरण्यकश्यप की सत्ता पूर्व से लेकर पश्चिम तक फैली थी। उसके पुत्र प्रह्लाद पर विपत्ति पड़ी, सबने धीरज छोड़ दिया, परन्तु हरि ने खंभे से प्रकट हो कर उसे छुड़ाया। ग्राह ने गज को ग्रस लिया और पाताल ले चला, काल के डर से मुख में नाम आ गया। गरुड़ त्याग कर वे दौड़े और उसे बचाया। इन्द्र के दान को जब ग्वालों ने स्वयं बलि समझ कर ले लिया, तब कृष्ण ने ही गोवर्धन उठाया और इन्द्र के कोप से रक्षा की। जब-जब दीनों पर विपत्ति पड़ी तब-तब तुमने रक्षा की। ठकुरायत तो गिरिधर की ही सच्ची है। ब्रह्म-रुद्र जिस काल से डरते हैं, वह काल उनके भ्रू-भंग से डरता है। हाथ में धनुष-बाण लेकर रावण का संहार किया, और लंका में विभीषण की दुहाई फेरी। जिस दुर्योधन के सौ योद्धा भाई थे उसने भी हार मान ली। इन्द्र ने जब कोप करके जल वर्षाया, तब लीला से ही गोवर्धन धारण किया। श्याम तीन लोक के तापनिवारणकर्त्ता और सेवक को सुख देने वाले हैं। ऐसा तो इस संसार में कोई नहीं है, जो यम-यातना दूर करे।[3] उन रामचन्द्र की

---

१. गौरांग पतित-पावन तुया नाम।
कलि-जीवे जत, आछिल कृत-पातकी,
देओलि सबे निज ठाम॥ (प. क. त., पद ३००९)

२. अधम दुर्गत जने, केवल करुणा मने,
त्रिभुवने ए जश खेयाति॥ (प. क. त., पद ३०२२)

३. (क) भृगु कौं चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई॥
(सूरदास, सू. सा. १।३, पृ. १)

(ख) हिरनकस्यप बढ़्यौ उदय अरु अस्त लौं, हठी प्रहलाद चित चरन लायौ।
भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी खंभ तैं प्रकट ह्वै जन छुड़ायौ॥
ग्रस्यो गज ग्राहि ले चल्यो पाताल कौं काल कैं त्रास मुख नाम आयौ।
(सूरदास, सू. सा. १।५, पृ. २)

(ग) जब जब दीननि कठिन परी। जानत हौं करुनामय जन कौं तब तब सुगम करी।

... ...

ब्रह्म-बाण तैं गर्भ उबार्‌यौ, टेरत जरी जरी।
बिपति काल पांडव-बधु बन मैं राखी स्याम ढरी।

... .

तब तब रच्छा करी भगत पर जब जब बिपति परी।
(सूरदास, सू. सा. १।१६, पृ. ६)

जय हो, जिन्होंने ऋषि के यज्ञ की रक्षा की, अहल्या का शाप से उद्धार किया, शिव का धनुष तोड़ कर राजाओं का घमंड दूर किया और परशुराम का मस्तक नत कर दिया। उन रामचन्द्र की जय हो जिन्होंने खर-दूषण, और त्रिशिरा को उनकी चौदह हजार सेना सहित मारा और मरीच का संहार किया। ऐसे राम की जय हो जिन्होंने अजेय लंका को जीता और रावण का वंशसहित नाश करके लोकपालों को अभय किया और खेल में ही समुद्र पर पुल बांध लिया।[1] सुन्दर धनुष, तरकस, बाण, शक्ति, तलवार और श्रेष्ठ कवच धारण करने वाले, धर्म की धुरी उठाने में धीर, रघुकुल में वीर और अपने भुजदंडों के प्रचंड प्रताप से लीलापूर्वक ही पृथ्वी के भारी भार को उतारने वाले राम की जय हो।[2] माधव ! तुमने वह भुजा कहां छिपा कर रक्खी है, जिन भुजाओं से गिरि उठाया, रावण का सिर फोड़ा, बलि को बांधा, हिरण्यकश्यप का हृदय फाड़ा, प्रह्लाद को वर दिया, अर्जुन का रथ हांका, महाभारत में लीला की और कंस को मारा।[3]

(घ) ठकुरायत गिरिधर की सांची।

... ...

ब्रह्म-रुद्र डर डरत काल कैं, काल डरत भ्रू-भंग की आंची ॥

(सूरदास, सू. सा. १।१८, पृ. ६)

(ङ) गहि सारंग रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई।
मानो हार बिमुख दुरजोधन, जाके जोधा हे सौ भाई ॥

(सूरदास, सू. सा. १।२४, पृ. ८)

(च) कीन्हों कोप इन्द्र बरषा रितु, लीला लाल गोवर्द्धन धारी।

... ...

तीनि लोक के ताप-निवारन, सूर स्याम सेवक-सुखकारी ॥

(सूरदास, सू. सा. १।३०, पृ. ११)

(छ) ऐसौ सूर नाहिं कोउ दूजौ, दूरि करै जम-दायौ।

(सूरदास सू. सा. १।६७, पृ. २२)

१. जयति ऋषि-मख-पाल, शमन सज्जन शाल, शापवश मुनि बधू-पापहारी।
भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी ॥

.. .. ..

जयति खर-त्रिशिर-दूषण चतुर्दश-सहस्र-सुभट-मारीच संहारकर्त्ता।
गृध्र-शबरी-भक्ति-विवश करुणासिन्धु, चरित-निरुपाधि, त्रिविधार्तिहर्त्ता ॥

.. .. ..

जयति पाथोधि-कृत-सेतु-कौतुक-हेतु, काल-मन-अगम लई ललकि लंका।
सकुल सानुज सदल दलित दशकंठ रण, लोक-लोकप किए रहित शंका ॥

(तुलसीदास, वि. प., पद ४३)

२. जयति शुभग शारंग सु-निखंग-सायक-सक्ति-चारु-चर्मासि-वरवर्म-धारी।
धर्मधुर धीर रघुबीर भुजबल-अतुल हेलया दलित भूभार भारी ॥

(तुलसीदास, वि. प., पद ४४)

३. ते भुज माधों कहां दुराये।
ते भुज प्रकट करहु कि न नरहरि, जन कलियुग मँह बहुत सताए ॥

मदन-गोपाल और राम तो एक ही हैं। पहले अपनी भुजा से सागर बांधा था अब रास नचाया। तब रावण को मारकर सब असुर संहारे, अब गोवर्धन धारण किया है।[1] वे भगवान समस्त सौन्दर्य के धाम हैं, समस्त संसार ही उनकी मूर्त्ति है, वे विराट् स्वरूप हैं, बड़े चतुर हैं, गुप्त गुण वाले हैं और बड़े महिमावान् और उदार हैं। वे अजेय हैं, उनकी महिमा अपार है, वे अत्यन्त दुर्गम हैं, स्वर्ग और मोक्ष के स्वामी हैं और संसाररूपी वृक्ष को उखाड़ने के लिए कुठार-रूप हैं। वे देवताओं के शत्रुओं के संहारकर्ता, पृथ्वी का भार हरण करने के लिए अवतार धारण करने वाले हैं।[2] श्रीराम वर देने वाले देवताओं के भी स्वामी हैं। वाणी के अधिष्ठाता, सर्वव्यापक, निर्मल, महान्, बलवान् और मुक्ति के स्वामी हैं। महामाया, महत्त्व, शब्द, गुण, देवता, व्योम, मरुदग्नि, अमलाम्व, पृथ्वी, आत्मा, काल, परमाणु, शक्ति इत्यादि सब उनका ही रूप है। वे गूढ़ गंभीर ज्ञानवल्लभ, बड़ी महिमा के भंडार, और भयंकर संसार से तार देने वाले हैं।[3] तुम तो इतने शक्तिशाली हो, भगवन्, कि वे भी तुम्हारी कृपा की इच्छा रखते हैं जिनके वश में सर्वदा अनेक आज्ञाकारी गण और अनुचर हैं! तुम्हारे कहने से पवन बहता है, रवि-शशि भ्रमण करते हैं, और फनपति शीश नहीं

जिहि भुज गिरि मंदिर उत्पाट्यो, जिंहि भुज बल रावन सिर तोरे।
जिहि भुजबल बलि बंधन कीनों, अपने काज सकुचि भए थोरे॥
जिहि भुज हिरन्यकसिपु उर फार्यो, जिंहि भुज प्रह्लादहिं बर दीनों।
जिहि भुज अर्जुन के हय हांके, जिहि भुज लीला भारथ कीनों॥
जिहि भुज गोवर्धन राख्यो जिहि भुज कमला घर आनी।
जिहि भुज कंसादिक रिपु मारे, परमानन्द प्रभु सारंग पानी।

(परमानन्ददास, अष्ट. ब. सं., पृ. ६५३, फुटनोट)

१. मदन गोपाल हमारे राम।

.. .. ..

अपनी भुजा जिन जलनिधि बांध्यो, रास नचायो कोटिक काम।
दसशिर हति सब असुर संहारे, गोवर्द्धन धार्‌यो कर वाम॥

(परमानन्ददास, रा. क. द्रु., भाग २, पृ. ७९७)

२. अखिल लावन्य गृह विश्वविग्रह परम प्रौढ़ गुन गूढ़ महिमा उदारं।
दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग स्वर्ग-अपवर्ग-पति भग्न-संसार-पादप-कुठारं॥

.. .. ..

दुष्ट-विबुधारि संघात-महिभार-अपहरन, अवतार कारन अनूपं।

(तुलसीदास, वि. प., पद ५०)

३. बिस्व बिख्यात, बिस्वेस, बिस्वायतन, बिस्व मरजाद, व्यालादगामी।
ब्रह्म बरदेश, बागीस, व्यापक, विमल, विपुल, बलवान निर्वान स्वामी॥

.. .. ..

ध्येय ध्यानप्रिय प्रचुर गरिमागार घोर-संसार-परपार दाता॥

(तुलसीदास, वि, प., पद ५४)

डुलाते ! अग्नि अपनी दाह करने की शक्ति नहीं छोड़ पाता, सिंधु अपना जल नहीं बढ़ा पाता, शिव विरंचि इन्द्र सब चाव से तुम्हारे चरणों की सेवा करते हैं। जो तुम करने को कहते हो, अत्यन्त आतुर होकर करते हैं। यदि कृपालु रघुपति की कृपा मिल जाय तब कोई क्या कर सकता है। कोई भी करोड़ों उपाय कर के मर जाय, भक्त का तो बाल भी बांका नहीं हो सकता। प्रह्लाद की कथा वेद-विदित है। गज का उद्धार किया। भगवान् ने विभीषण को गद्दी पर बिठाया। ध्रुव को अविचल पद दिया। दुर्योधन ने क्या नहीं किया परंतु अपने अभिमान से ही वह नष्ट हो गया और प्रभुकी सहायता से पांडवों को विजय मिली। किसके दो शिर हैं जो भक्त की सीमा में भी पैर रख सके। रघुवीर के बाहुबल से मैं सदा अभय हूं। कभी नहीं डरता। जिसे मनमोहन अंगीकार कर ले उसका बाल तक तो शिर से खसकेगा नहीं, चाहे सारा संसार बैरी हो जाय ! प्रभु के बल से ही तो प्रह्लाद तनिक भी नहीं डरे, हिरण्यकश्यप हार कर रह गया और उत्तानपाद का पुत्र आज भी राज कर रहा है। द्रुपद-सुता की लाज रक्खी और दुर्योधन का मान भंग किया।[1] गोविंद हरे ! तुम कालीय-मर्दन,

---

१. (क) तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी।
जिन कैं बस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी।
बहत पवन, भरमत ससि-दिनकर, फनपति सिर न डुलावैं।
दाहक गुन तजि सकत न पावक, सिंधु न सलिल बढ़ावैं।
सिव-बिरंचि सुरपति-समेत सब, सेवत प्रभु पद चाए।
जो कछु करन कहत सोई सोइ कीजत अति अकुलाए॥
(सूरदास, सू. सा., १।१६३, पू. ५३)

(ख) जोपै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै ?
होइ न बांको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय करै॥
बेद बिदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति पथ पाउँ धरै ?
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहुँ न टरै॥
अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥
सो न कहा जो कियो सुजोधन अबुध आपने मान जरै।
प्रभु प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस, पांडु-तनय बरिआईं बरै॥

.. .. ..

हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै ?
तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल, सदा अभय काहू न डरै॥
(तुलसीदास, वि. प., पद १३७)

(ग) जाकौं मनमोहन अंग करै !
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग बैर परै !
हिरनकसिपु-परहार थक्यौ, प्रहलाद न नैंकु डरै॥
अजहूं लगि उत्तानपाद-सुत, अविचल राज करै।
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कुरुपति चीर हरै।
दुरजोधन कौ मान भंग करि, बसन-प्रवाह भरै॥
(सूरदास, सू. सा. १।३७, पृ. १३)

कंस-निसूदन, देवकीनंदन, राम हो। तुम ही मत्स्य, कच्छ, शूकर, नरहरि, वामन, और भृगुपति कुल के रक्षक हो। तुम्हीं श्री बलराम, बुद्ध, कल्कि, नारायण, जनार्दन देव और कंसारि हो। तुम केशव, माधव, यादव, यदुपति और दैत्यदलन हो।[1] कमलेश कृष्ण केशि-राक्षस का नाश करने वाले और कंसारि हैं। हे केशव ! तुम काली का नाश करने वाले हो। तुम चाणूर का नाश करने वाले हो। तुम दैत्यदलन हो ! तुम मधुसूदन हो।[2]

अतीव शक्तिशालिनी माया जीव के लिए सबसे बड़ी दुःखदात्री है। इस संसार में ऐसा कौन है जिसे उसने तंग न किया हो। वह नर, सुर, असुर सबको नाच नचा लेती है। वह माया भी केवल कृष्ण और राम के काटे से कटती है ! उनकी चरण-शरण में जाने वाला ही नींद भर सो सकता है ।[3] उनकी माया महाप्रबल है जिसने सब जग को वश में कर रक्खा है;[4] तुम्हारा यश कैसे गाया जाय। माया नटी कोटि-कोटि नाच नचाती है। लोभ में डाल कर दर दर लिए फिरती है और नाना प्रकार के स्वांग करवाती है। तुम्हारे प्रति कपट करवाती है और बुद्धि को भी भ्रम में डाल देती है। तुम्हारी कृपा बिना कौन मेरा दुःख दूर

---

१. हरे हरे गोविन्द हरे।
कालिय-मर्द्दन, कंस-निसूदन, देवकि-नन्दन राम हरे।
मत्स्य कच्छवर, शूकर नरहरि, वामन भृगुपति रक्षकुलारे।
श्री बल बौद्ध, कल्कि नारायण, देव जनार्द्दन श्री कंसारे॥
केशव माधव, यादव-यदुपति, दैत्य-दलन दुख-भंजन शौरे।
(परमानन्ददास, प. क., पद २९७४)

२. कृष्ण कृष्ण कमलेश कृपामय, केशि-मथन कंसारि।
केशव कालिदमन करुणामय कालिन्दि-कूल-बिहारी।
... ...
चैद्योद्धारी चक्रि चानूर-हर, चक्र-पाणि चित-चोर।
... .
मनहर मदनमोहन मधूसूदन, गाओत गोकुलदास।
(गोकुलदास, प. क. त., पद २९७५)

३. इहिं राजस को कौन बिगोयौ।
हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, रावन कुम्भकरन कुल खोयौ।
कंस, केसि, चानूर, महाबल करि निरजीव, जमुन-जल बोयौ।
जज्ञ-समय सिसुपाल सुजोधा, अनायास लै जोति समोयौ।
ब्रह्मा-महादेव-सुर-सुरपति, नाचत फिरत महा रस भोयौ।
सूरदास जो चरन-सरन रह्यौ, सो जन निपट नींद भरि सोयौ।
(सूरदास, सू. सा. १।५४, पृ.१८)

४. (गोपाल) तुम्हारी माया महाप्रबल,
जिहिं सब जग बस कीन्हौ हो।
(सूरदास, सू. सा., १।४४, पृ. १५)

कर सकता है।[१] हे माधव ! तुम्हारी यह माया ऐसी है कि कितने ही उपाय करके मरने पर भी मैं इससे उद्धार तब तक नहीं पा सकता, जब तक तुम दया न करोगे।[२] मैं सब प्रकार से कठिन हूँ, तुम मृदुल हो परन्तु मेरे मन में दृढ़ विचार है कि यह मोह की शृंखला तुम्हारे छुटाने से ही छूटेगी।[३] कमलाकांत अत्यंत शक्तिशाली और परम सामर्थ्यवान हैं। वे जिस पर दया करते हैं, वह लकड़ी घास का बेचने वाला हो, तो भी उसके सिर पर छत्र रख सकते हैं। विद्या के स्वामी अविद्या के सामने पूर्ण समर्थ हैं, जो चाहे सो करें। खाली को भर सकते हैं, भरे को खाली कर सकते हैं और चाहते ही फिर भर सकते हैं। वे अविनाशी सिद्ध पुरुष हैं, किसी से डरते नहीं।[४] जीव एक बार जन्म लेता है, बार बार मरता है। जन्म लेते ही महा माया के बंधन में पड़ जाता है और कृष्ण-भजन मन में ही नहीं आता। कृष्ण का भजन करने से क्लेश दूर हो जाता है।[५] सूरदास कहते हैं कि—ऐसा जन्म बार बार

---

१. बिनती सुनौ दीन की चित दै कैसें तुव गुन गावै ?
माया नटी लकुटि कर लीन्हे, कोटिक नाच नचावै ॥
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति नाना स्वांग बनावै ।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै ॥
... ...
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु,को मो दुख बिसरावै।(सूरदास, सू.सा. १।४२,पृ. १५)

२. माधव ! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया ॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ११६)

३. सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि दृढ़ विचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह-श्रृंखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ११४)

४. जापर कमलाकांत ढरैं ।
लकरी घास को बेचन हारो ता सिर छत्र धरैं ।
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो कछु चाहैं, सोइ करैं।
रीतैं भरैं भरे पुनि ढोरैं जो चाहैं तौ फेरि भरैं ।
सिद्ध पुरुष अविनाशी समरथ काहू ते न डरैं ।
परमानन्द सदा यह सम्पति मनमें कबहु ढरैं ॥
(परमानन्ददास, अष्ट. ब. सं. फुटनोट पृ. ६०७)

५. एक बार जनमये आर बार मरे ।
तथापिओ हरि-पद भजन ना करे ॥
... ...
जन्म-मात्र पड़े महामायार बन्धने ।
भजिते कृष्णेर पद ना पड़ये मने ॥
... ..
कृष्णेर भजन-तत्त्व करे उपदेश ।
भजये श्रीकृष्ण पद दूरे जाय क्लेश ॥ (बलरामदास, प. क० त., पद २९९९)

नहीं मिल सकता, हरि का भजन करके उस पार उतर चलो। हे मन ! तुम नाम ग्रहण कर लो, इससे तुम काल-अग्नि से बच जाओगे और सर्वदा सुख के संसार में रहोगे। कोई मार नहीं सकेगा, न कोई विघ्न ग्रसेगा और यम भी अपने किनारे नहीं चढ़ा सकेगा। सूरदास कहते हैं कि—इस अवसर पर प्रभु का भजन करके भवसागर से उतर चलो ।[1] तुलसीदास कहते हैं कि—रसना ! राम नाम क्यों नहीं गाती। सब वाद-विवाद छोड़ दे, स्वाद छोड़ दे और हरि का भजन कर। इस प्रकार में भव से तर जाऊँगा और तुझे यश मिलेगा।[2]

भक्तों का दुःख दूर करने के लिए परम शक्तिशाली भगवान् असुरों का संहार करते हैं परन्तु वे क्रूर या निर्दयी नहीं हैं। वे अत्यंत दयालु हैं, भक्तों का कष्ट निवारण करने के लिए जिन दुष्टों को वे मारते हैं, उन्हें भी अपनी गति देते हैं, अतः उन्हें निर्दयी या क्रूर कैसे कहा जाय।[3] रे मन ! कृपालु रामचन्द्र का भजन कर जो दारुण भव-भय का हरण करने वाले हैं। दीनों का उद्धार करने वाले रघुवर करुणाभवन हैं, संताप का शमन करने वाले और पाप का नाश करने वाले हैं। मैं उन करुणानिधान रघुपति की बंदना करता हूँ जिनसे भव छूट जाता है और ज्ञान आता है। तुम दयालु हो, मैं दीन हूँ, तुम दानी हो और मैं भिखारी

---

१. (क) नहिं अस जनम बारम्बार।
... ...
सूर हरि कौ भजन करि-करि उतरि पल्ले-पार।
(सूरदास, सू. सा. १।८८, पृ. २८)

(ख) अब तुम नाम गहौ मन नागर।
जातैं काल अगिनि तैं बांचौ सदा रहौ सुख-सागर।
मारि न सकै, बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर।।
... ...
सूरदास प्रभु इहिं औसर भजि उतार चलौ भवसागर।।
(सूरदास, सू. सा. १।९१, पृ. २९)

२. काहे न रसना रामहिं गावहि।
... ...
बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि।
तुलसिदास भव तरहि तिहूं पुर तू पुनीत जस पावहि।।
(तुलसीदास, वि. प., पद २३७)

३. (क) करनी करुना-सिन्धु की, मुख कहत न आवै।
कपट हेत परसैं बकी, जननी-गति पावै।।
(सूरदास, सू. सा. १।४, पृ. २)

(ख) ऐसी कौन प्रभु की रीति।
विरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति।
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ।
(तुलसीदास, वि. प., पद २१४)

हूँ। दीन-बन्धु, सुख-सिन्धु, कृपाकर कारुणीक रघुराई ! सुनो ! मेरा मन विविध ज्वर में जलता हूँ और पागलपन करता फिरता हूँ। तुम्हारी कृपा बिना अब रोग जायगा नहीं। रघुराया ! कुछ ऐसा समझ पड़ता है, दयालु, कि तुम्हारी कृपा के बिना मोह माया नहीं छूटती है। उन करुणामय स्वामी की बराबर वन्दना करता हूँ जिनकी कृपा से पंगु गिरि का लंघन करता है और अन्धे को सब कुछ दीखता है। दीन-दयालु, परम करुणामय, नाथ अनाथों के ही संगी हैं। तुमने कभी तो गहरु नहीं किया। तुम तो स्वभाव से ही सुलभ और स्मरण के वश में हो। गो,गोपी और गोपों के कारण तुमने गिरि उठाया। केशी,काली, कंस और जरासंध का वध किया और गुरु-पुत्र को ला दिया। सभा में द्रोपदी का वस्त्र खींचा गया, तब वस्त्र बढ़ाया। श्याम ! तुम सर्वज्ञ हो, कृपानिधि हो और तुम्हारा हृदय करुणा से

---

१. (क) श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण-भवभय-दारुणं।
(तुलसीदास, वि. प., पद ४५)

(ख) दीन उद्धरन रघुबर्य करुनाभवन समन संताप पापौघ-हारी।
बिमल-बिज्ञान-बिग्रह अनुग्रह-रूप भूपबर बिबुध-नर्मद खरारी॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ५९)

(ग) बन्दौं रघुपति करुनानिधान।
जाते छूटै भव भेद ज्ञान॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ७९)

(घ) तू दयालु दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
(तुलसीदास, वि. प., पद ७९)

(ङ) दीनबन्धु, सुखसिन्धु, कृपाकर, कारुनीक रघुराई।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध ज्वर, करत फिरत बौराई॥
... ...
तुलसिदास भवरोग रामपद-प्रेमहीन नहिं जाई॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ८१)

(च) अस कछु समुझि परत, रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास-हित, मोह न छूटै माया॥
(तुलसीदास, वि. प., पद १२३)

(छ) चरन-कमल बन्दौं हरि राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे कौं सब कछु दरसाइ॥
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तिहिं पाइ॥
(सूरदास, सू. सा. १।१, पृ. १)

(ज) नाथ अनाथनि ही के संगी।
दीनदयाल, परम करुनामय, जन-हित हरि बहुरंगी।
(सूरदास, सू. सा. १।२१, पृ. ७)

मृदुल है। नंद-नंदन ! मैं किसकी शरण जाऊँ ? और कोई आश्रय नहीं।[1] दीनदयालु ! ऐसा ही कुछ करो जिससे जन क्षण भर के लिए भी चरणों का त्याग न करे। तुम करुणासागर हो, भक्त-रसाल हो। हे समर्थ, सर्वज्ञ, कृपानिधि, अशरणशरण और जगजाल के हरण करने वाले कृपानिधान ! सुनो, सूर की यह गति है कि किससे कहे।[2] राम ! वह कृपा तुमने कहां बिसारी जिसके कारण तुम दीनों का दुःख सुन कर अपना लाभ त्याग कर दौड़ते हो। नागराज ने अपना बल विचार कर मन में हार मान ली और तुम्हारे चरणों में चित्त दिया, उसकी आर्त्त-वाणी सुन कर गरुड़ त्यागकर चल पड़े। त्रासित प्रह्लाद की प्रतिज्ञा रक्खी। नृसिंह का शरीर धारण करके राक्षस का नाश किया, श्रुति इसकी साक्षी है।[3] संसार के अधम और दुर्गति में पड़े हुए व्यक्तियों के लिए तुम्हारे मन में केवल करुणा ही रहती है, यह तुम्हारी ख्याति और यश त्रिभुवन में फैली है।[4] हे गोविन्द ! गोपीनाथ ! कृपा करके अपने पास

---

१. कबहुँ तुम नाहिंन गहरु कियौ।
सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ।
गाइ-गोप-गोपीजन-कारन, गिरि कर-कमल लियौ॥
अघ अरिष्ट केसी, काली मथि, दावानलहिं पियौ।
कंस बंस बधि जरासंध हति, गुरु-सुत आनि दियौ॥
करषत सभा द्रुपद-तनया कौ, अम्बर अछय कियौ॥
सूर स्याम सरबज्ञ कृपानिधि, करुना-मृदुल-हियौ।
कासौं सरन जाउँ नँद-नंदन, नाहिंन और बियौ॥
(सूरदास, सू. सा. १।१२१, पृ. ४०)

२. सोइ कछु कीजै दीनदयाल।
जातै जन छन चरन न छांड़ै, करुना-सागर, भक्त-रसाल॥
... ...
सुनि समरथ सरबज्ञ कृपानिधि, असरन-सरन, हरन जग-जाल।
कृपानिधान, सूर की यह गति, कासौं कहै कृपन इहि काल॥
(सूरदास, सू. सा. १।१२७, पृ. ४२)

३. कृपा सो धौं कहां बिसारी राम ?
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन-दुख, धावत हौ तजि धाम॥
नागराज निज बल बिचारि हिय, हारि चरन चित दीन।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि, चलत बिलम्ब न कीन॥
दितिसुत-त्रास-त्रसित निसि दिन, प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी।
अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु, दनुज हन्यो श्रुति साखी॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ९३)

४. राधाकृष्ण निवेदन एइ जन करे।
... .
अधम दुर्गत जने, केवल करुणा-मने, त्रिभुवने ऐ जश-खेयाति।
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०२२)

रक्खो। दैव-माया ने तुम्हारी कृपा-डोर से छुड़ा कर मुझे भव-कूप में डाल दिया है। यदि तुम्हीं फिर से कृपा करोगे, और मेरे केश पकड़ कर ब्रजपुर में रक्खोगे, तभी मेरा भला होगा।[1] इस प्रकार भक्तगण भगवान की दयालुता से अभिभूत होकर करुणासिन्धु, कृपासागर, कृपा-सिन्धु, करुणासागर, दयालु इत्यादि कह कर उनकी बार-बार वंदना करते हैं। अपने उद्धार के लिए उन भगवान से याचना करते हैं जो भक्तों का दुःख दूर करने के लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं। उनके भगवान की यही महत्ता है।

परम कृपालु भगवान भक्त की भावना और प्रेम देख कर ही रीझ उठते हैं। उन्हें जप, तप, कठिन व्रत इत्यादि नहीं चाहिए। वे इतने गुण-ग्राहक हैं कि केवल प्रीति से वश में होते हैं। वह प्रीति भी चाहे जिसकी हो। धनी, निर्धनी, बड़ा, छोटा, सब उनके प्रीति-पात्र हैं। वे किसी का कुल, जन्म, कुछ भी नहीं मानते।[2] वे तो केवल सबकी प्रीति मानते हैं।

---

१. हे गोविन्द, गोपीनाथ, कृपा करि राख निज पथे।
.. ..
दैव-माया-बलात्कारे, खसाइया सेइ डोरे, भव-कूपे दिले फेलाइया॥
पुन जदि कृपा करि, ए जनार केशे धरि, टानिया तोलह ब्रज-भूमे।
तवे से देखिये भाल, नहे बोल फुराइल, कहे दीन दास नरोत्तमे॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०२३)

२. (क) काहू के कुल तन न विचारत।
अबिगत की गति कहि न परति है, ब्याध अजामिल तारत।
कौन जाति अरु पांति बिदुर की, ताही कैं पग धारत॥
(सूरदास, सू. सा. १।१२, पृ. ४)

(ख) गोबिंद प्रीति सबनि की मानत।
जिहिं जिहिं भाइ करत जन सेवा, अन्तर की गति जानत॥
(सूरदास, सू, सा. १।१३, पृ. ५)

(ग) जन की और कौन पति राखै?
जाति-पांति कुल-कानि न मानत, बेद-पुराननि साखै।
(सूरदास, सू. सा. १।१५, पृ. ५)

(घ) ऐसी कौन प्रभु की रीति।...
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पांवरनि पर प्रीति।
(तुलसीदास, वि. प., पद २१४)

(ङ) ऐसी हरि करत दास पर प्रीती।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीती।
(तुलसीदास, वि. प., पद ९८)

(च) रघुबर! रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई।
... ...

ऐसी प्रीति और किस प्रभु की है जो अपने विरद के लिए नीचों पर प्रीति करता है। प्रभु अपने दास पर ऐसी प्रीति करते हैं कि वे अपनी प्रभुता भूल कर जन के वश में हो जाते हैं यह उनकी रीति है। रघुवर ! आपकी यही बड़ाई है। आप धनी का निरादर करके गरीब का आदर करते हैं और उन पर कृपा करते हैं। इस दरबार में सर्वदा ही यह रीति चली आई है कि दीन का आदर होता है। राम प्रीति की रीति भली भांति जानते हैं। वे बड़े की बड़ाई और छोटे की छोटाई दूर करते हैं।

पश्चात्ताप--दीन, दुःखी, और पथभ्रष्ट जीव जब इतने महान् इष्टदेव को देखता है तब उसके पश्चात्ताप की सीमा नहीं रहती। वह तो कर्म-बंधन में पड़ा भटक रहा है। उसके दुःख का निवारणकर्त्ता तो सामने ही उपस्थित है परंतु उसे उससे कोई लाभ नहीं। कारण भगवान नहीं है, वह स्वयं ही है। भगवान तो असीम शक्तिशाली, भक्तवत्सल और गुणग्राहक हैं, परंतु वे क्या करें जब जीव उधर देखता ही नहीं। वे तो अकारण दया करते हैं परंतु जीव विमुखता करता ही जाता है। भक्त के प्राण जो शांति चाहते हैं अपनी इस अधमता पर पश्चात्ताप से भर उठते हैं। भक्त कहता है कि मैं ऐसे बहुत से जन्मों में बौराया रहा, हरि के कमल-चरण त्याग कर उनसे विमुख रहा, फिर भी मन में संतोष नहीं आया। जब जब इस संसार में प्रगट हुआ, अनेक शरीर धारण किए। काम, क्रोध, मद और लोभ के वश अत्यन्त भारी पाप किए।[1] जन्मों के समूह इसी प्रकार सिरा गए। रघुनाथ से प्रभु को छोड़कर मेरे ऐसे अधम व्यक्ति दूसरों के चरणों का सेवन करते फिरते हैं। जो जड़ जीव हैं, कुटिल और खल हैं और केवल कलियुग के मल में सने हुए हैं, उनकी ही प्रशंसा करके मन सूखता है और मैं उन्हें हरि से अधिक करके मानता हूं। सुख के लिए कोटि उपाय निरंतर किए पर पैर कभी न दुखे और रास्ते की कीचड़ जैसा मन मलिन रहा।[2] ऐसा करते करते अनेक जन्म बीत गए, परंतु मन को संतोष

यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई।
(तुलसीदास, वि. प., पद १६५)

(छ) राम की रीति आप नीके जनियत हैं।
बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै ॥ (तुलसीदास, वि. प., पद १८३)

१. ऐसैंहि जनम बहुत बौरायौ।
विमुख भयौ हरि-चरन कमल तजि-मन संतोष न आयौ ॥
जब जब प्रगट भयौ जल थल में तब तब बहु बपु धारे।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोहबस अतिहि किए अघ भारे ॥ (सूरदास, सू. सा. १।२७, पृ. ९)

२. ऐसेहि जन्म समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने ॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल, केवल कलिमल-साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहं, हरि तें अधिक करि माने ॥
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पांय पिराने।
सदा मलीन पंथ के मल ज्यों कबहुं न हृदय थिराने ॥ (तुलसीदास, वि. प., पद २३५)

नहीं आया। दिन-प्रतिदिन दुराशा बढ़ती ही गई और मैं सब लोकों में भ्रमण कर आया। मैं काम, क्रोध, मद और लोभ की अग्नि में जलता रहा और शांति पाने के लिए स्वर्ग, रसातल, भूतल सब जगह घूम आया, परंतु वह अग्नि कहीं भी न बुझी।[1] यह जन्म भी व्यर्थ में ही नष्ट हो गया। हरि का स्मरण और गुरु सेवा नहीं की और न जाकर मधुवन में ही निवास किया। इस बार मनुष्य-देह पाकर भी कुछ उपाय नहीं किया। थोड़ी सी जूठन की लालच में श्वान की तरह भटकता फिरा। विमल-यश गाकर गिरिधर को कभी नहीं रिझाया।[2] हे अधम, तूने नर-जन्म पाकर क्या किया। कूकर शूकर के समान उदर भरा और प्रभु का नाम नहीं लिया। कानों से श्रीभागवत नहीं सुनी और गुरु गोबिंद को नहीं चीन्हा। हृदय में भाव-भक्ति कुछ भी नहीं उपजी और मन विषयों में लगा रहा। झूठे सुख को अपनाकर के माना, पापों के मेरु को बढ़ा कर अंत में बलहीन हो गया। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करके फिर उसी में मन दिया। सूरदास कहते हैं कि भगवान के भजन बिना, हे अधम, तू 'अंजलिजल' के समान क्षीण होता जाता है।[3] जन्म यों ही जा रहा है, कुछ भी तो नहीं बन पड़ा। अत्यन्त दुर्लभ शरीर पाकर भी कपट त्यागकर रामका भजन मन, वचन और काया से नहीं किया। राम के सेवक साधुओं की सेवा नहीं की। श्री रामचन्द्र के गुण न तो पुलकित चित्त से सुने, और न मुदित मन से कहे। अब जब जरा ने आकर अंग शिथिल कर दिए तब मणि-हीन सर्प के समान व्याकुल होता हूं और शिर धुन कर पछताता हूं। इस

---

१. ऐसैं करत अनेक जन्म गए मन संतोष न पायौ।
दिन-दिन अधिक दुरासा लाग्यौ, सकल लोक भ्रमि आयौ ॥
सुनि-सुनि स्वर्ग, रसातल, भूतल, तहां-तहां उठि धायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-अगिनितैं कहूं न जरत बुझायौ ॥ (सूरदास, सू. सा. १।१५४, पृ. ५१)

२. जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ।
हरि-सुमरिन नहिं गुरु की सेवा, मधुबन बस्यौ न जाइ ॥
अब की बार मनुष्य-देह धरि कियौ न कछू उपाइ।
भटकत फिर्यौ स्वान की नाईं नैंकु जूठ कैं चाइ ॥
कबहुं न रिझए लाल गिरिधरन, बिमल-बिमल जस गाइ ॥
(सूरदास, सू. सा. १।१५५, पृ. ५१)

३. नर तैं जनम पाइ कह कीनौ।
उदर भर्यौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ ॥
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि गुरु गोबिंद नहिं चीनौ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी मन बिषया में दीनौ ॥
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कैं भीनौ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बल हीनौ ॥
लाख चौरासी जोनि भरमि कै फिरि वाहीं मन दीनौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु ज्यौं अंजलि-जल छीनौ ॥
(सूरदास, सू. सा. १।६५, पृ. २२)

दु:सह विपत्ति में कोई तो मित्र नहीं दीखता।[1] मनुष्य-तनु पाकर मैंने कौन सा लाभ पाया। स्वप्न में भी काया, वचन और मन से दूसरे के काम में नहीं आया। इस संसार में भय, निद्रा, मैथुन, और अहंकार की प्रवृत्ति सबमें समान रूप से है। देव-दुर्लभ शरीर धारण करके हरि का भजन नहीं किया और न अभिमान छोड़ा।[2] आखिर यह दिन सब कैसे बीत गए ? यह दिन सब विषयों के लिए चले गए। तीनोंपन उसी प्रकार बीत गए, शीश पर के केश श्वेत हो गए, आंखें अंधी हो गयीं, कानों से सुना नहीं जाता, पैर थक गए, परंतु मूर्ख जीव गंगोदक का त्याग करके कूप जल पीता है और हरि का त्याग करके प्रेत पूजता है। राम नाम मुख से लेने में कुछ भी तो खर्च नहीं लगता।[3] मैंने न तो गोपाल का भजन किया, न उनकी रसाल लीला में मन लगाया, न सुबोधिनी सुनी और न साधु-संग किया। कभी घड़ी, आधी घड़ी को भी तो रसना ने चाव से कृष्ण नाम नहीं रटा। लाज भी तो नहीं आती कि मनुष्य तनु पाकर मैंने क्या कमाया। श्रीनाथ की छबीली छवि भी नहीं देखी और न उन के द्वार पर शीश नवाया। मनुष्य जन्म पाकर पाप कमाया।[1] भक्त सोचता है कि जब इस संसार

---

१. कछु ह्वै न आय गयो जनम जाय।
अति दुरलभ तन पाइ कपट तजि, भजे न राम मन बचन काय॥
... ...
सेये नहिं सीतापति-सेवक साधु सुमति भले भगति भाय।
सुने न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुबंसराय॥
अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यों बिकल अंग दले जरा घाय।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ८३)

२. लाभ कहा मानुष तनु पाए।
काय बचन मन सपनेहुं कबहुंक घटत न काज पराए॥
... ...
भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाए।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गंवाए॥
(तुलसीदास, वि. प., पद २०१)

३. सबै दिन गए बिषय के हेत।
तीनौं पन ऐसैं हीं खोए केस भए सिर सेत॥
आंखिनि अंध, स्त्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत।
गंगा-जल तजि पियत कूप-जल हरि तजि पूजत प्रेत॥
... ...
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत॥ (सूरदास, सू.सा. १।२९६, पृ. ९७)
... ...

४. (क) गायो न गोपाल मन लायौ न रसाल लीला सुनी
न सुबोधिनी न साधु संग पायौ है।
सेव्यो नहिं स्वाद करि घरी आधी घरी हरि
कबहुं न कृष्ण नाम रसना रटायौ है॥

में आकर नर जन्म पाया, और विषय-वासना में ही लगा रहा तो इस संसार में जन्म ही वृथा लिया। हरि की भक्ति नहीं की, जननी को बोझ डाल कर मारा ही। यह काया हरि के काम नहीं आई। भाव-भक्ति और हरि-यश जहां सुनाया जाता है, वहां जाते अलसाती है। लोभातुर हो कर काम के लिए उठ कर दौड़ती है। जहां हरि के चरण कमल हैं, वहां किसी तरह भी नहीं झुकती। श्याम के अंग स्पर्श किए बिना मैं चारों ओर भटकता हूं और भगवानका भजन करके मैंने विषय रूपी परम विष खाया है।[२] कितने दिन हरि-स्मरण के बिना खो दिए पर-निन्दा करते करते न जाने कितने जन्म बिता दिए।[३] यह जन्म 'ऊआबाई' करते ही बिता दिया। यदुपति के चरण-कमलों की वंदना नहीं की, देखता ही रह गया।[४]दोनों में से एक भी तो न हुआ। न तो हरि का भजन किया और न गृह-सुख ही पाया। अब पछताने से क्या होता है, बहुत देर हो गई।[५] मन, तूने भक्ति का स्वाद नहीं

रसिक कहे बार बार लाजहू न आवे तोहि मनुष्य जन्म पाय
मूढ़ कहा तू कमायौ है। (रसिक दास, की. र., पृ. ३७५)

(ख) गायो न गोपाल मन लायो न निवार लाज,
पायो न प्रसाद साधु मंडली में जायके।
... ...
श्री नाथ जी को देख के छक्यो न छबीली
छवि सिघपोर पूर्यो नाहि शीशहुं नवायके।
कहे हरिदास तोहि लाजहुं न आई अज मानस।
जनम पाय के कमायो कहा आयके। (हरिदास, की. र., पृ ३७५)

२. काया हरि कैं काम न आई।
भाव-भक्ति जहं हरि-जस सुनियत, तहां जात अलसाई॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ, तहां सुनत उठि धाई।
चरन-कमल सुन्दर जहं हरि के क्यों हुं न जाति नवाई॥
जब लगि स्याम-अंग नहि परसत, अंधे ज्यों भरमाई।
सूरदास भगवंत-भजन तजि, बिषय परम बिष खाई॥
(सूरदास, सू. सा. १।२९५, पृ. ९७)

३. किते दिन हरि-सुमिरन बिन खोए।
पर निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिनोए॥........................
सूरदास, सू. सा. १।५२

४. जनम गंवायौ ऊआबाई।
भजे न चरन-कमल जदुपति के रह्यौ बिलोकत छाई॥
(सूरदास, सू. सा. १।३२८, पृ.१०८)

५. द्वै मैं एकौ तौ न भई।
ना हरि भज्यौ, न गृह सुख पायौ, बृथा बिहाइ गई॥
... ...
होत कहा अबके पछिताएं बहुत बेर बितई। (सूरदास, सू. सा. १।२९९, पृ. ९८)

पाया। नंदसुवन लाडले ब्रजराज को हृदय में नहीं धारण किया। स्त्री, पुत्र और संपत्ति में मन भरमाता रहा। गिरिधर लाल के गुण और प्रेम का गान घड़ी भर भी नहीं किया। विषयों और इंद्रिय-परायणता में जन्म गंवाया। हरिदास कहते हैं कि ओ मूढ़ ! अंत समय में पछताता है।[1] कृष्ण की कथा, कृष्ण के नाम और कृष्ण की भक्ति के बिना दिन बीते जाते हैं। वे प्राणी क्यों जीते हैं जो कृष्ण की बात मुख से नहीं करते।[2] हरि ! हरि ! मैंने व्यर्थ में ही जीवन गंवाया। मनुष्य का जन्म पाकर राधा-कृष्ण को नहीं भजा। जान सुनकर भी विष खाया। गोलोक का प्रेम-धन जो हरि नाम संकीर्त्तन है उसमें रति नहीं हुई। संसार-दावानल से नित्यप्रति हृदय जलता है परंतु उसे जुड़ाने का उपाय नहीं किया।[3] मैंने कांच के भ्रम में माणिक हार दिया, अब उसका शोक हो रहा है। सुख के लिए यह घर बांधा परंतु दुःख ही पाया। जलती आग देखकर भी पतंग के समान उसमें स्वेच्छा से पड़ कर मरा।[4] जान सुन कर भी मन कृष्ण-पद का भजन नहीं करता। पुनः पुनः गर्भ की यंत्रणा पाता है। जीव बार बार जन्म लेता है और बार बार मरता है। फिर भी भजन नहीं करता।[5]

---

१. मन तें भक्ति स्वाद नाहीं पायो।

.. ...

नंदसुवन ब्रजराज लाड़िलो सो उर में नाहीं लायो।
सुतदारा सुपने की संपत्ति तिनके संग भरमायो ॥
गिरिधर लाल रंगीले के गुन प्रेम धरी नहिं गायो ॥
इंद्रिय विषय परायण डोले मूरख जन्म गंवायो ॥
कहे हरिदास, मूढ़ मति बौरे अंत समय पछतायो ॥ (हरिदास, की. र., पृ. २६०)

२. कृष्ण कथा बिन कृष्ण नाम बिन कृष्ण भक्ति बिन दिवस जात।
ते प्राणी काहे को जीवत नहिं मुख वदत कृष्ण की बात ॥
(परमानंददास, रा.क.द्रु., भाग २, पृ. १७०)

३. हरि हरि बिफले जनम गोयाइ नुं।
मनुष्य-जनम पाञ', राधाकृष्ण ना भजिया, जानिया शुनिया विष खाइ नुं।
गोलोकेर प्रेम धन, हरि नाम संकीर्त्तन, रति ना हइल केने ताय।
संसार-दावानले, निरवधि हिया ज्वले, जुड़ाइते ना कैलुं उपाय ॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद २९८८)

४. काचेर भरमे, माणिक हाराय्या, एखन हइछे शोक।
सुखेर लागिया, ए घर बांधिलुं, करिलुं दुःखेर तरे।
ज्वलंत आनल, देखिया पतंग, इच्छाये पुड़िया मरे ॥ (अनंतदास, प. क. त., पद २९९५)

५. (क) जान्या शुन्या कृष्ण-पद ना करे भावना।
पुनः पुन पाय सेइ गर्भेर यंत्रणा ॥
एक बार जनमये आर बार मरे।
तथापिओ हरि-पद भजन ना करे ॥ (बलरामदास, प. क. त., पद २९९९)

(ख) दास लोचन, भावे अनुक्षण, मिछाइ जनम गेल।
हरि ना भजिलुं विषये मजिलुं, हृदये रहल शेल ॥
(लोचनदास. प.क.त., पद ३०४३)

भय प्रदर्शन--पश्चात्ताप से भरा जीव अपने को बार बार प्रेरित करता है कि वह संसार से अलग होकर भगवान से प्रेम करे। यदि ऐसा न करेगा तो उसकी क्या दशा होगी। भक्त भयभीत होकर मन को डांट फटकार कर हरि की ओर उन्मुख करता है। भक्त कहता है कि तूने क्यों गोबिंद का नाम भुला दिया। अब भी चेत और हरि का भजन कर; तेरे सिर के ऊपर भारी काल फिर रहा है। वे स्त्री, पुत्र और धन कुछ भी काम नहीं आएंगे जिनके लिए तूने अपना सब कुछ नष्ट कर दिया है। सूरदास कहते हैं, "भगवान के भजन बिना पछता कर और आंसू गिरा कर रह जाओगे। काल बली से तो सारा संसार कांपता है, ब्रह्मा इत्यादि भी रोते हैं फिर मुझ अधम की कौन सी गति होगी जो उदर भर कर सो रहता है।[1] रे मन! तू विषयों में लगना छोड़ दे। तू सेमर का सुत्रा क्यों होता है, अंत में कपट खुल ही जायगा। कनक और कामिनी को ग्रहण करता है, इससे हाथ में केवल पछताना रह जायगा। अभिमान त्याग कर राम कह, नहीं तो ज्वाला में जलना पड़ेगा। हरि के सुमरिन बिना जोगी के बंदर के समान नाचना पड़ेगा।[2] गोपाल का भजन कर लो, नहीं तो काल व्याल तुम्हें ग्रसेगा। यदि तुम हरि का व्रत मन में नहीं लोगे, तो ऐसा कौन त्राता है जो कुठाव पर तुम्हारा हाथ पकड़ेगा।[3] अंत समय के साथी तो घनश्याम ही हैं। माता-पिता, बंधु-पुत्र सब तब तक के ही साथी हैं जब तक जिसका काम है। यह कोमल चाम भी तभी तक है, जब तक मांस, रक्त और अस्थियां शरीर में हैं। यह संसार भी तभी तक सगा है जबतक इसका मतलब है। इतना जानते हुए भी मूर्ख मन इसी संसार में घर बनाए हुए है। सूरदास कहते हैं कि संसार का दुःख छोड़कर बृन्दावन में निवास क्यों नहीं करता।[4]" ओ मूढ़

---

१. किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए।

.. .. ..

काल बली तें सब जग कांप्यौ, ब्रह्मादिक हूं रोए॥
सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए॥ (सूरदास, सू.सा. १।५३, पृ.१८)

२. रे मन, छांड़ि विषय कौ रंचिबौ।
कत तूं सुवा होत सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिबौ॥
अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगो पचिबौ॥
तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबौ॥
सत गुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-रतन धन संचिबौ।
सूरदास-प्रभु-हरि-सुमिरन बिनु जोगी-कपि ज्यौं नचिबो॥
(सूरदास, सू. सा. १।५९, पृ. २०)

३. जौ हरि-व्रत निज उर न धरैगौ।
तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावं पकरैगौ॥
(सूरदास, सू. सा. १।७५, पृ. २५)

४. अंत के दिन कौं हैं घनस्याम।
माता-पिता-बंधु-सुत तौ लगि, जौ लगि जिहिं कौं काम॥
आमिष-रुधिर-अस्थि अंग जौलौं तौलौं कोमल चाम।
तौ लगि यह संसार सगौ है जौ लगि लेहि न नाम॥

मन, मेरी शिक्षा सुन। हरि विमुखता से कभी भी किसी ने सुख नहीं पाया, यह तो तू समझ ले। विना भगवान के भजे हुए विपत्ति नहीं छुटती। अतः सब आशाओं का परित्याग करके राम का चेरा हो जा।[1] राम से प्रियतम की प्रीति भुलाकर जीवन व्यर्थ ही जाता है। जिस सुख को तू सुख मान रहा है, देख तू, उसमें कितना सुख है ! मोह में फंसा हुआ फटे आकाश को सीने में अर्थात् असंभव साधन में क्यों लगा हुआ है ? प्रभु का सुयश गा कर अमृत का पान क्यों नहीं करता ?[2] सुन मन! मैं तुझ से वार वार हितकारी, प्रिय और पुनीत वचन कहता हूं, उसे समझ कर सुगम पथ क्यों नहीं ग्रहण करता ! विषयों को देख, ये क्या हैं! ये तो भार हैं जो कभी सिर पर, कभी कंधे पर लिए फिरना है। इसे ठीक से समझ ले, व्यर्थ में सांसत सहन करता है। सोच कर देख ले कि मृगजल मथ कर किसने घी पाया है। उसी प्रभु की शरण में जा जिससे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है।[3] हरि नाम लेने में आलस्य क्यों करता है ? काल शर-संधान किए फिरता है; वह बेर-कुबेर कुछ नहीं समझता, सर्वदा कंधे पर चढ़ा रहता है। हीरे-जवाहर होने से और हाथी बंधे रहने से क्या होता है ! जब वह (काल) आता है तब कुछ वश नहीं चलता।[4] रे मन ! नंदनंदन के अभय दाता चरणारविंदों का भजन कर। इस धन, यौवन, पुत्र और परिजन किसी का भी विश्वास नहीं है। कमल-पत्र पर के जल-बिंदु के समान यह जीवन ढलमल है। हरि-पदों का भजन नित्यप्रति कर। सोच कर देख कि और कोई गति ही नहीं है। धन, जन, पुत्र आदि अपने कोई नहीं हैं, इसलिए हरि-नाम को सार कर ले। उनकी लीला का गान कर ले और उसी में मत्त हो जा, उन चरणों

इतनी जउ जानत मन मूरख, मानत याहीं धाम।
छांड़ि न करत सूर स॰ भव-डर बृन्दाबन सौं ठाम॥
(सूरदास, सू. सा. १।७६, पृ. २५)

१. सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सबेरो॥
... .
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति संदेह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छांड़ि करि होहि राम कर चेरो॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ८७)

२. वि. प., पद १३२

३. वि. प., पद १३३

४. हरि के नाम को आलस कत करत है रे, काल फिरत सर सांधे।
बेर कुबेर न जानत चढ़्यौ रहत है कांधे॥
हीरा बहुत जवाहर सांचे कहा भयो हस्ती दर बांधे।
कहे हरिदास महल में बनिता बनि ठाढ़ी भई,
कछु न चलत जब आवत अंध की आंधे॥
(हरिदास, रा. क. द्रु., भाग १, पृ. २०७)

के धन को पाकर तू कृतार्थ हो जायगा।[1] मेरा-मेरा करके रात दिन मरता है, यम-दूत भी रंग देखते हैं। सुन्दर नगरों में एवं प्रति घर में, यम का स्थान है। किसी भी दंड, दिवस या वर्ष में आकर वह 'हन' देगा। दारा, पुत्र, वधू सब नीम के समान तीते हैं। मुख भर हरि नहीं कहेगा तो कैसे तरेगा।[2] ओ मन ! तू क्यों गर्व करता है ? इस भवसागर से तैरने के लिए हरि-नाम को सार कर। तू इस अनित्य देह को धारण किए है। अपना अपना करके मरता है। पीछे से शमन हो या न हो, इसका भय है। मेरे प्राण रात दिन रोते हैं। पीछे से ब्रज-प्राप्ति नहीं होगी।[3] संत-समागम छोड़ कर तू असंतों का संग करता है। तू हरि विमुखों का संग छोड़ दे, जिसके संग से कुमति उपजती है और भजन में भंग पड़ता है। वे हरि-विमुख जन सर्वदा असत् पथ की ओर ले जाते हैं और कामिनी का संग करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। यम के दूत दूर से खड़े रंग देखा करते हैं। अतः उस हरि-नाम का जो परम मधु का

---

१. (क) भजहुं रे मन, नंद नंदन, अभय चरणारविंद रे।

. . . .

ए धन जौवन, पुत्र परिजन, इथे कि आछे परतीत रे।
कमल-दल-जल, जीवन टलमल, भजहुं हरि-पद नीत रे॥

(गोविंददास, प. क. त., पद ३०३२)

(ख) भज मन नंद-कुमार।
भाविया देखह भाइ गति नाहि आर॥
धन जन पुत्र आदि केवा आपनार।
अतये करह मन हरि-नाम सार॥

. . . . .

तांर लीला-नाम गाने सदा हओ मत्त।
से चरण-धन पावे हइबे कृतार्थ॥

(आत्माराम, प. क. त., पद ३०३३)

२. बद बद हरि, छद ना करिह, विपदे बेढ़ल देश।
मोर मोर करि, रात्रि दिने मरि, यम-दूते देखे रंग॥
सुन्दर नगरे, प्रति घरे घरे, विषम जमेर थाना।
दंड जे दिवस, वत्सर गणिछे, कोन दिने दिवे हाना॥
दारा पुत्र वधू, यतन करिछ, सकलि निमेर तिता।
मरण-समये, हाते गले बांधि, मुखे ज्वालि दिवे चिता॥
वदन भरिया, हरि ना बलिला, शमन तरिबे किसे॥

(लोचनदास, प. क. त., पद ३०३६)

३. अनित्य ए देह धरि, आपन आपन करि मरि, पाछे आछे शमनेर भय।
नरोत्तम दास मने, प्राण कांदे रात्रि दिने, पाछे ब्रज-प्राप्ति नाहि हय॥

(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०१९)

सार है पान कर। तू हरि के चरण-कमलों में भृंग के समान मत्त रह।[1]

उद्धार की प्रार्थना—भक्त इस प्रकार अपने मन को समझा बुझा कर उसे भगवान की ओर प्रेरित करता है और भगवान से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करता है। इस असीम दुर्गति में पड़े हुए जीव का उद्धार एकमात्र भगवान से ही संभव है। भक्त कहता है कि नाथ! अब की मुझे उबार लो। मैं संसार-सागर में मग्न हूं, तुम कृपा-सिंधु हो। इस भवसागर का जल जो है वह तो अत्यंत गंभीर माया है और उसमें लोभ की लहरें और तरंगें उठ रही हैं। अनंग रूपी ग्राह पकड़ कर अगाध जल में लिए जाता है। इन्द्रियां-रूपी मछली शरीर को काटे लेती हैं और पाप की गठरी शिर पर है। मोह-रूपी सिवार में उलझ कर पैर इधर उधर भी नहीं होने पाता। क्रोध, दंभ, गुमान और तृष्णा की वायु झकझोरती है। स्त्री-पुरुष जो हैं वे नाम-नौका की ओर नहीं देखने देते। हे करुणामय, सुनो! मैं थक कर बेहाल हो गया हूं। मुझे हाथ पकड़ कर इस भवसागर से निकाल लो।[2] नाथ! अब मुझे शरण में रख लो। अहंभाव में पड़ कर मैंने तुम्हें भुला दिया। बिना तुम्हारी आराधना के कर्म, धर्म, तीर्थ सब अकारथ हो गए। अभय दान देकर मेरे शीश पर हाथ रक्खो।[3] अब तुम मुझ डूबते हुए को क्यों नहीं उबारते? दीन बंधु,

---

१. (क) तेज मन हरि-विमुखनके संग।
जाको संगहि कुमति उपजतहिं, भजनहि पड़त विभंग।।
सतत असत-पथ लेइ जो जायत, उपजत कामिनि-संग।।
शमन-दूत परमायु परीखत, दूरहिं नेहारत रंग।
अतये से हरि-नाम सार परम मधु, पान करह छोड़ि ढंग।
कह माधो हरि-चरण सरीरुहे, माति रहु जनु भृंग।। (माधो, प. क. त., पद ३०३५)

(ख) तजौ मन, हरि-बिमुखनि कौ संग।
जिनकैं संग कुमति उपजत है, परत भजन मैं भृंग।। (सूरदास, सू. सा. १।३३२ पृ. ११०)

२. अब कैं नाथ, मोहिं उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि मैं, कृपासिंधु मुरारि।
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कौं, गहे ग्राह अनंग।।
मीन इन्द्री तनहिं काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार।।
क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्ना, पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत सुत-तिय, नाम नौका ओर।।
थक्यौ बीच बिहाल, बिहवल, सुनो करुनामूल।
स्याम भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल।। (सूरदास, सू. सा.१।९९, पृ. ३१)

३. अब मोहिं सरन राखियै नाथ।
कृपा करी जो गुरुजन पठए, बह्यौ जात गह्यौ हाथ।
अहंभाव तैं तुम बिसराए इतनेहिं छूट्यौ साथ।।
... ...

करुणानिधि स्वामी ! जन के दुःखों को दूर करो। दुःख-हरन मुरारि! मेरे ऊपर करुणा क्यों नहीं करते ? तुम तो त्रिविध तापों को दूर करने वाले हो। मैं इस कलिकाल जनित मल से युक्त हूं। इस पर भी तुम सम्हाल नहीं करोगे, तो मैं जिऊंगा किस तरह ! तुम तो सब प्रकार से सामर्थ्यवान् हो, मैं सब प्रकार से दीन हूं, यह जान कर मेरे ऊपर करुणा करो।[1] हे रघुबीर गुसाईं ! मेरी यही बिनती है और यही आशा और विश्वास भी है कि तुम जीव की (मेरी) जड़ताई हरोगे। मेरे टेढ़े कर्म मुझे यहां से ले जायेंगे, वहां मुझे तुम उसी प्रकार नहीं छोड़ोगे, जिस प्रकार कछुआ अपने अंडे को।[2] हे अंतर्यामी. करुणाकर ! तुम जानते हो कि मैं अपराध-सिंधु हूं। मैं इस भवव्याल से ग्रसित हूं। हे गरुड़गामी ! तुम्हारी शरण आया हूं।[3] यद्यपि मेरे अवगुण अपार हैं, मैं इस संसार के ही योग्य हूं परन्तु हे करुणानिधान ! अपने गुण विचार कर मेरे ऊपर दया करो।[4] मैं कहां जाऊं, किससे कहूं, मेरा तो ठिकाना ही कहीं और नहीं है। मेरे दुर्दिन, दुर्दशा, दुःख और दूषण प्रतिदिन ही बढ़ते जायेंगे, जब तक तुम मेरी ओर नहीं देखोगे।[5] राम तुम ! सुखधाम और श्रमभंजन हो। मैं तीनों तापों से

कर्म, धर्म तीरथ बिनु राधन, ह्वै गए सकल अकाथ।
अभय-दान दै, अपनौ कर धरि, सूरदास कै माथ ॥ (सूरदास, सू. सा. १।२०८, पृ. ६९)

१. कस न करहु करुना हरे ! दुखहरन मुरारि।
त्रिबिध-ताप-संदेह-सोक संसय भयहारि ॥
यह कलिकाल-जनित मल मतिमंद मलिनमन।
तेहि पर प्रभु नहिं कर संभार, केहि भांति जियै जन ?
सब प्रकार समरथ प्रभो ! मैं सब बिधि दीन।
यह जिय जानि द्रवहु नहीं मैं करम-बिहीन ॥ (तुलसीदास, वि. प., पद १०९)

२. यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस बिस्वास भरोसो हरौ जीव जड़ताईं ॥
... ...
कुटिल करम लै जाय मोहिं जहं जहं अपनी बरिआईं।
तहं तहं जिनि छिन छोह छांड़िए कमठ-अंड की नाईं ॥
(तुलसीदास, वि. प., पद १०३)

३. मैं अपराध-सिंधु करुनाकर जानत अंतरजामी ॥
तुलसिदास भवव्याल-ग्रसित तव सरन-उरग-रिपु-गामी ॥
(तुलसीदास, वि. प, पद ११७,)

४. जद्यपि मम अवगुन अपार संसार-जोग्य रघुराया।
तुलसिदास निज गुन बिचारि करुना-निधान करु दाया ॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ११८)

५. कहां जाउं कासों कहौं और ठौर न मेरो ?
दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन ॥
जब लौं तू न बिलोकिहैं रघुबंस बिभूषन ॥ (तुलसीदास, वि. प., पद १४९)

अत्यंत दुःखित हूं। यह मन में जान कर मुझे अपनी शरण में रख लो।[१] अहो दीन दयालु हरि! मेरी ओर कब देखोगे? मैं कलि-काल से ग्रसित हूं। मैं अत्यंत विपरीत साधन करता रहता हूं, तुम्हारे बिना कौन निकाले! तुम्हारे बिना और कहूं किससे! मेरा दुःख हरो और मुझे निहाल करो।[२] हे हरि! अब मुझे भूलने से नहीं बनेगा। तुम विपत्ति-विदारक हो और सुख में घने मित्र हो। अब मैं तुम्हारे अधीन हूं, तुम बिना कौन सुने? मेरी बिनती सुनो, मैं तुम्हारी शरण हूं।[३] हे हरि! मैंने व्यर्थ ही अपना जन्म गंवाया। हे प्रभु नंदसुत, तुम्हारी हा हा खाता हूं, वृषभान सुता के साथ इस बार मेरे ऊपर करुणा करो। मुझे अपने चरणों (के पास) से ठेलो मत। तुम्हारे बिना मेरा कौन है![४] हे चैतन्य-निताई! इस बार मेरे ऊपर करुणा करो। मेरे बराबर पापी संसार में और कोई नहीं है।[५] ओ मेरे गौरांग! जिसे मैं अपना कह सकूं, ऐसा मेरे कोई नहीं है। तुम मुझे अपना करके अपने चरणों में रख लो। हे गोविंद, गोकुल[६]चन्द्र, परम आनंद कंद! तुम गोपयों के प्रिय हो। मेरा तुमसे यही निवेदन है कि तुम मुझे अपने प्रिय चरणों की सेवा

---

१. तुम सुखधाम राम स्रमभंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई।
यह जिय जानि दास तुलसी कहं राखहु सरन समुझि प्रभुताई॥
(तुलसीदास, वि. प., पद. २४२)

२. अहो हरि दीन के जु दयाल।
कब देखोगे दिशा हमार ग्रसितहूं कलिकाल॥
... ...
करत अति विपरीत साधन चलत चाल कुचाल।
काढ़बेकु नाहि समरथ तुम बिना नंद लाल॥
तुम बिन और कौ सुं कहीये एही हमारो हाल।
हंसो कहाजु हरो आरत रसिक करो निहाल॥ (रसिकदास, की. र., पृ. ३७०)

३. गब हरि भूले नां ही बने।
विपत विदारन तुम हो गिरिधर सुख में मित्र घने॥
अब मैं अधीन कछु नाहीं जानत तुम बिन कौन सुने।
इतनी बिनती सुनो प्रिय मेरी, व्रजपति तुम सरने॥ (व्रजपति, की. र., पृ. २७३)

४. हरि हरि विफले जनम गोयाइलुं।
... ...
हाहा, प्रभु-नंद सुत, वृषभानु-सुता, यूथ, करुणा करह एइ बार।
नरोत्तम दास कय, ना ठेलिह रांगापाय, तोमा बिने के आछे आमार॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद २९८८)

५. एइ बार करुणा कर चैतन्य निताई।
मो समान पातकी आर त्रिभुवने नाइ। (लोचनदास, प. क. त., पद ३००३)

६. आरे मोर गौरांग सोना।
आपना बलिया मोर नाहि कोन जना॥
... .
राखिह चरण-तले करिया आपना॥ (वासुदेव घोष, प. क. त., पद ३००८)

में रख लो। मैं बड़ा अधम जन हूं। मेरे ऊपर कृपा करो और अपना दास बनाकर वृन्दावन में रख लो। हे गोविंद, गोपीनाथ! कृपा करके अपने पास रख लो। बड़ी कठिनाई से मैं ब्रजपुर तक पहुंच पाया था। माया ने फिर भवकूप में डाल दिया है, तुम मेरा उद्धार करो और ब्रज भूमि में पहुंचा दो।[१]

वंदना—पदावली-साहित्य में वंदना अथवा विनती के पद सूरदास ने अपेक्षाकृत अधिक बनाए हैं। उन्होंने वंदना पदों में अपने इष्टदेव की संपूर्ण-रूप से स्तुति की है और उन्हें एकान्त रूप से भजा है। बंगला वैष्णव कवि नरोत्तमदास ने भी प्रार्थना पद अधिक बनाए हैं। नरोत्तमदास के प्रार्थना पदों के संबंध में श्री जगद्‌बन्धु भद्र का मत उल्लेखनीय है। वे 'गौर-पद-तरंगिणी' की भूमिका में उनका परिचय देते हुए कहते हैं कि "ठाकुर महाशयेर प्रार्थनार न्याय प्राणस्पर्शी, हृदयद्रवकारी, चित्त उन्मत्तकारी, प्रार्थनार जगतेन कोन भाषाय ओ कोन धर्मे आछे कि ना संदेह।" अर्थात् ठाकुर महाशय के प्रार्थना पदों के समान प्राणस्पर्शी, हृदय को द्रवित करने वाली और चित्त उन्मत्त करने वाली प्रार्थना संसार की किसी भाषा, किसी धर्म में हैं, इसमें संदेह है।

भगवान के माहात्म्य को हृदय में धारण कर उनकी स्तुति करना, नतमस्तक हो विनय करना तथा उनको प्रणाम करना वंदन-भक्ति है। वंदना संबंधी पदों में प्रायः यही भावना पाई जाती है। भक्त कहता है कि मैं हरि के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ। उन चरणों की कृपा से पंगु पर्वत को लांघता है और अन्धे को सब कुछ दीखता है। बहरा सुनता और रंक छत्र धारण करके चलता है। हे स्वामी! तुम करुणामय हो, मैं बार-बार चरणों की वन्दना करता हूँ।[२] मैं जगदीश के उन चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो गायों के पीछे दौड़ते

---

१. (क) प्राणेश्वर निवेदन एइ जन करे ।
गोविन्द गोकुल चन्द्र, परम आनन्द-कन्द, गोपी-कुल-प्रिय-देह हरे ।
तुया प्रिय पद-सेवा, एइ धन मोरे दिवा, तुमि प्रभु करुणार निधि ॥
... .
मो बड़ अधम जने, कर कृपा-निरक्षणे, दास करि राख वृन्दावने ॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०२१)

(ख) हे गोविन्द, गोपीनाथ, कृपा करि राख निज पथे ।
... .
अनेक दुःखेर परे, लैयाछिला ब्रज-पुरे, कृपा-डोर गलाय बांधिया ।
दैव-माया-बलात्कारे, खसाइया सेइ डोरे, भव कूपे दिले फेलाइया ॥
पुन जदि कृपा करि, ए जनार केशे धरि, टानिया तोलह ब्रज-भूमे ॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०२३)

२. चरन कमल बन्दौं हरि-राइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे कौं सब कछु दरसाइ ॥
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ॥

थे। जिन धूल से भरे पदों को गोपियों ने हृदय से लगा रक्खा है, और शम्भु एवं चतुरानन ने हृदय-कमल में स्थिर कर रक्खा है। जो पद-कमल रमा के हृदय के भूषण हैं और जो तीन लोक-पावनकर्त्ता हैं, उन चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ।[1] मैं करुणानिधान रघुपति की बन्दना करता हूँ जिनकी कृपासे संसारी भेद-बुद्धि छूट जाय। उनके चरण-कमल का ब्रह्मा और महेश सेवन करते हैं। तीन लोकों के तिलक गुणधाम राम शांति के धाम हैं।[2] हे राजीवलोचन राम, आप जानकी के जीवन, संसार के जीवन, और संसार के हितकारक हैं। संसार के पिता, माता, गुरु, हितू और मित्र हैं, सबके ऊपर कृपालु हैं, किसी पर भी टेढ़े नहीं हैं। आप दुःख दूर करने वाले, अतुल दानी, भक्त प्रतिपाल, कृपालु और पतित पावन हैं। समस्त संसार में वंदित, एवं समस्त देव सेवित हैं।[3] माधव का नाम ही मंगलमय है। उनका मुख और हाथ

सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तिहि पाइ ॥
(सूरदास, सू. सा. १।१, पृ. १)

१. (क) चरन कमल बन्दौं जगदीस जे गोधन संग धाए।
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए॥
... ...
जे पद कमल शम्भु चतुरानन हृदै कमल अन्तर राखे।
जे पद कमल रमा उर भवन वेद भागवत मुनि भाखे॥
जे पद कमल लोक त्रै पावन बलिराजा के पीठ धरे।
सो पद कमल दास परमानन्द गावत प्रेम पीयूष भरे॥
(परमानन्द, अष्ट. व. स., पृ. ५८७)

(ख) बन्दौं चरन-सरोज तिहारे।
सुन्दर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रानपियारे।
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु सुता उर ते नहिं टारे॥
... ...
सूरदास तेई पद-पंकज, त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे॥
(सूरदास, सू. सा., १।९४, पृ. ३०)

२. बन्दौं रघुपति करुनानिधान।
जाते छूटै भव भेद ज्ञान।
रघुबंस-कुमुद सुख-प्रद निसेस।
सेवित पदपंकज अज महेस॥
... ...
त्रैलोक्य तिलक गुनगहन राम।
कह तुलसिदास बिश्राम धाम॥ (तुलसीदास, वि. प., पद ६४)

३. जानकी-जीवन, जगजीवन, जगत हित,
जगदीस, रघुनाथ, राजीवलोचन राम। (तुलसीदास, वि. प., पद ७७)

सब मंगलमय है। भक्तों का संसार सदा मंगलमय रहता है। वसुदेव के कुमार मंगल शरीर वाले हैं; उनका दर्शन, पूजन और भजन सब मंगलमय है।[1] हे गोविन्द हरे! आपही कालीय मर्दन, कंस-निसूदन, देवकीनन्दन, राम हैं। आप मत्स्य, कच्छ, शूकर, नरहरि, वामन, भृगुपति, बुद्ध, कल्कि इत्यादि रूपों में अवतरित होते हैं। आप कंसारि जनार्दन देव हैं। आप दैत्य-दलन-कर्त्ता, केशव, माधव, यादव, यदुपति सब कुछ हैं। आप गोकुल के चन्द्र हैं, आपका वाहन गरुड़ है और आप गज का दुःख मोचन करने वाले मुरारि, पुरुषोत्तम, परमेश्वर, प्रभु और परब्रह्म हैं। हे देव, देवकी-सुत! दुःखी पर दया करके दुर्मति की रक्षा करो।[2] भगवान का यश गाकर भक्तों ने उनकी जय जयकार की है और उनके वेश,

---

१. मंगल माधव नाम उचार।
मंगल वदन कमल कर वंदन मंगल मंगल जन को सदा संसार॥
देखत मंगल पूजत मंगल गावत मंगल चरित उदार।
मंगल श्रवण कथा रस मंगल, मंगल तनु वसुदेव कुमार॥
(परमानंददास, रा. क. द्रु., भाग २, पृ. ७१)

२. (क) हरे हरे गोविंद हरे।
कालिय मर्दन, कंस निसूदन, देवकि नंदन राम हरे।
मत्स्य कच्छवर, शूकर नरहरि, वामन भृगुपति रक्ष कुलारे।
श्री वल बौद्ध, कल्कि नारायण, देव जनार्दन श्री कंसारे॥
केशव माधव, यादव यदुपति, दैत्य-दलन दुख-भंजन शौरे।
गोलक-गोकुल-चंद्र गदाधर, गरुड़-ध्वज गज-मोचन मुरारे॥
श्री पुरुषोत्तम, परमेश्वर प्रभु, परम ब्रह्म परमेष्ठि अधारे।
दुखिते दयां कुरु, देव देवकिसुत, दुर्म्मति परमानंद परिहारे॥
(परमानंद सेन, प. क. त., पद २९७४)

(ख) कृष्ण कृष्ण कमलेश कृपामय, केशि-मथन कंसारि।
केशव कालि-दमन करुणामय, कालिन्दि-कूल-विहारी॥
गोपी-नाथ गोपीपति-नंदन, गोविंद गिरि-वर-धारी।
गोकुल-चन्द्र गोपाल गहन, वर-गोपीगण-मन-हारी॥
घन-तनु-सुन्दर घोर तिमिर हर, घोषित-जश घनश्याम।
चम्पक-गोरि-चीत-हर चंचल, चतुर चतुर्भुज नाम।
चैद्योद्धारी चक्रि चानूर हर, चक्र-पाणि चित-चोर॥
श्रीपति श्रीधर, श्री वत्स-लांच्छन श्री मुख-चन्द्र चकोर॥
जग-जीवन जगन्नाथ जनार्दन, जदुपति जलधर-श्याम।
जशोदा-नंदन जगत्-दुर्लभ, घन-जलद-जलद रुचि-धाम॥
अच्युतोपेन्द्र-अधोक्षज-अतिबल-अजिताद्भुत-अवतारी।
अमल-कमल-आंखि अखिल-भुवन-पति अनुपम-अतनु-बिहारी॥

मुरली इत्यादि की भी वन्दना की है।[1]

आश्वासन—भगवान की वन्दना कर लेने के बाद भक्त को एक प्रकार का विश्वास सा हो जाता है। वह अपने दु:खी, श्रांत और विकल मन को आश्वासन देता है कि उसे अब कोई डर नहीं है। उसके इष्टदेव सर्वशक्तिमान और दयालु हैं। वे भक्त का दु:ख अवश्य दूर करेंगे। गोपाल का किया हुआ ही सब होता है। यदि कोई अन्य व्यक्ति समस्त कृतित्व अपने पुरुषार्थ से हुआ मानता है, तो वह व्यर्थ अभिमान करता है। साधन, मंत्र, उद्यम, बल ये सब व्यर्थ हैं। जिसके राम धनी हैं, उसे कौन सी कमी है। वे तो इच्छाओं के स्वामी हैं, मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं, सुखनिधान हैं।[2] भक्त को अत्यंत आनन्द है। अर्थ, धर्म इत्यादि सब कुछ

त्रिभुवन-तिलक त्रिताप-विमोचन, तनु-जित-तरुण-तमाल।
दैत्य-दलन दामोदर देवकि-नंदन दीनदयाल॥
नंद-नंदन नयनानंद-नागर निति नव-नीरद-कांति।
पीताम्बर परमानंद प्रेमद-पुरुषोत्तम पद नख विधुपांति॥
वंशी-वदन वनमालि बलानुज, भुवन-मोहन भुव-भव-भय-नाश॥
मनहर मदनमोहन मधु-सूदन गाओत गोकुल दास॥
(गोकुलदास, प. क. त., पद २९७५)

(ग) नंद-नंदन जगत-वंदन, श्रीकृष्णभानु-नंदिनी।
आगम जाको पार ना पाओये, सुर-मुनिगण वंदिनी॥
(माधो, प. क. त., पद २९६८)

१. (क) जय राधे कृष्ण गोविन्द।
मधुर सुगोकुल नंद छबीले, श्री वृंदावनचन्द॥
मुरली-धर मधुसूदन माधव, गोपीनाथ मुकुंद।
केलि-कला-निधि कुंज-बिहारी, गिरि-धर आनंद-कंद॥
व्रज-नागर व्रज-राजके नंदन, व्रज-जन नयनानंद॥
(गोपालदास, प. क. त., पद २९६७)

(ख) जयति जयति श्री हरिदासवर्य धरने,
वारि वृष्टि निवारि घोष आरति टार, देव पति अभिमान भंग करने।
जयति पट पीत, दामिनि रुचिर बर, मृदुल अंग सांवल सजल चलद बरने।
(कुंभनदास, अष्ट. व. सं, पृ. ६५३)

२. (क) करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झठौ है सोइ।
साधन मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ॥
(सूरदास, सू. सा. १।२६२, पृ. ८४)

(ख) कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-निधान जाकी मौज घनी॥
(सूरदास, सू. सा. १।३९, पृ. १४)

उन्हें प्राप्त है। हरि के जन की ठकुराई बहुत अधिक है। वह निर्भीक होकर राज्य करता है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, समस्त सिद्धियां उसकी दासी होती हैं। उसे माया और काल कुछ भी नहीं व्यापता। श्यामसुन्दर की जो सेवा करता है, उसकी गति तो दीन कभी नहीं होती। जो भगवान की चरण-शरण लेता है, वह तो नींद भर कर सोता है। ओ मन, भली प्रकार गोपाल का भजन कर ले। उनका भजन करने पर कौन नहीं उबरता![1] मेरे अनेक पाप हैं, शारदा उनकी गणना करने बैठ जायें, तो भी अनेक युगों में भी पार नहीं लगेगा, परन्तु भगवान पतितपावन हैं, मुझे यही भरोसा है।[2] सब प्रपंच छोड़ कर भगवान के चरणकमलों में शीश झुकाओ और अभय हो जाओ। उन्होंने अनेक खल अपनाए हैं। यदि कृपालु रघुपति की दया बनी रहे, तो और का बैर क्या कर सकता है! भक्त का बाल बांका भी नहीं हो सकता, चाहे कोई कोटि उपाय कर डाले। रघुबीर के बाहुबल में सर्वदा अभय मिलता है, कोई किसी से नहीं डरता।[3] राधा-कृष्ण के चरणों में तनमन लगा रहे और वासना दूर रहे तो भक्त को

(ग) हरि के जन की अति ठकुराई।

.. ..

माया, काल कछू नहिं ब्यापै, यह रस-रीति जो जानै।

(सूरदास, सू. सा. १।४०, पृ. १४)

१. (क) माधो जू, मन माया बस कीन्हौ।

.. ..

सूर स्यामसुन्दर जौ सेवै, क्यौं होवै गति दीन।

(सूरदास, सू. सा. १।४६, पृ. १६)

(ख) इहिं राजस को को न बिगोयौ?

.. ..

सूरदास जो चरन-सरन रह्यौ, सो जन निपट नींद भरि सोयौ॥

(सूरदास, सू. सा. १।५४, पृ. १८)

(ग) नीकैं गाइ गुपालहिं मन रे।

.. ..

गाए सूर कौन नहिं उबर्‌यौ, हरि परिपालन पन रे!

(सूरदास, सू. सा, १।६६, पृ. २२)

२. (क) मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै॥

(तुलसीदास, वि. प., पद ९२)

(ख) तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब नाउ राम पद-कमल माथ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल अपनाये जानकीनाथ॥

(तुलसीदास, वि. प., पद ८४)

३. जोपै कृपा रघुपति, कृपालु की बैर और के कहा सरै?
होइ न बांको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय करै॥
तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल सदा अभय काहू न डरे।(तुलसीदास, वि.प., पद १३७)

कोई भय नहीं है क्योंकि उसने तन-मन उन्हें सौंप दिया है।[१] इस प्रकार इष्ट देव की शक्ति में विश्वास रख कर भक्त मन को आश्वासन देते हैं। हिन्दी वैष्णव साहित्य में इस प्रकार के पद अधिक हैं और बंगाली में अपेक्षाकृत कम।

मनोराज्य--मन को इस प्रकार आश्वस्त करके भक्तगण स्वस्थ हो जाते हैं। अब वे मन में अपने जीवन के लिए सुन्दर कल्पनायें करते हैं। भगवान के अपना लेने पर वे क्या करेंगे, कैसे रहेंगे, कहां रहेंगे, इन सबकी अपनी इच्छानुकल कामना करते हैं, और अपना मत स्थिर करते हैं। बंगाली भक्त मुख्यतया वृन्दावन में जाकर रहने की कामना करते हैं। दूसरी कामना जो कुछ बंगाली भक्त करते हैं, वह सखी-भाव से कृष्ण-राधा की सेवा करना है। वे कहते हैं कि हे हरि ! ऐसी दशा कब होगी जब इस भव-संसार को छोड़ कर ब्रजभूमि को जायेंगे। सुखमय वृन्दावन का कब दर्शन पायेंगे ? वहां की धूल को कब शरीर में लगायेंगे ? कब यमुनाके तीर पर जाकर अत्यंत प्रसन्न होकर पड़े रहेंगे ? कब गोवर्द्धन पर्वत देखेंगे और कब राधा-कुण्ड पर निवास करेंगे ? वहीं पर भ्रमण करते करते देह का पात कब होगा ?[२] वहां के कृष्ण के बिहार-स्थल देखेंगे। उस वृन्दावन को वे अपना घर बनाने को वे अन्य सब कुछ

---

१. राधा-कृष्ण-दुहुं पाय, तनु मन रहु ताय,
आर दूरे रहुक वासना।
नरोत्तम दास कय, आर मोर नाहि भय,
तनु मन सोंपिलुं आपना॥

(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०२०)

२. (क) हरि हरि आर कि एमन दशा हव।
ए भव संसार तेजि, परम आनंदे मंजि, आर कबे ब्रज-भूमे जाव।
सुखमय वृंदावन, कबे पाव दरशन, से धूल लागिबे कबे गाय॥
... ...
कबे जमुनार तीरे, परश करिब नीरे, कबे खाब कर-पुटे तुलि।
... ...
बंशी-वट-छाया पाञा, परम आनंद हैया, पड़िया रहिब कबे ताय।
कबे गोवर्धन गिरि, देखिब नयान भरि, राधा-कुंडे कबे हवे वास॥
भ्रमिते भ्रमिते कबे, ए देह-पतन हवे, आशा करे नरोत्तमदास॥

(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०४८)

(ख) हरि हरि आर कबे पालटिबे दशा।
ए सब करिया वामे, जाव वृंदावन-धामे, एइ मने कर्याछि भरसा॥
... ...
जमुनार जल जेन, अमृत समान हेन, कबे खाब उदर पूरिया।
राधा-कुंड-जले स्नान, करि कुतूहले नाम, श्याम-कुंडे रहिब पड़िया॥
भ्रमिब दादश बने, रास-केलि जेइ स्थाने, प्रेमावेशे गड़ागड़ि दिया॥

(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०४९)

छोड़ने पर उद्यत हैं। सब भोग-विलास त्याग कर वहां रहने की अदम्य भावना उनके मन में है। वे सुन्दर वस्त्र त्याग कर कोपीन धारण करके वहां जाने को तत्पर हैं। वे सोचते हैं कि शयन सुख देने वाले विचित्र पलंग को त्याग कर ब्रज की भूमि में शरीर धूसरित करेंगे। षट् रस भोजन को त्याग कर ब्रज में मधुकरी मांग कर खायेंगे। सुवर्ण की झारी का जल त्याग कर यमुना जल पियेंगे।[१] भक्त उस दिन को सुदिन बताते हैं जिस दिन वृन्दावन में जाकर दिवस का अन्त आने पर फल-मल खाकर उदासीन भाव से भ्रमते रहेंगे।[२] स्त्री, पुत्र, भोग इत्यादि दारुण जंजाल सबसे विरक्त होकर शुद्ध भागवत वैष्णव जन का आश्रय लेकर कोपीन धारण करके ब्रजवासी हो जायेंगे और भिक्षा मांग कर खायेंगे। संसार के समस्त सुखों के ऊपर आग डाल कर छोड़ देंगे। जातिकुल का समस्त अभिमान भी त्याग देंगे। हमारी यह आशा कब फलेगी ?[३] इसी प्रकार की भावना तुलसीदास ने चित्रकूट के संबंध में की है। वे भी चित्रकूट जाकर उस भूमि का दर्शन करना चाहते हैं जो राम के चरणों से अंकित है। वहां के वनों को जो रामचन्द्र के विहार के स्थल हैं, देखना चाहते हैं। सब पाखंडों का नाश

---

१. (क) करंग कोपीन लैया, छिंडा कांथा, गाय दिया, तेयागिव सकल विषय।
हरि-अनुराग हवे, ब्रजेर निकुंजे कबे, जाइया करिब निजालय ॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०५०)

(ख) हरि हरि कबे हब वृंदावन-वासी।
निरखिब नयाने युगल-रूप-राशि ॥
तेजिया शयन-सुख विचित्र पालंग।
कबे ब्रजेर धुलाये धूसर हबे अंग।
षड्-रस-भोजन दूरे परिहरि।
कबे ब्रजे मांगिया खाइब माधुकुरी ॥
कनक झाड़िर जल दूरे परिहरि।
कबे जमुनार जल खाब कर पूरि ॥ (नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०५१)

२. हरि हरि कबे मोर हइबे सुदिन।
फल मूल वृंदावने, खाञा दिवा-अवसाने, भ्रमिव हइया उदासीन।
(नरोत्तमदास, प. क. प., पद ३०५०)

३. हरि हरि आमार एमन कबे हबे।
विषय-दारुण-विष-जंजाल छुटिबे ॥
दारा-सुख-भोगे मुञि हइबे विरकत।
शरण लइब वैष्णव भागवत ॥
करंग कोबलि हाते गलाय काँथा दिया।
माधुकुरी मामि खाब ब्रजवासी हैया ॥
संसार-सुखे मुखे आनल ज्वालिया।
थुथु करिया कबे जाइब छाड़िया।
जाति-कुल-अभिमान सकल छाड़िब।
गोपालदासेर आशा कत दिवसे फलिब

(गोपालदास, प. क. त., पद ३०५४)

करने वाले शैल-शृंग को देखने के लिए मनसे कहते हैं और पवित्र पयस्विनी का जल पीना चाहते हैं।[१] सूरदास भी एक पद में वृन्दावन में ही निवास करने की भावना व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि अब तो मैंने मन में यही सोच लिया है कि इस वृन्दावन को जो राधाकृष्ण की राजधानी है, नहीं छोड़ूंगा। परमानन्द की इच्छा भी ब्रज में निवास करने और यमुना-जल पीने की है, यही वरदान वे कृष्ण से मांगते हैं।[२]

बंगाली भक्तों का जो दूसरा मनोराज्य है, वह उनकी बड़ी प्रिय कल्पना ज्ञात होती है। उस प्रकार की भावना हिंदी विनय पदों में नहीं मिलती है। पद कल्पतरु में ये प्रार्थना पद "अथसेवनोचित लालसामयी प्रार्थना यथा" कर के दिए हुए हैं। प्रायः अधिकांश पद नरोत्तमदास की रचना हैं। वे कहते हैं, "हे हरि! मेरा वह दिन भी होगा जब मैं दोनों (राधाकृष्ण) के अंगों का स्पर्श करूंगा, दोनों के अंगों को देखूंगा और दोनों की सेवा करूंगा। मैं ललिता-विशाखा के संग दोनों की सुखपूर्वक सेवा करूंगा। नाना प्रकार के फूलों से माला गूंथ कर उनके गले में पहनाऊंगा। स्वर्ण सम्पुट में करके कर्पूर और पान दोनों के लिए उपस्थित करूंगा।[३] कालिन्दी के तट पर जो केलिकदम्ब के बन हैं, वहां रत्नजटित वेदी पर उन्हें बैठाऊंगा। श्याम और गौरी के अंग पर चोया-चंदन लगाऊंगा। चंवर डुलाकर उनका मुखचन्द्र देखूंगा।[४] फिर गोवर्धन गिरि के निर्जन स्थान में राधा-कृष्ण को शयन कराऊंगा।[५] ललिता-विशाखा की आज्ञा से उनके चरणारविन्दों की

---

१. अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु।
... ...
सैल सृंग भवभंगहेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु।
राम-नाम-जप-जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जलु।
(तुलसीदास, वि. प., पद २४)

२. (क) अब तौ यहै बात मन मानी।
छांड़ौं नाहिं स्याम-स्यामा की बृंदाबन रजधानी॥
(सूरदास, सू. सा., १।८७, पृ. २८)

(ख) यह मांगो यशोदानंद नंदन।
... ...
ब्रज बसिबो, जमुना जल पीऊं, श्री वल्लभकुल को दास यही पन।
(अष्ट. व. सं., पृ. ५८१, फुटनोट)

(ग) श्री यमुनाजी यह प्रसाद हों पाउं।
तिहारे निकट रहों निशवासर राम कृष्ण गुन गाउं॥
मज्जन करों विमल जल पावन चिंता कलह बहाउं॥
(परमानंददास, की. र., पृ. ८)

३. प.क.त., पद ३०५९
४. प.क.त., पद ३०६०
५. प.क.त., पद ३०६३

सेवा करूंगा ।[१] हे हरि ! मेरा वह सुदिन कब होगा, जब मैं केलि-कौतुक (रास) का सेवन करूंगा ? दोनों (राधा-कृष्ण) को लेकर तथा ललिता-विशाखा इत्यादि सखियों सहित मंडली बनाऊंगा? राधा-कृष्ण एक दूसरे को पकड़कर जो नृत्य करेंगे, उसे मैं देखूंगा?"[२] इस प्रकार की कल्पना करते करते भक्त स्वयं ही सखी-रूप में जन्म लेने की कल्पना करने लगा है । वह कहता है—"हे हरि ! मेरी यह दशा कब होगी । मैं वृषभान की नगरी में कब किसी अहीर के घर में कन्या होकर जन्म लूंगा ?[३] पुरुष की देह छोड़ कर प्रकृति का रूप होऊंगा ? (कृष्ण के) चूड़ा को बांधूंगा और नवीन गुंजा से युक्त नाना प्रकार के फूलों की माला उन्हें पहनाऊंगा? सखियों के साथ उन्हें पीत वस्त्र पहनाऊंगा?[४] राधा को नीलाम्बर से सजाऊंगा और रत्नों को लाकर विचित्र वेणी बांध दूंगा और उसमें मालती फूल गूंथ दूंगा ? उस रूप माधुरी को देखूं यही मन में अभिलाषा है ।"[५] नरोत्तमदास राधा से प्रार्थना करते हैं, कि "मुझे अपनी सेवा में रक्खो । मैं तुम्हारी सखियों सहित तुम्हारी सेवा करूंगा । मैं समस्त शृंगार सामग्री लाकर ललिता को दूंगा । ललिता सखी की आज्ञा से तुम दोनों को बयार करूंगा और तुम्हारी सेज बिछाऊंगा । तुम दोनों के सो जाने पर मैं जागता रहूंगा ।" बलरामदास ने भी यही अभिलाषायें प्रगट की हैं ।[६] उस कुसुमित वृंदावन

---

१. प.क.त., पद ३०६०

२. प.क.त., पद ३०६२

३. हरि हरि आर कि एमन दशा हब ।
   कबे वृषभानु-पुरे, आहीर-गोपेर घरे, तनया हइया जनमिब ।
   (नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०६५)

४. हरि हरि आर कि एमन दशा हब ।
   छाड़िया पुरुष-देह प्रकृति हइब ॥
   टानिया बांधिब चूड़ा, नव-गुंजा ताहे बेड़ा,
   नाना फुले गांथि दिब हार ।
   पीत-वसन अंगे, पराइब सखी संगे, बदने ताम्बुल दिब आर ॥
   दुहुं-रूप मनोहारी, देखिब नयान भरि, नीलाम्बरे राइके साजाइया ।
   नवरत्न जाद आनि, बांधिब विचित्र वेणी, ताहे फूल मालती गांथिया ॥
   सेना रूप-माधुरी, देखिब नयान भरि, एइ करि मने अभिलाष ॥
   (नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०६६)

५. प. क. त., पद संख्या ३०६७, ३०६८, ३०६९, ३०७०.

६. जागिया कामिनि जामिनि-शेष ।
   जागव सखि सभे करब निदेश ॥
   ललिता विशाखा घुमायब सखि संगे ।
   सबहुं चरण सम्बाहब रंगे ॥
   हरि हरि कबहुं श्री चरण सम्बाई ।
   कनक-मंजरि मुख हेरब जागाई ।

में जहां शिखिगण नृत्य करते हैं और कोकिला तथा भृंग झंकार करत हैं, मनोहर निकुंज के पास आकर सखियों के साथ मनोहर गान करने की अभिलाषा नरोत्तमदास करते हैं।[1]

सूर, तुलसी आदि हिन्दी के वैष्णव कवियों के मनोराज्य की भावना कुछ दूसरे प्रकार की है। तुलसीदास कहते हैं, "मैं अब राम सीता के चरण त्याग कर कहीं नहीं जाऊंगा। प्रभु के चरणों से विमुख हो कर अन्य कहीं भी सुख नहीं मिलता। तनु और मन को मैं यही शिक्षा दूंगा। कानों से और किसी की कथा नहीं सुनूंगा और रसना से अन्य किसी का भी भजन नहीं करूंगा और किसी की ओर नेत्र उठा कर नहीं देखूंगा। केवल भगवान की ओर शिर झुकाऊंगा। अपने नाथ से प्रेम और नाता कर के अन्य सब नाते और प्रेम दूर कर दूंगा। मेरा समस्त भार अब से उसी पर होगा, जिसका मैं दास कहलाऊंगा। कभी न कभी तो मैं इस प्रकार से रहूंगा ही। श्री राम की कृपा से संतों का सा स्वभाव प्राप्त होगा। जो कुछ मिलेगा, उसी से संतोष करूंगा, किसी से कुछ नहीं चाहूंगा। मन-क्रम-वचन से निरंतर परहित करने का नियम निबाहूंगा। घमंड त्याग कर मन को समदर्शी बनाकर दूसरों के गुण ही बखानूंगा, अवगुण नहीं। देहजनित चिंताओं का त्याग कर के समबुद्धि से दुःख और सुख को सहन करूंगा। इस पथ पर रह कर अविचल हरि-भक्ति को प्राप्त करूंगा।"[2] सूरदास कहते हैं, "भगवान! ऐसा कब करोगे कि मेरा चित्त निरंतर तुम्हारे चरणों में रहे, रसना तुम्हारे रसाल चरित को गाती रहे। सजल नेत्र हो, प्रेम से तन पुलकित हो, गले में आंचल और हाथ में माला हो।" सूरदास उस सरोवर में जाना चाहते हैं जिसमें कमल बिना रवि के आए ही खिलते हैं, उज्ज्वल पंख वाले हंस शरीर मल कर नहाते हैं, अनगिने फल और मुक्ति रूपी मुक्ता चुन चुन कर खाते हैं और अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं।[3] परमानंददास उस देश को जाना चाहते हैं जहा नंदनंदन से भेंट होगी। उनके मुख कमल को निरख कर वे

घूमल सखि गणे जागब शयने।
कर्पुर ताम्बुल देयब वदने॥
विरचिव सिंदुर काजर वेश।
वसन पिधायव बांधब केश॥
तनु अनुलेप चंदन गंध।
पुनहिं परायब कांचलि-बंध।
आरति करब हेरब मुख-चंद।
टूटब चिरदिन विरहक धंद॥
शयन-निकुंजे गवाख आगोरि।
हेरब सखिगणे आनंद भोरि।
बलराम हेरब दुहुं-मुख-चंद।
भागब कब दिठि श्रवणक दंद॥ (बलराम, प. क. त., पद ३०७१)

१. प. क. त., पद ३०७४.
२. वि. प., पद १०४, १७२.
३. सू. सा. १।१८९, ३४०.

अपना विरह-ताप मिटायेंगे, उस मुख की रूप-सुधा को नेत्रपुट से पियेंगे, समस्त अंग को स्पर्श कर सकेंगे, रास इत्यादि लीलाओं का सुख पायेंगे और भक्तों के झुंड के साथ रस-निधि को देखेंगे।[1]

१. जाइये वह देश जहां नंदनंदन भेंटिये ।
निरखिये मुख कमल कांति विरह ताप भेटिये ॥
सुन्दर मुख रूप सुधा लोचन पुट पीजिये ॥
... ...
नख शिख मृदु अंग अंग कोमल कर परसिये ।
अरु अनन्य भाव सो भजि मन क्रम वच सरसिये ।
रास हास भुव विलास लीला सुख पाइये ।
भक्तन के यूथ सहित रस निधि अवगाहिये ॥
(परमानंददास, रा. क. द्रु., भाग २, पृ. ७५)

विनय—चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल सम्बन्धी

पीछे कई बार कहा जा चुका है कि चैतन्यदेव को गौड़ीय वैष्णव समाज में वही पद प्राप्त है जो कृष्ण को। उन्हें गुरु या धर्म-संस्थापक के रूप में कोई नहीं देखता। उनके संबंध की विनय-पदावली में प्रायः वह समस्त भावनाएं पाई जाती हैं जो कृष्ण-विनय-पदावली में। हिन्दी के विनय-पदावली-साहित्य में वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ दोनों के ही संबंध में ऐसे पद पाए जाते हैं जिनमें और चैतन्यदेव संबंधी पदों में उक्तिसाम्य है। ब्रज का वैष्णव समाज उन्हें तत्व रूपसे कृष्ण मानता हो ऐसा तो ज्ञात नहीं होता। अतः वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के संबंध में जो कुछ कहा गया है वह अनुयायी भक्तों का भावभरा उच्छ्वास है। नीचे इन तीनों से संबंधित पदों का तुलनात्मक अध्ययन दिया जा रहा है।

वंदना—वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ और चैतन्यदेव के भक्तों ने इन तीनों की जो वंदना की है, वह उन्हीं के द्वारा की गई कृष्ण और राम की वंदनाओं से भावना और भक्ति के उच्छ्वास में समान ही हैं। भक्त वल्लभ-विट्ठल से कहते हैं: "हम तुम्हें नमस्कार करते हैं और तुम्हारी जय मनाते हैं। तुमने इस युग में अखंड अवतार लेकर लीला की है और आसुरी जीवों की मोह से रक्षा की है। निगम हाथ जोड़ कर स्तुति करते हैं और नेति नेति कहते हैं। सनक, शुक और व्यास भी आपका पार नहीं पाते हैं। शेष, अज, रुद्र और तेंतीस कोटि देवता आपका ध्यान करते हैं और मुनिगण रात्रि दिन रटते हैं।[1] हम तुम्हारे चरणों का भजन करते हैं। तुम लोगों ने सब पतितों के उद्धार के लिए और ताप-मोह दूर करने के लिए अवतार लिया है।[2] तुम्हारे चरण-कमलों की हम जय मनाते हैं। तुम परमानंद,

---

१. (क) नमो श्री वल्लभाधीश स्वामी।
अखंड अवतार जुगधार लीलाकरी आसुरी जीव सब मोह पामी॥
निगम करजोर के करत स्तुति सदा सनक शुक व्यास नहीं पारपामी।
शेष अज रुद्र सुर तेंतीस ध्यावत सदा रटत हे मुनि सकल दीवस जामी॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. ३६५)

(ख) जयति चतुरानन स्तुति करत विमल जस ईश स्तुति करत स्वर्गवासी।
श्री वल्लभ तनय प्रगट भव तरन वर गिर शिखर तरनीजा तट निवासी॥
जयति नेति नेति निगम रटत देव गंधर्व संतत मुनि जन चाहत दुर आसी॥
(गोविंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४९)

२. (क) भजीए श्री वल्लभवर चरन।
सकल पतित उद्धारन कारन,
प्रकट कीयो अवतरन।
.. ..
आशरो करि रहे जेजन,
मिटे जनम ओर मरन। (हरिदास, की. र., पृ. ३६९.)

और साकार शरद-शशिमुख हो, एवं कमल समान नेत्र वाले हो।[1] तुमको हम नमस्कार करते हैं। तुम पुरुषोत्तम हो तुम लोगों ने भक्तों के लिए शरीर धारण किया हैं। तुम सकल गुणनिधान हो और सब तरह से समर्थ हो।"[2]

चैतन्यदेव की वंदना करते हुए उनके भक्त कहते हैं:—"हे सर्व प्राणनाथ विश्वम्भर! तुम्हारी जय हो। करुणासागर गौर चन्द्र! तुम्हारी जय हो। भक्तों के वचन सत्य करने वाले! तुम्हारी जय हो। महा अवतारी महाप्रभु, तुम्हारी जय हो।[3] उन विश्वम्भर के चरणों में मेरा नमस्कार है, जो नवघन जैसे हैं और पीताम्बर जिनका वस्त्र है। उन शची-नंदन के चरणों में मेरा नमस्कार है, शिखि-पुच्छ जैसे नव गुंजा जिनका भूषण है। गंगादास के उन शिष्य के चरणों में मेरा नमस्कार है जिनके हृदय पर वनमाला है और हाथ में दधि-ओदन है। जगन्नाथ के उन पुत्र के चरणों में मेरा नमस्कार है, जिनका रूप करोड़ों चन्द्रमा

(ख) भजो श्रीवल्लभसुत के चरणं।
नंदकुमार भजन सुखदायक पतितन पावन करणं॥
(नंददास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४९)

(ग) भज श्री विट्ठल विमल सुचरणं।
ताप शोक भय मोह माया लपटी विपति सब टरन दुख दुरि हरणं॥
(चतुर्भुजदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४८)।

१. (क) जय श्री वल्लभ चरन कमल शिर नाइये।
परम आनंद साकार शशी शरद मुख मधुर बानी भक्त जनन संग गाइये॥
(व्रजपति, की. र., पृ. ३६६)

(ख) जयति नाथ विट्ठल नवल चारु लोचन कमल
अमल रस ताहि कों सर्वव्यापी। (हरिदास, की.स., भाग बीजो, पृ. १४८)

२. (क) श्रीमद् वल्लभ नमो नमो।
विमल बाहु जिन द्विज वपु धार्यो पुरुषोत्तम जय नमो नमो।
आगम अगम निगम सब जानत सब विधि समरथ नमो नमो॥
सकल कला संपूरण गुननिधि आदि अंत जय नमो नमो॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २८६)

(ख) श्री विट्ठल प्रभु नमो नमो॥
भक्त हेत प्रकटे पुरुषोत्तम गोपिनाथानुज नमो नमो॥
.. .. ..
प्रेम समुद्र सकल गुण पूरण, राज शिरोमणि नमो नमो॥
(भगवान, की. स., भाग बीजो, पृ. १४८)

३. जय जय सर्व प्राणनाथ विश्वम्भर।
जय जय गौरचन्द्र करुणासागर॥
जय जय भकत-वचन-सत्यकारी।
जय जय महाप्रभु महाअवतारि॥ (वृंदावनदास, गौ. प. त., १।२।६४)

के समान है।[1] उन शची-जगन्नाथ नंदन की जय हो, त्रिभुवन जिनके चरणों की वंदना करता है।[2] कीर्त्तन-रसमय, आगम को भी अगोचर, केवल आनंद की निधि, अखिल लोकमति, एवं भक्तों के प्राणपति गौर की जय हो।[3] मेरे गौरांग गोस्वामी ! तुम्हारे बिना तो दीन पर दया करने वाला कोई नहीं है।[4] तुम तो पतितों को ढूढ़ कर उन्हें करुणापूर्ण दृष्टि से देखते हो और संसार से पार कर देते हो। भवभय-भंजन और पाप का निवारण करने वाला तुम्हारा अवतार धन्य है।[5] गौरांग चन्द्र के चरणों का भजन करो। इन तीनों लोकों में भी दया का ठाकुर और कोई भी नहीं है। गौरांग पतित पावन हैं। स्वर्ण के धन हैं और करुणा के अवतार हैं। इस भव-पारावार से वे हरि नाम रूपी मंत्र से पार कर देते हैं।[6]" वृन्दावनदास गौरांग की वंदना करते हुए कहते हैं—"हे आदि हेतु और सब के पिता! तुम्हारी जय हो। वेद धर्म

---

१. विश्वम्भर चरणे आमार नमस्कार ।
नवघन पीताम्बर वसन जांहार ॥
शचीर नंदनपाये मोर नमस्कार ।
नवगुंजा शिखि-पुच्छ भूषण जांहार ॥
गंगादासशिष्यपाये मोर नमस्कार ।
बनमाला करे दधि ओदन जांहार ॥
जगन्नाथपुत्रपाये मोर नमस्कार ।
कोटि-चन्द्र जिनि रूप वदन जांहार ॥
(वृंदावनदास, गौ. प. त., १।२।६३)

२. जय जय जगन्नाथ शचीर नंदन ।
त्रिभुवने करे जांर चरण वंदन ॥
(वासुदेवघोष, गौ. प. त., १।२।३)

३. कीर्त्तन रसमय, आगम अगोचर, केवल आनंदकंद ।
अखिल लोकगति, भकत प्राणपति, जय गौर नित्यानंद चंद ॥
(रामानंद, गौ. प. त., १।२।३७)

४. आरे मोर आरे मोर गौरांग गोसाञि ।
दीने दया तोमा बिने करे नाइ ॥ (वल्लभदास, प. क. त., ३००१)

५. हेरि पतित गण, करुणावलोकन, जगभरि करल अपार ।
भव-भय-भंजन, दुरित-निवारण, धन्य श्रीचैतन्य अवतार ॥
(रामानंद, गौ. प. त., १।२।३७)

६. भज गोराचांदेर चरण ।
ए तिन भुवने भाइ, दयार ठाकुर नाइ, गोरा बड़ पतित पावन ॥
हेम जलद किय, प्रम सरोवर, करुणा सिंधु अवतार ॥
.. .. ..
भव तरिवारे हरि-नाम-मंत्र भेला करि आपनि गौरांग करे पार ।
(परमानंद, गौ. प. त., १।२।४०)

और साधु जन के प्राण, सब के मूल स्थान , तुम्हारी जय हो। पतितपावन दीनबंधु, तुम्हारी जय हो। तुम कृपा सिंधु और परम शरणस्थल हो। सर्व सत्यमय कलेवर धारी, तुम्हारी जय हो। इच्छामय महामहेश्वर तुम्हारी जय हो।"[1]

२. **चैतन्य एवं वल्लभ की महत्ता**—चैतन्य और वल्लभ की वंदना कर चुकने पर उनके भक्तों को उनके महत्त्व का भी अनुभव होता है। वे केवल गुरुमात्र नहीं हैं, न केवल धर्मप्रचारक हैं, वे कृष्ण के, ब्रह्म के, अथवा राम के अवतार भी हैं। कहीं कहीं पर तो भक्तों ने उन्हें स्वयं ही ब्रह्म, परमेश्वर आदि बताया है। इन सब भावनाओं की संक्षिप्त विवेचना यहां दी जा रही है।

(क) **चैतन्य, वल्लभ एवं विट्ठल ब्रह्म या ईश्वर या परमेश्वर हैं**—भक्तों ने कई बार इस बात को कहा है कि वल्लभ और चैतन्य ईश्वर हैं। वह ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम है, समस्त कला और गुण निधान है और उसने नंदसुत के रूप में पहले भी जन्म लिया था, तब तो वह भू भार हरने आया था। अब वह भक्ति प्रचार कार्य के लिए आया है।[2] वल्लभाचार्य के रूप में वह ब्रह्म अवतरित हुआ है जो पूर्ण ब्रह्म है, परमानंद पुरुष है और सनातन है, एवं सब को सुख देने वाला है।[3] चैतन्यदेव के ब्रह्मत्व अथवा ईश्वरत्व के संबंध में स्पष्ट कथन करने वाले पद कुछ कम हैं। प्रायः अधिकांश उक्तियां उन्हें ईश्वर ब्रह्म मान कर

---

१. गौ. प. त., १।२।६५, ६६.

२. (क) प्रकट भये पूरण पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार।
तबही प्रकट भये वसुदेव कें तुम हर्यो सकल भू भार॥
(रामदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २०७)

(ख) माधव मासे भर वैशाखे, श्री वल्लभ हरि जन्म लिया।
श्री लक्ष्मण नंदना, त्रिभुवन वंदना, भक्ति मार्ग जिन प्रगट किया॥
(गोपालदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २१०)

३. (क) श्री लक्ष्मण गृह बजत बधाई।
पूरण ब्रह्म प्रगटे पुरुषोत्तम श्री वल्लभ सुख दाई।
(नंददास, की. र., पृ. २७१)

(ख) पुरुष परमानंद पूरण भक्त हित वपु धारियो।
नाम सुमरत भये पावन सकल खल कलि के जिया॥
कृष्णदास प्रभु की गाय लीला मन मनोरथ कर लिया॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २७५)

(ग) सुखद स्वरूप श्री विट्ठलेश राय।
वेद वदत पूरण पुरुषोत्तम श्री वल्लभ गृह प्रकटे आय॥
(छीत स्वामी, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२२)

(घ) श्री वल्लभ गृह मंगलचार।
पूरण पुरुषोत्तम प्रकटे हैं श्री विट्ठल अवतार॥
(सगुणदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२३)

उनकी वैसी वंदना-मात्र तक सीमित हैं। कवि कहते हैं, "शचीनंदन, जगन्नाथ हैं। त्रिभुवन उनकी चरण-वंदना करता है।[१] वह ईश्वर जिसने सतयुग, त्रेता और द्वापर में ध्यान, यज्ञ, पूजा इत्यादि का प्रकाश किया था और फिर गोकुल में अवतरित हुआ था, अब गौर-हरि हो कर आया है।[२] उन शचीनंदन की वंदना करता हूं, जिनका ध्यान योगी-यति करते हैं, देवी-देवता चरणों की वंदना करते हैं और जो ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहलाते हैं।[३]" चैतन्य को सब का आदि हेतु, सब का जनक और सब का अंत बता कर भी ब्रह्म होने की भावना बताई गई है।[४] वे स्वयं ईश्वर हैं, परन्तु दैन्य भाव का प्रकाशन करके रोते हैं।[५] वे तो विष्णु हैं, महाविष्णु हैं, पद-प्रभु हैं। उनकी पद-नख-कांति से ब्रह्मांड की स्थिति हैं।[६]

गौर-चैतन्य और वल्लभ विष्णु हैं—चैतन्य और वल्लभाचार्य 'विष्णु' हैं इसका उल्लेख बहुत थोड़े से पदों में मिलता है। चैतन्य के विष्णुत्व के बारे में वृन्दावनदास कहते हैं कि "चैतन्यदेव क्षीरसिंधु में शयन कर रहे थे, अद्वैत की प्रीति के कारण वे आए।[७] शिव विरंचि जिन्हें ध्यान करके भी नहीं पाते, सहस्र मुखों से शेष जिसका गुण गाते हैं और लक्ष्मी जिसकी चरण वंदना करती हैं वे अब नदियों में विलास करते हैं।[८] वल्लभ के रूप में गरुड़-

---

१. जय जय जगन्नाथ शचीर नंदन ।
त्रिभुवने करे जार चरण बंदन ॥
(वासुदेवघोष, गौ. प, त., १।२।३)

२. सत्य त्रेता द्वापर, सत्ययुगेर ईश्वर, ध्यान यज्ञ पूजा प्रकाशिला ।
सेइ वृंदावन चांद, भरि नटवर छांद, से जुगे गोपीरे प्रेम दिला ॥
सेजन गोकुलनाथ, कंश केशी कैला पात, जारे कहे यशोदा कुमार ।
नवद्वीपे अवतरि, सेइ हैल गौर हरि पातकीर करिते उद्धार ।
(माधवदास, गौ. प. त., १।।२।२६)

३. ब्रह्म आत्म भगवान, जांरे सर्व्वशास्त्र गान, देव-देवीर चरणबंदन।
योगी यति सदा ध्याय, तबु जांरे नाहि पाय, वंदो सेइ शचीर नंदन ॥
(गौ. प. त., १।२।६१)

४. जय आदि हेतु जय जनक सवार (वृंदावनदास, गौ. प. त., १।२।६५)

५. निदारुण दारुण संसार ।
.. .. ..
आपने ईश्वर हैया, दैन्य भाव प्रकाशिया रोदन करिया आर्त्तनादे ॥
(नरहरिदास, गौ. प. त., १।३।९)

६. गौर गोविन्दगण, शुन हे रसिक जन, विष्णु, महाविष्णु पद पहुं ।
जांर पदनखद्युति, परम ब्रह्मेर स्थिति, सुर-मुनि प्राणेर गण तुहुं ॥
(वृंदावनदास, गौ. प. त., १।३।११)

७. क्षीरनिधि-जलमाझे, आछिला शयन शेजे, नित्यानंद गदाधर संगे ।
अद्वैत पिरीति वशे, आइला कीर्त्तन रसे, हरि भक्ति विलाइते रंगे ॥
(वृंदावनदास, गौ. प. त., १।३।५२)

८. शिव विरिंचि जारे ध्याने नाहि पाय ।
सहस्र आनने शेष जार गुण गाय ॥

गामी प्रगट हुए हैं। उनका उद्देश्य दीनों पर करुणा करने का है।"[3]

चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल कृष्ण हैं—चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल संबंधी पदों में भक्तों ने उन्हें कृष्ण भी बताया है। इस प्रकार के पदों की संख्या कुछ अधिक तो नहीं है परन्तु जो भी है वह नगण्य नहीं है। वल्लभ के लिए भक्तगण बार बार कहते हैं कि वे कृष्ण हैं। वल्लभ अवतार का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि "वे गोकुलपति हैं, फिर से गोकुल में प्रगट हुए हैं।[4] कमल दल के नेत्र वाले और मधुर बाणी वाले भक्तों के प्राणाधार, सब सुखदायक श्री गोकुल नाथ हैं।[1] पहले वे नंदनंदन कहलाते थे, अब वे द्विजवर के रूप में हैं। नंदनंदन जो हैं, श्री लक्ष्मण-सुत वे ही हैं। वे जगत्-वंदन हैं, स्मरण करते ही तीनों ताप हरते हैं।[2]" कोई उन्हें कुछ कहे, परन्तु भक्तजन उन्हें कृष्ण मानने का ही निश्चय किए हुए हैं।[3] उन व्रजेश के गुणों को कौन कह सकता है? दीन हो कर चरणों में शीश नवाते हैं। उनकी शरण में तो जाने पर भाग्य का पार नहीं मिलता। उन आनंद-निधि व्रजराज के चरणाम्बुज का स्मरण करके भव से निस्तार मिल जाता है।[4]

जार पादपद्म लक्ष्मी करये सेवन।..
अपरूप ऐवे नवद्वीपेर विलास।
हेरिया मुगध मेल वृंदावन दास॥ (वृंदावनदास, गौ. प. त., १।३।५३)

१. नमो श्रीवल्लभाधीश स्वामी।

... ...

देख के दीन पर अतुल करुणाकरी,
भाग्यनिधि प्रकट भये गरुड़ागामी॥ (कृष्णदास, की. र., पृ. ३६५)

२. वरनों श्री वल्लभ अवतार।
गोकुल पति प्रकटे फिर गोकुल सकल विश्व आधार॥
(कुंभनदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २०६)

३. कमल दल नेना मधुरे बेना, भक्तन प्राण आधार वहां।
श्री गोकुलनाथा सकल सुख दाता, शोभा परम उदार वहां॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २७५)

४. गोविंद प्रभु नंदनंदन, श्री लक्ष्मण सुत जगत वंदन
सुमरत त्रय ताप हरत चरण रेणु पाउं। (गोविंद स्वामी, की.र., पृ. २८२)

५. कोउ कहे विप्र कोउ विविध पंडित कहे,
कोउ कहे अंश कोउ आत्मारामी।
स्वकीय जन एक निर्धार निश्चे कीये।
वस्तुतः कृष्ण जो बंधे दामी॥ (कृष्णदास, की. र., पृ. ३६५)

६. (क) कोन गुण कहि शके अखिल व्रज ईश के,
दीन व्हे चरनतर शीश नामी।
शरन वल्लभ गही भाग्य को पार नहीं
भजो कृष्णदास प्रभु अंतरजामी॥ (कृष्णदास, की. र., पृ. ३६५)

चैतन्यदेव के लिए भी भक्तों ने बहुत कुछ ऐसा ही कहा है। वे कहते हैं, "वे ही गोकुल नाथ जिन्होंने कंस और केशी का नाश किया था और जो यशोदाकुमार कहलाते थे, नवद्वीप में आए हैं और वे गौर-हरि हैं।[1] ब्रजेन्द्रनंदन जो थे, वे ही शची-सुत हुए हैं।[2] नंदनंदन, गोपी-जन-वल्लभ, राधानायक, नागर श्याम शची-नंदन हैं, नदिया के पुरन्दर हैं, और सुर-मुनिगण के मन मोहन हैं।"[3]

विट्ठल नाथ के लिए भी इसी प्रकार की उक्तियां मिलती हैं। वे कृष्ण हैं। पहले भी गोकुल में थे, अब भी हैं। वे पूर्ण ब्रह्म कृष्ण हैं। उनमें और कृष्ण में कुछ अंतर नहीं है।[4]

चैतन्य और वल्लभ अवतार हैं—कुछ पदों में ऐसी भी भावना मिलती है जहां

(ख) श्रीमद वृंदावनविधु प्रकटे आनंद निधि ब्रजराज।...
गोविंद प्रभु वल्लभपद अंबुज सुमरत भव निस्तार॥
(गोविंद स्वामी, की. सं., भाग बीजो, पृ. २०८)

१. सेजन गोकुल नाथ, कंश केशी कैला पात, जारे कहे जशोदाकुमार।
नवद्वीपे अवतरि, सेइ हैल गौर हरि....
(माधवदास, गौ. प. त., १।२।२६)

२. ब्रजेन्द्र नंदन जेइ, शची सुत हैल सेइ...
(गोविंददास, गौ. प. त., १।२।१८)

३. जय नंदनंदन, गोपीजन वल्लभ, राधानायक नागर श्याम।
सो शचीनंदन, नदीया पुरंदर, सुर-मुनि-गण मनोमोहन धाम॥
(गोविंददास, गौ. प. त., १।२।१)

४. (क) सदा ब्रज ही में करत विहार।
तब कें गोप भेख वपु धार्यो अब द्विजवर अवतार॥
तब गोकुल में नंद सुवन अब वल्लभ राजकुमार॥
(चतुर्भुजदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४०)

(ख) तुमसे तुम ही वल्लभ नंद।
... ...
श्री गिरिधरन प्रकटित लक्ष्मणकुल पुरुषोत्तम ब्रज चंद।
(माणिकचन्द, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४२)

(ग) जयति रुक्मिणी नाथ...
जयति सकल तीरथ फलित नाम स्मरण मात्र वास ब्रज नित्य गोकुल बिहारी।
नंददासनि नाथ पिता गिरिधर आदि प्रकट अवतार गिरिराजधारी॥
(नन्ददास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १३९)

(घ) कलि में एक बड़ो आधार।
श्री वल्लभ गृह श्री विट्ठल प्रभु आन लियो अवतार॥
पूरण ब्रह्म श्री कृष्ण विराजत खेलत आंगन द्वार॥
(माधवदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १३६)

चैतन्यदेव और वल्लभ को अवतार, कृष्ण-अवतार, राम या ब्रह्म का अवतार भी बताया है। इन अवतारों के लेने का कारण और कृष्ण-अवतार से भिन्नतायें भी बताई गयी हैं। भक्त गण कहते हैं कि "पुरुषोत्तम वल्लभ के रूप में प्रकट हुए हैं। गोकुलपति फिर से गोकुल आए हैं। इन पूर्ण पुरुषोत्तम ने भक्तों के हित के लिए शरीर धारण किया है। उस पूर्ण ब्रह्म ने कलियुग में केशव का अवतार लिया है।"[1] इस प्रकार वे ब्रह्म का अखंड

---

१. (क) नमो श्री वल्लभधीश स्वामी।
अखंड अवतार जुगधार लीला करी आसुरी जीव सब मोह पामी॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. ३६५)

(ख) श्रीमद वल्लभ नमो नमो।
विमल बाहु जिन द्विज वपु धार्यो, पुरुषोत्तम जय नमो नमो॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २८६)

(ग) श्री वल्लभ सुखकारी। पुरुषोत्तम लीला अवतारी॥
काल अकाल तें न्यारे। रस निधि प्रेम भक्ति प्रतिपारे॥
(गोविंद स्वामी, की. र., पृ. २७२)

(घ) लग्न महूरत माधो मासे। शुभ दिन सत श्री वल्लभ प्रकाशे॥
पुरुषोत्तमदास अवतार मनोहर। उदयो कोटि किरन ले दिवाकर॥
(कृष्णदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २१६)

(ङ) लक्ष्मण घर बाजत आज बधाई।
पूरण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम श्री वल्लभ सुखदाई॥
(नन्ददास, भाग २, परिशिष्ट, पृ. ३७९)

(च) प्रकटे कृष्णानन द्विजरूप।
माधव मास कृष्ण एकादसी, आये अग्नि स्वरूप॥
(अज्ञात, की. सं., भाग बीजो, पृ. २०६)

(छ) वरनों श्रीवल्लभ अवतार।
गोकुल पति प्रकट फिर गोकुल सकल विश्व आधार॥
(कुंभनदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २०६)

(ज) जय श्रीवल्लभ वर अवतार।
प्रकट भये पूरण पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार।
तब ही प्रकट भये वसुदेव कें तुम हर्यो सकल भू भार॥
(रामदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २०७)

(झ) भये श्री वल्लभराय रघुपति श्रीयदुपति शामलघन।
(की. र., पृ. २७३)

(ञ) पुरुष परमानंद पूरण भक्तहित वपु धारियो। (की. र., पृ. २७५)

(ट) गोपालदास अनंत लीला प्रकट श्री वल्लभ भया।...
पूरण ब्रज सनातन माधो। कलि केशव अवतार वहां। (की.र., पृ. २७४)

अवतार हैं।[1]

चैतन्यदेव के संबंध में इसी प्रकार के कथन मिलते हैं। वे अवतार हैं, करुणा-अवतार हैं। ये वे प्रभु हैं जिनके चरणों की समाधि शंकर और चतुरानन लगाते हैं। ब्रज भूमि को शून्य करके अब वे नदिया में आए हैं। द्वापर युग में श्याम नाम था, कलियुग में चैतन्य नाम है। बैकुंठ-नायक हरि द्विजकुलमें अवतीर्ण हुए हैं और उन्होंने संकीर्त्तनका प्रचार किया है। कोई कहता है,—इन्होंने पूर्व काल में रावण का वध किया था अर्थात् वे राम थे, वे जानकी-वल्लभ थे, नंदलाल थे। चैतन्य अवतार हैं और ब्रह्म के अवतार हैं जिसे गौड़ीय वैष्णव समाज में भगवान कहते हैं। इस भावना का दर्शन उन पदों में होता है जिनमें चैतन्य को

---

१. (क) बोहोरि कृष्ण श्रीगोकुल प्रकटे श्रीबिट्ठलनाथ हमारे।

. . . .

माणिकचंद प्रभु को शिव खोजत गावत वेद पुकारे॥

(माणिकचंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. ११६)

(ख) जय श्रीवल्लभ राज कुमार।

. . . .

छीत स्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रकट कृष्ण अवतार।

(छीतस्वामी, की. सं., भाग बीजो, पृ. ११७)

(ग) सुखद स्वरूप श्रीविट्ठलेश राय।
वेद बदत पूरण पुरुषोत्तम श्री वल्लभ गृह प्रकटे आय।

(छीतस्वामी, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२२)

(घ) प्रकटे श्रीविट्ठलेश लाल गोपाल।
कलियुग जीव उद्धारण कारण संत जनन प्रतिपाल॥
द्विज कुल मंडन तिलक तैलंग श्रीवल्लभ कुल जो अति रसाल।
कुंभनदास प्रभु गोवर्धनधर नित्य उठ नेह करत ब्रजबाल॥

(कुंभनदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १३८)

(ङ) प्रकटे रसिक विट्ठल राय।
भक्तहित अवतार लियो बोहोरि ब्रज में आय।
शिव ब्रह्मादिक ध्यान धरत हैं निगम जाकों गाय॥

(की. सं., भाग बीजो, पृ. १५३)

(च) चहुंयुग वेद वचन प्रतिपार्यो।
धर्म ग्लानि भई जब ही जब, तब तब तुम वपु धार्यो॥
सत्युग श्वेत बाराह रूप धर हिरण्याक्ष उर फार्यो॥
त्रेता रामरूप दशरथ गृह रावण कुल संहार्यो॥
द्वापर ब्रज बूड़त तें राख्यो सुरपति पायन पार्यो॥

(माणिकचन्द, की. सं., भाग बीजो, पृ. ११६)

पूर्व काल में कृष्ण, राम, शूकर, मत्स्य इत्यादि सब बताया है। गौरांग भी अखंड अवतार हैं।[1]

---

१. (क) कलि तिमिराकुल, अखिल लोक देखि, बदन चांद परकाश।
लोचने प्रेम सुधारस रविखये, जगजनतापविनाश।
गौर करुणा-सिंधु अवतार ॥
(गोविंददास, गौ. प. त., १।२।२०)

(ख) जा कर चरण समाधिये शंकर, चतुरानन करु आश।
सो पहुं पतित कोरे करि कांदये, कि कहब गोविन्ददास।
(गोविंददास, गौ. प. त., १।२।२१)

(ग) ब्रज भूम करि शून्य, नदीयाय अवतीर्ण, एतेक तोमार चतुराल।
दुःख दिया निरंतर. . . . . . (नरहरि, गौ. प. त., १।२।२८)

(घ) द्वापर जुगे ते श्याम, कलिते चैतन्य नाम, गर्गवाक्य भागवते लिखि।
चिते करि अनुमान, श्याम हैल गौरांग. . . . (नरहरि,गौ.प.त., १।२।२९)

(ङ) बैकुंठ-नायक हरि, द्विजकुले अवतरि, संकीर्तन करिला प्रचार।
धन्य सुरधुनीतीरे, धन्य नवद्वीप पुरे सांगोपांग करिला विहार ॥
(वृंदावनदास, गौ. प. त., १।२।३१)

(च) केहु बले पूरवे रावण बधिला।
गोलोकेर विभव लीला प्रकाश करिला ॥
(वासुदेव घोष, गौ. प. त., १।२।३)

(छ) त्रेताय धरिल तनु द्वापरेर वांशी।
कलिजुगे दंडधारी हइला सन्यासी ॥
(बलरामदास, गौ. प. त., १।२।४७)

(ज) जय जय जगन्नाथ शचीर नंदन।
त्रिभुवने करे जांर चरण वंदन ॥
नीलाचले शंख-चक्र-गदा-पद्मधर।
नदीया नगरे दंड-कमंडलु-कर ॥
केहु बले पूरवे रावण बधिला।
गोलोकेर विभव लीला प्रकाश करिला ॥
श्री राधार भावे एबे गोरा अवतार। . . .
(वासुदेव घोष, गौ. प. त., १।२।३)

(झ) श्री कृष्ण चैतन्य गोरा शचीर दुलाल।
एइ जे पूरवे छिल गोकुलेर गोपाल।
केहु कहे जानकीवल्लभ छिल राम।
केल बले नंदलाल नवघन श्याम ॥
(गोविंददास, गौ. प. त., १।२।१७)

चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल को कृष्ण , ब्रह्म, राम इत्यादि बता कर उनकी महत्ता का स्थापन आगे चल कर उसी प्रकार से किया गया है जिस प्रकार राम और कृष्ण का। वह उनकी शक्तिमत्ता, भक्त-वत्सलता, गुण-ग्राहकता और दयालुता में निहित है। उन दोनों के इन गुणों का गान किया गया है, यद्यपि इनकी शक्तिमत्ता अन्य किसी प्रकार की ही है। वे निशाचर-हंता करके नहीं बताए गए हैं। उनकी शक्तिमत्ता तो अंधकार में पड़े हुए व्यक्तियों को संसार-सागर से पार करने में निहित है। चैतन्य को अवश्य जगाई-मघाई का उद्धारकर्त्ता बताकर कृष्ण के कंस-विनाश से समानता बताई गई है । उन सब भावनाओं से संबंधित कुछ पद यहां दिए जा रहे हैं।[१]

(ज) जय जय सर्व प्राण नाथ विश्वम्भर। जय जय गौर चन्द्र करुणासागर॥
जय जय भकत-वचन-सत्यकारी। जय जय महाप्रभु महा अवतारि॥
....
तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण, तुमि नारायण ।
तुमि मत्स्य, तुमि कूर्म तुमि सनातन ॥
तुमि से वराह प्रभु तुमि से वामन ।
तुमि कर जुगे जुगे देवेर पालन ॥
तुमि रक्ष-कुलहंता जानकी-जीवन ।
तुमि प्रभु वरदाता अहल्या-मोचन ॥
तुमि से प्रह्लाद लागि हैला अवतार ।
हिरण्य बधिया नरसिंह नाम जार ॥
(वृंदावनदास, गौ. प. त., १।२।६४)

१. (क) श्रीवल्लभ चाहे सोई करे ।
जो उनके पद दृढ़ करी पकरे महारस सिंधु भरे ।
....।
श्री वल्लभ के पदरज भजके भव सागर ते तरे॥
(पद्मनाभ, की. र., पृ. ३७३)

(ख)] निताइ चैतन्य दोहें बड़ अवतार ।
ए मन दयाल दाता ना हइबे आर ॥
म्लेच्छ चंडाल निंदुक पाखंडादि जत ।
करुणाय उद्धार करिला कत कत ॥
(कृष्णदास, प. क. त., पद २९९१)

(ग) अशेष पापेर पापी जगाइ माधाइ ।
ता सभारे उद्धारिला तोमरा दुटि भाइ ॥
(लोचनदास, प. क. त., पद ३००३)

(घ) पतित उद्धारणा कलिमल तारणा ।
श्री वल्लभ परम उदार वहां ।

रूप और सौंदर्य—चैतन्य और वल्लभ के रूप-सौंदर्य के वर्णन में कृष्ण के रूप और परिधान के वर्णन की ही झलक है। 'यदु' भणिता से युक्त जो पद 'पदकल्पतरु' में पाया जाता है, उसका सारांश यहां दिया जा रहा है। उसमें चैतन्य के रूप का वर्णन है। "गौरांग के रूप की छटा देखो। वह छटा हरिद्रा, हरिताल, स्वर्ण, कमल दल, अथवा स्थिर बिजली है। उनके कुंचित कुंतल राशि पर मालती और मल्लिका की वेणी है, भाल पर ऊर्ध्व तिलक है। नेत्र-

---

दीन दयाला परम कृपाला ।
सब जीवन को कियो उद्धार वहां ॥
उद्धार जीवन को कियो प्रभु कर कृपा करुणामया ॥
जात देख बहे कली में चित्त में उपजी दया ॥ (की. र., पृ. २७५)

(ङ) प्रकटे श्री वल्लभ सुखधाम।
श्री लक्ष्मण नन्दन दुःख निकन्दन भक्तन पूरण काम ॥
(विट्ठल गिरिधर, की. स., भाग बीजो, पृ. २६५)

(च) नमो श्री वल्लभाधीश स्वामी।
... ...
देख के दीन पर अतुल करुणा करी भाग्य निधि प्रगट भये गरुड़ागामी ॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. ३६५)

(छ) हरि हरि बड़ दुख रहल मरमे।
.. .. ..
दीन हीन जत छिल, हरि नामे उद्धारिल, तार साक्षी जगाइ माधाइ।
.. .. ..
एमन दयालु दाता, आर न हइबे कोथा, पाइया हेलाय हाराइलुं ॥
(गोविन्ददास, प. क. त., पद २९८७)

(ज) के आछे एमन हेन, उद्धारे पतित जन, पर दुःखे दुःखित हइया ।
चिताय आकुल-मन, नरहरि अनुक्षण, प्रेम-सिन्धुर उद्देश ना पाइया ॥
(नरहरि, प. क. त., पद २९९४)

(झ) गौरांग पतित-पावन तुया नाम ।
कलि-जीवे जत, आछिल कृत-पातकी, देओलि सबे निज ठाम ॥
(वल्लभदास, प. क. त., पद ३००९)

(ञ) देख देख अपरूप गौर चरित ।
सो गोकुलपति, अब परकाशल, पुन किये वामनरीत ।
निरखि प्रताप, प्रताप रुद्रबली, तनु मन सरबस देल ॥
जगाइ माधाइ आदि असुरगणे, चरण प्रबले निज केल ॥
(बलरामदास, गौ. प. त., पद १।३।६६)

(ट) जे जन शरण आये ते तारे ।
दीनदयाल प्रगट पुरुषोत्तम श्री विट्ठलनाथ लला रे ।

बाण कान तक हैं, भ्रू तने हुए धनुष के समान हैं। उसे देख कर करोड़ों कामदेव मूर्छित हो जाते हैं। उनके हेम-वर्ण गंड-स्थल पर श्रुति-मूल में हिलते हुए कुंडल दोलायमान हैं। मोती के समान दंत-पंक्ति है। सिंह की सी उनकी गर्दन है और हाथी जैसे स्कंध हैं। कंठ में मणिहार है और दोनों हाथों में स्वर्ण के अर्गल हैं। रक्त-कमल के समान करतल हैं। चन्द्र के समान नख झिलमिल करते हैं। उनके प्रशस्त हृदय पर मालती की माला है और सूक्ष्म यज्ञोपवीत है। नाभि सरोवर पर सर्प जैसी रोमावली है अथवा मनोहर काम दंड है। सिंह जैसी उनकी कटि में स्वर्ण की किंकणी है। स्वर्ण-रंभा जैसे उरु हैं और पदों में मंजीर हैं। वे पद-तल रक्त कमल के समान हैं और स्वर्ण चम्पक की कली जैसी उनकी उंगलियां हैं।''[1]

वल्लभ के रूप के लिए उनके भक्तगण भी इसी प्रकार का परंपरागत वर्णन करते हैं। श्री वल्लभ के सुन्दर विशाल नयन हैं, कमल जैसा रंग है। भुजा मृणाल जैसी है।[2] मुख चन्द्रमा के समान है।[3] नेत्र कमल के समान हैं। सौभाग्य-सूचक भाल शोभित है। भुजदंड प्रबल हैं। चरण-युगल कमल के समान हैं। नख संसार में प्रकाश फैलाने वाले हैं।

जितनी रवि छाया की कणिका तितने दोष हमारे ॥
तुमारे चरण प्रताप तेज तें तेऊ तत छिन टारे ॥
माला कंठ तिलक माथें धर शंख चक्र वपु धारे।
माणिक चंद प्रभु के गुण ऐसे महापतित निस्तारे ॥
(माणिकचंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२०)

(ठ) प्रकट भये संतन हित कारण सकल कला वृंदावन चंद ॥
परम उदार कृपाल कृपानिधि रसिक शिरोमणि आनंद कंद।
कृष्णदास बल बल प्रताप की यशगावत मुनि नौतन छंद ॥
(कृष्णदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १३२)

(ड) ब्रज में श्री विठ्ठलनाथ विराजें।
जिनको परम मनोहर श्री मुख देखत ही अघ भाजें ॥
जिनके पद प्रताप तेजतें सेवक जन सब गाजें।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रगट भक्त हित काजें ॥
(छीत स्वामी, की. सं., भाग बीजो, पृ. १३४)

(ढ) श्री विट्ठलनाथ अनाथ के तारण।
श्रीवल्लभ गृह प्रकट रूप यह धर्यो भक्तहित कारण।
दीनबन्धु कृपासिन्धु सहजही भक्ति विस्तारण ॥
(चतुर्भुजदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४२)

१. प. क. त., २४०८
२. की. र., पृ. २७२
३. मुख बिधु लावण्य अमृत इकटक पीवत नाही अघेये।
(रसिकदास, की. र., पृ. २७८)

युगल गंडस्थलों पर इतनी आभा है कि करोड़ों सूर्य न्यौछावर किए जा सकते हैं। मुखारविंद पर कुंचित केश-भ्रमर शोभित हैं।[1]

वल्लभाचार्य के रूप-सौंदर्य्य के वर्णन-संबंधी विनयपदों में भी इसी प्रकार का वर्णन है। गौरांग के रूप-वर्णन में इस परम्परागत वर्णन के साथ कुछ अन्य प्रकार के वर्णन भी हैं। एक तो उनकी भाव-दशा का द्योतक सौंदर्य वर्णन और दूसरा नागरी भाव का वर्णन अर्थात् 'रमणी मोहन' गौरांग का रूप वर्णन। यह वर्णन वल्लभ के संबंध में नहीं पाया जाता। भाव-दशा का वर्णन करने में उनके छलछलाते नेत्र, मृदु हास्य, गद्गद् अंतर इत्यादि का वर्णन है।[2] दूसरे प्रकार के वर्णन में, वैसे तो गौर के सर्वांग का ही वर्णन है परन्तु अंत में या बीच में उन्हें रमणी-मोहन या कामदेव का कोड़ा कह दिया गया है। नीचे इसी प्रकार के पद दिए जा रहे हैं।[3] कुछ पद इस प्रकार के भी पाए जाते हैं, जिनसे गौर के रूप सौंदर्य

---

१. की. सं., भाग बीजो पृ. २१३

२. चम्पक, शोण कुसुम, कनकाचल, जितल गौर-तनु-लावणी रे।
उन्नत गीम, सीम नाहि अनुभव, जग-मन-मोहन भाङनि रे।
... ...
विपुल पुलक कुल आकुल कलेवर, गर गर अन्तर प्रेम भरे।
लहु लहु हासनि गद गद भाषणि, कत मंदाकिनी नयने झरे।
(गोविन्ददास, की. प., पृ. १३)

३. (क) मरमे लागिल गोरा ना जाय पासरा।
नयाने अंजन हैया लागि रैल पारा॥
जलेर भितरे डुबि सेथा देखि गोरा।
त्रिभुवनमय गोराचांद हैल पारा॥
तेजि बलि गोरारूप अमिया पाथार।
डुबिल तरुणीर मन ना जाने सांतार॥ (वासुदेव घोष, की. प., पृ. ९)

(ख) लावण्य कांचन जिनि।
प्रेमे अंग ढर ढर, मुजि जाङ निछनि॥
कि छार शरद कोटि शशी।
जगत करिल आलो गोरा-मुखेर हासि॥
भाङ गंजे मदन धानुकि।
कुलवती उनमत कैले दुटि आंखि॥
मदन विजइ दोले माला।
इथे कि पराणे बांचे कामिनी अबला॥ (ज्ञानदास, की. प., पृ. १२)

(ग) मलुं मलुं सइ! देखिया गौर ठाम।
बधिते युवती, गढ़ल कि विधि कामेर उपरे काम॥
चांपा नागेश्वर, मल्लिका सुन्दर, विनोद केशेर साज।
ओ रूप देखिते, जुवती उमती, छाड़ल धैरज लाज॥
(बलरामदास, की. प., पृ. १६)

और प्रसाधन की कृष्ण से भिन्नता दिखाई देती है।[१]

दीनता प्रदर्शन और पश्चात्ताप—दीनता-प्रदर्शन करने वाले और पश्चात्ताप प्रकट करने वाले पद कुछ थोड़े ही से प्राप्त हैं। विट्ठल-वल्लभ से संबंधित इस भावना के प्रदर्शक पद प्रायः नहीं ही हैं। चैतन्यदेव के कुछ भक्तों ने अपने इष्टदेवता की महानता को देख कर जो छुद्रत्व अनुभव किया है और उनकी भक्ति न करने का उन्हें जो पश्चात्ताप है, उसका उन्होंने प्रकटीकरण किया है। प्रायः उन सबने जिनके इस प्रकार के पद प्राप्त हैं यह भाव प्रकट किया है कि इस संसार में चैतन्यदेव का करुणावतार हुआ है। उनके संकीर्त्तन से संसार भर गया है, परन्तु हम अभागे लोग अपनी ही करनी से उस सुख एवं उस करुणा से वंचित रह गए हैं। अपने कर्म-दोष से हम स्वयं ही डूब गए हैं। गौर-गोविंद की लीला सुन कर शिला भी द्रवीभूत हो जाती है, परन्तु हम लोगों का चित्त उस ओर उन्मुख नहीं हुआ। उनकी करुणा से कितनों का भला हुआ परन्तु हमारा ही कुछ नहीं हुआ। स्वर्गीय प्रेम-धन हमने नहीं पाया, इसका बड़ा 'शेल' बिंधा रह गया।[२]

---

१. (क) पूरबे बांधिल चूड़ा एबे केशहीन ।
नटवरवेश छांड़ि परिला कौपिन ।
गाभी-दोहन भांड छिल बाम करे ।
करंग धरिला गोरा सेइ अनुसारे ॥
त्रेताय धरिल धनु द्वापरेते बांशी ।
कलिजुगे दंडधारी हइला सन्यासी ॥
(बलरामदास, गौ. प. त., १।२।४७)

(ख) हरि हरि ! ए बड़ विस्मय लागे मने ।
जिनि नव जलधर, पूर्व्वे जांर कलेवर, से एेबे गौरांग भेल केने ॥
शिखिपुच्छ गुंजाबेड़ा, मनोहर जांर चूड़ा, से मस्तक केशशून्य देखि ।
जांर बांका चाहनिते, मोहे राधिकार चिते, एबे प्रेमे छल छल आंखि ॥
सदा गोपी संगे रहे, नाना रंगे कथा कहे, एबे नारीनाम ना शुनये ।
भुजजुगे बंशीधरि, आकर्षये ब्रजनारी, सेइ भुजे दंड केन लये ।
पिंगल पाटेर धुति, शोभा करे जांर कटि, ताहे केन अरुण वसन ॥
ना पाइया भावेर ओर, बलरामदास भोर, विषाद भावये मने मन ॥
(बलरामदास, गौ. प. त., १।२।५१)

२. (क) निताइ चैतन्य दोहें बड़ अवतार ।
एमन दयाल दाता ना हइबे आर ॥
म्लेच्छ चंडाल निंदुक पाखंडादि जत ।
करुणाय उद्धार करिला कत कत ॥
हेन अवतारे मोर किछुइ ना हैल ।
हाय रे दारुण प्राण कि सुखे रहिल ॥
(कृष्णदास, प. क. त., पद २९९१)

उद्धार की प्रार्थना---अपनी हीनता को देखने से पहले भक्तों ने अपनी भक्ति के पात्र चैतन्य और वल्लभ की महानता को जो अनुभव किया था, उसी के कारण वे अपने उद्धार के लिए उनसे प्रार्थना करते हैं। उद्धार की इन प्रार्थनाओं में उस प्रकार की आकुल भावना प्रायः कम ही दिखाई देती है जैसी राम-कृष्ण से की गई प्रार्थनाओं में थी। गौड़ीय वैष्णव भक्त तो मुख्यतया चैतन्यदेव की कृपा और सान्निध्य की ही याचना करते हैं। वे कहते हैं, "हे गौरांग देव, दया करके मुझे अपने चरणों में स्थान दो। करुणा करके एक बार मुझे देखो, अपना जन मान कर मुझे देखो। मैं तुम्हारे चरण पकड़ता हूं, मेरा उद्धार करो। तुम्हारे बिना और है कौन ! इस बार मेरे ऊपर करुणा करो। मेरे समान पातकी इस संसार में और कोई नहीं है। यदि तुम ही मेरे ऊपर दया नहीं करोगे, तो कौन करेगा! तुम मेरे ऊपर कृपा करना मत छोड़ना। अपना करके रखना। मैंने तुम्हारे लिए सब कुछ त्याग दिया है। तुम्हारे चरण अत्यंत शीतल हैं। मुझ तापित जन को स्थान दो।"[1] वृंदावनदास कहते हैं, "हे कृपासिंधु, सर्व्वदेव नाथ। तुम मेरी रक्षा करो। मुझ पातकी पर शुभ दृष्टिपात

(ख) हरि हरि बड़ दुख रहल मरमे।
गौर-कीर्तन-रसे, जग-जन मातल, बंचित मो हेन अधमे।
.. ..
हेन प्रभुर श्री चरणे, रति ना जन्मिल केने, ना भजिलाम हेन अवतार।
दारुण विषय-विषे, सतत मजिया रैलुं, मुखे दिलुं, ज्वलंत अंगार ॥
(गोविन्ददास, प. क. त., पद २९८७)

(ग) निदारुण दारुण संसार।
शुनिया वैष्णव-मुखे, देखि आंखि-परतेखे, ना भजिलाम गोरा-अवतार ॥
(नरहरिदास, प. क. त., पद २९९४)

(घ) बड़ शेल मरमे रहिल।
.. ..
ब्रजेन्द्र-नन्दन हरि, नवद्वीपे अवतरि, जगत भरिया प्रेम दिल ॥
मुञि से पामर-मति, विशेषे कठिन अति, तेञि मोरे करुणा नहिल ॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद २९९६)

१. (क) जय रे जय रे मोर गौरांग राय।
.. ..
करुणा करिया, स्वचरणे राख, ए मोर पापिष्ट मति।
तोमार चरणे, भरसा केवल, ना देखि आर उपाय ॥
मोर दुष्टमने राख श्री-चरणे, एइ मांगो तुया पाय ॥
(वंशीदास, गौ. प. त., पद १।२।८)

(ख) करुणानयन-कोणे एक बार देख।
आपन जनेर जन करि मोरे लिख ॥
पाय धरि, दया करि, तारे हेन नाइ।

करो। स्वतंत्र बिहारी कृपासिंधु! मेरी रक्षा करो। श्रीकृष्ण चैतन्य दीन बंधु! मेरी रक्षा करो। श्री गौर सुन्दर महाप्रभु! मेरी रक्षा करो। ऐसी कृपा करो कि फिर न छोड़ दो।"[1]

वल्लभाचार्य से भी भक्तों ने अपने उद्धार के लिए प्रार्थनायें की हैं। उन्होंने केवल उनकी कृपा की ही याचना नहीं की है, वे उनके सहारे से कर्मों से भी छुटकारा चाहते हैं। वे अपने को पापी बताकर उद्धार चाहते हैं। पापी बताने की भावना चैतन्य के भक्तों में भी एक दो स्थानों पर पाई जाती है।[2] वल्लभ से जो उद्धार की प्रार्थनायें की गई हैं वे नीचे दी

परिहार पतित देखिये सब ठांइ ॥
दयामय कथा कय हेन केवा आछे ।....
मुञि पापी निवेदिया कय पहुँ पाछे ॥
(वल्लभदास, गौ. प. त., १।२।४४)

(ग) एइ बार करुणा कर चैतन्य निताइ ।
मो समान पातकी आर त्रिभुवने नाइ ॥
.. .. ..
लोचन बले मुञि अधमे दया नैल केने ।
तुमि ना करिले दया के करिबे आने ॥
(लोचनादास, प. क. त., पद ३००३)

(घ) गौरांग तुमि मोरे दया न छाड़िह ।
आपन करिया रांगा चरणे राखिह ॥
तोमार चरण लागि सब तेयोगिलुं ।
शीतल चरण पाञा शरण लइलुं ॥
.. .. ..
वासुदेव घोषे बले चरणे धरिया ।
कृपा करि राख मोरे पद-छाया दिया ॥
(वासुदेव घोष, प. क. त., पद ३००७)

(ङ) आरे मोर गौरांग सोना ।............
आपना बलिया मोर नाहि कोन जना ।
राखिह चरण-तले करिया आपना ॥
.. ..
कमल जिनिया तोमार, शीतल चरण ।
वासुघोषे देह छाया ए तापित जन ॥ (वासुदेव घोष, प. क. त., पद ३००८)

१. गौ. प. त., १।२।६६

२. (क) गौरांग पातकी उद्धार करुणाय ।
साधु-मुखे शुनि आमि, पतित-पावन तुमि, उद्धारिया लेह निज पाय ॥
ओक शोकमय हय, विषम-विषम भय, पड़िया रहिलुं माया-जाले ॥
के हेन करुण जन, तारे करों निवेदन, उद्धार पाइब कत काले ।
(वल्लभदास, प. क त., पद ३००२)

जा रही हैं। भक्तगण वल्लभ से याचना करते हैं कि हमें उबारो, हम संसार-सागर में फंसे हैं, हम भले बुरे जैसे भी हैं, तुम्हारे ही हैं।[1] विट्ठलनाथ से उद्धार की प्रार्थना बहुत कम

(ख) एइ बार करुणा कर चैतन्य निताई।
मो समान पातकी आर त्रिभुवने नाइ॥
मुञि अति मूढ़-मति मायार नफर।
एइ सब पापे मार तनु जर जर॥ (लोचनदास, प. क. त., पद ३००३)

१. (क) श्री वल्लभ अब की बेर उगारो।
सब पतितन में विख्यात पतितहु, पावन नाम तिहारो।
ओर पतित नाही मेरे सम, अजमिल कोन विचारो।
भाज्यो नरक नाम सुनि मेरो, यम ने दीयो हड़तालो।
कृपासिन्धु करुणानिधी केशव, अब न करोगे उधारो।
सूर अधम को कहुं ठोर नांही, बिना शरनजु तुमारो॥
(सूरदास, की. र., पृ. ३८४)

(ख) श्री वल्लभ लीजे मोहि उबारी।
या कलिकाल कराल विषम ले, लागत है डर भारी।
तृष्णा तरंग उठत भव सिन्धु ते, डारत किते उछारी।
कर्म भंवर मद मत्सर मोकुं, दावे देत पतारी।
काम क्रोध और मोह लोभ जल जन्तु रहे मुखफारी॥
चरणांबुज नौका नहि सूझत, बीच अविद्या पहारी॥
(रसिकदास, की. र., पृ. ३८४)

(ग) श्री वल्लभ लीजे मोहे बुलाय।
बहोत दिना बीते बिन देखे, ताते जीय अकुलाय॥
(गोविन्ददास, की. र., पृ. ३८४)

(घ) श्री वल्लभ भले बुरे तो तेरे।
तुम्ही हमारी लाज बढ़ाई विनती सुनो प्रभु मेरे॥
.. .. ..
सब त्यज तुम शरणागत आयो, दृढ़ कर चरण गहेरे॥
(सूरदास, की. र., पृ. ३८५, ३८६)

(ङ) श्री वल्लभ अब तो भयो तिहारो।
जन्म जन्म को हों अपराधी यम लिखिही लिखि हार्यो।
अपनेहूं सुकृत नही कीनो, भयो पाप भंडारो॥
तुम सों कहा कहों करुणानिधि, सकुच होत जिय भारो॥
वैश्वानर सब सुख के दाता सुनत मन धीरज धारे।
रसिकदास ज बड़ी ठोर के कहा अन्य रिपु विचारे॥
(रसिकदास, की. र., पृ. ३८५)

की गई है ।[१]

आश्वासन तथा अनन्याश्रयता—यद्यपि अपनी दशा और हीनता को देख कर भक्तों के प्राण व्याकुल अवश्य हुए हैं, परन्तु उन्हें इस बात का विश्वास है कि वल्लभ, विट्ठल और चैतन्य का भरोसा बड़ा भारी है क्योंकि उनके समान दयालु और कौन है ! वे अकारण ही दीन पर दया करते हैं । चैतन्यदेव ने तो इसीलिए अवतार लिया है ।[२] श्री गौरांग की अमृत वाणी सुन कर न जाने कितने लोग प्रेम की तरंगों में डूबते उतराने लगते हैं । रे मन ! क्यों अनुताप करता है, प्रभु के प्रताप रूपी मंत्र का जाप कर ।[३] जो कोई उनके पतित-पावन चरणों की शरण ले लेता है, वह उनकी सुखदात्री लीला देख पाता है । उस मुख-चंद्र को देखते ही समस्त अंधकार दूर हो जाता है और सब कर्म छूट जाते हैं ।[४] गोरा-चांद के चरणों का भजन करो । वे ही हरि नाम का मंत्र देकर संसार सागर से पार करेंगे ।[५]

इसी प्रकार वल्लभाचार्य के लिए भी भक्तगण कहते हैं । वे कहते हैं, "हमें श्री वल्लभ

---

१. तुमारे चरण कमल के शरण ।
राखो सदा सर्वदा जन कों, विट्ठलेश गिरिधरण ।
(भगवानदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२०)

२. कलि कवलित, कलुष जड़ित, देखिया जीवेर दुःख ।
करल उदय, हइया सदय, छाड़िया गोकुलसुख ॥
देख गौर गुणेर नाहि सीमा ।
दीन हीन पाञा, विलाय जाचिञा, विरिंचि-वांछित प्रेमा ॥
जाति ना विचारे, आचंडाले तारे, करुणासागर गोरा ॥
(गोविन्ददास, गौ. प. त., १।२।२३)

३. श्री मुखवचन श्रवण अनुषंगी ।
अनुभवि कत भेलि प्रेमतरंगी ॥
रे मन काहे करसि अनुताप ।
पहुंक प्रताप मंत्र करु जाप ॥
(गोविन्ददास, गौ. प. त., १।२।१४)

४. पतितपावन, प्रभुर चरण, शरण लइल जे ।
इह परलोके सुखेर से लीला, देखिते पाओल से ॥
शुन शुन शुन सुजन भाइ , भांगल सकल धंद ।
मनेर आंधार, सब दूरे गेल, भाविते से मुखचन्द ॥
(गोविन्ददास, गौ. प. त., १।२।२५)

५. भज गोराचांदेर चरण ।
.. .. ..
भव तरिवारे हरि-नाम-मंत्र भेला करि, आपनि गौरांग करे पार ।
(परमानन्द दास, गौ. प. त., १।२।४०)

का भरोसा है। हम किसी और को न तो जानते हैं,न मानते हैं। हमें इन्हीं का खरा आसरा है[१] हमें इन चरणों का दृढ़ भरोसा है। वल्लभ के नख-चन्द्र की छटा बिना संसार में सब अंधेरा है। इस कलियुग में और तो कोई साधन ही नहीं है।[२] श्री वल्लभ का ही भरोसा रखना चाहिए, सब काम क्षण में पूरे हो जायेंगे। इनके गुणों का गान करो। रात-दिन भक्तों का साथ करो और असमर्पित मत खाओ। श्रीवल्लभ के पद-रज बिना और सब तत्व व्यर्थ हैं।[३] हम वल्लभजी के दास हैं। हमारा मन किसी और की आशा नहीं करता।[४] विट्ठल का भरोसा बड़ा भारी है, हम उनके हैं।"[५]

मनोराज्य—अपने अपने इष्टदेवों की वंदना करके और उनकी महत्ता के अनुभव से उद्भूत आश्वासन प्राप्त करके वे लोग अपने मनोरथ व्यक्त करते हैं। वे अपने अपने लिए एक विशेष जीवन की कामना करते हैं जिसमें वे उनकी कृपा प्राप्त करते रहेंगे और सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे।

---

१. मोही श्री वल्लभ जी को भरोंसो।
अन्य देव को जानुं न मानुं इनको आशरो खरोसो ॥..
(रसिक, की. र., पृ. ३७६)

२. भरोंसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन सब जग मांझ अंधेरो।
साधन ओर नहिं या कलि में जासु होत निबेरो ॥..
(सूरदास, की, र., पृ. ३७६)

३. भरोंसो श्री वल्लभ जी को राखो।
सधरे काज सरेंगे छिनमे इन ही के गुण भाखो।
निशदिन संग करो भक्तन को असमर्पित नहीं चाखो ॥
वल्लभ श्री वल्लभ पद रज बिन ओर तत्त्व सब नाखो ॥
(वल्लभ, की. र., पृ. ३७६)

४. हो श्री वल्लभ जू को दास।
मन न धरत काहू की आस ॥
(रसिकदास, की. र., पृ. २२४)

५. (क) हमारे श्री बिट्ठलनाथ धनी।
भवसागर ते काढ़े कृपानिधी, राखे शरन अपनी ॥
रसना रटत रहत निशिवासर, शेष सहस्त्र फनी ॥
छीत स्वामि गिरिधरन श्री विट्ठल त्रिभुवन मुकुट मनी ॥
(छीतस्वामी, की. र. पृ. ३७६)

(ख) हम तो श्री विट्ठलनाथ उपासी।
सदा सेवुं श्री वल्लभनन्दन कहा करुं जाय काशी।
इन कुं छांड़ ओरकुं धावे सो कहीए असुरासी ॥
(छीतस्वामी, की. र., पृ. ३७६)

चैतन्यदेव के भक्त इस बात की कामना करते हैं कि वे कब उनका दर्शन कर पायेंगे और कब वह दिन होगा, जब वे गौरांग के संकीर्त्तन को सुन कर आनंद से दिन व्यतीत करेंगे। गौरांग का नाम लेकर उनका शरीर पुलकित हो उठेगा और नाचना न जानते हुए भी नाच उठेंगे और गाना न जानते हुए भी गायेंगे। संसार उनके लिए तुच्छ हो उठेगा। उस चंद्र-मुख को देख कर प्रेमानंद पायेंगे और ये दो नेत्र सफल होंगे।[1]

वल्लभाचार्य के भक्त अपने इष्टदेव की दया चाहते हैं। वे उनका गुण गाना चाहते हैं। द्वार पर खड़े होकर गुण गाने का निश्चय करके जन्म सफल करना चाहते हैं और उनकी एकमात्र चाहना उनकी दया की प्राप्ति है जो भक्तोंके जीवन का फल है। सोना, ग्राम, आभूषण, सुख संपत्ति, उन्हें कुछ नहीं सुहाता। उन्हें वल्लभ की जूठ चाहिए। वे उनके कमल-मुख की शोभा देख कर दोनों नेत्र शीतल करेंगे। उनकी कृपा दृष्टि से खिंच कर उनके पास जायेंगे और चरण-स्पर्श करके प्रसन्न होंगे। यदि वे अपना समझ कर बोल दें, तब तो फूले नहीं समायेंगे। और सब भूल कर चरणों की सेवा करेंगे। भाल, कंठ और उर पर चरण-रेणु

---

१. (क) हरि हरि ऐछे कि होयब हामार।
सहचर-संगे रंगे पहुं गौरक, हेरब नदिया बिहार।
सुरधुनि-तीरे नटन-रसे पहुं मोर, कीर्तन करब विलास।
सो किये हाम नयन भरि हेरब, पूरब चिर-अभिलाष॥
(रामानन्द, प. क. त., पद ३०५७)

(ख) चन्द्रशेखर दास, एइ मने अभिलाष, आर कि एमन दशा हब।
गोरा-पारिषद संगे, संकीर्तन-रस-रंगे, आनन्दे दिवस गोङाइब॥
(चन्द्रशेखरदास, प. क. त., पद ३०३०)

(ग) गौरांग बलिते ह्वे पुलक-शरीर। हरि हरि बलिते नयने बवे नीर॥
कबे मोरे निताइ चाँद करुणा करिबे।
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०४६)

(घ) नाचिते ना जामि तमु, नाचिये गौरांग बलि, गाइते ना जानि तमु गाइ।
सुखे वा दुःखेते थाकि, गौरांग बलिया डाकि, निरन्तर एइ मति चाइ॥
(हरिदास, प. क. त., पद ३०१४)

(ङ) कबे मोर निताइचांद करुणा करिबे।
संसार-वासना मोर कबे तुच्छ हबे॥
विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन।
कबे हाम हेरब श्री वृन्दाबन॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०४६)

(च) रामानन्द आनन्दे कि हेरब,
सफल करब दु नयान॥
(परमानन्द, प. क. त., पद ३०५७)

लगायेंगे एवं रूप-सुधा का पान करते नहीं अघायेंगे।[1]

विट्ठलनाथ के चरणों में मन लगाने की इच्छा सगुणदास करते हैं।[2]

---

१. (क) तुव गुण गाऊं लाड़ लड़ाऊं।
ठाड़ो निशदिन द्वार वहां॥
द्वार ठाड़ो करूं विनती चित्त चरणन में धरूं।
ये ही निश्चय जान जिय में अपनो जन्म सुफल करूं॥
चाहना नहि ओर मेरे जीवन को फल प्रभु दया॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २७५)

(ख) श्री वल्लभ मुख कमल की हो बल बल जाउं।
शोभा निधि निरख निरख नयन युग सिराउं॥
करुणाकर चितवत इत तब हों ढिंग आउं।
चरण कमल युगल परसि मन में सचु पाउं॥
अपनों कर बोलत तब न कहुं समाउं।
आनन्द निधि उमगहिये गुण गण हों गाउं॥
सेवो निश दिवस चरण ओर फल भुलाउं।
चरणरेणु नयन भालकंठ उर लगाउं॥
रूप सुधा अचवत दृग नेक नाही अघाउं॥
रसिक सुखद वल्लभ को जन्म जन्म दास कहाउं॥
(रसिक, की. सं., भाग बीजो, पृ. २२३)

२. श्री विट्ठल के चरण-कमल पर सदा रहे मन मेरो।
शीतल सुभग सदा सुख दायक भवसागर को बेरो।
रसना रटत रहों निसवासर प्रभु पावन यश तेरो॥
सगुणदास इतनी मागत हें भृत्य भृत्य को चेरो॥
(सगुणदास, की. र., पृ. ३६०)

गुरु-वंदना

गौड़ीय वैष्णव समाज में चैतन्यदेव के बाद केवल दो व्यक्तियों का अधिक महत्व-पूर्ण स्थान है, एक तो नित्यानंद प्रभु और दूसरे अद्वैत आचार्य। नित्यानंद प्रभु को वे लोग संकर्षण बलराम का अवतार मानते हैं। इस हिसाव से उन्हें अनेक पदकर्त्ताओं ने चैतन्यदेव का बड़ा भाई भी बताया है।[1] संकर्षण बलराम का अवतार होने पर भी वे चैतन्यदेव के स्नेही भक्त हैं और कदाचित् पदकर्त्ता भक्तों की दृष्टि में वे इसीलिए अधिक महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं, क्योंकि उनकी प्रशस्तियों में यह बात कई बार कही गई है कि वे चैतन्य के स्नेह को बांटते हैं, मनुष्यों से उनकी भक्ति करने को कहते हैं[2] और उन्हें 'भैया, भैया' कह कर बार बार बुलाते हैं[3] और उन्हें देख कर पुलकित होते हैं। कुछ पदकर्ता तो उनके समकालीन ही थे अतः उन्होंने नित्यानंद प्रभु की चैतन्य-भक्ति के बारे में जो कुछ कहा है, वह उनका आंखों देखा है अतः उन पदों का ऐतिहासिक महत्व भी है। परन्तु पद-कर्त्ताओं ने ऐतिहासिकता के लिए ऐसा नहीं लिखा है।। चैतन्य का अनन्य-स्नेही होना उनकी दृष्टि में बड़ी भारी बात है, इसीलिए उनकी प्रशस्ति का यह एक बड़ा भारी अंग बन गया है।[4]

---

१. (क) अशेष पापेर पापी जगाइ मधाइ।
ता सभारे उद्धारिला तोमरा दुटि भाइ।। (लोचन, प. क. त., पद ३००३)
(ख) चैतन्य-अग्रज पद्मावतीर कोङर, (नरहरि, गौ. प. त., ६।१।६६)

२. चंडाल पतित जीवेर घरे घरे जाञा।
हरिनाम महामंत्र दिछे बिलाइया।।
जारे देखे तारे कहे दंते तृण धरि।
आमारे किनिया लह बल गौरहरि।। (लोचन, गौ. प. त., ६।१।२५)

३. दिग नेहारिया जाय, डाके पहुं गोराराय, अवनी पड़ये मूरछिया।।
.. .. ..
मेघ-गभीरनादे, पुनः भाया बलि डाके, पद भरे कंपित धरणी।।
(वासुदेव घोष, गौ. प. त., ६।१।३१)

४. (क) गौर पिरीति रसे, कटिर बसन खसे, अवतार अति अनुपाम।
नाचत गाओत, हरि हरि बोलत, अविरत गौर गोपाल।।
(ज्ञानदास, गौ. प. त., ६।१।३३)
(ख) आरे मोर आरे मोर नित्यानन्द राय।
आपे नाचे आपे गाय चैतन्य बोलाय।।
लम्फे लम्फे जाय निताइ गौरांग आवेशे।.... (ज्ञानदास, गौ. प. त., ६।१।३७)
(ग) ओ चांद बदने सदा बोले गोरा गोरा।
बुक मुख बाहिया नयने बहे लोरा।। (नरहरि, गौ. प. त., ६।१।६६)

अद्वैत आचार्य का महत्व भी गौर-भक्त के रूप में है। गौड़ीय वैष्णवों का कथन है कि देश की दुर्गति और दुराचार को देख कर अद्वैत आचार्य दुःखी होकर हुंकार भरते थे और ईश्वर को पुकारते थे, उसी के फलस्वरूप चैतन्य आए।[१] अद्वैत आचार्य का महत्व इसी में है। इसी महत्व के अनुरूप उनकी प्रशस्तियां हैं।

नित्यानंद प्रभु को बलराम का अवतार बताया गया है इसलिए उनकी प्रशस्तियां भी उसी के अनुरूप हैं। भक्तों ने उनका गुण गान किया है, साथ ही उनकी कृपा, शक्ति, दयालुता, भक्तवत्सलता संबंधी महत्ता का वर्णन किया है। उनके रूप-सौंदर्य का भी वर्णन किया गया है। चैतन्यदेव के रूप वर्णन के समान इस वर्णन में भी वात्सल्य भाव और शृंगार भाव दोनों प्रकार की आसक्तियां पाई जाती हैं। भक्त-गण अपनी दीनता का स्मरण करके उनसे उद्धार की याचना करते हैं, फिर मन को आश्वासन भी देते हैं। इन सब भावों से संबंधित कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं।[२]

---

१. (क) अद्वैत हुंकारे, सुरधुनी तीरे, आइला नागरराज।
ताहार पिरीते, आइला तुरिते, उदय नदीया माझ॥
(वृन्दावनदास, गौ. प. त., ६।२।१)

(ख) जय जय अद्वैत आचार्य दयामय।
जार हुहुंकारे गौर अवतार हय॥ (लोचनदास, गौ. प. त., ६।२।२)

२. (क) जय जगतारण-कारण-धाम।
आनन्द-कन्द नित्यानंद नाम॥
जगमग लोचन कमल ढुलायत,
सहजे अथिर गति दिठि मातोयार।
भाइया अभिराम बलि घन घन गरजइ,
गौर प्रेम-भरे चलइ ना पार॥

. . . . . .

कलियुग काल, भुजंगम दंशल, दगधल थावर जंगम पेखि।
प्रेम सुधारस, जगभरि बरिखल, दास गोविन्द काहे उपेखि॥
(गोविन्ददास, गौ. प. त., ६।१।२)

(ख) जय जय पद्मावती-सुत सुन्दर, नित्यानन्द गुण-भूप।
जग-जन-नयन, ताप भर भंजन, जिनि कणा कारुण अपरूप रूप॥
(घनश्याम, गौ. प. त., ६।१।६)

(ग) जय जय नित्यानन्द राय।
अपराध पाप मोर, ताहार नाहिक ओर।
उद्धारह निज करुणाय॥
आमार असत मति, तोमार नामे नाहि रति,
कहिते ना वासि मुखे लाज।
जनमे जनमे कत, करियाछि आत्मघात,
अतये से मोर एइ काज॥

नित्यानंद प्रभु के बाद जिनकी प्रशस्तियां अधिक मात्रा में मिलती हैं, वे अद्वैत आचार्य ह। भक्तों ने उन्हें बार बार गौरांग को पृथ्वी पर लाने वाले रूप में स्मरण किया है और इसी रूप में उनकी महत्ता बताई गई है। इसी रूप में उनकी प्रशस्तियां भी मिलती हैं। उनकी वंदनाओं में अलौकिकता की भावना प्रायः नहीं ही है। केवल एक पद में

तुमि ते करुणासिन्धु, पातकी जनार बन्धु,
एबार करह जदि त्याग ॥
पतित-पावन नाम, निर्मल से अनुपाम,
ताहाते लागये बड़ दाग ॥
पुरुबे यवन आदि कत कत अपराधी,
ताराय्याछ शुनियाछि काणे ।
कृष्णदास अनुमानि, ठेलिते नारिबे तुमि,
जदि घृणा ना करह मने ॥ (कृष्णदास, प. क. त., पद ३००६)

(घ) कीर्तन-रसमय, आगम-अगोचर, केवल आनन्द-कन्द ।
अखिल लोक-गति, भकत प्राणपति, जय जय नित्यानन्द चन्द ॥
हेरि पतित गण, करुणावलोकन, जगभरि करल अपार ।
भव-भयभंजन, दुरति-निवारण, धन्य धन्य अवतार ॥
हरि संकीर्तने, साजल जगजने, सुर नर नाग पशु पाखी ।
सकल वेद सार, प्रेम सुधा रस, देयल काहु न उपेखि ॥
त्रिभुवन-मंगल-नाम-प्रेम-बले, दूरे गेल कलि आंधियार ।
शमन-भवन पथ, सबे एक रोधल, वंचित राम दुराचार ॥
(रामराय, गौ. प. त., ६।१।१८)

(ङ) जय जय नित्यानन्द राम ।
कनक-चंपक पाति, अंगुले चांदेर पांति, रूपे जितल कोटि काम ।
ओ मुख-मंडल देखि, पूर्णचंद्र किसे लेखि, दीघल नयान भाङ धनु ।
आजानुलंबित भुजतल थल-पंकज, कोटि क्षीण करि अरि जनु ॥
(कृष्णदास, गौ. प. त., ६।१।८)

(च) दया कर मोरे निताइ दया कर मोरे ।
अगतिर गति निताइ साधु लोके बले ॥
जय प्रेम-भक्तिदाता पताका तोमार ।
उत्तम अधम किछु ना कर विचार ॥
प्रेमदान जगज्जनेर मन कैला सुखी ।
तुमि दयार ठाकुर आमि केन दुःखी ॥
कानुराम दास बले कि बलिब आमि ।
ए बड़ भरसा मोर कुलेर ठाकुर तुमि ॥
(कानुरामदास, गौ. प. त., ६।१।५७)

नरहरि दास उन्हें देव देव महेश्वर रूप करके स्मरण करते हैं (गौ. प. त., ६।२।१७)। अन्य प्राप्त पदों में उनकी महत्ता केवल गौरांग का अवतार कराने वाले भक्त-साधक के रूप में ही है। वे गौरांग को भी किसी अन्य स्वार्थ-वश नहीं लाए। संसार के पाप-ताप को देख कर वे विचलित हुए थे और रक्षा के लिए कृष्ण-चैतन्य को लाए। इन सब भावनाओं से संबंधित प्रशस्तियां नीचे दी जा रही हैं। उनमें उनका रूप वर्णन भी है।[1] यह रूप वर्णन शास्त्रानुकल आलंकारिक भावनायुक्त है। उनका वर्ण स्वर्ण चम्पक जैसा है, प्रति अंग अनंग को लज्जित

---

१. (क) जय जय अद्वैत आचार्य दयामय ।
जार हुहुंकारे गौर अवतार हय ॥
प्रेमदाता सीतानाथ करुणा-सागर ।
जार प्रेमरसे आइला गौरांग-नागर ॥
जाहारे करुणा करि कृपादृष्टे चाय ।
प्रेमवशे सेजन चैतन्य-गुण गाय ॥
ताहार पदेते जेबा लइला शरण ।
सेजन पाइला गौर प्रेम-महाधन ॥
एमन दयार निधि केन ना भजिनु ।
लोचन बले निजमाथे बजर पाड़िनु ॥ (लोचनदास, गौ. प. त., ६।२।३१)

(ख) सीतानाथ मोर अद्वैतचांद ।
प्रेममय महा मोहनफांद ॥
जाहार हुंकारे प्रकट गोरा ।
नित्यानंद सह आनन्दे भोरा ॥
अनुपम गुण करुणा-सिन्धु ।
पतित अधम जनार बन्धु ॥
(नरहरिदास, गौ. प. त., ६।२।२१)

(ग) अद्वैत बन्दिब शिरे, जे आनिल धीरे धीरे, महाप्रभु अवनी माझार।
नंदेर नन्दन जे, शचीर नन्दन से, नित्यानन्द चांद सखा जार ॥
(बलरामदास, गौ.प. त., ६।२।३५)

(घ) नास्तिकता अपधर्म जुड़िल संसार ।
कृष्णपूजा कृष्णभक्ति नाहि कोथा आर ॥
देखिया अद्वैत प्रभु विषादित हैला ।
केमने तरिबे जीव भाविते लागिला ॥
नेत्र बुजि तुलसी प्रदानि विष्णुपदे ।
हुंकारि विलेन लम्फ आचार्य आह्लादे ॥
जितिलु जितिलु मुखे बले बार बार ।
जीव निस्तारिते हबे गौर अवतार ॥
(लोचनदास, गौ. प. त., ६।२।३०)

करता है। सुरंग अधर हैं, विशाल विमल लोचन हैं। कंठ कंबु जैसा है। बाहु आजानुलंबित है। प्रशस्त वक्ष है, अपरूप नाभि है।[1]

इन चार महापुरुषों के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्तियों से संबंधित प्रशस्तियां पाई जाती हैं। ये व्यक्ति या तो पदकर्त्ताओं के गुरु हैं या वैष्णव मत के व्यवस्थाकार हैं या गुरुओं के शिष्य या पुत्र हैं। उन व्यक्तियों के नाम यहां दिए जा रहे हैं।

नाम	प्राप्त प्रशस्तियां (प्रथम पंक्तियां)	पदकर्त्ता
अभिराम	पुरुबे श्रीदाम, एबे भेल अभिराम, महा तेजः पुंज राशि।	उद्धवदास गौ. प. त., ६।३।१८
आचार्य बलराम	धनि धनि गोवर्धन दास धनि चांदपुर ग्राम, धनि गोवर्धन को पुरोहित आचार्य बलराम ॥	राधावल्लभ गौ. प. त., ६।३।३७
गदाधर दास	(क) जय जय पंडित गोसाईं। जार कृपा बले से चैतन्य गुण गाइ।	शिवानंद गौ. प. त. ६।३।३
	(ख) जय जय श्रील गदाधर पंडित, मंडित भाव भूषण अनुपाम। श्री चैतन्य अभिन्न शकति गुणनाम, धन्य सुदुर्गम जसु रस धाम।	शिवाई, गौ. प. त. ६।३।५
श्रीगंगानारायण चक्रवर्ती	जय जय श्री गंगानारायण चक्रवर्ती अति धीर गंभीर। धैरजहरण वरण वर माधुरी, निरूपम मृदुतर रुचिर शरीर।	नरहरि, गौ. प. त., ६।३।७१
गोपाल भट्ट	दक्षिण देशेते भ्रमिते भ्रमिते गौरांग जखन गेला।... परम पंडित, अति सुचरित, भट्ट-पुत्र श्री गोपाल। राखिया प्रभुरे, आपनार घरे, सेवा करे सदा काल ॥	वल्लभदास, गौ. प. त., ६।३।४०
गोविंददास	श्री गोविंद कविराज बंदित कवि समाज, काव्य-रस अमृतेर खनि। वाग्देवी जाहार द्वारे दासी भावे सदा फिरे, अलौकिक कवि शिरोमणि।	वल्लभ, गौ. प. त., ६।३।७०

---

१. गौ. प. त., ६।२।८ (घनश्यामदास)

गौरीदास	श्री वृन्दावन नाम, रत्न चितामणि धाम ताहे हरि बलराम पाश । सुवल चन्द्र नाम छिल, एवे गौरीदास हैल, अम्बिका नगरे जार बास ।	कृष्णदास, गौ.प.त., ६।३।१९
जीव गोस्वामी	अनुप तनय, सदय हृदय, श्री जीव गोसाञि पहुं । वितर प्रसाद, कर आशीर्व्वाद, तव पदे मति रहुं ॥	उद्धवदास, गौ.प.त., ६।३।३८
दुःखी कृष्णदास	जय श्रील दुःखी कृष्णदास गुण कहिते शकति कार । हृदयचैतन्य पदाम्वुजे सदाचित-मधुकर जार ॥	नरहरि, गौ.प.त., ६।३।४३
नरहरिदास	भूखंड मंडल माझे, ताहाते श्रीखंड साजे, मधुमती जाहे परकाश ठाकुर गौरांग सने, बिलसये रात्रि दिने, नाम धरे नरहरि दास	शेखरराय, गौ.प.त., ६।३।१२
नरोत्तमदास	(क) जय रे जय रे जय, ठाकुर नरोत्तम, प्रेम भकति महाराज । जांको मंत्री, अभिन्न कलेवर, रामचन्द्र कविराज ॥	गोविंददास, गौ.प.त., ६।३।६०
	(ख) जय जय श्री नरोत्तम परम उदार । जग जन रंजन, कनक कंज रुचि, जनु मकरंद बरिखे अनिवार ।	नरहरि, गौ.प.त., ६।३।६१
	(ग) ओ मोर करुणामय, श्री ठाकुर महाशय, नरोत्तम प्रेमेर मूरति ।	नरहरि, गौ.प.त., ६।३।६२
	(घ) जय शुभ मंडित, सुपंडित, नरोत्तम महाशय, मनोज्ञ सब रीतवर गौरव गभीर अति धीर गुणधाम ॥	घनश्यामदास गौ.प.त., ६।३।६३
परमानंदसेन	जय सेन परमानंद, कर्णपुर कविचन्द्र, प्रभु जारे कहे पुरिदास	उद्धवदास, गौ.प.त., ६।३।४७
मुरारि	जय जय रसिक सुरसिक मुरारि ।	घनश्याम, गौ.प.त., ६।३।४८
रघुनंदन	श्री नरहरि सुचतुर कुलराज । माधव तनयक, नियड़े विराजत,	घनश्याम, गौ.प.त.,

	भंगी सुसदृश अदृश जगमाझ ।	६।३।१५
रघुनाथदास स्वामी	जय भट्ट रघुनाथ गोसाञी ।	राधावल्लभ,
	राधाकृष्ण लीला शुणे, दिवा निशि	गौ.प.त.,
	नाहि जाने, तुलना दिवार नाहि ठाञी ।	६।३।३५
रामानंद राय	१. विद्यानगराधिप, अपार संपदशाली,	कानुदास,
	रामराय पुरुष प्रधान ।	गौ.प.त.,
		६।३।९
	२. गूढ़ रूपे राम, पूरे निज काम, अनंग-	वृंदावनदास,
	मंजरी हैया ।	गौ.प.त.,
		६।३।१०
रामचन्द्र कविराज	जय जय रामचन्द्र कविराज ।	नरहरि
	सुललित रीत, नामरत निरवधि,	
	मगन आनंद महोदधि माझ ।।	
रामकृष्ण आचार्य	जय जय रामकृष्ण आचार्य सुधीर	नरहरि,
	महाशय सुखद उदार ।	गौ.प.त.,
	भावावेशे निरंतर कीर्त्तन लम्पट,	६।३।७२
	अतिशय सुघड़ प्रचार ।	
रूप गोस्वामी	आरे मोर श्री रूप गोसाञी ।	राधावल्लभ,
	गौरांगचांदेर भाव, प्रचार करिया सब···	गौ.प.त.,
		६।३।२८
वृंदावनदास	धन्य धन्य वृंदावनदास ।	
	चैतन्यमंगले जार कवित्व प्रकाश ।	उद्धवदास,
	महाप्रभु लीलारसामृत ।	गौ.प.त.,
	जार गुणे जगते विदित ।।	६।३।२१
श्यामानंद	जय जय सुखमय श्यामानंद ।	घनश्यामदास
	अविरत गौर-प्रेमरसे निमगन,	गौ.प.त.,
	झलकत तनु नव पुलक आनंद ।।	६।३।४१
श्रीनिवास	१. अनुक्षण गौर प्रेमेरसे गरगर,	यदुनंदनदास,
	ढर ढर लोचने लोर ।	गौ.प.त.,
	गदगद भाव हास क्षणे रोयत	६।३।५०
	आनंदे, मगन घन हरिबोल ।।	
	पहुं मोर श्री-श्रीनिवास ।।	
	२. आरे मोर आचार्य ठाकुर ।	राधावल्लभ-
	दयार सागर, बड़ जगभर	दास गौ.प.
	विथारल-राधाकृष्ण-लीला रसपूर	त., ६।३।५१
	३. जय प्रेम भक्ति दाता सदय हृदय।	राधावल्लभ-

जय श्री आचार्य प्रभु जय दयामय ।।	दास, गौ.प. त., ६।३।५२
४. जय जय गुणमणि श्रीश्रीनिवास । धनि धनि अवनीभाग किये अपरूप, गौर प्रेममय मूरति प्रकाश ।	घनश्यामदास गौ.प.त. ६।३।५४
५. जय जय श्रीनिवास आचार्य, जगतजन-जीवन, परम रसिक गुणधाम	नरहरिदास, गौ.प.त., ६।३।५५
६. जय जय श्रीनिवास गुणधाम । दीन हीन तारण, प्रेम रसायन, जैछन मधुरिम नाम ।	गोविंददास, गौ.प.त., ६।३।५७

हिन्दी पदावली साहित्य में प्राप्त प्रशस्तियां

गोकुलनाथ	जयति धन्य विट्ठल सुवन प्रकट वल्लभ बली प्रबल पन करि तिलक माल राखी ।। खंड पाखंड दंडी विमुख दूर कर हन्यो कलिकाल तम नियम साखी ।।	वल्लभ, की. सं., भाग बीजो, पृ. १६९
घनश्याम	जयति पद्मावती सुवन विठ्ठल तनय नाम घनश्याम मुख चन्द्र सरखो ।। रुचिर अंग अंग बहु सजे भूषण वसन । दरस करि ध्यान निज रूप परखो ।।	रसिक, की. स., भाग बीजो, पृ. १७६
घनश्याम	जयति घनश्याम रस रूप निज देह धरि प्रकट भये आप श्री वल्लभ कुमार घर ।।	रसिक, की.सं., भाग बीजो, पृ. १७७
हरिराय	रास रसिक भाव रूपस्वामिनी स्वरूप रूप प्रकट भये अति अनूप श्री हरिराय ।।	रसिकदास, की.र., पृ. १३१
हरिदास	हों हरिदास वर्य पें वारी । शीतल झरना झरत निरंतर पवन सुगंध परम सुखकारी ।।	रसिकदास, की. र., पृ. ३८७

हिन्दी पदावली साहित्य में कम ही प्रशस्तियां पाई जाती हैं । ऊपर दी हुई प्रशस्तियों के अतिरिक्त बंगाली पद साहित्य में कुछ थोड़े से पद[1] ऐसे हैं जिनमें कई कई नाम दिए हुए

---

१. गौ. प. त., पृ. ४८२, ४८३, ४८९, पद कर्त्ता, वल्लभदास, दुखिया शेखर, नरोत्तमदास, उद्धवदास ।

हैं और उन सब को आदर से स्मरण किया गया है। उन पदों में प्राप्त नामों की सूची यहां दी जा रही है––

अद्वैत, उद्धवदास, कर्णपूर, काशीश्वर, गदाधर, गीत गोविंद, गंगानारायण चक्रवर्त्ती, गोपीरमण, गोकुलानंद, गोविंददास, गोपीनाथ, गौरीदास, गौरांग प्रिया, चैतन्य, चांद राम, चौधरी जगदानंद, दामोदर, द्रौपदी, नरहरि, नंदाई, नित्यानंद, नरोत्तम, नृसिंह, परमानंद पुरी, भूगर्भ, मुकुंद, मुरारि, माधव, माधो, रघुनाथ, रूप गोस्वामी, रघुनंदन, रामानंद, रामचन्द्र, राम चरण, राम, रामकृष्ण, रामकृष्ण आचार्य, राधावल्लभ, रूप, लोकनाथ, लोचन, वनमाली, वक्रेश्वर, व्यास, वल्लभीदास, वीर हाम्वीर, श्री निवास, शुभानंद, श्री सुन्दर, श्री धर, शिखाई, श्रीवास, श्यामदास चक्रवर्ती, श्री जीव, सनातन, स्वरूप, हरिदास, हेमलता।

लीला गान

जन्म-लीला

१. **जन्म-लीला—(राम-कृष्ण संबंधी)** बंगला पद साहित्य में कृष्ण जन्म-लीला सम्बन्धी पद अल्पसंख्यक ही हैं। हिन्दी पद साहित्य में राम-कृष्ण जन्म-लीला संबंधी पदों की अपेक्षाकृत बहुलता है।

श्री कृष्ण का जन्म तो मथुरा में हुआ था। जन्म हो जाने के अनन्तर वसुदेव उन्हें यशोदा के पास उनकी बेसुधी में पहुंचा गए थे। इस कथा का उल्लेख सूरदास ने किया है।[1] बंगाली पद कर्त्ताओं ने इस समस्त कथा का उल्लेख नहीं किया है। वैसे सूर के समान वे भी कहते हैं कि व्रजेश्वरी ने जग कर पुत्र का मुंह देखा और प्रसन्नता से भर कर नंद को बुलाया और दिखाया।[2] राम-जन्म तो अयोध्या में ही हुआ था और उनकी माता कौशल्या ही थीं।

जन्म चाहे जहां हुआ हो परन्तु कृष्ण के जन्म का समाचार मिलते ही और राम का जन्म होते ही समस्त नगर में उत्साह भर गया। नंद के गोप-ग्वाल और दशरथ की प्रजा गाती नाचती हुई उन दोनों के निवास-स्थान की ओर चली।[3] झुंड की झुंड स्त्रियां स्वर्ण

---

१. सू. सा., १०।४—१२

२. (क) जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाइ।
गदगद कंठ, बोल नहिं आवै, हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।
आवहु कंत, देव परसन भए, पुत्र भयौ मुख देखौ धाइ।
(सूरदास, सू. सा. १०।१३, ृ. २६१)

(ख) निशि अवशेषे जागि बरजेश्वरी,
हेरह बालब मुख चांदे।
कतहुं उल्लास कहइ ना पारिये,
तथलइ हिया नाहिं बांधे।
आनंद को करूं और।
सुनि घनि नंद गोपेश्वर आथल,
शिशु मुख हेरिया विभोर॥
(शिवरामदास, प. क. त., ११२८)

३. (क) नंद सुनंद जशोमति रोहिणि आनंद करत बाधाइ।
गोकुल नगर-लोक सब हरषित, नंद-महल चलु धाइ॥
(शिवराम, प. क. त., पद ११२९)

(ख) ढोटा है रे भयौ महर कैं कहत सुनाइ-सुनाइ।
सबहि घोष में भयौ कुलाहल, आनंद उर न समाइ॥
कत हौ गहर करत बिन काजैं, बेगि चलौ उठि धाइ।
(सूरदास, सू. सा. १०।२०, ृ.२६३)

के थालों में सामग्री भर कर गाती हुई चलीं।[1] यह उत्साह समस्त नगर में तो फैला ही है, देवताओं तक जाकर पहुंचा है। नर-नारी गाते-नाचते हैं, अप्सरायें भी नाचती हैं और देवता बाजा बजाते हैं, यहां तक कि प्रसन्नता में भर कर नंद भी नाचते हैं। गौड़ीय वैष्णव पदों में तो नंद की मां भी नाचती हुई बताई गई है। दशरथ को नाचते हुए नहीं बताया गया है। नंद और उनके भाइयों का हाथ फैला कर नृत्य करना चैतन्य देव का पार्षदों सहित नृत्य करने जैसा ही ज्ञात होता है। कृष्ण जन्म पर गोपी-ग्वाल दूध और दही लुढ़काते और छिड़कते हैं। इन सब से संबंधित कुछ पद यहां दिए जा रहे हैं।[2] जन्म समय के संस्कार करने का उल्लेख भी सब में मिलता है। तुलसीदास ने श्री राम के जन्म समय के जात-

(ग) लैं लैं ढोव प्रजा प्रमुदित चले,
भांति भांति भरि भार।
करहिं गान करि आन राय की,
नाचहिं राज दुवार॥ (तुलसीदास, गी. व., बा. २, पृ. २७१)

१ (क) नंद गृह बाजत कहां बधाइ।
जुरि आई सब भीर आंगन में जन्में कुंवर कन्हाइ।
सुनत चली सबै ब्रजसुन्दरि कर लिये कंचन थाल॥
(परमानंद दास, की. र., पृ. ८१)

(ख) दल फल फूल दूब दधि रोचन जुवतिन्ह भरि भरि थार लए।
गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह, बंदिन्ह बांकुरे बिरद बए।
(तुलसीदास, गी. व., बा. ३, पृ. २७३)

२. (क) सजि आरती बिचित्र थार कर जूथ जूथ बरनारि।
गावत चलीं बधावन लैलै निज निज कुल अनुहारि॥
(तुलसीदास, गी. व., बा. २, पृ. २७०)

(ख) सहेली तुनु सोहिलो रे।
.. .. ..
नृत्य करहिं नट नटी, नारि नर अपने अपने रंग।
मनहुं मदनरति बिबिध बेष धरि नटत सुदेस सुढंग॥
(तुलसीदास, गी. व., बा. २, पृ. २७१)

(ग) राम जन्म आनंद बधाई।
.. .. ..
अन्तरिक्ष जन फिरत अवनी पर
मेलत परस्पर दूब बधाई।....
भीर गंभीर नाचे नर नारी
बाजे बहुत गिने नहीं जाई॥ (अग्रदास, की. स., भाग बीजो, पृ. १९५)

(घ) आज नंदराय के पूत भयो।
करो बधायो मन को भायो उर को शूल गयो॥
.. .. ..
मंगल चार करत भवनन में आइ सकल ब्रजबाल।
गावत आइ गीत गोपी सब नाचत आये ग्वाल॥
(विठठल गिरिधर, की.र., पृ. ६७)

कर्म, छठी इत्यादि संबंधी उत्साह और सजावट इत्यादि का अपेक्षाकृत अधिक वर्णन

(ङ) आज व्रज भयो सकल आनंद।

.. .. ..

नाचत तरुनी और गोप सब प्रगटे गोकुल चंद।
विविध भांत बाजे बाजत हैं निगम पढ़त द्विज छंद।
छिरकत दूध दहीं माखन प्रफुलित मुख अरविंद ॥ (गोविंद, की. र., पृ. ६७)

(च) गावत गीत पुनीत करत जग जसुमति मंदिर आई।
बदन बिलोकि बलैया ले ले देत असीस सुहाई ॥

.. .. ..

तापाछें जन गोप ओप सों आये अतिसें सोहें। (नंददास, की. र., पृ. ७३)

(छ) आज नंदराय के आनंद भयो।
नाचत गोपी करत कुलाहल मंगल चार ठयो। (परमानंद दास, की. र., पृ. ७९)

(ज) सजि सजि जान अमर किन्नर
मुनि जानि समय सम गान ठए।
नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन पुनि पुनि
बरषहिं सुमन चए। (तुलसीदास, गी. व., बा. ३, पृ. २७२)

(झ) आज सखी रघुनंदन जाये।

.. .. ..

ब्रह्म घोष मिल करत वेद ध्वनि
जय जय दुंदुभी देव बजाये।
गुणि गंधर्व चारण यश बोले भुवन
चर्तुदश आनंद पाये ॥ (परमानंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. १९७)

(ञ) आनंदे आनंद बढ़्यौ अति।
देवनि दिवि दुदंभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
विद्याधर-किन्नर कलोल मन, उपजावत मिलि कंठ अमित गति।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन, नाचति सब सुर-नारि रसिक अति ॥
(सूरदास, सू. सा., १०१६, पृ. २५९)

(ट) स्वर्गे दुदंभी बाजे नाचे देवगण।
हरि हरि हरि ध्वनि भरिल भुवने ॥
ब्रह्मा नाचे शिव नाचे और नाचे इन्द्र।
गोकुले गोयाला नाके पाइया गोविंद ॥
नंदेर मंदिरे गोयाला आइल धाइजा।
हाते लड़ि कांधे भार नाचे थैया थैया।
दधि दुग्ध घृत घोल अंगने ढालिया।
नाचे रे नाचे रे नंद गोविंद पाइया ॥ (शिवाई, प. क. त., पद ११३३)

किया है। वैदिक रीति की गई एवं लोक रीति की गई, यह कहा है।[1] राम और कृष्ण के जात-कर्म संस्कार का उल्लेख भी मिलता है।[2]

जन्म-लीला सम्बन्धी पदों की संख्या हिन्दी वैष्णव साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक है। बंगाल में तो गिनती के कुछ थोड़े ही से पद प्राप्त हैं जो प्रायः सब ही शिवराम दास या शिवाई रचित हैं। हिन्दी में प्रायः सब बड़े बड़े पदकर्ताओं के इस संबंध में बनाए हुए पद प्राप्त हैं। सूर, नंददास, परमानंद, गोविंद, विट्ठल, गिरिधरन, माधोदास, रसिक, रामराय, भगवानदास इत्यादि नाम से कीर्त्तन-संग्रह में कई सौ पद प्राप्त हैं परंतु पदकल्पतरु में केवल छः पद ही संगृहीत हैं।

२. **जन्म-लीला (चैतन्य, विट्ठल और वल्लभ सम्बन्धी)**—चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल जन्म संबंधी पदों में भाव-साम्य बहुत हैं। इन पदों में उसी प्रकार के उत्साह और उत्सवों का वर्णन है जैसा राम-कृष्ण के जन्मों का है। इनके जन्म होने पर देवता फूल बरसाते हैं, दुंदुभी बजाते हैं, बिमान पर चढ़ कर दर्शन करते हैं। नारियों के साथ धरती पर और मनुष्यों में मिलकर देवगण इन लोगों के बाल रूप का दर्शन करते हैं। जन्म होने पर इन लोगों के नगरवासी उत्साह मनाते हैं। घर घर बंदनवारें बंधती हैं, बाजे बजते हैं और स्त्रियां गाती-बजाती हुई मंगल द्रव्य ले कर चलती हैं। इन के पिता दान देते हैं, ब्राह्मण आशीष देते हैं। यह समस्त भावनायें राम-कृष्ण जन्म-लीला संबंधी पदों में पाई जाती हैं। ये पद भी उन समस्त अलौकिक भावनाओं से युक्त हैं जो रामकृष्ण जन्म-लीला पदों में पाई जाती

(ठ) जय जय ध्वनि ब्रज भरिया रे।
उपनंद अभिनंद, सनन्द नंदन नंद।
पंच भाइ नाचे बाहु तुलिया रे।
यशोधर यशोदेव सुदेवादि गोप सब
नाचे नाचे आनंदे भुलिया रे।
नाचे रे नाचे रे नंद, संगे लैया गोप-बृंद।
हाते लाठि कांधे भार करिया रे॥....
नंदेर जननी नाचे वरीयसी बुढ़िया रे॥ (शिवाई. प. क. त., पद ११३२)

१. गीतावली, पद, बा. २, ३, ४, ५ तथा ६

२. (क) जात कर्म करि, पूजि पितर सुर दिये महिदेवन दान।
(तुलसीदास, गी. व., बा. २, पृ. २७०)

(ख) जात करम करि कनक बसन, मनि भूषित सुरभि समूह दए।
(तुलसीदास, गी. व., बा. ३, पृ. २७२)

(ग) ब्रज में घर घर बजत बधाइ।
.. .. ..
ज्ञातिकर्म करि रीति जुगति सों नालकपीड़ बनाइ॥
(माधोदास, की. सं., भाग १. पृ. ५)

(घ) आयल बंदिगण ब्राह्मण सज्जन।
करतहिं जात वैदिके॥ (शिवरामदास, प. क. त., पद ११२८)

हैं, जैसे देवताओं का उत्साह और उत्सव मनाना। पिताओं के दान देने का अत्युक्ति पूर्ण वर्णन भी है। राम के पिता राजा थे। तुलसी ने उनसे जिस प्रकार मुक्त-हस्त होकर दान दिलवाया है, वह संभव है। परंतु पुरंदर मिश्र, लक्ष्मण और वल्लभ ने भी उसी प्रकार दान दिए हैं। इन सब भावनाओं के कुछ पद दिए जा रहे हैं।[1]

बाल-लीला

हिन्दी वैष्णव पदावली साहित्य में कृष्ण की बाल-लीला से संबंधित पदों की संख्या

---

१. (क) अम्बरे अमर सबे भेल उनमुख।
लभिवे जनम गोरा जावे सब दुख।
शंख दुदुंभि बाजे परम हरिषे।
जय ध्वनि सुरकुल कुसुम बरिषे॥ (जगन्नाथदास, गौ. प. त., २।१।१)

(ख) श्री विट्ठल नाथ प्रगटे आय।

.. .. ..

विविध बाजे बाजत चहूं दिश आनंद उर न समाय।
कुसुम बरखत नभ सुरनते जय जय शब्द सुहाय॥
(चतुर्भुज, की. सं., भाग बीजो, पृ. १५३)

(ग) आज जगती पर जय-जयकार।
प्रकट भये श्री वल्लभ पुरुषोत्तम वदन अग्नि अवतार।

.. .. ..

दुदुंभी देव बजावत गावत सुरवधु मंगल चार॥
(गिरिधर, की. सं., भाग बीजो, पृ. २०२)

(घ) ग्रहणेर अंधकारे, केह ना चिह्ने कारे, देव-नरे हैल मिशामिशि।
नदीया-नागरी संगे, देवनारी आसि रंगे, हेरिछे गौरांग-रूपराशि॥
(वासुदेव, गौ. प. त., २।१।३)

(ङ) नदीया पुरनारी, आइसे सारि सारि, लइया थारि भरि द्रव्य बहु।
सुसज्जे सुर प्रिया, मानुषे मिशाइया, बालके निरखिया थिर नहु॥
(नरहरि, गौ. प. त., २।१।२४)

(च) श्री वल्लभ गृह आज बधाई।
जय जय शब्द होत ब्रज बीथन घर घर आनन्द माई।
मंगल कलश चली ले भामिनि मोतिन मांग भराई।
हरद दूध अक्षत रोरी जहां तहां तें ले धाई॥
(केशवदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२३)

(छ) झुण्डन गावत हैं ब्रजनारी।
नवसत साज शृंगार कनक तन पहेरें झूमक सारी।
कंचन थार लियें जु कमल कर, मंगल साज संवारी॥
(रसिकदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २१९)

अपेक्षाकृत अधिक है। गौड़ीय वैष्णव पदावली में बाल-लीला का वर्णन करने वाले पद अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक हैं। प्राप्त पदों में सोलहवीं शती के कवियों की रचनाएँ भी हैं और सत्रहवीं-अठारहवीं शती के कवियों की भी। सत्रहवीं-अठारहवीं शती के कवियों के पद संख्या में सोलहवीं शती के कवियों के पदों से अधिक हैं। उनमें कृष्ण की बाल-लीलाओं का जो वर्णन है, वह सोलहवीं शती के बाल-लीला संबंधी हिन्दी पदों से अधिक साम्य रखते हैं। हिन्दी के वैष्णव भक्तों ने कृष्ण की बहुत सी बाल-लीलाओं का वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है। सूरदास के उन पदों में जिनमें बाल कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है, वात्सल्य-भाव रस की सीमा तक पहुँच गया है। उनका यह वर्णन अत्यंत स्वाभाविक है और बच्चों की क्रीड़ाओं और कार्यों के अत्यंत सूक्ष्म निरीक्षण से युक्त है। हिन्दी के कवियों ने राम-कृष्ण का पालना झूलना, घुटनों चलना, पैरों चलना, आंगन में खेलना इन सबका वर्णन किया है। बाल कृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन गौड़ीय वैष्णव पदावली में नहीं हैं। बाल कृष्ण की नित्य लीला को दर्शाने वाले दो-तीन पद बंगाली में भी उपलब्ध हैं।[1] ऊपर बताई अन्य बाल-क्रीड़ाओं से संबंधित कुछ हिन्दी पद भी आगे दिए जा

---

१. (क) नाचत मोहन नंददुलाल।
बंकिम चरणे, मंजिर घन बाजत, किंकिणी ताहिं रसाल।

.. .. ..

मा मा मा बलि, चांद-वदन तुलि, नवीन कोकिला जेन बोले।
शुनि जशोमति माइ, आहा मरि मरि जाइ, बाहु पसारिया निल कोले।
मुखानि मुछिया राणी, चुम्ब देइ मुखखानि, वंशी भासे आनन्द हिलोले॥
(वंशीवदन, की. प., पृ. २२२)

(ख) धातु प्रवाल-दल, नव गुंजा फल, ब्रज-बालक संगे साजे।
कुटिल कुन्तल वेढ़ि, मणि मुकुता झरि, कटितटे घुंगुर बाजे॥
नाचत मोहन बाल गोपाल।
बरज वधू मेलि, देओइ करतालि, बोलइ भालि रे भाल।
नंद सुनन्द, यशोमति रोहिणि, आनन्दे सुत-मुख चाय।
अरुण दृगंचल, काजरे रंजित, हासि हासि दशन देखाय॥
वंशि कहइ सब, ब्रज रमणीगण, आनन्द-सायरे भास।
हेरइते परशिते, लालन करइते, स्तन-खिरे भीगल बास॥
(वंशीवदन, प. क. त., पद ११५४)

(ग) भाल नाचे रे नाचे रे नन्द-दुलाल।
ब्रज-रमणीगण, चौदिगे बेढ़ल, यशोमति देइ करताल॥..
हेरइते अखिल, नयन मन भूलये, इह नव-नीरद-कांति।
करे करि माखन, देह रमणिगण, खाओइ नाचइ रंगे॥
(वंशीवदन, प. क. त., पद ११५६)

रहे हैं।[1]

चलना---कृष्ण ऊधम करते हैं। मा उन्हें चुप कराने के यत्न करती हैं। उन्हें गोद में लेकर चन्द्रमा दिखाती हैं। बालक कृष्ण चंद्रमा मांगने लगते हैं। उन्हें थाली में पानी भर कर

---

१. (क) जसोदा हरि पालनैं झुलावैं।
हलरावैं, दुलराइ मल्हावैं, जोइ-सोइ कछु गावैं ॥
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावैं।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवैं, तोकौं कान्ह बुलावैं ॥
कबहुँ पलक हरि मूंदि लेत हैं, कबहुं अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि, करि सैंन बतावैं ॥
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावैं।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नंद-भामिनि पावैं ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।४३ पृ. २७६)

(ख) अपने बाल गोपाल रानी जू पालने झुलावें।
बारम्बार निहारि कमल मुख, प्रमुदित मंगल गावे ॥
लटकन भाल, भृकुटि मसि बिंदुका, कठुला कंठ बनावे।
सद मांखन मधु सानि अधिक रुचि अंगुरिन करके चटावे ॥
कबहुक सुरंग खिलोना ले ले नाना भांति खिलावे।
देखि देखि मुसिकाय सांवरो, द्वे दतियां दरसावे ॥
(चतुर्भुजदास, की. र., पृ. ९५)

(ग) पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भंवर भुलावौं ॥
बाल-बिनोद-मोद-मंजुल मनि किलकनि खानि खुलावौं ॥
(तुलसीदास, गी. व., बा. १५, पृ. २८२)

(घ) घुटुरुनि चलत स्याम मनि-आंगन मातु-पिता दोउ देखत री।
कबहुंक किलकि तात-मुख हेरत, कबहुं मातु-मुख पेखत री ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।९८, पृ. २९४)

(ङ) दोउ भैया घुटुरुवन चलत।
हरत दुख ब्रज भूमि को दे मोद दैत्यन दलत ॥
अलक बिथुरे बदन मृगमद तिलक सोहे भाल।
दृगन अंजन भौंह बिंदुका अधर रसत रसाल ॥
(रसिकदास, की. सं., भाग १, पृ. १५५)

(च) आंगन फिरत घुटुरुवनि धाए।
नील-जलद-तनु-स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए ॥
बंधुक-सुमन-अरुन पद-पंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए।
(तुलसीदास, गी. व., बा. पृ. २८७)

चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाती हैं और उनको बहलाया जाता है। बाल कृष्ण की छोटी-सी-छोटी क्रीड़ा और लीला को देख कर यशोदा विभोर हो जाती हैं, नंद को बुलाकर

(छ) चलन चहत पाइनि गोपाल ।
लए लाइ अँगुरी नँद रानी, सुन्दर स्याम तमाल ।
डगमगात गिरि परत पानि पर, भुज भ्राजत नँदलाल ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।११४, पृ. ३००)

(ज) सिखवति चलनि जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।११५, पृ.३००)

(झ) मनिमय आंगन नन्द कैं, खेलत दोउ भैया ।
गौर-स्याम जोरी बनी, बलराम कन्हैया ॥
.. .. ..
नील-पीत पट ओढ़नी देखत जिय भावै ।
बाल विनोद अनन्द सौ सूरज जन गावै ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।११६, पृ. ३००)

(ञ) आंगन खेलैं नन्द के नन्दा ।
जदुकुल-कुमुद-सुखद-चारु-चन्दा ॥
संग-संग बल-मोहन सोहैं ।
सिसु-भूषन भुव कों मन मोहैं ॥ (सूरदास, सू. सा., १०।११७, पृ. ३०१)

(ट) आंगन खेलत आनंद-कन्द ।
रघुकुल कुमुद सुखद चारु चंद ॥
सानुज भरत लखन संग सोहैं ।
सिसु-भूषन भूषित मन मोहैं ॥
(तुलसीदास, गी. व., बा. २८, पृ. २९०)

(ठ) आंगन स्याम नचावहीं, जसुमति नन्दरानी ।
तारी दै-दै गावहीं, मधुर मृदु बानी ॥
पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै ।
नान्हीं एड़ियनि अरुनता, फल-बिम्ब न पूजै ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।१३४, पृ. ३०६)

(ड) ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया ।
राम लषन भावते भरत रिपुदवन चारु चार्यो भैया ।
(तुलसीदास, गी. व., बा. ८, पृ. २७८)

(ढ) पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ?
प्रेम-पुलकि उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥
(तुलसीदास, गी. व., बा. ९, पृ. २७८)

दिखाती हैं।[1] इन सबसे संबंधित पद हिन्दी में उपलब्ध हैं पर बंगला में नहीं हैं। कृष्ण की इस प्रकार की लीलाओं का वर्णन तो नहीं है परन्तु "गौरांग चैतन्य देव" की इस प्रकार की बाल-लीलाओं से संयुक्त पद मिलते हैं। बालक गौरांग चलना सीखते हैं, उसी प्रकार मां

(ण) छगन-मगन अंगना खेलिहौ मिलि ठुमुक ठुमुक कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि 'मां' मोहि बुलैहौ ॥
(तुलसीदास, गी. व., बा. ८, पृ. २७८)

(त) जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै ॥
कब द्वै दांत दूध के देखौं, कब तोतरे मुख बचन झरै ॥
कब नंदहिं बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहिं ररै ॥
कब मेरौ अंचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौं झगरै ॥
कब धौं तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै।
कब हंसि बात कहैगौ मोसौं, जा छबि तैं दुख दूरि हरै ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।७६, पृ. २८६)

१. (क) ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं,
हरिहिं लिए चन्दा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउं तुम्हारी,
देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत ॥
.. ..
मन हीं मन हरि बुद्धि करत हैं,
माता सौं कहि ताहि मंगावत।
लागी भूख, चन्द मैं खैहौं,
देहि देहि रिस करि बिरुझावत ॥ (सूरदास, सू. सा., १०।१८८, पृ. ३२५)

(ख) बार-बार जसुमति सुत बोधति,
आउ चन्द तोहिं लाल बुलावै।
... ...
जल-पुट आनि धरनि पर राख्यौ,
गहि आन्यौ वह चन्द दिखावै।
सूरदास प्रभु हंसि मुसुक्याने,
बार-बार दोऊ कर नावै ॥ (सूरदास, सू. सा., १०।१९१, पृ. ३२६)

(ग) मैया री मैं चन्द लहौंगौ।
कहा करौं जलपुट भीतर कौ,
बाहर ब्यौंकि गहौंगौ ॥
यह तौ झलमलात झकझोरत,
कैसैं कै जु लहौंगौ ॥ (सूरदास, सू. सा., १०।१९४, पृ. ३२७)

की अँगुली पकड़ कर चलते हैं जैसे सूर के बाल-कृष्ण। वे नाचते हैं और उस समय उनकी किंकणी बजती है। आंगन में क्रीड़ा करते हैं। सूर के यशोदा के समान ही शची गौरांग को दूसरे के घर जाकर खेलने से मना करती हैं। बालक गौरांग चन्द्रमा मांगते हैं और मक्खन मांगते हैं। मां उन्हें प्रातःकाल जगाती हैं और वे दिन भर ऊधम करते हैं। ब्रज की नारियों के समान ही नदिया की वृद्धायें और वृद्ध पुरुष बालक गौरांग को देख कर सिहाते हैं। इन सब भावनाओं से संबंधित कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं।[1]

---

१. (क) मायेर अंगुलि धरि शिशु गौरहरि।
हाटि हाटि पाय पाय जाय गुड़ि गुड़ि॥
टानि लैञा मार हात चले क्षणे जोरे।
पद आध जाइते ठेकाड़ करि पड़े॥
शचीमाता कोले लैते जाय धूलि झारि।
आखुटि करिया गोरा भूमे देय गड़ि॥
आहा आहा बलि माता मुछाय अंचले।
कोले करि चूमा देय वदने कमले॥
(वासुदेव घोष, गौ. प. त., २।२।६)

(ख) शची ठकुराणी चारु छांदे।
हाटन शिखाय गौराचांदे॥
मृदु मृदु कहेन हासिया।
धर मोर अंगुलि आसिया॥
शुनि सुखे नदीयार शशी।
मायेर अंगुलि धरे हासि॥
धीरे धीरे उठिया दांड़ाय।
दुइ चारि पद चलि जाय॥
छाड़िया अंगुलि पड़े भूमे।
शची कोले लैञा मुख चूमे॥ (नरहरि, गौ. प. त., २।२।१२)

(ग) गोरा नाचे शचीर दुलालिया।
चौदिके बालक मिलि, देह घन करतालि,
हरि बोल हरि बोल बलिया। (वासुदेव घोष, गौ. प. त., २।२।३)

(घ) शचीर आंगिनाय नाचे विश्वम्भर राय।
हासि हासि फिरि फिरि मायेरे लुकाय॥
वयाने बसन दिया बले लुकाइनु।
शची बले विश्वम्भर आमि ना देखिनु॥
(वासुदेव घोष, की. प., पृ. २२३)

(ङ) वयस्य बालक संगे करि एक मेला।
पतियाछे गोराचांद संकीर्तन-खेला॥

मिट्टी खाना—बालक कृष्ण के नहाने, उस समय मचलने, रूठने इत्यादि और मक्खन चुराने की लीलाओं का सुन्दर वर्णन हिन्दी पदावली साहित्य में मिलता है परन्तु बंगाली पदावली में प्रायः नहीं ही है। कृष्ण के मिट्टी खाने और मुख खोल कर ब्रह्मांड दिखाने का विवरण दोनों ही साहित्यों में मिलता है। बलराम अथवा बालकृष्ण के साथीगण कृष्ण को मिट्टी खाते देख कर यशोदा मां से इस बात की शिकायत कर देते हैं कि हमारे सामने ही

चौदिके बालक बेड़ि हरि हरि बोले ।
आनन्दे विह्वल गोरा भूमे पड़ि बुले ॥
(लोचनदास, गौ. प. त., २।२।९)

(च) निमाइ चंचल खेपा किछुक ना मानेगो
शुन एक दिवसेर कथा ।
मायेर अंचले धरि फिरये अंगने
गो आपनार छाया देखि तथा ॥
छाड़िया अंचल छाया-सहित खेलाय गो ।
ताहाते आछिल एक फणि । (नरहरि, गौ. प. त., २।२।३३)

(छ) शचीर दुलाल मनोरंगे । खेले समवय शिशु संगे ॥
माझे गोरा शिशु चारि पाशे । नाचे आर मृदु मृदु हासे ॥
हाते हाते करे धराधरि । ताले ताले नाचे घुरि घुरि ॥
क्षणे घन देय करतालि ।...... (मुरारि, गौ. प. त., २।२।४८)

(ज) आरे मोर सोणार निमाइ ।
आपनार घर छाड़ि, ना जावे परेर बाड़ी,
बसिया खेलावे एइ ठांई ।
शिशु गण खेलाइते, आसिबे तोमार साते,
एथाइ राखिबे ता सवारे ॥
जखन जे चाओ तुमि, ताहा आनि दिब आमि,
किसेर अभाव मोर घरे ॥ (नरहरि, गौ. प. त., २।२।४४)

(झ) खेलन दूरि जात कत कान्हा ?
आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।२२०, पृ. ३३५)

(ट) पूर्णिमा रजनी चांद गगने उदय ।
चांद हेरि गोरा चांदेर हरिष हृदय ॥
चांद दे मां बलि शिशु कांदे उमराय ।
हात तुलि शची डाकें आय चांद आय ॥
ना आसे निठुर चांद निमाइ व्याकुल ।
कांदिया धूलाय पड़े हाते छिड़े चुल ॥
(वासुदेव घोष, गौ. प. त., २।२।७)

अभी कृष्ण ने मिट्टी खाई है। इतना सुनते ही यशोदा जल्दी से सांटी लेकर आती हैं। कृष्ण उन्हें देख कर मिट्टी फेंक देते हैं और मां के सामने झूठ कह देते हैं कि मैंने मिट्टी नहीं खाई। माता यशोदा कृष्ण की बात नहीं मानतीं। अतः कृष्ण उन्हें मुंह खोल कर दिखाते हैं। उस मुख के अन्दर उन्होंने अपने विराट रूप का प्रदर्शन किया है। यशोदा ने उनके खुले मुख में अनन्त ब्रह्मांड, रवि, शशि, सागर, पर्वत, नदी, नद, शेष, महेश सब देखे। यह देख कर यशोदा व्याकुल हो जाती हैं। जहां कृष्ण के मिट्टी खाने पर वे क्रुद्ध होकर कह रही थीं कि घर में दूध मक्खन नहीं है क्या जो तुम मिट्टी खाते हो, वहां वे सब क्रोध भूल कर आश्चर्य चकित रह जाती हैं, और कुछ भयभीत भी हो जाती हैं। कृष्ण के हाथ जोड़ कर वे व्याकुल होकर "यह क्या", "यह क्या" चिल्ला उठती हैं और उन्हें गोद में उठा लेती हैं। उनकी समझ में नहीं आता कि क्या हो गया। कृष्ण के मिट्टी खाने की लीला से संबंधित कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं।[1]

---

१. (क) तेजिया माखन सरे, तुलिया कमल करे, मृत्तिका मनेर सुखे खाय।
बलराम ता देखिया, जशोदा निकटे जाय्या, कहिला भाइयेर एइ कथा।
शुनि तबे जशोमती, आइला तुरित गति, गोपाल खाइछे माटि जथा॥
माय देखि माटि फेले, ना खाइ ना खाइ बोले, आध आध वदन टुलाय।
मुख निरखये राणी, धरिया युगल पाणि, मन-दुखे करे हाय हाय॥
ए खिर नवनी सर, किवा नाहि मोर घर, मृत्तिका खाइछ किवा सुखे॥
(उद्धवदास, प. क. त., पद ११४३)

(ख) वदन मेलिया गोपाल राणी पाने चाय।
मुख माझे अपरूप देखिवारे पाय॥
ए भूमि आकाश आदि चौद्द भुवन।
सुरलोक, नागलोक, नरलोकगण॥
अनंत ब्रह्मांड गोलोक आदि जत धाम।
मुखेर भितर सब देखे निरमाण॥
शेष महेश ब्रह्मा आदि स्तुति करे।
नंद जशोमती आर मुखेर भितरे॥
देखि नन्द ब्रजेश्वरी वचन ना स्फुरे।
स्वप्नप्राय कि देखिलुं हेन मने करे॥ (उद्धवदास,प.क.त.,पद११४४)

(ग) कोलेते करिया राणी निरखये मुख।
सुखेर सायरे डुबे पासरे सब दुख॥
मायेर कोलेते गोपाल मुख पसारिल।
ए भव-संसार सब ताहाते देखिल॥
इ कि इ कि बलि राणी हियार लइल।
स्वपन देखिल किवा बुझिते नारिल॥
(घनश्यामदास, प. क. त., पद ११४५)

फलवाली लीला—बालक कृष्ण भी अन्य समस्त बालकों के समान मां के दिए, घर में प्राप्य, भोज्य पदार्थों से संतुष्ट न रह कर अन्य वस्तुएँ बेचने वालों को बुलाते हैं। व्रज में कोई फल बेचने वाली आई है। बालक कृष्ण के घर के पास आकर उसने "फल लो" "फल लो" कह कर टेर लगाई। कृष्ण उससे फल लेने दौड़ते हैं। बदले में उसे देने के लिए

(घ) माटी लै मुख मेलि दई हरि, तबहिं जसोदा जानी।
सांटी लिए दौरि भुज पकर्‌यौ, स्याम लंगरई ठानी॥
लरिकन कौं तुम सब दिन झुठवत, मोसौं कहा कहौगे।
मैया मैं माटी नहिं खाई, मुख देखैं निबहौगे॥
बदन उघारि दिखायौ त्रिभुवन, बनघन नदी-सुमेर।
नभ-ससि-रवि मुख भीतर हीं सब, सागर धरनी फेर॥
यह देखत जननी मन व्याकुल, बालक-मुख कहा आहि।....

(सूरदास, सू. सा., १०।२५३, पृ. ३४६)

(ङ) मो देखत जसुमति तेरैं ढोटा,
अबहीं माटी खाई।
यह सुनि कै रिस करि उठि धाई,
बाहँ पकरि लै आई॥
इक कर सौं भुज गहि गाढ़ें करि,
इक कर लीन्हीं सांटी।
मारति हौं तोहि अबहिं कन्हैया,
बेगि न उगिलै माटी॥
ब्रज-लरिका सब तेरे आगैं,
झूठी कहत बनाइ।
मेरे कहें नहीं तू मानति,
दिखरावौं मुख बाइ॥
अखिल ब्रह्मांड खंड की महिमा,
दिखराई मुख मांहि।
सिन्धु-सुमेर-नदी-बन-पर्वत,
चकित भई मन चाहि॥
कर तें सांटि गिरत नहिं जानी,
भुजा छांड़ि अकुलानी।
सूर कहें जसुमति मुख मूंदौ,
बलि गई सारंग पानी।

(सूरदास, सू. सा., १०।२२५,३४६)

हाथों की अंजुलि में भर कर अन्न ले आते हैं। वह अन्न फलवाली के पात्र में जाकर रत्नों में परिवर्तित हो जाता है। कृष्ण जैसे बालक को देखकर फलवाली मुग्ध हो जाती है। कृष्ण आनन्दपूर्वक फल खाते हुए चले जाते हैं। थोड़े बहुत अन्तर से यह कथा दोनों ही पदावली साहित्यों में प्राप्त है। इस संबंध के पद तीन-चार ही हैं, अधिक नहीं।[1]

(च) देखो गोपाल जू की लीलाठाटी।

... ...

ये सब ग्वाल प्रकट कहत हैं, श्याम मनोहर खाई माटी।
बदन उघार भीतर देख्यो, त्रिभुवन रूप वैराटी॥
(परमानन्द, की. सं., भाग १, पृ. १४७)

(छ) गोपाल राइ चरनन हौं काटी।

.. .. ..

मधु मेवा पकवान छांड़ि कै,
काहे खात हौ माटी।
सिगरोइ दूध पियो मोरे मोहन,
बलहिं न देहौं बांटी॥ (सूरदास, सू. सा., १०।२५९)

१. (क) एक दिन मथुरा हैते, फल लैया आचम्बिते,
आइला से फल बेचिवारे॥
फल लेह फल लेह, डाके पुन पुन सेह,
नामाइला नन्देर दुयारे॥
व्रज-शिशु शुनि ताय, फल किनिवारे धाय,
वेतन लइया परतेके॥
किनि किनि फल खाय, आनन्दित हियाय,
पसारि बेड़िया एके एके॥
शुनि कृष्ण कुतूहली, धान्य लइया एकांजलि,
कर हैते पड़िते पड़िते॥
पसारि निकटे आसि, फल देओ बले हासि,
धान्य दिल फलाहारी हाते॥
धान्य लैया फलाहारी, पुन पुन मुख हेरि,
निमिष तेजिल पसारिणी॥
[ए दास उद्धव कय, कहिले कहिल नय,
भुवनमोहन रूप खानि॥ (उद्धवदास, प. क. त., पद ११४६)

(ख) डाला हैल रतने पूरित।
फलाहारी सविस्मय-चित॥
आपना आपनि करे खेद।
मने मने भावे निरवेद॥ (प. क. त., पद ११४९)

गोष्ठ अर्थात् गोदोहन और गोचारण लीला—कृष्ण की गोदोहन और गोचारण लीला को गौड़ीय वैष्णव साहित्य में गोष्ठ का नाम दिया गया है। इस शीर्षक के अन्तर्गत 'पद-कल्पतरु' में कृष्ण की गोदोहन और गोचारण लीला सम्बन्धी पद संगृहीत हैं। हिन्दी और बंगाली दोनों ही पदावली साहित्य में कृष्ण की इन लीलाओं से सम्बन्धित पद मिलते हैं।

बंगाली पदावली में कृष्ण के प्रथम गोदोहन पर बड़ा उत्साह दिखाया गया है। ब्रज-राज नंद ने अपनी प्रजा को आदेश दिया कि गोष्ठ अर्थात् गोदोहन का साज करो। गोपियां सुनते ही उपहार इत्यादि लेकर नंद के घर आईं। निमंत्रण दे कर ब्राह्मण बुलाए गए। उनका सत्कार किया गया। उनकी आज्ञा पाकर राम-कृष्ण के हाथों में गोदोहन भांड दिए गए। उनके गोदोहन के लिए गोष्ठ में जाते समय बाजे बजे और यशोदा, रोहिणी, गोपियां इत्यादि मंगल द्रव्यों सहित वहां गईं। राम-कृष्ण रत्न-जटित स्वर्ण पात्र लेकर स्वर्ण पीठ पर बैठे। नंद धावली सांवली दो गायें लाए। उन्हें दोनों भाइयों ने दुहा। तब बहुत उत्सव हुआ। फिर ब्राह्मण पूजे गए और सब को भोजन कराया गया।[1] हिन्दी पदावली में कृष्ण स्वयं गोदोहन के लिए उत्सुक हैं और मां की विनती करके गाय दुहते हैं।

(ग) पक्व खजूर जम्बू बदरी फल लेहो काछन टेरो द्वार।
लरका यूथ संग बल मोहन, चोके करत बिहार॥
सुन्दर कर जननी केनों दीनों ले धाये तब नन्द कुमार।
हीरा रत्नन पूरित भाजन ऐसे परम उदार॥
(गोविन्द, की. सं., भाग ३, पृ. ८५)

(घ) ब्रज में काछनी बेचन आई।
आन उतारी नंद गृह आंगन ओडी फलन सुहाई॥
ले दौरे हरि फेट अंजुली शुभ कर कुंवर कन्हाई॥
डारत ही मुक्ता फल व्हे गये यशुमति मन मुसकाई॥
(परमानंद, की. सं., भाग ३, पृ. ८५)

(ङ) कोऊ भाई आंब बेचन आई।
टेर सुनत मोहन उठ दोरे भीतर भवन बुलाई
मैया मोहि आंब ले देरी संग सखा बलभाई (परमानंद, की. सं., भाग ३, पृ. ८५)

१. (क) डाकिया तखन, निज प्रजागण, आज्ञा दिल ब्रजराज।
वस्त्र अलंकार, नाना उपहार, करह गोष्ठेर साज॥
शुनि गोपी जत, आनंदित-चित, जौतुक थालीते भरि।
नंदेर भवने, दिला दरशने, दिव्य बास भूषा परि॥
(चैतन्यदास. प. क. त., पद ११७१)

(ख) नंदेर मंदिरे आजु बड़ई आनंद।
राम-कृष्ण-हाते दिव गोदोहन-भांड॥
प्रभाते उठिया नंद लैया गोपगण।
पात्र मित्र सहिते वसिला सभा-जन॥

टेढ़ी-मेढ़ी धार निकालते हैं जिसे देख कर नंद प्रसन्न होते हैं। उत्सव इत्यादि कुछ नहीं होता।[1]

यत्न करि जतेक ब्राह्मण मुनि गणे।
आनाइला नंदघोष करि निमंत्रणे॥
... ...
मुनिगणे कहे शुन नंद महामति।
आजि शुभ दिन हय शुक्लाष्टमी तिथि॥
पुत्र-हस्ते-देह गोदोहन-भांड आज। ..
(चैतन्यदास, प. क. त., पद ११७०)

(ग) परिया बसन, मणि अभरण,
गोष्ठेते चलिला हरि॥
नंद महामति, मुनिर संहति,
सभासद गणे लैया।
नाना बाद्य बाजे, मंगल सुसाजे,
गोष्ठे प्रवेशिला जाञा॥
यशोदा रोहिणी, गोपिनी संगिनी,
मंगल-द्रव्य सहिते।
नाना उपहारे, वस्त्र अलंकारे,
गोष्ठे हैला उपनीते॥
... ...
रत्न-पीठोपरि, बैसे राम हरि,
हैल महा कोलाहल।
स्वर्ण सूत्रे करि, छांदनेर डुरि,
रत्नेर दोहन भांड। (चैतन्यदास, प. क. त., पद ११७१)

(घ) तबे नंद शीघ्र आनाइला दुइ गाइ।
धवली गांउ वत्स सहित तथाइ।
.. .. ..
दुइ गाई दुइ भाइ छांदने छांदिया।
दोहन करिला गावी आनंदित हैया॥ (चैतन्यदास, प. क. त., पद ११७२)

(ङ) आइला सकले, नंदेर महले, नंद आनंदित-मन।
प्रथमे पूजिल, ब्राह्मण सकल, दिलेन अनेक धन॥
.. .. ..
नाना मिष्ट-अन्न, कराइ भोजन, विदाय करिला तबे॥
(चैतन्यदास, प. क. त., पद ११७३)

१. (क) धेनु दुहत हरि देखत ग्वालनि।
आपुन बैठि गए तिनकैं संग,
सिखवहु मोहिं कहत गोपालनि। (सूरदास, सू. सा., १०।४००, पृ. ३९६)

गोचारण के लिए सखाओं के संग बन जाने को कृष्ण अत्यन्त उत्सुक हैं। वे मां से जिद करते हैं कि मैं गाय चराने जाऊंगा।[१] मां उन्हें मना करती हैं कि तुम चलोगे कैसे! धूप में घूमने से तुम कुम्हला जाओगे। तुम्हें डर लगेगा। परंतु कृष्ण कहते हैं कि मुझे धूप नहीं लगती और न मैं डरूंगा।[२] मैं अपनी गाय चराऊंगा, प्रातःकाल होते ही मैं बलराम के संग चला जाऊंगा और तेरे कहने से रुकूंगा नहीं। और सब ग्वाल तो गाय चरायेंगे परन्तु मैं बैठा रहूंगा।[३] अंत में यशोदा ने उन्हें अनुमति दे दी। प्रथम गोचारण दिवस पर यशोदा

(ख) मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु।
कैसें गहत दोहनी घुटुवनि कैसें बछरा थन लै लावहु।
(सूरदास, सू. सा., १०।४०१, पृ, ३९६)

(ग) तनक कनक की दोहनी दै-दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यौ मोहि धौरी गैया॥
अटपटे आसन बैठि कै गोथन कर लीन्हौ।
धार अनतहीं देखि कै, ब्रजपति हंसि दीन्हौ॥ (सूरदास, सू. सा. १०।४०९, पृ. ३९८)

१. (क) गोठे आमि जाब मा गोठे आमि जाब।
श्री दाम सुदाम संगे बाछुरि चराव॥ (बलरामदास, प. क. त., पद १२१७)

(ख) आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
बृंदावन के भांति-भांति फल अपने कर मैं खैहौं॥
(सूरदास, सू. सा., १०।४११, पृ. ३९९)

(ग) मैया री में गाय चरावन जैहौं।
तू कहि महरि नंद बाबा सों बड़ो भयो न डरैहौं।
श्री दामा दे आदि सखा सब ओर हलधर संग लैहौं॥
(परमानंददास, की. सं., भाग बीजो, प. ८४)

२. (क) तेरी सौं मोहिं घाम न लागत,
भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत,
पर्‌यौ आपनी टेक॥ (सूरदास, सू. सा. १०।४११, पृ. ३९९)

(ख) मैया हौं गाय चरावन जैहौं।
तू कहि महर नंद बाबा सौं,
बड़ो भयौ न डरैहौं। (सूरदास, सू. सा. १०।४१२, पृ. ३९९)

३. मैं अपनी सब गाइ चरैहौं।
प्रात होत बल कैं संग जैहौं,
तेरे कहें न रैहौं।
.. .. ..
और ग्वाल सब गाइ चरैहैं,
मैं घर बैठौ रैहौं? (सूरदास, सू. सा. १०।४२०, पृ. ४०२)

अत्यन्त प्रसन्न हैं। वे कृष्ण को सजाकर आरती उतारती हैं। उन्हें और समस्त ब्रजवासियों को बड़ा उत्साह है। उनकी मंगलकामना के लिए ब्राह्मण बुलाए जाते हैं और मोतियों से चौक पूरा जाता है।[१] उनकी चिंता तो बलराम के आश्वासन से दूर हो गई है।[२] बंगाली पदावली में यशोदा कृष्ण की गोचारण की उत्सुकता को सुन कर बड़ी व्याकुल हो जाती हैं। सजल नेत्रों से कृष्ण की गाय चराने की इच्छा को सुनकर यशोदा अचेतन अवस्था में धरती पर

---

१. (क) गाय चरावन को दिन आयो।
फूलि फिरत यशोदा अंग अंग,
लालन उबट न्हवायो।
भूखन बसन विविध पहराये रोरी तिलक बनायो॥
विप्र बुलाय वेद ध्वनि कीनी मोतिन चोक पूरायो॥
(कुंभनदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. ८४)

(ख) प्रथम गोचारन चले गुपाल।
जननी यशोदा करत आरती मोतिन पूरे थाल॥......
राई लोंन उतारि यशोदा गोविंद बल बल जाय॥
(गोविंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. ८४)

(ग) ब्रजजन फूले अंग न समात॥
आज कहुं गये गौचारन आज्ञा दीनी तात।
मंगल कलश अलंकृत गोपी यशोमति गृह उठि आई प्रात।
(परमानंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. ८५)

(घ) प्रथम गौचारन को दिन आज।
प्रातकाल उठि यशोदा मैया, कीनो हे सब साज॥
विविध भांत बाजे बाजत हैं रह्यो घोष सब गाज॥
(गोविंद, की. सं., भाग बीजो, . ८५)

(ङ) गोविंद चले चरावन गैया।
हरखि हरखि कहे आजु भलो दीन कहत यशोदा मैया॥
उबट न्हवाय बसन भूषण सज विप्रन देत बधैया।
करि शिर तिलक आरती फिर फिर लेत बलैया॥
(चतुर्भुज, की. सं., भाग बीजो, पृ. ८४)

२. बोलि लियौ बलरामहिं जसुमति।
लाल सुनौ हरि के गुन, काल्हिहिं तैं लंगरई करत अति।
स्यामहिं जान देहि मेरै संग, तू काहें डर मानति।
मैं अपने ढिग तैं नहिं टारौं, जियहिं प्रतीत न आनति।
हंसी महरि बल की बतियां सुनि, बलिहारी या मुख की।
जाहु लिवाइ सूर के प्रभु कौं, कहति बीरके रुख की॥
(सूरदास, सू. सा. १०।४२५, पृ. ४०३)

लोट जाती हैं। वे बलराम से कहती हैं कि तुम कृष्ण को मत ले जाओ। वे अभी दूध पीते बालक हैं। वह मेरा वस्त्र पकड़ कर साथ-साथ घूमते रहते हैं। दिन भर में दस बार खाते हैं। न जाने कितने जन्मों के कर्म से और हर-गौरी पूजन से ये कृष्ण मिले हैं। अब यह दुधमुंहा कुंवर वन जायगा तो मैं कैसे धीरज रक्खूंगी? वह तो घर से बाहर जाने पर राह भूल जाता है। यशोदा मुंह ढांक कर रोती हैं। वे दुःख करती हैं कि विधाता ने गोप जाति में जन्म दिया है और गोधन पालन की वृत्ति दी है अतः कृष्ण को वन भेजना पड़ रहा है। वे रो कर और कातर हो कर कृष्ण को सजाती हैं और उनकी रक्षा के लिए सब देवताओं से प्रार्थना करके उन्हें बलराम को सौंपती हैं। उन्हें कृष्ण की देखभाल करने को बार-बार कहती हैं। इन भावनाओं से संबंधित कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं।[1] यह सब सुन कर बलराम यशोदा को आश्वासन देते हैं और कहते हैं कि मेरे हाथ में उन्हें सौंप दो, मैं उन्हें

---

१. (क) गोपालेर कथा शुनि, सजल नयने राणी,
अचेतने धरणी लोटाय ॥
चंचल बाछुरि सने, केमने धाइबा बने,
कोमल दुखानि रांगा पाय।
विप्रदास घोषे बले, ए वयसे गोठे गेले,
प्राण कि धरिते माय ॥　　　(विप्रदास, प. क. त., पद ११७५)

(ख) बलराम तुमि नाकि आमार प्राण लैया, वने जाइछ।
जारे चियाइया, दुग्ध पियाइते नारि,
तारे तुमि गोठेरे साजाइछ ॥
वसन धरिया हाथे, फिरे गोपाल साथे साथे,
दंडे दंडे दश बार खाय।
ए हेन दुधेर छाओयाल, बनेर विदाय दिया,
दैवे मरिबे बुझि माय ॥
कत जन्म भाग्य करि, आराधिया हर गौरी,
ताहे पाइलाम ए दुःख-पासरा।
केमने धैरज धरे, माय कि बलिते पारे,
बने जाउक ए दुग्ध-कोङरा।
छाओयाले छाओयाले खेले, घर जाइते पथ भुले,
दुटि हात मुखे दिया कांदे ॥　　　(वंशीदास, प. क. त., पद ११७७)

(ग) निकटे गोधन राख्य, मां बल्या शिगाय डाक्य,
घरे थाकि शुनि जेन रव।
विहि कैले गोप-जाति, गोधन-पालन वृत्ति,
तेञि बने पाठाइ जादव　　　(बलरामदास, प. क. त., पद १२१८)

(घ) विपिन गमन देखि, हैया सकरुण आंखि,
कांदिते कांदिते नंदराणी।

संध्या समय वापस ले आऊंगा। मैं उन्हें गोचारण सिखाऊंगा। इनका गोप कुल में जन्म है, अतः ये घर नहीं बैठ सकते। परंतु यशोदा को प्रबोध नहीं होता।[1]

गोपालेरे कोले लैया, प्रति-अंगे हात दिया,
रक्षा-मंत्र पड़ये आपनि ॥
ए दुखानि रांगा पाय, ब्रह्मा राखिवेन ताय,
जानु रक्षा करु देवगण।
कटि तट सुजठर, रक्षा करु जज्ञेश्वर,
हृदय राखुन नारायण ॥
भुज जुग नखांगुलि, रक्षा करु बनमाली,
कंठा मुख राखु दिनमणि।
मस्तक राखुन शिव, पृष्ठ देश हय ग्रीव,
अध ऊर्ध्व राखु चक्रपाणि ॥
जले स्थले गिरि बने, राखिबेन जनार्दने,
दश दिगे दश दिकपाल। (माधवदास, प. क. त., पद ११८२)

(ङ) श्रीदाम सुदाम दाम, शुन ओरे बलराम,
मिनति करिये तो सभारे।
वन कति अति दूर, नव तृण कुशांकुर,
गोपाल लैया ना जाइह दूरे ॥
सखागण आगे पाछे, गोपाल करिया माझे,
धीरे धीरे करिह गमन।
नव तृणांकुर आगे, रांगा पाय जानि लागे,
प्रबोध ना माने मोर मन ॥ (बलरामदास, प. क. त., पद १२१८)

१. नंदराणि गो मने ना भाविह किछु भय।
बेलि-अवसान काले, गोपाल आनिया दिव,
तोर आगे कहिलुं निश्चय।
सोंपि देह मोर हाते, आमि लैया जाव साथे,
जाचिया खाओयाव खीर ननी।
आमरा जीवन हैते अधिक जानिये गो,
जीवनेर जीवन नीलमणि ॥
सकाले आनिव धेनु, बाजाइब शिंगा वेणु,
गोचारण शिखाइव भाइयेरे।
गोप कुले उतपति, गोधन-चारण वृत्ति,
वासिया थाकिते नाइ घरे ॥
शुनिया बलाहर कथा, मरमे पाइया बेथा,
धारा बहे अरुण नयाने ॥ (शिवानंद, प. क. त., पद ११७८)

यशोदा का चाहे कुछ हाल रहा हो, कृष्ण तो ग्वाल-बाल के साथ बड़े उत्साह से गोचारण के लिए वन गए। वहां जाकर वे सब गउओं को चरने के लिए छोड़ कर खेल-कूद में लग गए। संध्या होने पर चारों ओर छिटकी हुई गउओं को कृष्ण वंशी द्वारा जमा कर लेते हैं और वे सब ग्वाल बालों सहित घर लौट आते हैं। घर आने पर यशोदा उन्हें देख कर आदर और लाड़ प्यार करके भोजन कराती हैं।[1] वन-गोचारण और वन-

१. (क) प्रणति करिया माय, चलिला जादव राय,
आगे पाछे धाय शिशु गण।
धन बाजे शिंगा वेणु, गगने गोखुर-रेणु,
शुनि सभार हरषित मन ।।....
नवीन राखाल सब, आवा आवा कलरव,
शिरे चूड़ा नटवर-वेश।
आसिया जमुना-तीरे, नाना रंगे खेला करे,
कत कत कौतुक विशेष ।।
केहो जाय वृष-छांदे, केहो कारो चड़े कांधे,
केहो नाचे केहो गान गाय। (माधवदास, प. क. त., पद ११८३)
ए दास माधव बले, कि शोभा जमुना-कूले,
राम कानाइ आनन्दे खेलाय ।।

(ख) आजि बड़ गोकुलेर रंग राजपथे।
गोधन चालाञा सभे चलिला एक साथे ।।
चारि दिके सब शिशु मध्ये राम कानु।
कांचनी पांचनी कारु हाते शिंगावेणु ।। (ज्ञानदास, प. क. त., पद ११९०)

(ग) गोपाल माई कानन चलें सवारे।
छीकें कांध बांध दधि ओदन गोधन के रखवारे ।।
प्रात समय गोरंभन सून कें गोपन पूरे शृंग।
बजावत पत्र कमल दल लोचन जानो उठ चले भृंग ।।
(परमानंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. ८४)

(घ) प्रथम गौ चारन को दिन आज।...
विविध भांत बाजे बाजत हैं रह्यो घोख सब गाज।
गावत गीत मनोहर बानी तज गुरु जन की लाज ।।
लरिका सकल संग संकर्षण वेणु बजाय रसाल।
(गोविंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. ८५)

(ङ) सब सहचर सने वेणु बाजाओये।
प्रेमहि कोइ कानु-गुण गाओये।
कोइ कोइ निरखये कानुक मुख।
खेलइ कोइ ततहुं मन सुख ।।
कोइ चक्रावत लगुड़ फिराय।
काहुंक कांधे कोइ चढ़ि जाय ।। (मोहन, प. क. त., पद १२०२)

बिहार लीला के साथ ही "यज्ञ-पत्नी भोजन" लीला भी दोनों साहित्यों में मिलती है। याज्ञिक ब्राह्मणों से कृष्ण ने भोजन मंगाया परंतु उन्होंने दिया नहीं। कृष्ण ने फिर उनकी पत्नियों के पास संदेश भेजा। उन्होंने भोजन भेजा और स्वयं भी लेकर आईं।[1] कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं।

गोवर्धन लीला—कृष्ण के गोवर्धन धारण करने की कथा भी दोनों पदावली-साहित्यों में प्राप्त है। कृष्ण ने नंद को और ब्रजवासियों को इन्द्र पूजा की तैयारी करते देखा परंतु उन्होंने यह पूजा न करने की राय दी। इन्द्र-पूजा के स्थान पर गोवर्धन पूजा करने को कहा। नंद इत्यादि ने उनकी बात मान ली और वे सब नाना प्रकार के व्यंजन बना कर गोवर्धन पर्वत पर गाते बजाते पहुंचे। सब ने भोग अर्पण किया। कृष्ण ने अपना एक स्वरूप गोवर्धन पर प्रकट किया और सब का भोग खाया। ब्रजवासी साक्षात् गोवर्धन देव का दर्शन पाकर परम प्रसन्न हुए। गोवर्धन देव ने उन्हें आशीर्वाद भी दिया। सब लोग प्रसन्न होकर लौट आए। देवराज इन्द्र को जब यह समाचार मिला कि ब्रज में उनकी पूजा नहीं हुई,तब वे बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने बादलों को वर्षा करके ब्रज को बहा देने के लिए भेजा। मेघ आए, कुछ देर के लिए ब्रज में कुहराम मच गया। कृष्ण ने गोवर्धन को उठा कर हाथ पर रख लिया और ब्रज की रक्षा की। बादल हार कर चले गए, तब इन्द्र ने आकर क्षमा याचना

(ट) चरावत बृंदाबन हरि धेनु।
ग्वाल सखा सब संग लगाए, खेलत हैं करि चैनु॥
कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत, कोउ बिषान, कोउ बेनु।
कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै, जुरी ब्रज-बालक सेनु॥
(सूरदास, सू. सा., १०।४४८, पृ. ४१५)

(ठ) गोरज रंजित वदन देखीयत।
.. ..
मात यशोदा करत आरती अंचलवार फेरि पुलकीत तन।
बन सिंगार बड़ो करि हितसों करत ब्यार बेठे गोद।
बिंदु परत तब पोंछत जशोमती कर मनुहार लीवावत मोद॥
(द्वारकेश, की. सं., भाग बीजो, पृ. ८७)

(ड) नंद-दुलाल बाछा यशोदा-दुलाल।
.. ..
रतन प्रदीप लैया आइला नंदराणी।
एकदिठे देखे रांगा चरण दुखानि॥
नेतेर आंचले राणी मोछे हात पा।
तोमार मुखेर निछनि लैया मरि जाउक मा॥
(बलरामदास, प. क. त., पद १२१०)

१. (क) अथ यज्ञपत्नी भोजन (प. क. त., पद १२३२, ११३३, ११३४)
(ख) सू. सा., पृ. ५३८—५४२

की। कृष्ण ने गोवर्धन उतार कर रख दिया और सब ने कृष्ण की प्रशंसा की। माता यशोदा कृष्ण को पर्वत उठाए देख व्याकुल हो रही थीं, अब उन्होंने आश्वस्त होकर आदर प्यार किया।[1] इतनी कथा हिन्दी पदावली में अत्यन्त विस्तार से दी है। परंतु बंगला पदावली

---

१. (क) गाओ रे गाओ रे सुखे कृष्णेर चरित।

.. ..

एक दिन व्रजे, इन्द्र-पूजा काजे, साजे गोप गोपी जत।
जानिया कारण, नंदेर नंदन, कहेन आपन मत॥
शुन व्रजराज, गोपेर समाज, ना पूज देवेर राजा।
मोर लय मने, गिरि गोवर्धने, सावधाने कर पूजा॥

(कृष्णदास, प. क. त., पद १२४३)

(ख) हमारी बात सुनो व्रजराज।
सुरपति को बलि भाग न दीजे पूजे यह गिरिराज।

(सूरदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. ६८)

(ग) बार बार हरि सिखवन लागे बोलत अमृत बानी।
सुनहो एक उपदेश हमारो चार पदारथ दानी॥
मेरो कह्यो वेग अब कीजे दूध भात घृत सानी।
गोवर्धन की पूजा कीजे गोधन के सुखदानी॥

(परमानंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. ५६)

(घ) कृष्णेर आदेश पाआ, इन्द्र यज्ञ निवारिया, नंद आदि जत गोपगण।
नाना उपहार लैया, सकले एकत्र हैया, आइलेन जथा गोवर्धन।
सहस्र सहस्र जन, रांधे अन्न व्यंजन, एक ठाञि लैया करे राशि॥
दधि-दुग्ध-सरोवर, रोटी-राशि धरे थर, हरिखे साजाय व्रजवासी॥
श्रीकृष्णेर अभिमत, पाक कैल बहुमत, सूपांत पायस शिखरिणी॥

.. .. ..

नाना वाद्य बाजे कत, नर्त्तकी नाचये शत, सहस्र-सहस्र लोके गाया।

(माधवदास, प. क. त., पद १२४९)

(ङ) हमारो कान्ह कहे सो कीजे।
आवो सिमिट सकल व्रजवासी पर्वत को बलि दीजे॥
मधु मेवा पकवान मिठाइ षड्रस व्यंजन लीजे।

(आसकरन, की. सं., भाग बीजो, पृ. ५७)

(च) व्रज घर घर सब भोजन साजत।
सब के द्वार बधाई बाजत॥

.. .. ..

दधि लोंनी मधु साज मिठाई।
कहां लग कहों सबे बहुताई (सूरदास, की, सं., भाग बीजो, पृ. ३९)

में यह अत्यन्त संक्षिप्त रूप से है। हिन्दी के पदों में गोवर्धन पूजा के लिए बनाई गई भोजन-सामग्री की लम्बी सूची है। मेघों के गर्जन-तर्जन, और वर्षा का भी विशद वर्णन है परंतु बंगला पदावली में ऐसा नहीं है। उसमें गोवर्धन लीला सम्बन्धी पद बहुत कम हैं।

बाल-कृष्ण की इतनी ही लीलायें बंगला पदावली में मिलती हैं। हिन्दी पदावली में जो 'माखन चोरी लीला', 'चीर हरण लीला' और 'असुर नाश' की लीलायें पाई जाती हैं इनका बंगला पदावली में अभाव है। गौड़ीय वैष्णव समाज कृष्ण के शक्ति रूप का उपासक नहीं है, कदाचित् इसी कारण उनके असुर-निकंदन रूप से की गई तृणासुर, अघासुर, बकासुर, पूतना इत्यादि के बध की लीलाओं का गान भी वैष्णव कवियों ने नहीं किया। बाल कृष्ण की जिन लीलाओं का वर्णन बंगाली पदों में है, उन सब के समानांतर चैतन्य-लीलाओं का वर्णन अवश्य पाया जाता है। इन पदों में चैतन्यदेव भी गोचारण, गोदोहन,

---

(छ) इक आवत घरतें चल धाई।

.. .. ..

कोऊ गावत, कोऊ नृत्यत आवें।
स्याम सखन संग खेलत भावें।। (सूरदास, की. सं., भाग बीजो, प. ३९)

(ज) कि आनंद आजु वृंदावने।
गिरि-गोवर्धन-पूजा ना जाय कहने।।
नंद आदि गोप गोपी एकत्र हइया।
गिरि-गोवर्धन पूजे निकटे जाइया।

.. .. ..

हेनइ समये कृष्ण देव-माया मते।
आरोहण एक रूपे करिला पर्व्वते।।
देखि गोप गोपीगणे प्रणाम करिला।
सभे कहे गोवर्धन मूर्त्तिमंत हैला।।

.. .. ..

जत ब्रज-वासी सभे पाइया आह्लाद।
पर्व्वतेर स्थाने मागि निल आशीर्व्वाद।। (कृष्णदास, प. क. त., पद १२४४)

(झ) गिरि तन सोभा स्याम बिराजै।
स्यामहिं छबि गिरिवर की छाजै।
गिरिवर उर पीतांबर डारे।
मोतिनि की माला उर भारे।। (सूरदास, सू. सा., १०।९१३, पृ. ५७५)

(ञ) जत गोपगण, पूजे गोवर्धन, ना कैल इन्द्रेर पूजा।
पाइ अपमान, कोपे कम्पमान, साजिला देवेर राजा।।
महा अहंकारे, कृष्ण-निंदा करे, अज्ञाने मोहित हैया।
कहे गोप-पुरी, महावृष्टि करि, आजि डुबाइब जाजा।।

(चैतन्यदास, प. क. त., पद १२४५)

गोवर्द्धन धारण इत्यादि लीलायें करते दिखाए गए हैं। वे भावावेश में आकर "मैं गो-दोहन करूंगा, गोचारण के लिए जाऊंगा" इत्यादि बातें करते हैं।[1]

गोवर्द्धन लीला में भक्ति, कलि इत्यादि को लेकर रूपक बांधा गया है।[2]

---

१. (क) गौरांग चांदेर मने कि भाव उठिल।
पुरुव-चरित्र बुझि मनेते पड़िल॥
गौरीदास-मुख हेरि उलसित हिया।
आनह छांदन डुरि बोले डाक दिया॥
आजि शुभ दिन चल गोठेर जाइब।
आजि हैते गोदोहन आरंभ करिब॥
(चैतन्यदास, प. क. त., पद ११६९)

(ख) आजु रे गौरांगेर मने कि भाव उठिल।
धवली साङली बलि सघने डाकिल॥
शिंगा वेणु मुरली करिया जय-ध्वनि।
है है बलिया गोरा फिराया पांचनी॥
(वासुदेव घोष, प. क. त., पद ११८६)

२. देख देख अपरूप गौरांग-विलास।
पुन गिरिधारण, पुरव लीला-क्रम, नवद्वीपे करिला प्रकाश।
शुद्ध भक्ति गोवर्धन, पूजा कर जग-जन, एइ विधि दिला कलि माझे।
.. .. ..
देखिया लोकेर गति, कलिजुग-सुरपति, कोपे तनु कंपित हइल।
(चैतन्यदास, प. क. त., पद १२४२)

राधा-कृष्ण लीला

रस-मीमांसा—राधा-कृष्ण लीला का गान बड़े विशद रूप से किया गया है। किशोर कृष्ण और किशोरी राधिका के परस्पर आकर्षण, प्रेम, मिलन, विरह, मान इत्यादि का वर्णन करने वाले पदों की संख्या बहुत अधिक है। गौड़ीय वैष्णव पदावली में पाई जाने वाली राधाकृष्ण लीला वैष्णव रस-शास्त्र पर आधारित है। गौड़ीय वैष्णव धर्म के अन्तर्गत जिस रस को मान्यता प्राप्त है, वह प्राचीन संस्कृत रस-शास्त्र पर आधारित है। गौड़ीय वैष्णव मत में मधुर अर्थात् श्रृंगार रस को ही प्रधानता दी गई है, अतः राधा-कृष्ण लीला में इस श्रृंगार रस की ही प्रधानता है। वैष्णव रस-शास्त्र के अनुकूल श्रृंगार रस का संक्षिप्त वर्णन यहां दिया जा रहा है।

- श्रृंगार
  - संभोग
    - संक्षिप्त
    - संकीर्ण
    - समृद्धिमान
    - सम्पन्न
  - विप्रलंभ
    - पूर्व्वराग
    - मान
    - प्रेम वैचित्य
      - निहेतु
      - सहेतु
    - प्रवास
      - अदूर
      - दूर

श्रृंगार के यह दो प्रकार और उनके अंग हैं। इन दोनों का उनके अंगों सहित संक्षिप्त परिचय निम्न है :—

संभोग श्रृंगार—इस अवस्था में प्रेमी-युगल का संयोग रहता है। उनका मिलन होता रहता है। इसके चार प्रकार हैं :—

१. संक्षिप्त— संक्षिप्त संभोग में पूर्व्वराग के बाद प्रेमी-युगल का प्रथम मिलन होता है। उनमें लज्जा अधिक होती है, अतः यह मिलन संक्षिप्त ही होता है। इस मिलन के अवसर और स्थान बाल-क्रीड़ा, गावी दोहन, गोष्ठ इत्यादि हैं।

२. संकीर्ण— संकीर्ण संभोग में मान के बाद मिलन होता है। मान के कारण उद्भूत दुःख की स्मृति शेष रह जाती है, अतः मिलन का आनन्द पूर्ण नहीं होने पाता। इस संकीर्ण संभोग के अवसर और स्थान रास, जल क्रीड़ा, कुंज, दान, वंशी चोरी, नौका बिहार, इत्यादि हैं।

३. समृद्धिमान— प्रवास के अनन्तर जो मिलन होता है, वह यदि यों ही अचानक हो हो जाता है, तब अत्यंत आनन्ददायी होता है। इसलिए यह समृद्धिमान है। यह मिलन स्वप्न में या कुरुक्षेत्र में होता है। **जल्पना** करते-करते राधा ब्रज लौट जाती है और **स्वाधीना** होकर अपनी दिनचर्या बनाती हैं।

४. सम्पन्न— प्रेम-वैचित्य की दशा में पड़ने के बाद जो मिलन होता है, वह आनन्द से पूर्ण होता है। अतः सम्पन्न भोग कहलाता है। इस मिलन के अवसर सुदूरात् दर्शन, डोल, होली, वसंत, द्यूत-क्रीड़ा, झूलन इत्यादि में प्राप्त होते हैं।

विप्रलम्भ शृंगार—इस अवस्था में प्रेमी-युगल का वियोग रहता है। इस वियोग की दशा के भी चार रूप हैं:—

१. पूर्व्वराग— विप्रलंभ शृंगार की इस दशा में प्रेम का प्रस्फुटन होता है परन्तु साक्षात् मिलने से नहीं। यह पूर्व्वराग दर्शन से अथवा **श्रवण** से होता है। **दर्शन** साक्षात् हो सकता है, चित्र-पट द्वारा हो सकता है और स्वप्न में भी हो सकता है। श्रवण (रूप और गुण का) सखी या दूती द्वारा हो सकता है। प्रेमिका मुरली श्रवण से भी पूर्व्वराग की दशा प्राप्त कर सकती है।

२. मान— विप्रलंभ शृंगार की मान दशा कभी कारण से होती है और कभी अकारण भी होती है। इसलिए मान सहेतु और निर्हेतु दो प्रकार का होता है। सहेतु मान के कारण दृष्ट हो सकते हैं, श्रुत हो सकते हैं और अनुमित भी हो सकते हैं। निर्हेतु मान तो अकारण ही होता है, अथवा कारणाभास से होता है ।

३. प्रेम-वैचित्य— प्रेम के कारण चित्त की दशा जब अनुरागमयी हो जाती है तब विप्रलम्भ शृंगार का रूप प्रेम-वैचित्य कहा जाता है। यह अनुराग-दशा तीन प्रकार की होती है—

(क) रूपानुराग—अर्थात् प्रेमी के रूप में अनुराग।

(ख) आक्षेपानुराग—अर्थात् कृष्ण को, मुरली को, दूत को या अपने को अनुराग के कारण दोष देना।

(ग) रसोद्गार—पिछली क्रीड़ाओं और पिछले आनन्द की स्मृतियां।

४. प्रवास— नायक जब नायिका के पास नहीं रह जाता, तब विप्रलंभ शृंगार की प्रवास दशा होती है। प्रवास भी दो प्रकार का है—

(क) अदूर—जैसे कालीयदमन में, गोचारण में, नंद मोक्ष में, और रास के समय अन्तर्ध्यान हो जाने में।

(ख) दूर—यह प्रवास भूत (व्यतीत हो गया हुआ), भवन (वर्तमान) और भाविन (आगे आने वाला), तीन प्रकार का होता है।

विप्रलंभ शृंगार के चारों भाव संभोग शृंगार के चारों भावों के साथ-साथ ही रहते हैं।

नायिका

शृंगार रस की आधार नायिका के भी कई भेद बताए गए हैं। वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसार ये आठ प्रकार की हैं :—

१. **अभिसारिका**—पूर्ण प्रसाधनों से युक्त वह नायिका जो प्रेमी से मिलने जा रही है, **अभिसारिका** कहलाती है।

२. **वासकसज्जा**—नायिका संपूर्ण प्रसाधनों से युक्त हो मिलन स्थान में न जाकर घर पर ही प्रेमी की राह देखती है। तब वह **वासकसज्जा** कहलाती है।

३. **उत्कंठिता**— प्रेमी से निराश होने पर नायिका को **उत्कंठिता** की संज्ञा मिलती है।

४. **विप्रलब्धा**— प्रेमी से धोखा मिलने पर वह विप्रलब्धा कहलाती है।

५. **खंडिता**— समस्त रात्रि प्रतीक्षा में निरत उस नायिका की संज्ञा खंडिता होती है, जिसका प्रेमी उसके पास न आकर दूसरी प्रेमिका के पास रात्रि बिता देता है।

६. **कलहांतरिता**— कलह के कारण वियुक्त हुई नायिका "कलहांतरिता" कहलाती है।

७. **प्रोषितभर्त्तृका**—नायक के प्रवास में चले जाने पर नायिका की संज्ञा प्रोषितभर्त्तृका हो जाती है।

८. **स्वाधीनभर्त्तृका**—वह नायिका, जिसका प्रेमी संपूर्ण रूप से उसका अनुगत है, स्वाधीनभर्तृका कहलाती है।

गौड़ीय वैष्णव पदकर्ताओं ने प्राय: इन्हीं भावों के अनुरूप पदावली साहित्य की रचना की है। शृंगार के प्रत्येक विभागों और उपविभागों के अनुरूप पद तो नहीं बनाए गए हैं क्योंकि पदकर्ताओं का उद्देश्य रसशास्त्र का प्रणयन न होकर राधा-कृष्ण की लीला का गान करना है। ऐसा ज्ञात होता है कि मधुर रस के जिन मधुरतम प्रसंगों ने उन्हें अधिक आकर्षित किया है, उन्हीं प्रसंगों पर उन्होंने रचनायें की हैं। रचना भी पदों में हैं इसलिए तारतम्ययुक्त क्रमवार शृंगार रस का विवेचन नहीं पाया जाता है। स्फुट रूप से इनमें से कुछ प्रसंगों के अन्तर्गत पद रचे गए थे। "पदकल्पतरु" में संग्रहकार "वैष्णवदास" ने जो स्वयं भी पद-कर्ता थे, शीर्षक देकर जो पदों का संकलन प्रस्तुत किया है, उसमें शृंगार रस-भद और नायिका भेद, दोनों ही प्रकार के प्रकरण हैं। यह कह सकना तो कठिन है कि यह शीर्षक उनके अपने दिए हुए हैं या उन पदकर्ताओं के जिनके पद इसमें संगृहीत हैं। परन्तु प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत संगृहीत पद अपने में रसशास्त्र के अनुरूप ही भावनाएं लिए हैं, इसमें संदेह नहीं है।

हिन्दी पद-साहित्य में इस प्रकार के विभाजनों के अनुरूप विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत पद संगृहीत नहीं हैं। इस प्रकार का रस-शास्त्र उनके वैष्णव धर्म ग्रंथों में नहीं है, अत: उसकी अनुरूपता में रचनायें भी नहीं हैं। परन्तु दोनों ही स्थानों के वे पद जो राधा-

कृष्ण लीला संबंधी हैं, भावों में समानता रखते हैं। आधुनिक संग्रह ग्रंथ "कीर्तन-संग्रह" या "रागकल्पद्रुम" के संग्रहकारों ने कुछ शीर्षक देकर पद संग्रह किए हैं। वे शीर्षक उनके अपने दिए हैं। ऐसा कदाचित् कीर्तन आदि की सुविधा के लिए किया होगा। "पदकल्पतरु" के संग्रहकार ने जो शीर्षक दिए हैं, उनके अनुरूप पद तो उन्होंने ही उन शीर्षकों के अनुरूप रक्खे हैं, परन्तु शृंगार रस के विभागों के बताने वाले वे शीर्षक उनके अपने बनाए हुए नहीं हैं। यह विभाजन तो रूप-गोस्वामी के हैं। उनकी "उज्ज्वल नीलमणि" को आदर्श मान कर पदकर्ताओं ने राधाकृष्ण की मधुर लीला संबंधी पदों की रचना की है। पदकर्ताओं ने शीर्षक स्वयं दिए या नहीं दिए, यह बात अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि वैष्णव-रस-शास्त्र के अनुरूप भाव प्रदर्शित करने वाले लीला पद गौड़ीय पदावली साहित्य में प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। शृंगार रस के संपूर्ण विभाजनों के अनुकूल पद तो नहीं बनाए गए हैं पर अधिकांश स्थान के लिए गए हैं। वे स्थल निम्न हैं :—

१. पूर्व्वराग
२. संक्षिप्त संभोग
३. मान
४. संकीर्ण संभोग
५. संपन्न संभोग
६. प्रेम-वैचित्य
७. प्रवास
८. समृद्धमान संभोग
९. नायिका भेद

१. **पूर्व्वराग**—पूर्व्वराग का अर्थ वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसार राधा और कृष्ण के मनों में प्रेम के उदय से है। राधा और कृष्ण के मनों में एक दूसरे के प्रति प्रेम का उदय कई प्रकार से होता है। गौड़ीय वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसार इस प्रेमोदय की कई सीढ़ियां हैं। नायक और नायिका जो कृष्ण और राधा हैं एक दूसरे की ओर दर्शन से और श्रवण से आकृष्ट होते हैं। राधा और कृष्ण एक दूसरे के रूप का प्रत्यक्ष दर्शन करके मुग्ध होते हैं। यह कथा गौड़ीय वैष्णव लीला पदावली और हिन्दी लीला पदावली दोनों में विद्यमान है[१]।

---

१. (क) मेरें हिय लागै मन मोहन, लै गए री चित चोरि।
अबहीं इहिं मारग ह्वै निकसे, छबि निरखत तृन तोरि॥
मोर-मुकुट स्रवननि मनि-कुंडल, उर बनमाल पिछोरि।
दसन चमक, अधरनि अरुनाई, देखत परी ठगोरि॥
ब्रज-लरिकन संग खेलत डोलत हाथ लिए चकडोरि।
सूर स्याम चितवत गए मो तन, तन मन लियौ अंजोरि॥
(सूरदास, सू. सा., १०।६७०, पृ. ४९६)

(ख) तब तैं मेरौ ज्यौ न रहि सकत।
जित देखौं तितहीं मृदु मूरत, नैननि मैं नित लागि रहत॥
... ...
अब मैं कहा करौ री सजनी, सुरति होति तब मदन दहत॥
सूर स्याम मेरौ मन हर लियौ, सकुच छांड़ि मैं तोहिं कहत॥
(सूरदास, सू. सा., १०।६७१, पृ. ४९६)

नायक का चित्रपट दर्शन और नायक के रूप का स्वप्न में दर्शन भी नायिका को मुग्ध करता है। राधा कृष्ण-चित्रपट दर्शन और स्वप्न दर्शन इन दोनों से भी कृष्ण के प्रति आकर्षित होती हैं, यह कथा केवल गौड़ीय वैष्णव पदावली साहित्य में है, हिन्दी में नहीं[1] एक दूसरे के गुण और एक दूसरे के प्रति प्रेम-भावना का श्रवण करके भी राधा और कृष्ण परस्पर आकर्षित होते हैं। यह काम राधा की सखियां करती हैं, यह वर्णन गौड़ीय पदावली में विस्तारपूर्वक है। परन्तु हिन्दी में इस प्रकार का दूतीकार्य नहीं है[2]। हां,

---

(ग) कि पेखलुं जमुनार तीरे।
कालिया-वरण एक, मानुष आकार गो,
बिकाइलुं तार आंखि-ठारे ॥
... ...
कामेर कामान जिनि, भुरुर भंगिमा गो,
हिंगुले बेड़िया दुटि आंखि।
कालियार नयान वाण, मरमे हानिल गो,
कालामय आमि सब देखि ॥
चिकण कालार रूपे, आकुल करिल गो,
धरणे ना जाय मोर हिया ॥ (यदु, प. क. त., पद १४७)

(घ) ए सखि विहरये को पुन एह।
पीत-वसन जनु, विजुरि विराजित,
सजल-जलद-रुचि देह ॥
मृदु मृदु भाषि, हासि उपजायल,
दारुण मनसिज-आगि। (घनश्याम दास, प. क. त., पद १५०)

१. (क) आनि चित्रपट, राइयेर निकट, समुखे राखिला सखी।
से रूप देखिया, मूरछित हैया, पड़िला कमल-मुखी ॥
मंदाकिनी धारा, कत शत धारा, ओ दुटि नयाने बहे।
करह चेतन, पावे दरशन, दास उद्धवे कहे ॥ (उद्धवदास, प. क. त., पद ३५)

(ख) मनेर मरम कथा, तोमारे कहिये एथा, शुन शुन पराणेर सइ।
स्वपने देखिलुं जे, श्यामल वरण दे, ताहा बिनु आर कारो नइ ॥
(ज्ञानदास, प. क. त., पद १४४)

२. (क) शुन माधव अब हाम कि बोलब तोय।
सो वृषभानु-कुमारि वर सुंदरि,
अहनिशि तुया लागि रोय ॥
तुया अनुरूप, एक पट लेखिया,
देयल ताकर आगे।
सो रूप हेरि, मुरछि पड़ड भूतले,
मानये करम अभागे ॥ (यदुनंदन, प.क., त., पद ३७)

कृष्ण की मुरली के स्वर द्वारा मोहित राधा और गोपियों के दर्शन दोनों भाषाओं के पद साहित्य में होते हैं।[१] राधा-कृष्ण एक दूसरे के प्रति प्रेमोदय के फल-स्वरूप प्रबल रूप से आकर्षित हो जाते हैं। उनमें मिलन की तीव्र उत्कंठा है। यह प्रसंग गौड़ीय पदावली में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से दिया गया है। वे दोनों इतने विरहाकुल हैं कि उनकी मरण दशा तक आ गई है। हिन्दी पदावली में उन दोनों की मिलन-इच्छा दिखाई तो गई है परन्तु तीव्र विरह दशा का प्रसंग नहीं पाया जाता।[२] बंगला पदावली का पूर्व्वराग प्रकरण क्योंकि रस-शास्त्र की अनुकूलता में है, हिन्दी पदों में प्राप्त राधा के प्रेम प्रकरण

(ख) चम्पक दाम हेरि, चित अति कंपित, लोचने बहे अनुराग ।
तुया रूप अंतरे, जागये निरंतर, धनि धनि तोहारि सोहाग ॥
वृषभानु-नन्दिनि, जपये राति दिनि, भरमे ना बोलये आन ।
(गोविंददास, प. क. त., पद ८९)

१. (क) सुनत बन मुरली-धुनि की बाजन ।
पपिहा गुंज, कोकिल बन कूंजत, अरु मोरनि कियौ गाजन ॥
यहै शब्द सुनियत गोकुल में, मोहन-रूप विराजन ।
सूरदास प्रभु मिली राधिका, अंग अंग करि साजन ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।६२२, पृ. ४८१)

(ख) मंद मंद मधुर तान, श्यामेर मुरली कुंजे बाजिल रे ।
नव नायरी श्री राधे धनि, अनंग-रंगे मातिल रे ॥
उठत वसत गलत स्वेद, मुरली शबदे श्रवण भेद ।
पुलके पूरल सबहु अंग, प्रेम-तरंगे भासिल रे ॥
भुवन मोहन-मोहिनी वेश, रूपे उजोरल सबहु देश ।
संगे बरज-रंगिनीगण, श्याम दरशने साजिल रे ॥ (परमानंद, की. प., पृ. ८२)

२. (क) मंजुल वंजुल-निकुंज मंदिरे, सोङरि सो गुणगाम ।
हिम हिमकर, सलिल शीकर, निंदहइ कालिंदी-तीर ॥
सरस चंदन परशे मुरछइ, सजल जलत चीर ।
कबहुं उठत, कबहुं बैठत, पंथे हेरत तोर । (गोविंददास, प. क. त., पद २१७)

(ख) लुठइ धरणि धरि सोय ।
श्वास-विहिन हेरि सहचरि रोय ॥
मुरछलि कंठे पराण ।
इह पर को गति दैवे से जान ॥
ए हरि पेखलुं सो मुख चाइ ।
बिनहि परशे तुया न जीवइ राइ ॥ (गोपाल, प. क. त., पद १८०)

(ग) हरि देखें बिनु कल न परै ।
जा दिन तें वे दृष्टि परे हैं, क्यौं हूं चित उनतें न टरै ।
नव कुमार मनमोहन, ललना-प्रान-जिवनधन क्यौं बिसरै ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।१६६६, पृ. ८३६)

से अपेक्षाकृत कम स्वाभाविक है। राधा कृष्ण को देखती है, मुग्ध होती है, परन्तु पूर्व्वराग की व्याख्या के अनुसार उन्हें चित्र भी दिखाया गया है,[1] स्वप्न भी दिखाया गया है तब जाकर उनका आकर्षण सम्पूर्ण होता है। हिन्दी पदों की राधा कृष्ण के रूप को देख कर, उनके साथ खेल कूद कर उनके प्रति आकृष्ट होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वैष्णव रस-शास्त्र के अनुरूप विषय प्रतिपादन करने की गौड़ीय पदावली में चेष्टा की गई है। हिन्दी में क्योंकि ऐसा रस-शास्त्र है ही नहीं अतः ऐसा विषय-प्रतिपादन भी नहीं है; भाव-साम्य अवश्य पाए जाते हैं।

(२) **संक्षिप्त संभोग**—वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसार संक्षिप्त संभोग का अर्थ राधा कृष्ण का अल्पकालिक मिलन और क्षणिक क्रीड़ा ही है। इन दोनों के मिलन कभी गोचारण के लिए जाने पर वन में, कभी गोदोहन में, और कभी बाल-क्रीड़ा में होते हैं। गोचारण अथवा 'गोष्ठ' प्रकरण में बंगाली पद साहित्य में[2], और गोदोहन अथवा 'खरिक' प्रकरण में हिन्दी पद साहित्य में इस संक्षिप्त-मिलन सम्बन्धी पद मिलते हैं। बाल-क्रीड़ा करते समय कृष्ण की भेंट राधा से हो जाती है, इसका उल्लेख हिन्दी पदों में पाया जाता है[3]। राधा कृष्ण के विरह में रोगी हो जाती है, सर्प काटने का बहाना करती है, और कृष्ण उन्हें अच्छा करने आते हैं।[4] इस प्रकार भी मिलन होता है। इस प्रकरण के मिलन संबंधी पदों

---

१. प. क. त., पद ३५ और १४४

२. तपनक तापे, तपत भेल महितल,
अतल बालुक दहन समान ।
चढ़ल मनोरथे, भाविनि चलु पथे,
ताप तपन नाहि जान ।
प्रेमक गति दुरवार ।
नविन-जौवनि धनि, चरण कमल जिनि,
तबहिं कयल अभिसार ॥ (कवि शेखर, प. क. त., पद १३१०)

३. (क) कुंवरि कह्यौ मैं जाति महरि, घर ।
प्रातहिं आई खरिक दुहावन, कहत दोहनी लैकर ॥
तब खरिकहिं कोउ ग्वाल गए नहिं, तिन कारन ब्रज आई ।
जौं देखौं तौ अजिरहिं बैठे, गैया दुहत कन्हाई ॥...
(सूरदास, सू. सा., १०।७२६, पृ. ५१३)

(ख) सैन दै प्यारी लई बुलाइ ।
खेलन कौ मिल करि कै निकसै खरिकहिं गए कन्हाइ ॥
जसुमति कौं कहि प्यारी निकसी, घर कौ नाउं सुनाइ ।
कर दोहनी लिए तहं आई, जहं हलधर के भाइ ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।७२८, पृ. ५१४)

४. (क) हामारि बधुर रिति, हेरि जनु आनमति, कहि निज मंदिरे नेल ।
देव देयासिनी कान ॥
जटिला-वचने, सुधा मुखि नियड़हि, एक दिठे नेहारे वयान ॥

में मुख्यतया काम-क्रीड़ाओं का ही वर्णन है। हिन्दी और बंगाली दोनों के पदावली साहित्य-कर्त्ता अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में खुले रूप से राधा-कृष्ण की काम-केलि का वर्णन करते हैं। गौड़ीय वैष्णव पदकर्त्ताओं ने इस प्रकार के वर्णनों में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता ली है।[1]

(२) मान—राधा और कृष्ण की प्रेम-लीला में मान संबंधी पद अच्छी मात्रा में प्राप्त हैं। यह मान मुख्यतया राधा ही करती हैं, कृष्ण मान नहीं करते। गौड़ीय पदावली में जो मान संबंधी पद प्राप्त हैं उनमें एक स्थल पर दोनों को मान करते बताया गया है।[2] परन्तु साधारण रूप से प्रायः समस्त पद राधा के मान के ही हैं। राधा का यह मान सहेतु भी है और निर्हेतु भी है। वे सखी से सुनकर अथवा शरीर में चिह्न देखकर कृष्ण का अपने से भिन्न अन्य गोपी से विहार करना जान क्रुद्ध होती हैं और मान करके बैठ जाती हैं। कृष्ण मान छुड़ाने के लिए दूती की शरण लेते हैं। दूती राधा को कृष्ण का स्नेह और व्याकुलता सुनाकर मान त्यागने को कहती हैं। परन्तु राधा नहीं मानतीं और कृष्ण क्यों नहीं आते, कह कर उसे भगा देती हैं। कृष्ण स्वयं आते हैं और हाथ पैर जोड़ते हैं, कुछ इससे और कुछ दूती की वकालत से राधा का मान छूट जाता है। कृष्ण कभी वेश परिवर्तन करके आते हैं, कभी वैसे ही। वेश परिवर्तन करके वे स्त्री का रूप धारण करते हैं और राधा के पास जाते हैं। राधा उन्हें सखी बनाने के लिए नाम धाम पूछती हैं। भेद खुलने पर वे हंस कर मान त्याग देती हैं।

कह तव अतनु, देव हथे पाओल, हृदि माह पैठल काल।
निरजने सोइ, मंत्रे जब झारिये, तब इह होयब भाल।
एत शुन जटिला, घरहुं दोहें लेयल, निरजने दुहुं एक ठाम।
सब जन निकसल, बाहिरे बैठल, पूरल कानु मन-काम॥

(शेखर, प.क.त., पद २४०)

(ख) डसी री स्याम भुअंगम कारे।
मोहन-मुख-मुसुक्यानि मनहुं, विष जात मेर सों मारे।
फुरै न मंत्र, जंत्र, गद नाहीं, चले गुनी गुन डारे।

(सूरदास, सू. सा., १०।७४७, पृ. ५१९)

(ग) हरि गारुड़ी तहां तब आए।
यह बानी वृषभानुसुता सुनि, मन-मन हरष बढ़ाए॥
धन्य-धन्य आपुन कों कीन्हौ अतिहि गई मुरझाइ॥

(सूरदास, सू. सा., १०।७५८, पृ. ५२२)

१. (क) सूरसागर, दशम स्कंध, पद ६८२, ६८६ से ६९१, १६७८, १६७९ इत्यादि।
(ख) पदकल्पतरु, पद ६३, १००, १०१, ११४, १३०, १८९, २३५, २५६, २६१

२. रसवति राधा रसमय कान।
को जाने काहे कयल दुहुं मान॥
दुहुं अति रोखे विमुख भइ बैठ।
दुहुं चलली जमुना-जले पैठ॥ (गोविंददास, प. क. त., पद ५९९)

यह समस्त प्रकरण 'सहेतु' मान का है। 'निर्हेतु'' मान का वर्णन भी वैष्णव पदावली में है। राधा कृष्ण के हार में लगी मरकत मणि में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसे अन्य स्त्री समझ लेती हैं और क्रुद्ध हो बैठती हैं। सखियों द्वारा अपनी इस मूर्खता को जान कर वे लज्जित होती हैं और मान त्याग देती हैं। राधा का मान छुटाने में दूती और ललिता सखी का सबसे बड़ा हाथ है। कुछ पद यहां दिए जा रहे हैं।[1]

---

१. (क) प्रियसखि निकटे, जाइ कहे द्रुत-गति,
शुन धनि चतुरिणि राधे ।
चंद्रावलि सञे, कानु रजनि आजु,
कामे पुरायल साधे ॥
ऐछन शुनहते बात ।
अरुणित लोचन, गरगर अंतर,
रोखे पुरल सब गात । (उद्धवदास, प. क. त., पद ५२६)

(ख) सुन्दर सिंदुर; नयनक अंजन , संचरु दश नख-रेखा ।
कुंकुम चन्दन, अंगे विलेपन, प्रात समये दिल देखा ॥
दशगुण अधिक, अनले तनु दाहिल, रति चिह्न देखि प्रति अंगे ।
चम्पति पैड़ कपूर जव ना मिलब, तब मीलव हरि संगे ॥
(चम्पति, प. क. त., पद ४८१)

(ग) लालन अनत रतिमान आये हो जु मेरे गेह रसीले नयन बेन तुतरात ।
अंजन अधर धरें पीक लीक सोहें तोहें काहे कों दुरात झूठी सोहें खात ॥
बातेहुं बनावत बातहु न आवत एते पर रति के चिह्न दुरात तिरछी चितवत गात ।
नंददास प्रभु प्यारी के वचन सुन भुले नाम वही को निसर जात ॥
(नंददास, की. सं., भाग ३, उत्तरार्द्ध, पृ. ३९)

(घ) लाडिली न माने हो लाल आपहीं पाऊं धारो ।
जैसे हठ त्यजे प्यारी सोई यतन विचारो ॥
बातें तो बनाय कहीं जेती मति मेरी ।
एक हुं न माने हो लाल ऐसी त्रिया तेरी ॥
अपनी चोंप के काजें सखी भेष कीनो ।
भूषण वसन साजें वीना कर लीनों ॥
उततें आवत देखी चकत निहारी ।
कोन गाम वसत ही रूप की उजियारी ॥
गाम तो है नंदगाम तहां की हों प्यारी ॥
नाम है सांवल सखी तेरे हितकारी ॥
कर सों कर जोरें स्यामा निकट बैठाई ।
सप्त स्वरन साज मिल स्वल्प बजाई ॥

(४) संकीर्ण संभोग—राधा-कृष्ण की इस प्रकार की प्रेम-लीला के अन्तर्गत कई

रीझ मोतीहार चारु उर ले पहिरावें।
ऐसे हीं हमारा भटू सांवरो बजावें॥
जोइ जोइ इच्छा होय सोई मांग लीजे।
ऐसी बातें सांवरे सों कबहुं मान न कीजे॥
मुख सों मुख जोरें स्यामा दरपन दिखावें।
निरख छबीली छबि प्रतिबिंब लजावें॥
छल तोऊ घर आयो हस पीठ दीनी।
नंददास बल प्यारी आकों भर लीनी॥ (नंददास, की. सं., भाग ३, उत्तरार्द्ध, पृ. ६८)

(ङ) वर नागर साजइ नागरि वेशा।

.. .. ..

करे धरि यंत्र तंत्र सङ्गरत, को इह लखइ ना पारि।
राइक निकटे, बाजाओत, सुंदरि, शुनइते भेगेल साधा।
ए नवयौवनि, नविन विदेशिनि, आओो फुकारइ राधा॥
शुनइते श्याम, हरखि चिते आओल, उठि धनि आदर केल।
बाहु पाकड़ि निज, आसने वैसायल, कत कत हरषित भेल॥
ताहिं बाजाओत, वीणा सुमाधुरि, रिझि देयल मणिमाल।
जैछे बाजाओत, हामरि जंत्रिया, मोहन जंत्र रसाल॥

.. .. ..

नाम गाम कह, कुल-अवलम्बन, ब्रजे आगमन किये काजा।
सुखमयि नाम, मथुरा पुर यदुकुल, गुणि-जने पीडइ राजा॥
धनि कहे तुया गुणे, रिझि परसन्न भेल, मागह मानस जोय।
मनरथ-कर्म्म, जाचलि जदि सुंदरि, मान-रतन देह मोय॥
हासि मुख मोड़ि, पीठ देइ बैठल, कानुकयल धनि कोर

(भूपति, प. क. त., पद ४८३)

(च) रसवति जाइ रसिक-वर ठाम।
श्याम-तनु-मुकुरे हेरइ अनुपाम॥
निज प्रतिबिम्ब श्याम-अंगे हेरि।
रोखि कहत धनि आनन फेरि॥
नागर एत किये चंचल भेलि।
हामारि समुखे कर आन सजे केलि॥ (उद्धवदास, प. क. त., प. ५८७)

(छ) पियहि निरखि प्यारी हंस दीन्हौ।
रीझे स्याम अंग-अंग निरखत, हंसि नागरि उर लीन्हौ॥
आलिगन दै अधर दसन खंडि, कर गहि चिबुक उठावत।
नासा सौं नासा लै जोरत, नैन नैन परसावत॥
इहि अंतर प्यारी उर निरख्यौ, झझकि भई तब न्यारी।
सूर स्याम मोकों दिखरावत, उर ल्याए धरि प्यारी॥

(सूरदास, सू. सा. १०।२४१२, पृ. १०५९)

एक लीलाएं हैं जिनमें उन दोनों का मिलन होता है जैसा कि शृंगार के इस विभाजन के परिचय में दिया जा चुका है। इस प्रकार की लीलाओं में राधा-कृष्ण का परस्पर मिलन और क्रीड़ा में पूर्णानन्द नहीं होता क्योंकि मान और छेड़-छाड़ के कारण राधा के मन में कुछ दुःख और क्रोध बना रहता है।

ये प्रेम लीलाएं निम्न हैं :—

१. रास-लीला
२. दान-लीला
३. नौका-विहार-लीला
४. जल-क्रीड़ा और स्नान-लीला
५. कुंज-विहार-लीला

(१) **रास-लीला**—रास-लीला पर अपेक्षाकृत अधिक पद मिलते हैं। कृष्ण वंशी बजाकर गोपियों को बुलाते हैं। वे गृह कार्य त्याग कर उलटा-सीधा शृंगार करके वंशीवट की ओर भागती हैं।[1] वहां पर कृष्ण हंसी में उनसे वहां आने का कारण पूछते हैं और उपदेश

---

१. (क) सरद-निसि देखि हरि हरष पायौ।

... ...

राधिका रमन बन-भवन-सुख देखि कै,
अधर धरि बेनु सु ललित बजाई।
नाम लैले सकल गोप-कन्यानि के, सबनि कैं
स्रवन वह धुनि सुनाई॥

(सूरदास, सू. सा. १०।९८८ पृ. ६०२)

(ख) १. शरद चंद पवन मंद
विपिने भरल कुसुम-गंध
फुल्ल मल्लिका मालति जुथि
मत्त-मधुकर-भोरणि।

२. हेरत राति ऐछन भाति
श्याम मोहन मदने माति
मुरलि गान पंचम तान
कुलवति चित चोरणि॥

३. शुनत गोपि प्रेम रोपि
मनहिं मनहिं आपन सोंपि
तांहि चलत जांहि बोलत
मुरलिक कल लोलनि।

४. बिसरि गेह निजहुं देह
एक नयने काजर-रेह
बाहे रंजित कंकण एकु
एकु कुंडल डोलनि।

(गोविंददास, प. क. त., पद १९५५).

(ग) करत शृंगार जुवती भुलाहीं।
अंग-सुधि नहीं, उलटे बसन धारहीं, एक एकहि कछु सुरति नाहीं।
नैन अंजन अधर आंजहीं हरष सौं स्रवन ताटंक उलटे संवारैं।
सूर-प्रभु-मुख-ललित, बेनु-धुनि बन सुनत, चलीं बेहाल अंचल न धारैं॥

(सूरदास, सू. सा. १०।९९८, पृ. ६०६)

देते हैं।[1] गोपियां व्याकुल होकर प्रत्युत्तर देती हैं।[2] तब कृष्ण रास प्रारम्भ करते हैं। इस

---

१. (क) हेरि ऐछन रजनि घोर, तेजि तरुणि पतिक कोर,
कंछे पाओलि कानन ओर, थोर नहत काहिनि।
गलित-ललित-कबरि बंध, काहे धाओत जुवतिवृंद,
मंदिरे किये पड़ल दंद, बेढ़ल विपथ वाहिनि।
(गोविंददास, प. क. त., पद १२५६)

(ख) निसि काहैं बन कौं उठि धाईं।
हंसि-हंसि स्याम कहत हैं सुन्दरि, की तुम ब्रज-मारगहिं भुलाईं॥
(सूरदास, सू. सा. १०।१०११, पृ. ६०९)

२. (क) ऐछन वचन कहल जब कान।
ब्रज-रमणीगण सजल-नयान॥
टूटल सबहुँ मनोरथ-करणि॥
अवनत-आनने नखे लिखु धरणि॥ (गोविंददास, प.क.त., पद १२५७)

(ख) आकुल अंतर गदगद कहइ।
अकरुण-वचन-विशिख नाहि सहइ॥
शुन शुन सुकपट श्यामर-चंद।
कंछे कहसि तुहुं इह अनुबंध॥
भांगलि कुल-शिल मुरलिक साने।
किंकरिगण जनु केश धरि आने॥
अब कह कपटे धरमजुत बोल।
धार्मिक हरये कुमारि-निचोल॥
तोहे सोंपित जिउतुया रस पाब॥
तुया पद छोड़ि अब को काहां जाब॥
एतहुं कहल ब्रज-जौवत मेल॥
शुनि नन्द-नन्दन हरषित भेल॥
करि परसाद तहिं करये विलास।
आनंदे निरखये गोविंददास॥
(गोविंददास, प. क. त., पद १२५७)

(ग) आस जनि तोरहु स्याम हमारी।
बेनु-नाद-धुनि सुनि उठि धाईं प्रगटत नाम मुरारी।
क्यों तुम निठुर नाम प्रगटायौ काहें विरद भुलाने?
... ...
प्रीति वचन नौका करि राखौ, अंकम भरि बैठावहु।
सूर स्याम तुम बिनु गति नाहीं, जुवतिनि पार लगावहु॥
(सूरदास, सू. सा. १०।१०२९, पृ. ६१५)

सम्बन्ध में रास नृत्य का वर्णन करने वाले और उस समय की चर-अचर प्रकृति का वर्णन करनें वाले पद अत्यन्त सुन्दर हैं।[1] बीच बीच में शृंगारिक पद भी हैं।

(२) **दान-लीला**—दान लीला संबंधी पद भी अपेक्षाकृत अधिक पाए जाते हैं। दधि बेचने जाती हुई गोपियों को और राधा को घेर कर कृष्ण दान (कर) मांगते हैं। उन लोगों को बहुत तंग करते हैं। इस सम्बन्ध के पद अत्यन्त शृंगारिक हैं।

(३) **नौका-विहार**—यमुना पार जाने वाली गोपियों और राधा को नाव में बैठा कर पार करने के लिए कृष्ण केवट का रूप रखते हैं। राधा उनको केवट समझकर उनके

---

१. (क) कालिन्दि-तीर, सुधीर समीरण, कुंद कुमुद अरविन्द विकाश।
नाचत मोर भोर मत्त मधुकर, शुक सारिक पिकु-पंचम भाष॥
मधुवने निधुवन-मुगध मुरारि॥
(गोविंददास, प. क. त., पद १२६८)

(ख) मंद पवन, कुंज भवन, कुसुम-गंध-माधुरी।
मदन-राज, नव समाज, भ्रमरा भ्रमरि-चातुरी॥
तरल ताल, गति दुलाल, नाचे नटिनि नटन-शूर. . . . . .
(ज्ञानदास, प. क. त., पद १०६६)

(ग) आज मोहन रची रासरस मंडली।
उदित पूरण निशानाथ निरमल दिशा देख
दिनकर सुता सुभग पुलिन स्थली॥
बीच हरि बीच हरिणा क्षमा लारची,
तरुलता पिच्छ मानो कनक कदली रली॥
पवन वश चपल द्रुम डुलन सी देखियत,
चारु हस्तक भेद भांत भारी भली।
चरण विन्यास कर्पूर कुंकुम धूरि पूर रही
दिश विदिश कुंज बन की गली॥
कुंद मंदार अरविंद मकरंद मिले,
कुंज पुंजन मिले मंजु गुंजत अली॥. . . . .
(गदाधर, की. सं., भाग १, पृ. ३२४)

(घ) सरद-निसि देखि हरि हरष पायौ।
बिपिन बृंदा रमन, सुभग फूले सुमन,
रास रुचि श्याम के मनहिं आयौ॥
परम उज्वल रैनि, छिटकि रही भूमि पर,
सद्य फल तरुनि प्रति लटकि लागे॥
तैसोई परम रमनीक जमुना-पुलिन,
त्रिबिध बहै पवन आनंद जागे॥ (सूरदास, सू. सा. १०।९८८, पृ. ६०२)

स्पर्श से दुःखी होती हैं। भेद खुलने पर प्रसन्न हो जाती हैं।[1] हिन्दी पदों में ऐसी कथा नहीं है। कुल दो तीन पद हैं जिनमें राधा-कृष्ण का नौका-विहार-मात्र वर्णित है। इस संबंध में प्रायः शृंगारिक पद ही अधिक हैं।

(४) जल-क्रीड़ा और स्नान-यात्रा —इस लीला में राधा-कृष्ण की परस्पर जल क्रीड़ा और कृष्ण का अधिवास के समय का स्नान वर्णित है। जल-क्रीड़ा के पद अधिकतर शृंगारिक ही हैं। कृष्ण राधा इत्यादि के साथ जमुना में या राधा-कुंड में स्नान करते हैं।[2]

---

१. (क) यमुनार दुकुल आला कैल नाव्यार रूपे।
जगजन-मन भुले देखिया स्वरूपे॥
गले बनमाला दोले शिरे शिखि-पाखा।
देखि मेन जाति कुल नाहि जाय राखा॥
मुचकि हासिया नाव्या जार पाने चाय।
जाचिया जौवन दिते सेइ जन धाय॥ (वंशीवदन, प. क. त., पद १४१९.)

(ख) बैठे घनश्याम सुन्दर खेवत हे नाव।
आज सखी मोहन संग खेलवे को दाव।
यमुना गंभीर नीर अति तरंग लोले।
गोपिन प्रति कहन लागे मीठे मृदु बोले।
पथिक हम खेवट तुम लीजिये उतराइ।... (परमानन्द की. र., पृ. ४२)

१. (क) श्यामा श्याम सुखद जमुना जल निर्भय करत विहार।
श्वेत कमल इंदीवर पर मानो भोरही भई हे निहार॥
श्री राधा कर अंबुज भर भर छिरकत बारंबार।
(सूरदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २६०.)

(ख) पैठल सबहुं जमुना जल माह।
पानि-समरे दुहुं करु अवगाह॥
नाभि-मगन जले मंडलि केल।
दुहुं दुहुं मेलि करइ जलखेल॥ (अनन्तदास, प. क. त., पद १२७३.)

(ग) गिरिख-समय गृह माह।
जशोमति हरिख बाढ़ाह॥
कहि सब गोकुल-लोके।
निज सुते करु अभिषेके॥
गिरिखि-तपन भय लागि।
वासइ कुसुम-परागि॥
सुशितल वारि मधुर।
कलस कलस भरि पूर॥
... ...
रतन वेदि निरमाण।
ताहि आनाओल कान॥ (माधव घोष, प. क. त., पद १५३९.)

(५) **कुंज-विहार-लीला**—प्राय: राधा कृष्ण का मिलन कुजों ही में हुआ करता था। इस लीला से संबंधित पदों में कुंजों का वर्णन तो उतना नहीं है, राधा-कृष्ण-मिलन सम्बन्धी शृंगारिक पद ही अधिक हैं।[1]

इन सब लीलाओं से संबंधित पद अधिकतर तो शृंगारिक भावना से ओत-प्रोत हैं। कुछ पदों में ही प्रकृति-वर्णन अथवा नख-शिख वर्णन है। दान-लीला में तो नख-शिख वर्णन अत्यन्त शृंगारिक है।

(६) **संपन्न संभोग**—नायक और नायिका में अनुराग जब अत्यन्त गाढ़ा हो जाता है तब जो मिलन होता है वह दुःख और क्रोध सबसे रहित होता है। अतः इस समय जो मिलन

(घ) चौदिके ब्रज-वधु देइ जयकार ।
घट भरि शिर पय देइ जल-धार ॥
अपरूप कानुक इह अभिषेक ।
चौदिशे ब्रज-रमणीगण देख ॥
कुसुम गोलाव कपुरजुत वारि ।
घट भरि देओल शिर भर ढारि ॥ (माधव, प. क. त., पद १५४०.)

(ङ) फूली फिरत यशोदा रोहिनी उर आनंद न समायो ।
गांम गांम ते जाति बुलाई मोतिन चोक पुरायो ॥
ब्रज बनिता सब मंगल गावत बाजत घोष बजायो ।
प्रथम रात्रि यमुनाजल घट भरि अधिवासन करवायो ॥
उठि प्रभात कंचन चोकी धरि तापर लाल बेठायो ॥
(द्वारकेश, की. सं., भाग बीजो, पृ. २५९)

१. (क) राधा माधव, कुंजहि पैठल, रति-रण-रंग रसाला ।
रण-बाजन घन, कोकिल-कलरव, झंकरु मधुकर- माला ॥
(गोविंददास, प.क. त., पद १४८७)

(ख) आज नव कुंजन की अति शोभा ।
करत बिहार तहां पिय प्यारी निरख नयन मन लोभा ॥
रूपवार सींचत निज जन को उठत प्रेम की गोभा ।
परमानन्द प्रभु की चितवनी लागत चित को चोभा ॥
(परमानंद, की. सं., भाग ३, पूर्वार्द्ध, पृ. १२१)

(ग) आज की बानिक कही न जाय बैठे निकस कुंज द्वार ।
लटपटी पाग सिर सिथिल चिहुर चारु खसित बरुहा चन्द रस भरे ब्रज राज कुमार ॥
श्रम जल बिन्दु कपोल विराजत मानों ओसकण नील कमल पर ।
गोविंद प्रभु लाडिलो ललन वर कहा कहो अंग अंग सुन्दर वर ॥
(गोविंद, की. सं., भाग ३, पूर्वार्द्ध, पृ. १२०)

सुख होता है वह आनन्द से पूर्ण होता है। संपन्न संभोग से संबंधित लीलायें निम्न हैं—

(१) वसंत लीला
(२) होली लीला
(३) डोल लीला
(४) झूलन लीला
(५) निद्रा
(६) धूर्त्तता

(१) **वसंत लीला**—वसंत लीला में राधा-कृष्ण होली के समान ही वसंत खेलते हैं। चारों ओर वसंत की शोभा छाई है। राधा और सखियां शृंगार करके वन में जाती हैं, और कृष्ण से वसंत खेलती हैं। वे सब मिल कर नृत्य भी करते हैं।[1] हिन्दी में कुछ पद मदन-पूजा संबंधी भी हैं। इस प्रकरण के अन्तर्गत पदों में सुन्दर प्रकृति वर्णन है।[2]

---

१. (क) वृन्दा-विपिने विहरइ माधवि माधव संगिया।
दुहुं-गुण दुहुं जन, गाओत सुललित, चलत नर्त्तन-गति-भातिया॥
श्रवण-जुगले, कुंडल शोहइ, नव किशलय तोड़िया।
दुहुं कांधे दुहुं, भुज शोहइ, चुम्बइ मुख-शशि मोड़िया॥
मत्त कोकिल, मुरलि ताहे बाये, नाचत शिखिगण मातिया॥
(गोविंददास, प.क. त., पद १४९९.)

(ख) आओत रे ऋतुराज वसन्त।
खेलत राइ कानु गुणवंत।
तरुकुल मुकुलित अलिकुल धाव।
मदन-महोत्सव पिकुकुल राव। (ज्ञानदास, प. क. त., पद १४२९.)

(ग) नव वसन्त आगमन नवनागरी नवनागर गिरिधिर संग खेलत।
चोवा चंदन अगर कुंकुमा ताकि ताकि पिय सन्मुख मेलत।
पोहोपांजुलि जब भरत मनोहर वदन ढांपि अंचल गति पेलत।
चतुर्भुज प्रभु रसरास रसिक को रीझि-रीझि सुखसागर झेलत॥
(चर्तुभुज, व. ध., पृ. ११)

(घ) खेलत मदन गोपाल वसन्त।
नागर नवल रसिक चूड़ामणि सब विधि राधिकाकंत॥
नेन नेन प्रति चारु विलोकन वदन वदन प्रति सुन्दर हास।
अंग अंग प्रति प्रीति निरन्तर रति आगमनि सजाइ विलास॥
बाजत लाल मृदंग अघोटीं डफ बांसुरी कुलाहल केलि।
परमानन्द स्वामी के संग मिलि नाचत गावत रंगरेलि।
(परमानन्ददास, व. ध., पृ. १२)

२. (क) ऋतु बसन्त मुकलित बन सजनी सुवन जूथिका फूलीरी।
गुनन गुनन गुंजत दुहुंदिश मधुप मंडली झूली॥
गोवर्धन तट कोकिला कूजत वचन निकर समूली।
(कृष्णदास, ब. ध., पृ. १८)

(२) होली लीला---कृष्ण और राधा की होली लीला का वर्णन करने वाले पदों की संख्या हिन्दी में अपेक्षाकृत अधिक है। वैसे तो दोनों साहित्यों में वर्णन और भावों की समानता पाई ही जाती है। राधा और उसकी सखियाँ कृष्ण और उनके सखाओं के साथ धूमधाम से होली खेलती हैं। दोनों मंडलियाँ एक दूसरे को हरा देने की प्रबल चेष्टा करती हैं। गान-वाद्य और रंग से वायु मंडल पूरित है। होली का उत्सव और आनन्द पदों में सम्पूर्ण रूप से निहित है। इस संबध कुछ पद यहां दिए जा रहे हैं।[1]

(ख) तरु तरु नव किशलय बन लागि।
कुसुम-भरे कत अवनत शाखि॥
तहिं शुक शारिनि कोकिल बोल॥
कुंज निकुंज भ्रमर करु रोल॥
अपरूप श्रीवृन्दावन माझ।
षड़ ऋतु संगे वसन्त ऋतु-राज॥
विकसित कुवलय कमल कंदब।
माधवि मालति मिलित रुलंब॥ (गोविंददास, प.क.त., पद १४८९)

१. (क) खेलत राधा, श्याम रंग भरि, वृन्दा-विपिन समाज।
चुया चंदन, वंदन कुंकम, रंग मुटकि भरि साज॥
बैठल श्याम, संगे मधुमंगल, सुबल सखादिक साथे।
राधा ललिता, विशाखा आदि सहचरि, पिचकारि करि निज हाते।
कानुक पिचकारि, जबहिं बरिखत, एकहि शत शत धारे।
सहचरि मेलि, राइ जब डारत, कहु कत शत एक बारे॥
(उद्धवदास, प. क. त., पद १४३६)

(ख) खेलत फागु वृन्दावन-चांद।
ऋतुपति मनमथ-मनमथ छांद॥
सुन्दरिगण कर मंडलि मझि।
रंगिणि प्रेम तरंगिणि साज॥....
चकित चंद्रमुखि सहचरि-गहने।
धाइ धरल गिरिधारिक वसने॥
तरल-नयानि तुरिते एक जाइ।
कर सजे काढ़ि मुरलि लेइ धाइ॥
घन करतालि भालि भालि बोल।
हो हो होरि तुमुल उतरोल॥
अरुण तरुण तरु अरुणहि धरणी।
स्थल जलचर भेल सभे एक-वरणी॥
अरुणहि नीरे अरुण अरविंद।
अरुण-हृदय भेल दास गोविंद॥ (गोविंददास, प. क. त., पद १४३६)

(३) डोल लीला—डोल लीला से संबंधित पद संख्या में बहुत कम हैं। राधा-कृष्ण को बैठा कर सखियाँ झुलाती हैं और डोल मारती हैं। सब अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कुछ पद यहां दिए जा रहे हैं।[1] यह लीला एक तरह से झूले पर बैठ कर होली खेलना ही है।

(ग) राधा मोहन रंग भरे हैं, खेल मच्यौ ब्रज-खोरि।
नागरि संग नारि गन सोहैं, स्याम ग्वाल संग जोरि ॥
हरि लिये हाथ कनक-पिचकारी सुरंग कुंकुमा घोरि।
उतहिं माट कंचन रंग भरि-भरि, लैं आईं तिय जोरि ॥
... ...
कोउ मुरली लै लगी बजावन मन भावन-मुख हेरि।
किन्हूं लियौ छोरि पट-कटि तैं बारत तन पर फेरि ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।२८९८, पृ. ३३९)

(घ) हो हो होरी खेलै नन्द को नवरंगी लाला।
अबीर भरि भरि झोरी, हाथन पिचकारी
रंगन बोरी, तैसिय रंगीली ब्रज की बाला।
मूरति धरे अनंग, गावत तान-तरंग,
ताल मृदंग मिलि बजावैं बीन-बेनु रसाला ॥
नन्ददास प्रभु-प्यारी के खेलत रंग रह्यौ,
छबि बाढ़ी, छूटी हैं अलक, टूटी है माला ॥ (नंददास, पदावली, पृ. ३३९)

(ङ) ढोटा दोउ राय के खेलत डोलत फाग हो।
लाले जो देखे सो मोहियो ओर प्रतिछिन नव अनुराग हो ॥
सखा संग सब बोलके घर घर तें दे तव गारि।
सुनत कुंवर कोलाहला निकसी घोष कुमारि ॥
भूषण वसन जो साजियो उर गज मोतिन हार।
झूमक चेत व गावही घोष राय दरबार ॥
बाजे बहुत बजावही डफ दुदुंभी कठताल।
बल मोहन मध्य नायका चहुंदिश नाचत ग्वाल ॥.....(गोविंद, व. ध., पृ. १६७)

(च) ऋतु-राज, ब्रज समाज, होरि रंगे रंगिया।
नागरीवर होरि रंगे, उनमत-चित श्याम संगे, नाचत कत भंगिया।
गाओत कत रस प्रसंग, बाओत कत वीण मोचंग, थैया थैया मृदंगिया ॥
चंचल गति अति सुरंग, निरखि भुले कत अनंग, संगीत रसतरंगिया ॥....
(उद्धवदास, की. प., पृ. ३५७)

१ (क) दोलत राधा माधव संगे। दोलायत सब सखिगण बहु रंगे ॥
डारत फागु दुहुं-जन-अंगे। हेरइते दुहुं-रूप मुरुछे अनंगे ॥
बाओत कत कत जंत्र सुतान। कत कत राग-माल करु गान ॥
चंदन कुंकुम भरि पिचकारि। दुहुं अंगे कोइ कोइ देओत डारि ॥
विगलित अरुण वसन दुहुं गाय।..... (ज्ञानदास, प. क. त., पद १४५२)

(४) झूलन—झूलन लीला सम्बन्धी पदों में राधा और कृष्ण का झूला झूलना वर्णित है। वे दोनों झूलते हैं और सखियां झुलाती हैं। प्रकृति की सुन्दर पृष्ठभूमि में यह लीला बड़े उल्लास से होती है। झूलन लीला के वर्णन के साथ साथ ही सुन्दर प्रकृति वर्णन भी पाया जाता है।[1]

(५) निद्रा अथवा रसालय—राधा और कृष्ण के विश्राम से संबंधित इस लीला

(ख) झूलत डोल नंदकुमार।
चहुं ओर झुलावत ब्रज सुंदरी गावत सरस धमार।
वाम भाग वृषभान-नंदिनी साजे सकल सिंगार।
छिरकत चोवा चंदन कुंकुमा करन कनक पिचकार।
उड़त गुलाल दुहुं दिश बाढ़्यो रंग अपार।।
आसकरण प्रभु मोहन झूलत ब्रज के प्राण अधार।। (आसकरण, व.ध., पृ. २४२)

१. (क) देख सखि झूलत राधा श्याम।
विविध जंत्र सुमेलि सुस्वर, तान मान सुठाम।।
आषाड़ गत पुन, माह शाङन, सुखद यमुना तीर।
चांदिनि रजनी, सुखमय सुखदय, मंद मलय समीर।
परिपूर्ण सरोवर प्रफुल्लित तरुवर गगने गरजे गभीर।
घोर घटा घन दामिनि दमकत विंदु बरिखत नीर।।
(तहि) कलपद्रुम-तल, छाह शीतल, रचित-रतन-हिंडोर।
(उद्धवदास, प. क. त., पद १५६१)

(ख) माह शाङन, बरिखे घन घन, दुहुं झुले कुंजक मांझ।
बनि फुल-माला, रचित दोला, दुंहु बिच नटवर राज।।
गगने गरजनि, दमके दामिनि, दुहुं गाओये बहुविध तान।।
रवाब वीणा, कच्छपीना दुहुं, करहिं कर धरुमान।।
(शिवराम, प. क. त., पद ११५६)

(ग) झुलत अति आनंद भरे।
इत श्यामा उत लाल लाड़िलो बैयांकंठ धरे।।
बोलत मोर कोकिला अलिकुल गरजत हें घन घोर।
गावत राग मल्हार भामिनी दामिनि की झकझोर।।
नेन्हीं नेन्हीं बूंद परत हें ऊपर मंद मंद समीर।।
फूलन फूल रह्यो कानन सब सुंदर यमुना तीर।।.....
(सूरदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. ३२५)

(घ) हरि संग झूलत है ब्रजनारी।
सावन मास फुही थोरी थोरी तेसीये भूमि हरियारी।।
नवघन नववन नव चातक पिक नवल कुरंगी सारी।।
नवल किशोर वाम अंग शोभित नव वृषभानु दुलारी।।......
(कुंभनदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. ३०९.)

का वर्णन करने वाले पद बहुत थोड़े ही हैं। राधा और कृष्ण सो रहे हैं, उस अवस्था की शोभा का वर्णन कवि करते हैं। पदों में शृंगारिकता की पुट है।[1]

(६) **धूर्त्तता अथवा छल से मिलन**—राधा और कृष्ण एक दूसरे से मिलने की सतत चेष्टा करते थे। व्रज के लोगों और अपने स्वजनों से छिपाकर एक दूसरे से मिलने के लिए उन्हें धूर्त्तता का सहारा लेना पड़ता था। इस छल से संबंधित पद गौड़ीय वैष्णव पदावली में 'स्वयं दौत्य' प्रकरण में पाए जाते हैं। सूरदास ने भी कुछ ऐसे प्रसंग उपस्थित किए हैं। वे प्रसंग राधा की माला खोना और यमुना-गमन है। 'स्वयं दौत्य' प्रकरण की राधा शिव पूजा के बहाने से वन की ओर जाती हैं। वहां चतुराई से राह भूलने का बहाना करके कृष्ण को संकेत-पूर्वक एकांत में जाने को कहती हैं। इसी प्रकार भ्रमर को भगाने के बहाने कृष्ण को संकेत कर देती हैं। कृष्ण जादूगर के रूप में राधा के आंगन में आते हैं। सूरदास की राधा माला खो जाने का बहाना करके उसे ढूंढने के मिस कृष्ण के पास जाती हैं। यमुना से आते समय कृष्ण को संकेत करके कुंज में बुलाती हैं।[2]

---

१. (क) देखि सखि गोरि शुतल श्याम-कोर।
नागल नील, रतन किये कांचन, कुवल चम्पक जोर॥
गोरि सुनागरि, अधरे अधर धरि, घुमायल विदगध चोर॥
(गोविंददास, प. क.त., पद १५१०)

(ख) तड़ित-जड़ित जलद भाति, दुहे सुखे शुति रहल माति,
जिनि भादर रस-बादर, परमादर शेजे॥
बरज-कुलज जलज-नयनि, घुमल विमल-कमल-वयनि, कुति नालिश भुज बालिश
आलिस नाहि तेजे ॥. . . . . (जगदानंद, प. क. त., पद ६५७)

(ग) दोउ मिल पोढ़े सजनी देख अकासी।
पटतर कहा दीजे गोपी जन नेनन कों सुखरासी॥
स्यामा स्याम संग यों राजत हैं मानों चन्द्रकला सी।
(परमानंद, की. सं., भाग ३, उत्तरार्द्ध, पृ. ८२)

(घ) पोढ़े श्याम जू सुख सेज।
संगे श्री वृषभानु तनया रंग रस को हेज॥
तरणी-तनया विलुलित कनक मालती को तेज।
शोभा की सीमा हैं दंपति गोविंददास गनेज॥
(गोविंददास, की. सं., भाग ३, उत्तरार्द्ध, पृ. ८३)

२. (क) देव-आराधन-छले चलु गोरी।
संगहि समवय नविन किशोरी॥
चंदन कुंकुम आर फुल-माल।
लेयल बहु उपहार रसाल॥
चलु वर-नागरि संगब माह।
सचकित नयने दीग दश चाह॥

६. प्रवास—'प्रवास' प्रकरण में जो पद प्राप्त हैं वे मुख्यतया राधा-गोपी-विरह संबंधी हैं। कृष्ण के प्रवास में जाने की कथा है और कृष्ण के चले जाने से वियोगिनी

ऐछन समये निविड़ बन माझ।
मीलल एकले विदगध राज ॥
हेरि सुवदनि अति हरखित भेलि ॥
कह कवि शेखर दुहुं जन केलि ॥ (कवि शेखर, प. क. त., पद ६२८)

(ख) ए हरि अतये देखायबि पंथ।
पूजब पशुपति गोरि एकंत ॥
सहजे वधू-जन गति-मति-हीन।
घर सजे बाहिर पंथ ना चीन ॥ (गोविंददास, प. क. त., पद ६४६)

(ग) एतहुं तियासे होत जब आकुल, की फल मंदिरे गुंज ॥
ताहि चलह जाहां कुसुम विथारल, मंजुल माधवि-कुंज ॥
एतहुं संकेत कयल जब कामिनि, कानु चलल सोइ ठाम ॥. . . . .
(गोविंददास, प. क. त., पद ६४६)

(घ) रसिक नागर, साजि बाजिकर, संगेत सुबल सखा।
ढोलक बाजाइया, दड़ि दड़ा लैआ, भानुपुरे दिला देखा ॥. . . .
(उद्धवदास, प. क. त., पद ६४५)

(ङ.) जननी अतिहीं भई रिसहाई।
बार-बार कहै कुंवरि राधिका, मोतिसरि कहां गंवाई ॥
बूझे तें तोहि ज्वाब न आवै, कहा रही अरगाई ॥. . . .
(सूरदास, सू. सा., १०।१९६९, पृ. ९२८)

(च) सुनि री मैया काल्हि हीं, मोतिसरी गंवाई।
सखिनि मिलै जमुना गई, धौं उनहि चुराई ॥
कीधौं जलही मैं गई यह सुधि नहि मेरें।
तब तें मैं पछिताति हीं कहति न डर तेरें ॥ . . . . .
(सूरदास, सू. सा., १०।१९७०, पृ. ९२८)

(छ) जैहै कहां मोतिसरि मोरी।
अब सुधि भई लई वाही नै, हंसति चली वृषभानु-किसोरी ॥
अबहीं मैं लीन्हें आवति हीं मेरें संग आवै जनि कोरी ॥
.. ..
मोकौं आजु अबेर लागि है, ढूंढ़ौंगी घर-घर ब्रज-खोरी ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।१९७७. पृ. ९३१)

(ज) सैन दै नागरी गई बन कौं।
तबहि कर-कौर दियौ डारि, नहि रहि सके,
ग्वाल जेंवत तजे मोह्यौ उनकौं ॥
चले अकुलाइ बन धाइ, ब्याइ गाइ देखिहौं जाइ,
मन हरष कीन्हौं ॥ (सूरदास, सू. सा. १०।१९८४, पृ. ९३३)

राधा और गोपियों को जो विरह-वेदना होती है, उस विरह का वर्णन गौड़ीय वैष्णव पद-कर्त्ता और हिंदी पदकर्त्ता दोनों ने ही किया है। गौड़ीय पदकर्त्ताओं ने वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसरण में विरह का समस्त अंगों सहित वर्णन किया है। विरहजनित उद्वेग, आशंका, व्याकुलता, ऋतु अनुकूल विरह, विरह जनित दश दशायें, इन सब का वर्णन किया गया है परंतु हिन्दी पदों में इन समस्त अंगों का वर्णन नहीं है। गोपियों और राधा की व्याकुलता और कृष्णविरहजनित वेदना का वर्णन तो है। कहने का तात्पर्य यह है कि भावनाओं में समानता होते हुए भी वर्णन के ढंग अथवा शैली में अवश्य अंतर है। गौड़ीय पदकर्त्ताओं का प्रवासजनित विरहवर्णन शास्त्रोक्त रूप में बंधा-बंधाया सांगोपांग वर्णन है। हिन्दी पदावली का विरह वर्णन अधिक स्वतंत्र है। उसमें राधा और गोपियों की विरहवेदना का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक मर्मस्पर्शी और स्वाभाविक सा है। सूरदास के विरह संबंधी पदों में अपेक्षाकृत अधिक सौन्दर्य है। गोविंददास कविराज की विरह-पदावली में भी अपेक्षाकृत अधिक सौन्दर्य है, वैसे वे भी रस शास्त्र के अनुकूल ही हैं। यहां कुछ पद दिए जा रहे हैं।[1]

---

१. (क) करि गए थोरे दिन की प्रीति।
कहं वह प्रीति कहां यह बिछुरनि, कहं मधुबन की रीति॥
अब की बेर मिलौ मनमोहन, बहुत भई बिपरीति।
कैसें प्रान रहत दरसन बिनु, मनहु गए जुग बीति॥
कृपा करहु गिरिधर हम ऊपर, प्रेम रह्यौ तन जीति।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, भई भुस पर की भीति॥
(सूरदास, सू. सा., १०।३१८४., पृ. १३४६)

(ख) निसिदिन बरषत नैन हमारे।
सदा रहत बरषा रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूं, उर बिच बहत पनारे॥
आंसू-सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे।
सूरदास प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहें बिसारे॥
(सूरदास, सू. सा., १०।३२३६, पृ. १३६१)

(स) हरि दरसन कौं तरसति अंखियां।
झांकति झखति झरोखा बैठी, कर मीड़ति ज्यौं मखियां॥
बिछुरीं बदन-सुधा-निधि-रस तैं, लगति नहीं पल पंखियां।....
(सूरदास, सू. सा., १०।३२४०, पृ. १३६२)

(घ) इहिं दुख तन तरफत मरि जैहैं।
कबहुं न सखी स्याम-सुन्दर-घन, मिलिहैं आइ अंक भरि लैहैं?
कबहुं न बेनु अधर धरि मोहन, यह मति लै लै नाम बुलैहैं?.....
(सूरदास, सू. सा., १०।३४०७, पृ. १४१०)

वैष्णव रस-शास्त्र में प्रवास के दो प्रकार बताए हैं, 'अदूर' और 'सुदूर'। कृष्ण का अदूर प्रवास कालीय-दमन, नंद-मोक्षण-कार्यानुरोध-गमन और रास में अंतर्धान हो जाने के समयों में होता है। उनकी इस प्रकार की अनुपस्थिति से समस्त ब्रजवासियों को, विशेषकर राधा को, अत्यंत क्लेश होता है। यह क्लेश वैष्णवों ने विरह के रूप में दिखाया है। अदूर प्रवास का विरह काल क्योंकि दीर्घ नहीं है, विरह भी उतना दीर्घ और तीव्र नहीं है। सुदूर प्रवास-जनित-विरह अत्यंत दीर्घकालिक होने के कारण बहुत दुःखदायक है। इस विरह में राधा, गोपियां, और यशोदा दुःख की तीव्रता से मृतप्राय हो जाते हैं। ब्रजवास लीला के इन पदों में करुणा अपेक्षाकृत अधिक है।

अदूर प्रवास—अदूर प्रवास लीला संबंधी गौड़ीय वैष्णव पदावली में इस प्रवास के ऊपर दिए समस्त अवसरों का वर्णन है, और इन सब समयों के अनुकूल राधा का विरह भी वर्णित है।[1] कालीय दमन और नंद-मोक्षण में यशोदा और अन्य ब्रजवासी भी विलाप

(ङ) पराण-पिय सखि हामारि पिया।
अबहुं ना आओल कुलिश-हिया॥
नखर खोयायलु दिवस लिखि लिखि।
नयन आंधायलु पिया-पथ देखि॥ (गोविंददास, प. क. त., पद १६७१.)

(च) पुन नाहि हेरब सो चांद-बयान।
दिने दिने क्षीण तनु ना रहे पराण॥
आर कत पिया-गुण, कहिब कांदिया।
जीवन संशय हैल पिया ना देखिया॥
उठिते बसिते आर नाहिक शकति।
(ज्ञानदास, प. क. त., पद १६४७.)

(छ) चिर दिवस भेल हरि, रहल मथुरापुरि,
अतये सखि बुझह अनुमाने।
मधु-नगर-जोषिता, सबहुं तारा पंडिता,
बांधल मन सुरत-रति-दाने॥
ग्राम्य गोप बालिका, सहजे पशुपालिका,
हाम किये श्याम-उपभोग्या। (शशि शेखर, की. प., पृ: ३१२.)

(ज) सखी री हरि आवहिं किहिं हेत।
वै राजा तुम ग्वारि बुलावत, यहै परेखौ लेत। (सूरदास, सू.सा., १०।३२७८, पृ. १३७३)

(झ) परेखौ कौन बोल कौ कीजै।
ना हरि जाति न पांति हमारी, कहा मानि दुख लीजै॥
(सूरदास, सू. सा., १०।३१९२. पृ. १३४८)

१. (क) सहचरि संगे राइ खिति लूठइ, खणहि खणहि मुरछाय।
कुंतल तोड़ि सघन शिर हानइ, को परबोधब ताय॥

करते और दुःखी होते हैं।[1] हिन्दी पदावली में इन अवसरों पर केवल यशोदा और अन्य ब्रजवासी ही व्याकुल होते हैं। राधा का उल्लेख नहीं है। केवल रास के समय अंतर्धान हो जाने पर राधा और सखियां दोनों व्याकुल हो जाती हैं।[2] अर्थात्, राधा का विरह रासांतर्धान में ही वर्णित है, कालीय दमन, गोचारण, नंद-मोक्षण आदि में नहीं।

हरि हरि कि भेल बजर निपात।
काहे लागि कालिन्दि-विष-जले पैठल, सो मझु जीवन-नाथ॥
(माधवदास, प. क. त., पद १५९०)

(ख) एकादशी करि, निशि अवशेषे, स्नाने गेला ब्रजपति।
जलेर माझारे, वरुणेर चरे, नंदेरे हरिल तथि॥
ए बोल शुनिया, नंदेरे नंदन, पितार उद्देश लागि।
जले झांप दिया, वरुण नियड़े, गेला मने दुख जागि॥
ताहा शुनि धनी, राइ सुवदनी, मरमे पाइया दुख।
हा नाथ बलिया, कांदे फुकरिया, ना देखिया चांद-मुख॥
(उद्धवदास, प. क. त., पद १५९५)

१. (क) कांदे ब्रजेश्वरी, उच्च स्वर करि, कोथा रे गोकुल-चंद।
भुलि कार बोले, झांप दिया जले, भुजगे हइला बंध॥
अपुत्रक हैया, मंदिर लइया, आछिलुं परम सुखे।
पुत्र हैया तुमि, जठरे जनमि, शेल दिया गेला बुके॥
(माधव, प. क. त. पद १५८९)

(ख) ताहार उपरे चढ़ि, घन मालशाट मारि,
झांप दिला कालीदह-जले।
देखिया राखालगण, कांदिया आकुल-मन,
पड़े सभे मुरछित हैया।
फुकरि श्रीदाम कांदे, केहो थिर नाहि बांधे,
क्षणेके चेतन सभे पाआ॥ (माधव, प. क. त., पद १५८७)

(ग) इहिं अंतर सब सखा जाइ ब्रज नंद सुनायौ।
हम संग खेलत स्याम जाइ जल मांझ धंसायौ॥
बूड़ि गयौ, उचक्यौ नहीं, ता बातहिं भई बेर।
कूदि पर्‌यौ चढ़ि कदम तैं खबरि न करौ सबेर।
त्राहि-त्राहि करि नंद, तुरत दौरे जमुना-तट,
जसुमति सुन यह बात, चली रोवति तोरति लट।
ब्रजवासी नर-नारि सब, गिरत परत चले धाइ।
(सूरदास, सू. सा, १०।५८९, पृ. ४६४)

२. (क) कहि धौं री बन बेलि कहूं तैं देखे हैं नंद-नंदन।
बूझहु धौं मालती कहूं तैं, पाए हैं तन-चंदन॥

सुदूर प्रवास—सुदूर प्रवास में कृष्ण मथुरा जाते हैं। सुदूर प्रवास जनित विरहवर्णन गौड़ीय वैष्णव पदावली में रस-शास्त्र के अनुकूल है। रूप गोस्वामी ने विरह की जो दश दशायें बताई हैं, उन सब पर पद रचे गए हैं। ये विरह दशायें निम्न हैं :—

१. चिंता दशा	पदकल्पतरु,	पद १८८६
२. जागरण दशा	,, ,,	पद १८९०
३. उद्वेग दशा	,, ,,	पद १८९३, १८९४, १८९५
४. तानव दशा	,, ,,	पद १९०१
५. मलिनांगता दशा	,, ,,	पद १९०४
६. प्रलाप दशा	,, ,,	पद १६५५, १६५६
७. व्याधि दशा	,, ,,	पद १९१०
८. उन्माद दशा	,, ,,	पद १९१९, १९२०, १९२१
९. मोह दशा	,, ,,	पद १९२८, १९२९
१०. मृत्यु दशा (दशमी दशा)	,, ,,	पद १९३६, १९३७

हिन्दी पदों में इन सब दशाओं का दिग्दर्शन नहीं है। कुछ दशाओं के समान-भाव प्रदर्शन करने वाले पद पाए जाते हैं। समान-भाव-प्रदर्शक कुछ पद यहां दिए जा रहे हैं।

चिन्ता दशा

बंगला पद	हिन्दी पद
कांचा कांचन-कांति कमल-मुखि	**कर कपोल भुज धरि जंघा पर,**
कुसुमित कानन जोइ।	**लेखति माइ नखनि की रेखनि ॥**
कुंज-कुटीरे कलावति कातर।	**सोच-विचार करति वह कामिनि,**
कानु कानु करि रोइ।	**धरति जु ध्यान मदन-मुख भेषनि ॥**

कहि धौं कुंद, कदंब बकुल, बट, चंपक, ताल तमाल।
कहि धौं कमल कहां कमलापति, सुंदर नैन बिसाल ॥
कहि धौं री कुमुदिनि, कदली कछु, कहि बदरी कर बीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहं घनस्याम सरीर ॥

(सूरदास, सू. सा., १०।१०९१, पृ. ६३७)

(ख) पियाल चूतवर पनस चंपक अशोक बकुल बक नीप।
एके एके पूछियो तर ना पइया आओल तुलसिसमीप ॥
जाति यूथि नव मल्लिक मालति, पूछल सजल नयाने।

(उद्धवदास, प. क. त., १२६०)

(ग) बाएं कर द्रुम टेके ठाढ़ी।
बिछुरे मदन गोपाल रसिक मोहिं बिरह-व्यथा तनु बाढ़ी।
लोचन सजल, वचन नहिं आवै स्वास लेति अति गाढ़ी ॥
नंद लाल हम सौं ऐसी करी, जल तें मीन धरि काढ़ी ॥

(सूरदास, सू. सा., १०।११०३, पृ. ६४१)

कि कहब कितब कतये कुल-कामिनि
कठिन कुसुम-शर सहइ।
करहिं कपोल कंठ करि कुंचित
कालिन्दि-कूल में रहइ ॥...
केवल कांत-कथा कहि कांदये
काम-कलंकिनि गोरि।
किंचित काल कलप करि मानये
गोविंद दास पहुं छोड़ि ॥
(गोविंददास, प. क. त., पद १८८६)

नैन नीर भरि-भरि जु लेति ह,
धिक-धिक जे दिन जात अलेखनि
कमल-नयन मधुपुरी सिधारे,
जाने गुन न सहसमुख सेषनि ॥
अवधि झुठाई कान्ह सुनु री सखि,
क्यों जीवैं निसि दामिनि देखनि ॥
सूरदास-प्रभु चेटक नट करि गए,
नाना विधि नाचंति नट-पेषनि ॥
(सूरदास. सू. सा., १०।३४०५,
पृ. १४१०)

जागरण दशा

बंगला पद

के मोरे मिलाञा दिवे सो चांद-बयान।
आंखि तिरपित हवे जुड़ावे पराण ॥
काल-राति ना पोहाय कत जागिव बसिया।
गण शुनि प्राण कांदे ना जाय पातिया ॥
उठि वसि करि कत पोहाइव राति।
ना जाय कठिन प्राण छार नारी जाति ॥
धन जन जौवन दोसर बंधुजन।
पिया बिनु शून्य भेल ए तिन भुवन ॥ (बलरामदास, प. क. त., पद १६४५)

हिन्दी पद

हम कौं जागत रैंनि बिहानी।
कमल नैन जग जीवन की सखि, गावत अकथ कहानी।
बिरह अथाह होत निसि हमकौं, बिनु हरि समुद समानी।
क्यों करि पावहिं बिरहिनि पारहिं, बिनु केवट अगवानी ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।३२७१, पृ.१३१७)

उद्वेग दशा

बंगला पद

कुंज कुंवर भेल कोकिल शोकिल, बृन्दावन बन-दाव।
चन्द मंद भेल चंदन कंदन, मारुत मारत धाव ॥
कतये आराधव माधव।
तोहे बिनु बाधामयि भेल राधा ॥
कंकण झंकन किंकिणि शंकिनि कुंडल कुंडलि-भान।
जावक पावक काजर जागर मृगमद मद-करि मान ॥ (गोविंददास, प.क. त., पद १८९३)

हिन्दी पद

अब वै बातैं उलटि गईं।

जिन बातनि लागत सुख आली, तेऊ दुसह भईं।
रजनी स्याम स्याम सुन्दर संग, अरु पावस की गरजनि।
सुख समह की अवधि माधुरी, पिय रस-बस की तरजनि॥
मोर पुकार गुहार कोकिला, अलि गुंजार सुहाई।
अब लागति पुकार दादुर सम, बिनही कुंवर कन्हाई॥
चंदन चंद समीर अगिन सम, तनहिं देत दव लाईं।
कालिंदी अरु कमल कुसुम सब दरसन ही दुखदाई॥
सरद बसंत सिसिर अरु ग्रीषम, हिम-रितु की अधिकाई।
पावस जरैं सूर के प्रभु बिनु, तरफत रैन बिहाई॥ (सूरदास, सू. सा., १०।३१९८, पृ. १३५०)

तानव दशा

बंगला पद

पुन नाहि हेरब सो चांद-बयान।
दिने दिने क्षीण तनु ना रहे पराण॥
आर कत पिया-गुण कहिब कांदिया।
जीवन संशय हइल पिया ना देखिया॥
उठिते बसिते आर नाहिक शकति।
जागिया जागिया कत पोहाइब राति॥
सो सुख-संपद मोर कोथाकारे गेल।
पराण-पुतली मोर के हरिया निल॥
आर ना जाइब सोइ जमुनार जले।
आर ना हेरब श्याम कदम्बेर तले॥
निलज पराण मोर रहे कि लागिया।
ज्ञानदास कहे मोर फाटि जाय हिया॥ (ज्ञानदास, प. क. त., पद १६४७)

हिन्दी पद

बहुरि न कबहूं सखी मिलैं हरि।
कमल-नैन के दरसन कारन, अपनी सो जतन रही बहुतै करि।
जेइ जेइ पथिक जात मधुबन तन, तिन सौं बिथा कहति पाइन परि।
काहुं न प्रगट करी जदुपति सौं, दुसह दुरासा गई अवधि टरि॥
धीर न धरत प्रेम ब्याकुल चित, लेत उसांस नीर लोचन भरि।
सूरदास तन थकित भई अब, इहिं बियोग-सागर न सकति तरि॥
(सूरदास, सू. सा., १०। ३२९५, पृ. १३७८)

मलिन दशा

बंगला पद

कि कहब माधव राइक खेद।
कहइते हृदय होयत मझु भेद॥

अति दुरबल तनु धरइ ना पार ।
कोकिल-शबदे बहये जल-धार ।।
इहि मधु-समय पुरवे रस-खेल ।
सोङरि सोङरि धनि झामरि भेल ।।
बिरह-आनले दहि विवरण अंग ।
विषम वसंत ताहे मदन तरंग ।।
रोइ रोइ कि कहये कछु नाहि जान ।
जनु परलाप कवि शेखर भाण ।।

(शेखर, प. क. त., पद १७१९)

हिन्दी पद

सखी री काहे रहत मलीन ।
तन सिंगार कछू देखत नहिं, बुधि बल आनँद हीन ।।
मुख तमोर, नैंन नहिं अंजन, तिलक ललाट न दीन ।
कुचिल वस्त्र, अलकैं अति रूखी, बिखियत है तन छीन ।।
प्रेम-तृशा तीनौं जन जानैं, बिरही, चातक, मीन ।
सूरदास बीतति जु हृदय मैं, जिन जिय परबस कीन ।।

(सूरदास, सू. सा. १०।३२६७, पृ. १३७०)

प्रलाप दशा

बंगला पद

पिया परदेश वेश गेल दूर ।
हास रभस सबहुं भेल चूर ।
मृगमद चंदन लेपन बीख ।
मंद पवन जनु आनल-शीख ।।
ए सखि ए सखि दुरदिन लागि ।
हात-रतन खसे कोन अभागि ।।
हिमकर उगइते दिनकर-तेज
नलिनि बिछायत कंटक-शेज ।।
सब विपरित एहु समय वसंत ।
मनमथ पिशुन कयल जिउ अंत ।।
रतन-हार भेल गुरुतर भार ।
दिने दिने देह नेह अनुसार ।।
विहि से कयल मोहे हाहा सार ।
ज्ञानदास कह अति अविचार ।।
(ज्ञानदास, प. क. त., पद १८५७)

हिन्दी पद

अब कछु औरहि चाल चली ।
मदन गुपाल बिना या ब्रज की, सबै बात बदली ।
गह कंदरा समान सेज भई, सिंहहु चाहि बली ।।
सीतल चंद सुतौ सखि कहियत, तातैं अधिक जली ।
मगमद मलय कपूर कुंकुमा, सींचति आनि अली ।
एक न फुरत बिरह जर तैं कछु, लागत नांहि भली ।
अंमृत बेलि सूर के प्रभु बिनु, अब विष फलनि फली ।
हरि बिधु बिमुख नाहिनै बिगसति, मनसा कुमद कली ।।
(सूरदास, सू. सा., १०।३१९७, पृ. १३४९)

व्याधि दशा

बंगला पद

जोयत पंथ नयने झरु नीर।
जैछन भीत - पुतलि रहु थीर॥
जामिनि-जाम-जाम जुग मनइ।
जागरे जागि भरममय भणइ॥
जानिलुं जदुपति जलधर - श्याम।
जिवइते जुवति जपइ तुया नाम॥
जब केहु लेपये मलयज-पंक।
ज्वलतहिं शतगुण मदन - आंतक॥
जतने शुतायलुं जलरुह पात।
जरि जरि ततहिं भसम मइ जात॥
(गोविंददास, प. क. त., पद १९१२)

हिन्दी पद

फिरि ब्रज बसौ नंदकुमार।
हरि तिहारे बिरह राधा, भई तन जरि छार॥
बिन अभूषन मैं जु देखी, परी है बिकरार।
एकई रट रटत भामिनि, पीव पीव पुकार॥
सजल लोचन चुअत उनके, बहति जमना धार।
बिरह अगिनि प्रचंड उनकैं, जरे हाथ लुहार॥
दूसरी गति और नाहीं, रटति बारंबार।
सूर प्रभु कौ नाम उनकैं, लकुट अंध अधार॥
(सूरदास, सू. सा., १०।४१०८, पृ. १६२९)

उन्माद दशा

बंगला पद

नीरस - सरसिज झामर - बयना।
तुया गुण गणइते चमकित-नयना॥
खेणे मुख गोइ रोइ खेणे हसइ।
हिय-अभिलाषे चलत महि खसइ॥
ऐ हरि पेखलुं सो गज - गमनि।
जिवइते संशय कुल-वर-रमणि॥
अनुखण मनसिज मन माहा हनइ।
हिमकर किरणहिं थिर नाहि मनइ॥
खेणे उठे खेणे बैसे शुति रहु धरणी॥
विष-शराघाते जैछे कातर हरिणी॥
कत ये बिघायत कमल-दल-शेज।
छटफटि शयने जीउ नाहि तेज॥
गोविन्ददास कह श्यामरचन्द।
तुरिते मिलइ धनि टूटउ द्वन्द॥
(गोविंददास, प. क. त., पद १९२१)

हिन्दी पद

सुनहु स्याम वै सब ब्रज-बनिता, बिरह तुम्हारें भईं बावरी।
नाहीं बात और कहि आवत, छांड़ि जहां लगि कथा रावरी॥
कबहुं कहति हरि माखन खायौ, कौन बसै या कठिन गांव री।
कबहुं कहति हरि ऊखल बांधे, घर-घर ते लै चलौ दांवरी॥

कबहुं कहति ब्रजनाथ बन गए, जोवत-मग भई दृष्टि झांवरी ॥
कबहुं कहति वा मुरली महियां, लै-लै बोलत हमरौ नाव री ॥
कबहुं कहति ब्रज नाथ साथ तें, चंद उग्यौ है इहै ठांव री।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब वह मूरति भई सांवरी ॥

(सूरदास, सू. सा., १०।४१०३, पृ. १६२७)

सुदूर प्रवासजनित विरह का वर्णन ऋतुओं के अनुकूल भी किया गया है। गौड़ीय वैष्णव पदकर्त्ताओं ने षट्-ऋतूचित विरह वर्णन किया है और बारह मासे के रूप में द्वादश मासिक विरह वर्णन भी किया है।[1] हिन्दी पदावली में वर्षाकालोचित विरह का ही वर्णन

---

१. ग्रीष्म—एके विरहानल दहइ कलेवर, ताहे पुन तपनक ताप ॥
घामि गलये तनु नुनिक पुतलि जनु, हेरि सखि करु परलाप ॥ इत्यादि
(गोविंददास, प. क. त., पद १७२४)

वसंत— शिशिरक शीत, समापलि सुंदरि, शोहन सुरत-संदेशे।
स्मर-शर-सम शर, शशि-कर-शीकर, सहइ सुतनु-तनु शेषे ॥
शुन शुन श्याम सकल गुणवंत ।.......
(गोविंददास, प. क. त., पद १७१७)

शरद— आओल शरद निशाकर निरमल परिमल कमल विकाश।
हेरि हेरि वरज रमणि गण मुरछइ सोड रिया रास विलास ॥
(ज्ञानदास, प. क. त., पद १७४४)

शिशिर— हिम ऋतु हिमकर हिममय वात।
ताहे विरह-जरे थर थर गात ॥
ए हरि कत सहुं अबला नारि।
विरहक वेदन सहइ ना पारि ॥
दीघल रजनि तुरिते ना पोहाय।
छट फट करि करि निशि जागिया गोङाय ॥
(उद्धवदास, प. क. त., पद १७४७)

वर्षा— उयल नव नव मेह। दुरे रहु श्यामर देह।
तहिं घन बिजुरि उजोर। हरि रहु नागरि-कोर ॥
चातक पिउ पिउ बोल। शुनइते जिउ उतरोल ॥
दादुरि उनमत भाष। विरहिणि जिवन नैराश ॥
दारुण पाउख काल। जीवन भेल जनजाल ॥
(गोविंददास, प. क. त., पद १७३१)

बारहमासा—१. गावइ सब मधुमास। तनु दह विरह हुताश ॥
२. मोहइ माधवि-मास। चौदिशे कुसुम विकास ॥
३. वंचित रह निशि बास। भैगेल जेठहिं मास ॥
४. अंतरे आओये आषाढ़। विरहिणि वेदन बाढ़ ॥

है, अन्य ऋतुओं का कदाचित् ही कहीं हो[1]। ये पद भी गौड़ीय पदों से अपेक्षाकृत अधिक हैं और वर्णन भी अधिक सुंदर है।

सुदूर प्रवाससजनित यशोदा विरह और कौशल्याविरह—कृष्ण के मथुरा चले जाने पर यशोदा भी अत्यंत व्याकुल होती हैं। वे कृष्ण का स्मरण करके अतीव दुःखी होती हैं[2]

---

५. पापी शाङन मास। विरहिणि जीवन नैराश ॥
६. राति दिवसे रहु धन्द। भादरे बादर मन्द ॥
७. निन्दु आ न परभास। भैगेल आशिन मास ॥
८. पातिय शमनक लइ। आओल कातिक धाइ ॥
९. कि रिति करब अब हामे। आओल आघण नामे ॥
१०. कोइ करये जनि रोखै। आओल दारुण पौखे ॥
११. खोइ कलावति-माने। आओल माघ निशाने ॥
१२. उइ देखइ अनुरागे। आओल फागुन आगे ॥
(श्यामदास, प. क. त., पद १८०२ से १८१४ तक)

१. (क) बरु ए बदरौ बरसन आए।
अपनी अवधि जानि नंदनंदन, गरजि गगन घन छाए ॥
कहियत हैं सुरलोक बसत सखि, सेवक सदा पराए ॥
चातक पिक की पीर जानि कै, तेउ तहां तें धाए ॥
द्रुम किए हरित हरषि बेली मिलीं, दादुर मृतक जिवाए।
(सूरदास, सू. सा., १०।३३०८, पृ. १३८२)

(ख) देखौ माई स्याम सुरति अब आवै।
दादुर मोर कोकिला बोलैं, पावस अगम जनावै ॥
देखि घटा घन चाप दामिनी, मदन सिंगार बनावै।
(सूरदास, सू. सा., १०।३३१२, पृ. १३८३)

२. (क) कहां रह्यौ मेरौ मन-मोहन।
वह मूरति जिय तें नहिं बिसरति, अंग अंग सब सोहन ॥
कान्ह बिना गौवें सब व्याकुल, को ल्यावै भरि दोहन।
माखन खात खवावत ग्वालनि, सखा लिए सब गोहन ॥
जब वै लीला सुरति करति हौं, चित चाहत उठि जोहन।
सूरदास - प्रभु के बिछुरें तें, मरियत है अति छोहन ॥
(सूरदास, सू. सा., १०। ३१३७, पृ. १३३२)

(ख) गोकुल नगरे, भ्रमये जनु बाउरि, उदसल कुंतल-भार।
कांहा मझु प्राण-तनय व्रज-नंदन, कहइते बहे जल-धार ॥
माधव सो जननी नंदराणी।
तुया विरहानले, उमति पागल जनु, काहारे कि पुछये वाणी ॥
अब काहे वेणु-शबद नाहि शुनिये, कोन कानन माहा गेल ॥
(पुरुषोत्तमदास, प. क. त., पद १७५६)

और उन्हें वापस बुलाना चाहती हैं। रामवनगमन पर कौशल्या की व्याकुलता और दुःख का वर्णन भी मिलता है।[१]

कृष्ण का द्वादश मासिक विरह——सुदूर प्रवास में स्थित कृष्ण को भी विरह सताता है। उनके इस विरह का वर्णन बारह मासे के रूप में 'पदकल्पतरु' में संगृहीत हैं।[२] हिन्दी

---

१. हाथ मींजिबो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्यां कहा जात बह्यो॥
पति सुरपुर, सिय राम लखन बन, मुनिव्रत भरत गह्यो॥
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो॥

(तुलसीदास, गी. व., अ. ८४, पृ. ३६५)

२. आघण मास नाह-हिय दाहइ, शुनइते हिम-ऋतु नाम।
अंगन गहन दहन भेल मंदिर, सुन्दरि तुहुं भेलि वाम॥
पौष तुषार तुषानले डारल जीवन नायरि नाह -

... ...

माघहि दिन निशि शिशिरक शीकर-निकरहुं अवनि आगोर।
उलटि पालटि अनुखण छट-फटि तनु दहे सहचरि कोर॥

.. ..

फागुने मधुपुर नागरि नागर विलसइ फागुक रंगे।
विरहक आगुनि जरि जरि गुणमणि, झामर श्यामर अंगे॥

... ...

सो मधुमास विलासत जने जने आओल काल वसंत।
एत दिन कतहिं जतने जिउ राखल अब कि जियब तुया कांत॥

... ...

माधवि-मासे आशे जिउ ना रह, अब कि सहब दुख आर।

... ...

जैठहि पैठल हिये बड़वानल किये दुरविहि भेल बंका॥

... ...

कोन आषाढ़े शेल हिये गाड़ल, बाढ़ल, गाढ़ फलेश।

.. ..

ए दुख-सायर-निमगन नायर तहिं हत-दादुरि-राव।
शाङण गहन दहन दह जीवन किये जानि हरि-वध पाव॥

.. .. ..

उद भादर दिन निरखिते तनु खिण दारुण दुरदिन मान
विरह-हिलोलहि दर दर अन्तर दोलत चपल पराण॥

में कृष्ण के विरह का इस प्रकार वर्णन नहीं है। वे उद्धव के सम्मुख अपने ब्रजवास का स्मरण तो करते हैं।[1] इसी प्रकार ब्रजवास की याद करते हुए कृष्ण के सखी के सामने उद्‌गार सम्बन्धी दो तीन पद 'पदकल्पतरु' में प्राप्त हैं।[2]

समृद्धिमान संभोग—सुदूर प्रवास के बाद जो मिलन होता है, वह होता तो अल्प-कालिक ही है परंतु इसमें जो आनंद होता है वह विघ्न-बाधा रहित होने के कारण सर्व-श्रेष्ठ होता है। राधा-कृष्ण का यह मिलन दो रूपों में वर्णित है। एक तो रसोद्‌गार[3] के रूप में

आशिन शारद हंस-शबद शुनि पिया-जिउ अति उतरोल।
जगजन-लोचन तनु-मन-मोहन आओल कातिक मास।
अवहु अनंग-भुजंग गरासल अब नाहि जिवनक आश॥
(बलरामदास, प. क. त., पद १८३५ से १८४६ तक)

१. ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस-सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजनि की छांहीं।
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं॥
(सूरदास, सू. सा., १०।४१५७, पृ. १६४४)

२. आरे सखि कबे हाम सो ब्रजे जायब।
कबे पिता नंद, यशोदा मायेर स्थाने, क्षीर सर माखन खायब॥
कबे प्रिय धवली, शाङली सुरभि लेइ, सखा सजे दोहि दोहायब॥
(कवि रंजन, प. क. त., पद १७६०)

३. (क) रजनिक आनंद कि कहब तोय।
चिरदिने माधव मीलल मोय॥
हियाय हइते मोरे ना करे बाहिर।
हेरइते वदन नयने बहे नीर॥
दारिद हेम जनु तिलेक ना छोड़।
एछने हाम रहलुं पिया-कोर॥ (अनंत, प. क. त., पद २०२०)

(ख) नहिं बिसरति वह रति ब्रजनाथ।
हौं जु रही हठि रूठि मौन धरि, सुख ही मैं खेलत इक साथ॥
पचिहारे मैं तऊ न मान्यौ, आपुन चरन छुए हंसि हाथ।
तब रिस धरि सोई उत मुख करि, झुकि ढांप्यौ उपरैना माथ॥
रह्यौ न परै प्रेम आतुर अति, जानी रजनी जात अकाथ।
सूरस्याम हौं ठगी महानिसि, कहति सुनाइ प्रीति की गाथ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।३२०३, पृ. १३५१)

और दूसरा स्वप्न में मिलन[1] और कुरुक्षेत्र में मिलन। कुरुक्षेत्र में मिलन[2] सम्बन्धी पद गौड़ीय पदावली में नहीं हैं। मथुरा प्रवास के बाद कृष्ण के राधा से मिलन-संबंधी कुछ पद गौड़ीय पदावली में हैं, हिन्दी में नहीं ज्ञात होते।[3]

६. **प्रेम-वैचित्य**—विप्रलंभ श्रृंगार की यह स्थिति प्रेमाधिक्य के कारण होती है। स्नेह जब सम्पूर्ण मन और प्राण को ढंक लेता है, तब प्रेमिका को इतना भावावेश हो जाता है कि कुछ सूझ नहीं पड़ता। अनन्य प्रेमिका राधा और गोपियां प्रेमावेश में उन्मत्त सी हो उठती हैं और उन्हें कृष्ण के मधुर रूप में प्रबल आकर्षण जान पड़ता है। वे उनके रूप दर्शन की सर्वदा इच्छुक बनी रहती हैं और उस रूप के प्रति प्रबल अनुराग उनके मन में जागृत हो जाता है। कृष्ण के मुख, वर्ण, श्रृंगार सब उन्हें आकर्षित करते हैं। इस प्रकार के अनुराग को वैष्णव रस-शास्त्र में रूपानुराग कहा गया है। प्रेमावेश जब और बढ़ जाता है तब चित्त की अन्यमनस्कता के कारण राधा और गोपियां कभी तो अपने को, कभी मुरली को और कभी

---

१. (क) स्वपने देखिलुं सोइ मोर प्राणनाथ। समुखे दाड़ाआ आछे जोड़ करि हाथ॥
पुन ना देखिया प्राण धरिते ना पारि। कि करिब कोथा जाब कि उपाय करि॥
पाइया पराण-नाथ पुन हाराइलुं॥ आपन करम-दोषे आपनि मरिलुं॥.....
(ज्ञानदास, प. क. त., पद १७१०)

(ख) सुपनैं हरि आए हौं किलकी।
नींद जु सौति भई रिपु हमकौं, सहि न सकी रति तिलकी।
जौ जागौं तौ कोऊ नाहीं, रोके रहति न हिलकी।
तन फिरि जरनि भई नख सिख तैं, दिया बाति जनु मिलकी॥
पहिली दसा पलटि लीन्ही है त्वचा तचकि तनु पिलकी।
अब कैसें सहि जाति हमारी, भई सूर गति सिलकी॥
(सूरदास, सू. सा., १०।३२६१, पृ. १३६८)

२. राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई॥
माधव राधा के रंग रांचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई॥
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहिं अंतर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई-नई॥
(सूरदास, सू. सा., १०।४२९२, पृ. १७०७)

३. देखि सखि राधा माधव प्रेम।
दुलह रतन जनु, दरशन मानइ, परशन गांठिक हेम॥
आनंद-नीरे, नयन जब झांपये, तबहि पसारिते बाह।
कांपये घन घन कंठ करब पुन सूरत-जलधि अवगाह॥
(गोविंददास, प. क. त., पद १९८८)

कभी कृष्ण को दोष देने लगती हैं। चित्त की यह दशा वैष्णव रस-शास्त्र में आक्षेपानुराग कही गई है। वियोगिनी राधा और गोपियां पिछली सुख-भरी लीलाओं का स्मरण करती हैं। यह स्मरण रस-शास्त्र में रसोद्‌गार कहलाता है। रूपानुराग, आक्षेपानुराग, और रसोद्‌गार इन सबसे संबंधित पद दोनों पदावली-साहित्यों में मिलते हैं। हिन्दी पदावली में प्राप्त पद इस प्रकार के प्रकरणों में विभाजित तो नहीं हैं, परंतु गौड़ीय पदावली में इन प्रकरणों में प्राप्त पदों के समान भाव-प्रदर्शक पद हिन्दी में भी पाए जाते हैं। कुछ पद यहां दि जा रहे हैं।

प्रेम वैचित्य

बंगला पद

रसवति बैठि रसिकबर पाश ।
रोइ कहइ बनि विरह-हुताश ॥
आर कि मिलब मोहे रसमय श्याम ।
विरह-जलधि कत पउरब हाम ॥
निकटहि नाह ना हेरइ राइ ।
सहचरि कत परबोधइ ताइ ॥
कानु चमकि तब राइ करु कोर ॥
गोविंददास हेरि भेल भोर ॥ (गोविंददास, प. क. त., पद ७६७)

हिन्दी पद

कहा कहति तू मोहिं री माई ।
नंद-नंदन मन हरि लियौ मेरो, तब तैं मोकौं कछु न सुहाई ॥
अबलौं नहिं जानति मैं, को ही, कब तैं तू मेरैं ढिग आई ।
कहां गेह, कहं मातु पिता, हैं कहां सजन, गुरुजन कहं भाई ॥
कैसी लाजि, कानि है कैसी, कहा कहति ह्वै ह्वै रिसहाई ?
अब तौ सूर भजी नंद-लालहिं, की लघुता की होइ बड़ाई ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।१६५१, पृ. ८३१)

रूपानुराग

बंगला पद

मरि मरि ना लो श्याम-रूपेर बालाइ लैया ।
कोन विधि निरमिल कत सुधा दिया ॥
शरद-विधुवर, फुल्ल पुष्कर, सुंदरानन मंडले ।
रत्न मणिमय, रवि समोदित, गण्डे नृत्यति कुंडले ॥
चारु-चन्द्रिम, चूड़ा चिक्कण, चंचरीगण आवृते ।
चमकित हिया मोर ओ रूप देखिते ॥
सजल जलधर, तिमिर पुंजर, इन्द्रनील मनोरमे ।
बंधुराधर, रंग सिंदुर, निन्दि बिम्बुक विभ्रमे ॥

लोचनांचल, विमल चंचल, विषम-वाण-सहोदरे ।
श्याम-रूप निरखिते हृदय विदरे ।।
प्रबल भुजवर, निन्दि करिकर, कंकणांगद शोभने ।
नखर तीखन रुचि विलक्षण, गोपि-चित्त-प्रलोभने ।। (मथुरादास, प. क. त., पद ७८९)

हिन्दी पद

मैं बलि जाउँ स्याम मुख-छबि पर ।
बलि बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरे, बलि भृकुटी ललाट पर ।।
बलि बलि जाउँ चारु अवलोकनि, बलि बलि कुंडल रबि की ।
बलि बलि जाउँ नासिका सुललित, बलिहारी वा छबि की ।।
बलि बलि जाउँ अरुन अधरनि की, बिद्रु-मबिंब लजावन ।
मैं बलि जाउँ दसन चमकनि की, वारौं तड़ितनि सावन ।।
मैं बलि जाउँ ललित ठोड़ी पर, बलि मोतिनि की माल ।
सूर निरखि तन-मन बलिहारौं, बलि बलि जसुमति लाल ।।

(सूरदास, सू. सा., १०।६६४, पृ. ४८४)

आक्षेपानुराग

बंगला पद

शुन तोरे कि बलिब वांशी । सतीकुल सकलि विनाशि ।।
गोविंद-अधर-सुधा रस । पिया पिया मातालि साहस ।।
जगत मोहसि मदु स्वरे । रमसि शबदे जारे तारे ।।
अथवा कि तुमि अति दोषी । वांशिनी-वांशेर जाते वांशी ।।
दारुते गड़ल तुया देह । केवल दारुमयी सेह ।।
ए यदुनंदनदास भणे । कि करुणा सुकठिन जने ।।

(यदुनंदन, प. क. त., पद ८२२)

हिन्दी पद

बिधना मुरली सौति बनाई ।
कुटिल बांस की, बंस-बिनासिनि आस निरास कराई ।।
जौ यह ठाट ठाटिबोहि राख्यौ, कुल की होती कोऊ ।
तौ इतनौ दुख हमहिं न होतौ, औगुन-आगर दोऊ ।।
ये निरदई, निठुर वह बन की, घर अब भयौ प्रकास ।
सूरदास ब्रजनाथ हमारे, जे, से भए उदास ।।

(सूरदास, सू.सा. १०।१२८६, पृ. ७१२)

नायिका

जैसा पहले लिखा जा चुका है, नायिकाओं के आठ भेद किए गए हैं। परन्तु पदावली-

साहित्य में इन सब भेदों के अनुरूप नायिकाओं का चित्रण नहीं किया गया है। गौड़ीय वैष्णव पदावली में अभिसारिका, वासकसज्जा, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, खंडिता और कलहांतरिता नायिकाओं की दशा वर्णन करने वाले पद ही मुख्य रूप से पाए जाते हैं। हिन्दी का पदावली साहित्य इस प्रकार के सब प्रकरणों में बांट कर इसका वर्णन नहीं करता। केवल खंडिता नायिका से संबंधित पद तो खंडिता संज्ञा देकर सूर सागर में दिए गए हैं[1] और 'खंडिता' प्रकरण में कीर्त्तन-संग्रह में संगृहीत भी हैं।[2] अन्य कुछ नायिकाओं का वर्णन करने वाले कुछ पद सूर ने भी बनाए हैं। दोनों साहित्यों में प्राप्त सम-भाव सूचक कुछ पद यहां दिए जा रहे हैं।

वासकसज्जा

बंगला पद

अपरूप राइक चरीत।
निभृत निकुंज, माझे धनि साजये, पुन पुन उठये चकीत॥
किशलय-शेज, बिछायइ पुन पुन, जारत रतन-प्रदीप।
ताम्बुल कपुर, खपुरे पुन राखये, वासित वारि समीप॥
मलयज चंदन, मृगमद कुंकम, लेह पुन तेजत ताइ।
सचकित-नयने, नेहारइ दश दिश, कातरे सखि-मुख चाइ॥
(ज्ञानदास, प. क. त., पद २८१)

हिन्दी पद

सांझहिं तैं हरि पंथ निहारै।
ललिता रुचि करि धाम आपनैं, सुमन सुगंधनि सेज संवारै॥
कबहुंक होति बारनैं ठाढ़ी, कबहुंक गनति गगन के तारे।
कबहुंक आइ गली मग जोवति, अजहुं न आए स्याम पियारे॥
वै बहुनायक अनत लुभाने, और बाम कैं धाम सिधारे।
सूरस्याम बिनु बिलपति बाला, तमचुर जहं तहं सब्द उचारे॥
(सूरदास, सू. सा., १०।२४७९, पृ. १०८१)

उत्कंठिता

बंगला पद

सजनि की फल पाप पराण।
जामिनि आध-अधिक बहि जाओत
अबहुं ना मीलल कान॥
जतये मनोरथ, सब भेल अनरथ,
कानु-पिरिति अभिलाषे।

---

१. खंडिता बचन हित यह उपाई।
कबहुं कहुं जात, कहुं नहिं कन्हाई॥ (सू. सा. १०।२४९५, पृ. १०८५)

२. की. सं. भाग १, पृ. ३५

ना जानिये कोन, कलावति बांधल
श्याङ्-भुजंगिनि-पाशे ॥
दारुण फुलशर, कुंजे बिथारल
मंदिरे गुरुजन-गारि ।

(गोविंददास, प. क. त., पद २४६)

हिन्दी पद

नंद सुवन बहुनायकी, अनतहिं रहे जाई ।
वह अभिलाष करति रहीं, ताकों बिसराई ॥
बासर ऐसों ही गयौ, निसि जाम तुलानी ।
नारि परी अति सोच में बिरहा अकुलानी ॥
आवन कहि गए सांझ हीं, अजहुं नहिं आए ।
कीधों कतहूं रमि रहे, फंग परे पराए ॥
वेई हैं बहुनायकी, लायक गुन भारे ।
सूरस्याम कुमुदा-भवन, सुधि करि पगु धारे ॥

(सूरदास, सू. सा., १०।२७०९, पृ. ११५०)

विप्रलब्धा

बंगला पद

पंथ नेहारि, वारि झरु लोचने
अधर निरस घन श्वास ।
करतले वदन, सघने अवलंबइ
गुणि गुणि जिवन नैराश ॥
माधव काहे आशोयासलि रामा ।
सगरिहुं जामिनि, जागि पोहायल
कामिनि संकेत ठामा ।
हरि हरि बोलि, धरणि धरि उठइ
बोलत गदगद भाख ।

(गोविंददास, प. क. त., पद ३६६)

हिन्दी पद

ललिता तमचुर-टेर सुन्यौ ।
वै बहुनायक अनत लुभाने, नहिं आए जिय कहा गुन्यौ ।
बिन् कारन दै आस गए पिया, बार-बार तिय सीस धुन्यौ ॥
सेज संवारि पंथ निसि जोवति, अस्त आनि भयौ चंद पुन्यौ ।
तब बैठी मन मारि आपनौ, कछु रिस कछु मन सोच पर्यौ
सूरस्याम यातें नहिं आए, मातु-पिता को त्रास धर्यौ ॥

(सूरदास, सू. सा., १०।२४८०, पृ. १०८१)

खंडिता

बंगला पद

शुन माधव कोन कलावति सोइ ।
प्रेम-हेम गहि, आपन रंग देइ, एहेन साजायलि तोइ ।।
नयनक अंजन, अधरे भेल रंजित, नयनहिं तांबुल दाग ।
सिंदुर-बिंदु, चन्दन-इंदु झांपल, उर पर जावक राग ।।
मदन-सोनार, भोरि रूप-लालसे, ताहे देयल नख-रेह ।
कोन गं.ङ.रि, तोहे अब परशव, हेरि तुया झामर देह ।।

(गोविंददास, प. क. त., पद ३७१)

हिन्दी पद

ऐसी कहौ रंगीले लाल ।
जावक सौं कहं पाग रंगाई, रंगरेजिनी मिली कोउ बाल ।
बंदन रंग कपोलनि दीन्हौ, अरु अधर भए स्याम रसाल ।
जिनि तुम्हारी मन-इच्छा पुरई, धनि-धनि पिय धनि-धनि वह बाल ।
माला कहां मिली बिनु गुन की, उर छत देखि भई बेहाल ।।
सूर स्याम छबि सबै बिराजी, यहै देखि मोकौं जंजाल ।।

(सूरदास, सू. सा., १०।२४८५, पृ. १०८२)

षष्ठ अध्याय

चरित साहित्य

चरित साहित्य में ऐतिहासिक उपादान

प्रारम्भ—चैतन्यदेव से पहले बंगाली साहित्य में जीवनी संबंधी रचनायें नहीं पाई जाती थीं। पाल राजाओं की प्रशंसा में लिखे गीत इत्यादि सुदूर भूतकाल में रचे गए थे अतः वे ऐतिहासिकता से बहुत दूर हैं और प्रामाणिक भी नहीं हैं। चैतन्यदेव के भक्तों ने बंगाली वैष्णव-जीवनी-साहित्य की रचना की। ऐसा उन्होंने अपने इष्टदेव चैतन्य और अपने गुरुओं की भक्ति-निष्ठा के कारण किया। गौड़ीय वैष्णव-जीवनी-साहित्य विभिन्न प्रकार का भी है और प्रचुर मात्रा में भी है। हिन्दी वैष्णव-साहित्य में जो कुछ पाया जाता है, उसमें न तो इतनी विभिन्नता है और न वह मात्रा में प्रचुर है।

प्राप्त जीवनी-साहित्य की कुछ सामग्री लम्बे आख्यानक काव्यों[1] के रूप में है, कुछ खंड काव्यों के रूप में[2] और कुछ पदों के रूप में।[3] लम्बे आख्यानक काव्य केवल बंगला साहित्य में प्राप्त हैं, हिन्दी में नहीं। इनमें केवल चैतन्यदेव की जीवनी का विशद रूप से वर्णन है। प्रसंग रूप से कुछ भक्तों और पार्षदों का भी उल्लेख है। प्रमुख उद्देश्य तो चैतन्य का जीवन-चरित लिखना है। ये आख्यानक काव्य आकार में भी बहुत बड़े हैं। खंड काव्यों में वर्णित जीवनियां हिन्दी में तुलसीदास[4] की और बंगला में अद्वैत आचार्य, नित्यानंद, चैतन्य, सीता देवी इत्यादि की है। पदों में चैतन्यदेव, विट्ठल और वल्लभ की जीवनी प्राप्त हैं। चैतन्यदेव के जीवन-चरित का बहुत बड़ा अंश पदों में मिलता है परन्तु वल्लभ और विट्ठल के जीवन का सुव्यवस्थित और सिलसिलेवार वर्णन हिन्दी पदों में नहीं मिलता। चैतन्यदेव के जन्म-समय, जन्म-उत्सव, बालपन, विद्याभ्यास, विवाह, संन्यास, भक्ति आदि सब का विवरण केवल पदों से मिल सकता है, परन्तु वल्लभ और विट्ठल की जीवनी का संकेत मात्र ही मिलता है।

कुछ जीवनी ग्रंथों में जैसे चैतन्यचरितामृत, चैतन्यभागवत और चैतन्यमंगल इत्यादि में, व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन प्रमुख घटनाओं सहित दिया गया है। कुछ रचनाओं में आंशिक रूप में ही व्यक्ति की कथा वर्णित है। इसमें कड़चा, अद्वैतमंगल इत्यादि आते हैं। कुछ जीवनी-साहित्य इस प्रकार का भी है जिसमें कहीं तो थोड़ा सा विवरण है और कहीं नामों का उल्लेख-मात्र है। इनमें भक्तम ल, वार्त्ताएँ और वैष्णव-वंदनाएँ आती हैं।

लम्बे आख्यानक काव्यों और खंड काव्यों का कुछ विवरण पीछे दिया जा चुका है। उन ग्रंथों का कुछ और विवरण यहां दिया जा रहा है।

सोलहवीं शती का प्राप्त जीवनी-साहित्य केवल ऐतिहासिकता की दृष्टि से

---

१. चैतन्य-चरितामृत, चैतन्य-भागवत, चैतन्य-मंगल।

२. गोसाईं-चरित, कड़चा, अद्वैत-मंगल, वैष्णव वंदना इत्यादि।

३. गौर-पद-तरंगिणी में संगृहीत पद, कीर्त्तन-संग्रहों में संगृहीत वल्लभ और बिट्ठल सम्बन्धी पद।

४. अब इन्हें अप्रामाणिक माना जाता है।

रचा हुआ नहीं जान पड़ता है। जिन व्यक्तियों का चरित इनमें वर्णित है वे सब महापुरुष और भक्तगण हैं। चरितकार का उद्देश्य जितना उनकी लीला-गुण-गान करके अपनी भक्तिनिष्ठा को सार्थक करना है उतना चरितनायक का ऐतिहासिक दृष्टि से परिचय देना नहीं है। वैष्णव जीवनियों में जहां उन व्यक्तियों की जन्म मृत्यु-तिथियों का उल्लेख है और उनके जीवन में घटी घटनाओं का वर्णन है वहां उनके संबंध की अलौकिक घटनाओं का भी वर्णन है। अलौकिकता का वर्णन सापेक्षतः कुछ अधिक ही है। इससे यही ज्ञात होता है कि चरितसाहित्य का निर्माण व्यक्तियों की लौकिक जीवनी का ऐतिहासिक दृष्टि से सच्चा वर्णन करने के लिए नहीं हुआ है। उस युग के भक्त कृष्ण की दो प्रकार की लीलाओं में विश्वास करते थे। एक तो प्रकट लीला जो उन्होंने द्वापर युग में की थी और दूसरी नित्य लीला जो भक्तों के अन्तःकरण में नित्य ही हुआ करती है। कृष्ण के भक्तों ने, जो अपने गुरुओं और आचार्यों के भी भक्त थे, इन लौकिक पुरुषों को भी दोनों लीलाओं से युक्त कर दिया है, ऐसा ज्ञात होता है। श्री बिमान-बिहारी मजूमदार का चैतन्य-जीवनी संबंधित एक कथन इस संबंध में उल्लेखनीय है। वे कहते हैं कि भक्तों ने चैतन्य को भगवान करके माना था परन्तु इसी कारण यह कहना कि उनकी जीवनी में आरोपित समस्त अलौकिक घटनायें ऐतिहासिक सत्य हैं उचित नहीं। भक्तों के हृदय में उनकी जो लीला जब स्फुरित हो जाती थी, वह सत्य ही है। इस सत्य को पारमार्थिक सत्य का नाम देते हैं। ऐतिहासिक का अधिकार तो प्रकट लीला मात्र पर है, नित्य लीला उसके विषय के बाहर की वस्तु है। पारमार्थिक सत्य नित्यलीला से संबंधित है।[१] एक अन्य स्थान पर वे फिर कहते हैं कि ये सब लेखक प्रधानतः भक्त हैं, उनका प्रधान उद्देश्य तो लीला-माधुर्य का आस्वादन कराना है। उनके इस आस्वादन में नित्य लीला और प्रकट लीला एवं ऐतिहासिक और पारमार्थिक सत्य सब बिना किसी विचार के समान स्थान प्राप्त करते हैं।[२]

यहां यह कहना कुछ असंगत न होगा कि जो व्यक्ति भक्तों में जितना ही अधिक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय माना गया, उसका उतने ही अधिक विस्तार से इस साहित्य में वर्णन किया गया है और उसकी ख्याति के अनुरूप उतने ही अधिक वैष्णव भक्तों ने उस पर रचनायें की हैं। सर्वाधिक रचनाओं का चैतन्यदेव संबंधी होना स्वाभाविक ही है। कई वैष्णव लेखकों ने उनकी आद्यंत जीवनी प्रस्तुत की है।[३] इन में चैतन्यदेव की लौकिक जीवनी के साथ-साथ उनके आध्यात्मिक जीवन का भी परिचय मिलता है। प्रसंगानुसार उनके धर्म और भक्ति संबंधी विचारों का भी उल्लेख है। कृष्णदास कविराज की रचना चैतन्यचरितामृत में इन दोनों का विवरण मिलता है।

प्राप्त जीवनी-साहित्य यद्यपि ऐतिहासिकता की दृष्टि से नहीं लिखा गया है फिर भी उसमें ऐतिहासिक महत्त्व के विवरणों की कमी नहीं है, जैसे चैतन्यदेव के जीवन से संबंधित बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण। ये विवरण न तो अत्युक्तिपूर्ण हैं और न

---

१. श्री चैतन्यचरितेर उपादान, पृ. १२

२. श्री चैतन्यचरितेर उपादान, पृ. १३

३. कृष्णदास कविराज, वृंदावनदास, जयानंद, लोचनदास इत्यादि।

अविश्वसनीय। उनके संपर्क में आए हुए कुछ अन्य प्रमुख व्यक्तियों की आंशिक जीवनी का विवरण भी प्राप्त होता है। इस जीवनी साहित्य में प्राप्त ऐतिहासिकता निम्न प्रकार की है।

१. जन्म तिथि, एवं मृत्यु तिथि[1] संबंधी सामग्री।

---

१. (क) चौद्द शत सात शके जन्मेर प्रमाण।
चौद्दशत पंचान्ने हइला अंतर्धान ॥
... ...
फाल्गुन पूर्णिमा संध्याय प्रभु जन्मोदय।
सेइ काले दैवयोगे चन्द्रग्रहण हय ॥
(चै. च., आदिलीला, परि. १३, पृ. ६६-६७)

(ख) शची गर्भे वसे सर्व्व भुवनेर वास।
फाल्गुनी पूर्णिमा आसि हइल प्रकाश ॥
.. .. ..
ईश्वरेर कर्म्म बुझिवार शक्ति काय।
चन्द्र आच्छादिल राहु ईश्वर-इच्छाय ॥
सर्व्व नवद्वीपे देखे हइल ग्रहण।
उठिल मंगल-ध्वनि श्रीहरि कीर्त्तन ॥
... ...
हेनइ समये सर्व्व जगत-जीवन।
अवतीर्ण हइलेन श्री शचीनंदन ॥
(चै. च., आदिखंड, अ. २, प. १८)

(ग) जय जय कलरव नदीया नगरे।
जन्म लभिला गोरा शचीर उदरे।।
फाल्गुन-पूर्णिमा तिथि नक्षत्र फल्गुनी।
शुभक्षणे जनमिला गोरा द्विजमणि ॥ (वासुदेव घोष, गौ. प. त., २।१।२)

(घ) प्रगट भये श्रीवल्लभ प्रभु आनंद बढ्यो है अपार।
.. .. ..
धन्य संवत पन्द्रहा पेंतीस माधोमास।
कृष्णपक्ष एकादशी नक्षत्र कर सुप्रकाश।
(गोविंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. २४१)

(ङ) माधोमास एकादशी लगन धरावही।
समे घरी उपरांत पत्रिका लखावही ॥
कृष्ण पक्ष गुरुवार घटी शुभ जोग हे।
प्रगटे हे अवतार लीलारस भोग हे ॥
(कृष्णदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. २३३)

२. **जन्म स्थान या निवास स्थान का उल्लेख**—जन्म स्थान या निवास स्थान का उल्लेख प्रायः परिचय को स्पष्ट करने के लिए अथवा प्रसंगवशात् ही मिलते हैं। कुछ उदाहरण पाद-टिप्पणी में दिए जा रहे हैं।[1]

३. **भक्तों, पार्षदों, शिष्यों, और लेखकों के नामोल्लेखन**—भक्तों, पार्षदों और शिष्यों की सूची बहुत लम्बी है। 'चैतन्यचरितामृत, वैष्णववंदना, भक्तमाल,' वैष्णवन की

(च) ईश्वर आज्ञाय आगे श्रीअनंत नाम।
राढ़े अवतीर्ण हैला नित्यानंद राम॥
माघ मासे शुक्ल त्रयोदशी शुभदिने।
(चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १७)

(छ) बधावो श्रीवल्लभराय कें गृह प्रकटे श्री विट्ठलनाथ।
पौष मास शुभ नौमी भृगु दिन हस्त नक्षत्र है सार।
वृषभ लग्न शुभ योग करण है धन्य शिशु निरधार।
(गोविंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४५-४६)

१. (क) नवद्वीप हेन ग्राम त्रिभुवने नाइ।
जथा अवतीर्ण हैला चैतन्य गोसाञि॥
(चै. भा., आदिखंड, अ. २ पृ. १४)

(ख) राढ़ माझे एक चाका नामे आछे ग्राम।
जदि अवतीर्ण नित्यानंद भगवान॥
(चै. च., आदि खंड, अ., २ पृ. १४)

(ग) श्रीवास पंडित आर श्रीराम पंडित। श्री चन्द्रशेखर देव त्रैलोक्य पूजित॥
भवरोग नाशे वैद्य मुरारि नाम जार। श्री हट्टे ए सब वैष्णवेर अवतार॥
(चै. भा. आदिखंड, अ. २, पृ. १४)

(घ) सेइ नवद्वीपे वैसे वैष्णवाग्रगण्य। अद्वैत आचार्य नाम सर्वलोक धन्य॥
(चै. भा. आदि खंड, अ. २, पृ., १५)

(ङ) रामचन्द्र कविराज, विख्यात धरणी माझ, ताहार कनिष्ठ श्री गोविंद॥
तेलियाबुधरि ग्रामे, जन्मिलेन शुभक्षणे, महाशाक्तवंशे दुइ भाइ।
(नरहरि, गौ. प. त., ६।३।६८)

सो वे कुंभनदास जी श्रीगोवर्धन पर्वत के पास जमुनावतौ गांव है तामें रहते।
सो जमुनावतौ नाम वा गांव को काहे ते है जो जमुना जी को प्रवाह सारस्वत
कल्प में याके निकट हुती ताते जमुनावती नाम का गांव को है।
(अष्टछाप धी. व., पृ. ७०)

सो गऊ घाट ऊपर सूरदास जी कौ स्थल हुतौ।
(अष्टछाप, धी. व., पृ. १)

वार्तायें, इन सब में बहुत से नाम प्राप्त हैं। कुछ अंश उदाहरण-स्वरूप पाद-टिप्पणी में दिए जा रहे हैं।[1]

४. **विशेष परिचय**—इस प्रकार के परिचयों में संक्षेप में इस बात का उल्लेख मात्र मिलता है कि कुछ व्यक्ति विशेष कवि थे, अथवा संगीतज्ञ थे, अथवा धर्म-प्रचारक या अन्य इसी प्रकार से कुछ थे।[2]

---

१. हरिदास ठाकुरे हैल परम आनंद ।
वासुदेव दत्त गुप्त मुरारि शिवानंद ।।
आचार्यरत्न आर पंडित वक्रेश्वर ।
आचार्य निधि आर पंडित गदाधर ।।
श्रीराम पंडित ओ पंडित दामोदर ।
श्रीमान् पंडित आर विजय श्रीधर ।।
राघव पंडित आर आचार्य्य नंदन ।
कतेक कहिब आर जत भक्तगण ।।
(चै. च., मध्यलीला, परि. १०, पृ. १७२)

गोविंद माधव वासुदेव तिन भाइ ।
जां सवार कीर्त्तन नाचे चैतन्य निताई ।।
(चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ६०)

गोविंद आचार्य वंदौ सर्व्वगुण शाली ।
जे करिल राधाकृष्णेर विचित्र धामाली ।।

हिन्दी के कवि:-वंदो विष्णु स्वामी गोसाञि वृंदावने वास ।
विश्वेश्वर बरनौ हित हरिवंश दास ।।
बंदौं सूरदास सूर मदन मोहन ।
मुकुंद गुदुरिया वंदौं हइया एक मन ।।
(वै. व., देवकीनंदन कृत, ५९ पयार)

हरि सुजस प्रचुर कर जगत में ये कविजन अतिसय उदार ।
विद्यापति ब्रह्मदास बहोरन चतुर बिहारी ।
गोविंद गंगा रामलाल बरसानियां मंगलकारी ।।
(भ. हिन्दी, पृ. ६५७)

गौड़ीय आचार्य : संसार स्वाद सुख बांत ज्यों दुहुं रूप सनातन त्यागि दियौ ।
गौड़ देश बंगाल हुते सब ही अधिकारी ।
हय गय भवन भंडार बिभौ भू भुज उनहारी ।।
यह सुख अनित्य विचारि बास वृंदावन कीन्हो ।
(भ. हिन्दी, पृ. ५९७)

२. (क) श्रीमाधव घोष मुख्य कीर्त्तनीया गणे ।
नित्यानंद प्रभु नृत्य करे जार गाने ।।
(चै. च., आदिलीला, परि. ११, प. ६२)

५. **तत्कालीन प्रमुख व्यक्तियों के परस्पर मिलने का उल्लेख**—उदाहरणार्थ चैतन्य-वल्लभ-मिलन, चैतन्य-रामानंद-मिलन, केशव का भारती से मिलन, सूर-वल्लभ-मिलन इत्यादि।[१] चैतन्य से जिन वल्लभ का मिलन हुआ था, उनका नाम सर्वत्र वल्लभ भट्ट

(ख) वासुदेव गीत करेन प्रभुर वर्णने।
काष्ठ पाषाणादि द्रवे जाहार श्रवणे॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ११, पृ. ६२)

(ग) श्री विजय दास नाम प्रभुर आखरिया।
प्रभु के अनेक ग्रंथ दियाछे लिखिया।
(चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ५८)

(घ) गोविंद आचार्य वंदों सर्व्वगुण शाली।
जे करिल राधाकृष्णेर विचित्र धामाली॥
(देवकीनंदन कृत वैष्णव-वंदना)

(ङ) पाछे सूरदास जी ने बहुत पद कीये। पाछे श्रीआचार्यजी महाप्रभून ने सूरदास जी कों पुरुषोत्तम सहस्र नाम सुनायौ तब सूरदास जी को सम्पूरण भागवत स्फुर्तना भई। पाछें जो पद कीयै सो श्री भागवत प्रथम स्कंधते द्वादश स्कंधताई कीये।
(अष्टछाप, धी. व., पृ. ५)

(च) नंददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रंग मंगे।
लीला पद रस रीति ग्रंथ-रचना में नागर।
सरस उक्तिजुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
(भ. हिन्दी, पृ. ७०२)

१. (क) वर्षान्तिरे जत गौड़ेर भक्तगण आइला।
पूर्व्ववत् महाप्रभु सबारे मिलिला॥
एमत विलास प्रभुर भक्तगण लञा।
हेन काले वल्लभ भट्ट मिलिला आसिया।
(चै. च., अन्त्यलीला, परि. ७, पृ. ३७०)

(ख) हेन काले दोलाय चड़ि रामानंद राय।
स्नान करिवारे आइला बाजना बाजाय॥...
प्रभु तांरे देखि जानिल रामराय।
तांहारे मिलिते प्रभु मन उठि धाय।
तथापि धैर्य करि प्रभु रहिला बसिया।
रामानंद राय आइला सन्यासी देखिया
सूर्य्य शत सम कांति अरुण वसन।
सुवलित प्रकांड देह पद्म लोचन॥

करके दिया गया है। विमानविहारी मजुमदार उन्हें पुष्टिमार्ग-प्रवर्त्तक वल्लभाचार्य मानते हैं, और यह सिद्ध करते हैं कि कवि कर्णपूर रचित और गणोद्देशदीपिका में शुकदेव कह कर वंदित, श्री जीव गोस्वामी रचित वैष्णव वंदना और देवकी नंदन कृत बृहद वैष्णव-वंदना में उल्लिखित वल्लभाचार्य और चैतन्यचरितामृत में उल्लिखित वल्लभ भट्ट एक ही हैं।[1] परन्तु उपेन्द्रनारायण सिंह चैतन्यचरितामृत के वल्लभ भट्ट को पुष्टिमार्ग के प्रतिष्ठाता वल्लभाचार्य नहीं मानते।[2] संभव हो सकता है कि कवि कर्णपूर, देवकीनंदन और श्री जीव-वंदित वल्लभाचार्य पुष्टिमार्गी वल्लभाचार्य हों और चैतन्यचरितामृत में उल्लिखित वल्लभ भट्ट दूसरे हों, यद्यपि ये वल्लभ भट्ट भागवत के टीकाकार बताए गए हैं। उनकी टीका को देख कर उसको यह कह कर अमान्य बताया गया है कि वह श्रीधर स्वामी की टीका से भिन्न है। कृष्णदास कविराज ने इन वल्लभ भट्ट का जो चित्रण उपस्थित किया है वह कुछ अधिक सहानुभूति-पूर्ण भी नहीं है। वे चैतन्य से मिलने गए थे, उन्होंने उन्हें भक्त समझ कर उनका आलिंगन तो किया परन्तु उन्होंने और उनके परिवारों ने उनका अनादर सा ही किया।[3] कवि कर्णपूर जिसकी वंदना शुकदेव कहकर करें, चैतन्य के परिवार उसका अनादर करें, यह कुछ असंगत सा ही ज्ञात होता है। हिन्दी भक्त-

---

देखिया तांहार मने हैल चमत्कार।
आसिया करिल दंडवत् नमस्कार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४३)

(ग) गंगाय हइया पार श्रीगौरांग सुन्दर।
सेइ दिन आइलेन कंटक नगर॥

.. .. ..

आइलेन प्रभु जथा केशव भारती।
मत्तसिंह प्राय प्रियवर्गेर संहति॥
अद्‌भुत देहेर ज्योति देखिया ताहान।
उठिलेन केशव भारती पुण्यवान॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २५, पृ. २५३)

(घ) तब सूरदास जी अपने स्थलते आयकै श्री आचार्यजी महाप्रभून के दर्शन कों आये। तब श्री आचार्यजी महाप्रभून ने कह्यौ जो सूर आवौ बैठौ। तब सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून को दर्शन करि कै आगे आय बैठे। (अष्टछाप, धी. व., पृ. २)

(ङ) "सो आपन मीराबाई के गांव आयौ। सो वे कृष्णदास मीराबाई के घर गयै। (अष्टछाप, धी. व., पृ. १९)

१. चैतन्य चरितेर उपादान, पृ. ३९१-३९३, परि. (क), पृ. ७४
२. विष्णु प्रिया गौरांग पत्रिका, ५।७।२५७
३. (क) आसिया वंदिल भट्ट प्रभुर चरण।
प्रभु भागवत-बुद्ध्ये कैल आलिंगन॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ७, पृ. ३७०)

माल में एक वल्लभनारायण भट्ट का उल्लेख है।[1] हो सकता है, ये ही वे वल्लभ भट्ट हों।

६. **कुछ घटनाओं का उल्लेख**—चरित ग्रंथों में कई प्रकार की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। कुछ घटनायें जो मनोरंजक हैं, यहां दी जा रही हैं। उन्हें सुविधा और सम्पूर्ण घटना की दृष्टि से जो नाम दिए जा रहे हैं, वे इस नाम से मूल चरित ग्रंथ में नहीं हैं, परन्तु घटनाओं का वर्णन है।

चैतन्य का विद्रोह—चैतन्यदेव और उनके परिकर नदीया नगर में संकीर्त्तन किया करते थे। कुछ यवनों ने और कुछ अन्य विरोधी जनों ने नगर के "काज़ी" (न्यायाधिकारी) से इसके विरुद्ध शिकायत की और कहा कि ये लोग हिन्दुयानी फैलाते हैं। एक दिन काज़ी उसी राह से जा रहा था जिस राह पर चैतन्य के कुछ भक्त बड़े समारोह से संकीर्त्तन करते जा रहे थे।[2] काज़ी ने उन्हें पकड़ने की आज्ञा दी[3] और कहा कि नदीया

(ख) फल्गुर बलान प्राय भट्टेर सज व्याख्या।
सर्व्वज्ञ प्रभु जानिया करेन उपेक्षा ॥
(चै. च., अंत्यलीला, परि. ७, पृ. ३७३)

(ग) वैष्णवेर तेज देखि भट्टे चमत्कार।
ता सवार आगे भट्ट खद्योत-आकार ॥
(चै. च., अंत्यलीला, परि. ७, पृ. ३७२)

(घ) प्रभुर उपेक्षाय सब नीलाचलेर जन।
भट्टेर व्याख्या किछु ना करे श्रवण ॥
(चै. च., अंत्यलीला, परि. ७, पृ. ३७३)

(ङ) आचार्यादि आगे भट्ट जवे जबे जाय।
राजहंस मध्ये जेन रहे बक प्राय ॥
(चै. च., अंत्यलीला, परि. ७, पृ. ३७३)

१. ब्रज वल्लभ "वल्लभ" परम दुर्लभ सुख नैननि दिये ॥
नृत्य गान गुण निपुन रास में रस बरषावत।
अब लीला ललितादि बलित दम्पतिहिं रिझावत ॥
अति उदार निस्तार, सुजस ब्रजमंडल राजत ॥
महामहोत्सव करत, बहुत सब ही सुख साजत ॥
श्री नारायण भट्ट, प्रभु परम प्रीति रस बस किये।
ब्रज वल्लभ "वल्लभ" परम दुर्लभ सुख नैननि दिये ॥ (भ. हिन्दी, पृ. ५९६)

२. एक दिन दैवे काजी सेइ पथे जाय।
मृदंग मन्दिरा शंख शुनिवारे पाय ॥
हरिनाम कोलाहल चतुर्द्दिके मात्र।
शुनि सभये काजी आपनार शास्त्र ॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२५)

३. काजी बले धर धर आजि करों कार्य।
आजि वा कि करे तोर निमाइ आचार्य ॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२५)

'हिन्दुयानी' हो रहा है, मैं इसकी शास्ति का उपाय करूंगा।[1] डर के मारे वे लोग भागे। काज़ी ने जिसे पाया उसे पीटा और मृदंग फोड़ दिए।[2] आज संध्या हो गई है अत: अब क्षमा करके जाता हूं, अब देखूंगा तो जाति ले लूंगा, यह कह कर उस दिन से काज़ी प्रतिदिन कीर्त्तन हो रहा है या नहीं यह देखने के लिए भ्रमण करता था।[3] चैतन्य विरोधी अन्य लोग इन संकीर्त्तनकारों को व्यंग्य वचन भी सुनाते थे।[4] वे बेचारे डर के मारे चुप रहते गए। अंत में उन्होंने चैतन्यदेव से जाकर निवेदन किया कि अब हम काज़ी के भय से कीर्त्तन नहीं कर पाते अत: हम नदीया छोड़ कर जाते हैं। यह सुन कर चैतन्यदेव अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने नित्यानंद से कहा, "सावधान हो जाओ, इसी समय सब वैष्णवों के घर चलो। मैं आज समस्त नदीया में कीर्त्तन करूंगा। देखूं, मेरा कौन क्या कर लेता है! मैं आज काज़ी का

---

१. काज़ी बले हिन्दुयानी हइल नदीया।
करिब इहार शास्ति लागालि पाइया॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२५)

२. आथेव्यथे पलाइल नगरियागण।
महात्रासे केश केह ना करे बंधन॥
जाहारे पाइल काजी मारिल ताहारे।
भांगिल मृदंग अनाचार कैल द्वारे॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२५)

३. क्षमा करि जाङ आजि दैवे हैले राति।
आर दिन लागालि पाइले लइब जाति॥
एइमते प्रतिदिन दुष्टगण लैया।
नगर भ्रमये काज़ी कीर्त्तन चाहिया॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२६)

४. निमाई पंडित जे कहेन अहंकारे।
सबे चूर्ण हइबेक काजीर दुयारे॥
नगरे नगरे जे बुलेन नित्यानंद।
देख तार कौन दिन बाहिराय रंग॥
उचित बलिते हइ आभरा पाखंड।
धन्य नदीयाय एत उपजिल भंड॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, प. २२६)

५. भये केह किछु नाहि करे प्रत्युत्तर।
प्रभुस्थाने गिया सबे करेन गोचर॥
काजीर भयेते आर ना करि कीर्त्तन।
प्रतिदिन बुले सेइ सहस्त्रेक जन॥
नवद्वीप छाड़िया जाइब अन्य स्थाने।
गोचरिणु एइ दुइ तोमार चरणे॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२६)

घर द्वार खोद डालूंगा। देखूं, उसका राजा मेरा क्या कर लेता है! मैं आज प्रेम-भक्ति की विशाल वृष्टि करूंगा और पाखंडियों का काल हो जाऊंगा।"[1] नदीया के समस्त भक्तगण समाचार पाकर तैयार हुए। उन्होंने अपने साथ बड़े-बड़े पात्रों में तेल लिया और बड़े दिये लिए। व सब चैतन्यदेव के पास आए।[2] यह सुन कर सब वैष्णव आए।[3] चैतन्यदेव ने

---

१. कीर्त्तनेर बाध शुनि प्रभु विश्वम्भर।
क्रोधे हइलेन प्रभु रुद्र-मूर्त्तिधर॥
. . . .
प्रभु बले नित्यानंद हओ सावधान।
एइक्षण चल सबे वैष्णवेर स्थान॥
सर्व्व-नवद्वीपे आजि करिब कीर्त्तन।
देखि मोरे कोन कर्म्म करे कोन जन॥
देख आजि काजीर पोड़ाङ घर-द्वार।
कौन कर्म्म करे देखि राजा वा ताहार॥
प्रेम-भक्ति वृष्टि आजि करिब विशाल।
पाखंडीगणेर से हइब आजि काल॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२६)

२. तार बड़ तार बड़ सबेइ बांधेन।
बड़ बड़ भांडे तैल करिया लयेन॥
अनंत अर्बुद लक्ष लोक नदीयार।
ए देउटि संख्या करिवार शक्ति कार॥
इतिमध्ये जे जे व्यवहारे बड़ हय।
सहस्त्रेक साजाइया कोन जने लय॥
हइल देउटी-मय नवद्वीप-पुर।
स्त्री-बाल-वृद्धेर रंग बाड़िल प्रचुर॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२६)

३. ईषत् आज्ञाय मात्र सर्व्व-नवद्वीप।
चलिल देउटी लइ प्रभुर समीप॥
शुनि सर्व्व-वैष्णव आइला ततक्षण।
सवारे करेन आज्ञा शचीर नंदन॥
आगे नृत्य करिवेन आचार्य गोसाञि।
एक सम्प्रदाय गाइबेन तान ठाञि॥
मध्ये नृत्य करि जाइबेन हरिदास।
एक सम्प्रदाय गाइबेन तान पाश॥
तवे नृत्य करिवेन श्रीवास पंडित।
एक सम्प्रदाय गाइवेक तान भित॥
. . . .
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२६)

लोगों के अलग-अलग दल बनाए और कहा कि सबसे आगे अद्वैत आचार्य नृत्य करेंगे और उनके साथ एक सम्प्रदाय गायेगा। बीच में हरिदास नृत्य करेंगे और उनके साथ एक सम्प्रदाय गायेगा। उनके पीछे श्रीवास पंडित नाचेंगे औरउनके साथ एक सम्प्रदाय गायेगा। सबसे पीछे नित्यानंद सहित चैतन्य रहे।[१] गदाधर, वक्रेश्वर, मुरारि, श्रीवास, गोपीनाथ, जगदीश, गंगादास, विप्र, रामाइ, गोविंदानन्द, श्री चन्द्रशेखर, वासुदेव, श्री गर्भ, मुकुंद, श्रीधर, गोविंद, जगदानंद, नंदन आचार्य, शुक्लांबर, इत्यादि जिनका कार्य ही संकीर्त्तन करना था उनके आसपास नाचते रहे।[२] चैतन्य ने हरि की ध्वनि उठाकर सबको पुकारा। सब वैष्णव उनके पास आए। सबको मिलाकर उन्होंने संकीर्त्तन प्रारंभ किया और बाहर आए।[३] वे नाचते हुए भागीरथी की ओर चले और उनके आगे-पीछे सब लोग चले।[४] असंख्य दीपक जल गए और असंख्य लोग हरि बोलने लगे।[५] अन्य आचार्यों को जिस प्रकार चलने की उन्होंने आज्ञा दी थी वे उसी प्रकार चले। इस प्रकार उन्होंने प्रत्येक नगर में कीर्त्तन किया।[६]

---

१. नित्यानंद-धारा देखि नित्यानंद-अंगे।
आलिंगन करि राखिलेन निज संगे॥ . . . .
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२७)

२. गदाधर वक्रेश्वर मुरारि श्रीवास।
गोपीनाथ जगदीश विप्र गंगादास॥
रामाइ गोविंदानंद श्री चन्द्रशेखर।
वासुदेव श्रीगर्भ मुकुंद श्रीधर॥
गोविंद जगदानंद नन्दन आचार्य।
शुक्लांबर आदि जे जे जाने एइ कार्य॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२७)

३. हरि बलि डाकिलेन गौरांग-सुन्दर।
सकल वैष्णवगण आइला सत्वर॥
करिते लागिल प्रभु बेड़िया कीर्त्तन।
सबार अंगेते माला श्रीफागु चंदन॥ . . . .
चतुर्द्दिके आपन विग्रह भक्तगण।
बाहिर हइला प्रभु श्रीशचीनंदन॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२७)

४. भागीरथी-तीरे प्रभु नृत्य करि जाय।
आगे पाछे हरि बलि सर्व्वलोके धाय॥ . . . . . .
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२८)

५. लक्षकोटि महादीप चतुर्द्दिके ज्वले।
लक्षकोटि लोक चतुर्द्दिके हरि बले॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३२)

६. हेन महारंगे प्रति नगरे नगर।
कीर्त्तन करेन सर्व्वलोकेर ईश्वर॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३१)

साथ की भीड़ उत्तेजित होने लगी और कोई-कोई चिल्लाने लगे "काज़ी कहां है, पा जाय तो अभी उसका मस्तक चूर्ण कर दें।"[१] कोई कोई पेड़ पर चढ़ कर डाल तोड़ने लगे और 'हम पाखंडियों के काल हैं' ऐसा कहने लगे। कुछ लोग चिल्लाने लगे—"काज़ी कहां है, उसे पकड़ो।"[२] सब लोग काज़ी के घर की ओर चले। कोलाहल सुन कर काज़ी नाराज़ हुआ और उसने अपने नौकर भेजे। उन्हें देख कर मामूली भीड़ समझ कर वे अपना धर्मशास्त्र गाने लगे। भीड़ चिल्ला उठी, 'काज़ी को मारो।' तब नौकर भाग कर मालिक के पास गए और समाचार दिया।[३] पहले तो काज़ी अपनी आज्ञा उल्लंघन होते देख क्रोधित हुआ, फिर भीड़ देख कर सब भाग गए। जिसकी दाढ़ी थी उसने मुंह नीचा कर लिया, डर के मारे उसकी छाती धड़कने लगी।[४] काज़ी के द्वार पर आकर चैतन्यदेव ने क्रुद्ध होकर

---

१. केह बले एबे काजी बेटा गेल कोथा।
लागालि पाइले आजि चूर्ण करों माथा॥
....
वृक्षेर उपरे गिया केह केह चड़े।
सुखे पुनः पुनः गिया लाफ दिया पड़े॥
पाखंडीर क्रोध करि केह भांगे डाल।
केह बले एइ मुञि पाखंडीर काल॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३२)

२. आर जन दश बिशे नड़ दिया जाय।
घर घर कोथा काजी भांडिया पलाय॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३२)

३. काजीर बाड़ीर पथ धरिल ठाकुर। वाद्य-कोलाहल काजी शुनये प्रचुर॥
काजी बले शुन भाइ कि गीत-वादन। किवा कार विभा किवा भूतेर कीर्त्तन॥
....
काजीर आदेशे सब अनुचर धाय। समृद्धि देखिया आपनार शास्त्र गाय॥
अनंत अर्बुद लोके बले काजी मार। भये पलाइल तबे काजीर किंकर॥
नड़ दिया काजीरे कहिल झाट गिया। फि कर चलह झाट जाइ पलाइया॥
कोटि कोटि लोक संगे निमाइ आचार्य। साजिया आइसे आजि किवा करे कार्य॥
लाखे लाखे महाताप देउटी सब ज्वले। लक्ष कोटी लोक मेलि हिन्दुयानी बले॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३३)

४. काजी बले हेन बुझि निमाइ पंडित।
विवाह करिते वा चलिल कोन भित॥
एबा नहे मोरे लंघि हिंदुयानी करे।
तबे जाति निमु आजि सवार नगरे॥
....
पूरिल सकल स्थान विश्वम्भरगणे।
भये पलाइते केह दिक नाहि जाने॥

कहा, "काजी कहां है, पकड़ कर लाओ। मैं उसका मस्तक छेदन करूंगा। मैं आज समस्त भुवन को निर्यवन करूंगा।"[1] काजी द्वार बंद करके न जाने कहा चला गया, यह सुनकर उन्होंने उसका घर तोड़ने की आज्ञा दी। लोगों ने उसका घर तोड़ना प्रारंभ कर दिया। घर के पास लगा उद्यान भी नष्ट कर दिया। जब बाहर का घर तोड़ दिया गया, तब चैतन्यदेव ने घर के अन्दर आग लगाने की 'आज्ञा दी। लोगों ने आग लगा दी।[2] काजी को दंड देकर सब नाचते-गाते लौट आए।[3]

कृष्णदास अधिकारी का विद्रोह—वल्लभाचार्य जी ने गोवर्धन स्थित विग्रह की सेवा बंगालियों को सौंपी थी। वे जो कुछ भेंट आती थी, वह सब खर्च कर डालते थे।[4]

जार दाड़ि आछे सेइ हञा अधोमुख।
लाजे माथा नाहि तोले भये हाले बुक ॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३४)

१. आसिया काजीर द्वारे प्रभु विश्वम्भर।
क्रोधावेशे हुंकार करये बहुतर ॥
क्रोधे बले प्रभु आरे काजी बेटा कोथा।
झाट आन धरिया काटिया फेल माथा ॥
निर्यवन करि आजि सकल भुवन।
पूर्व्वे जेन बधियाछि से काल यवन ॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३४)

२. प्राण लञा कोथा काजी गेल दिया द्वार।
घर भांग भांग प्रभु बले बार बार ॥
. . . .
केह घर भांगे केह भांगये दुयार।
केह लाथि मारे केह करये हुंकार ॥
आम्र-पनसेर डाल भांगि केह फेले।
केह कदलीर बन भांगि हरि बले ॥
पुष्पेर उद्याने लक्ष लक्ष लोक गिया।
उपाड़िया फेले सब हुंकार करिया ॥
. . . .
भांगिलेक जत सब बाहिरेर घर।
प्रभु बले अग्नि देह बाड़ीर भितर ॥
पुड़िया मरुक सब गणेर सहिते।
सर्व्वबाड़ी अग्नि देह चारि भिते ॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३४)

३. काजीर भांगिया घर सर्व्व नगरिया।
महानंदे हरि बलि जायेन नाचिया ॥ (चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३५)

४. सो भेंट आवती सो खरच होती, कछू संग्रह न राखते, सब खरच होय जातों, और बंगाली सेवा करते। (अष्टछाप, धी. ब., पृ. २०)

वल्लभाचार्य ने वहां का प्रबंध कृष्णदास को सौंपा और वह अधिकारी कहलाए। कुछ दिन बाद कृष्णदास मथुरा जाने लगे। राह में उन्हें एक महात्मा अवधूतदास मिले। उन्होंने कृष्णदास से बताया कि बंगाली पुजारी अपनी चोटी में देवी का छोटा सा स्वरूप छिपा कर रखते हैं और श्रीनाथ जी का भोग लगाते समय उसे सामने रख कर भोग लगाते हैं, फिर उसे चुटिया में रख लेते हैं। अतः तुम बंगालियों को दूर करो।[1] कृष्णदास ने उत्तर दिया कि गोसाईं जी की आज्ञा के बिना उन्हें कैसे निकालें। अवधूतदास के राय देने पर, कि तुम जाकर उनसे आज्ञा मांग लो, कृष्णदास अड़ैल गए। वहां जाकर उन्होंने विट्ठल नाथ गुसाईं को समाचार दिया कि बंगाली जो कुछ भेंट आती है ले जाकर अपने गुरु को दे देते हैं।[2] गुसाईं जी ने भी कहा कि बंगालियों ने वर्ष भर में श्रीनाथ जी की भेंट में चढ़े आभूषण, स्वर्ण पात्र आदि सब अपने गुरु को दे दिए।[3] परन्तु वे आचार्य महाप्रभु के रक्खे हुए हैं अतः कैसे निकाले जायं। कृष्णदास बोले 'आप मुझे आज्ञा भर दे दें, मैं जैसे वे निकलेंगे, निकालूंगा।'[4] गुसाईं जी ने आज्ञा दे दी। कृष्णदास ने राजा बीरबल और टोडरमल के नाम दो पत्र लिखवाए और चले गए। वे पत्र उन लोगों को दिखाकर वे मथुरा गए। बंगाली रुद्रकुंड पर रहते थे, कृष्णदास ने उनकी झोंपड़ियों में आग लगा दी। शोर मचा और बंगाली नीचे उतरे। कृष्णदास ने तुरन्त अपने आदमी ऊपर भेज दिए। यह जान कर कि आग कृष्णदास ने लगाई है, बंगाली उनसे लड़ने लगे। कृष्णदास ने उन सबको दो-दो चार-चार लाठी मारी।[5] तब वेसे बंगाली भाग कर मथुरा गए और रूप सनातन से शिकायत की।

---

१. सो तब बंगाली श्रीनाथ जी को भोग धरते सो उनकी चुटि में छोटो सो स्वरूप हुतौ देवी को सो सामने बैठावतैं जब भोग सरावते। वा देवी कौ अपनी चुटिया में धर लेते ऐसे सदा करते। सो बात अवधूतदास कों श्रीनाथ जी ने जताई ताते अवधूतदास ने कृष्णदास सें कह्यौ जो तुम बंगालीन को दूर करो।
(अष्टछाप, धी. व., पृ. २१)

२. बंगालीन ने बहुत माथौ उठायौ है जो भेट आवत है सो ले जात हैं सो सब अपने गुरुन को देत हैं। (अष्टछाप, धी. व., पृ. २१)

३. तब श्री गोपीनाथ जी ने दर्शन कीयों। पाछें जो लाये हुते सो सब भेंट कियौ। आभूखन सब जड़ाव के समराये। थार कटोरा डबरा चमचा तष्ठी प्रभृत सब सोना रूपा के कियैं।...... ता पाछें बंगाली बरस एक कें भीतर सब ले गयैं। अपने गुरु के यहां जाय के दीयौ। (अष्टछाप, धी. व., पृ. २२)

४. मोकों आप आज्ञा करौ तौ अपनो आप कर लेउंगौ। जैसे बंगाली निकसेंगे तैसे काढूंगो। (अष्टछाप, धी. व., पृ. २२)

५. सो वे बंगाली सब रुद्रकुंड ऊपर रहते सो उहां उनकी झोंपरी हुती। सो कृष्णदास ने जराय दीनी। तब सोर भयौ। तब बंगाली सेवा छोड़ कैं पर्वत के नीचे आयैं। तब कृष्णदास ने पर्वत ऊपर अपने मनुष्य पठाय दियैं। तब बंगाली देखें तौ कृष्णदास ने झोंपरी में आग लगाय दीनी है। तब सब बंगाली कृष्णदास सों लरन लागैं। तब कृष्णदास ने द्वै द्वै चार चार लाठी सबन में दीनी।

(अष्टछाप, धी. व., पृ. २३)

कृष्णदास भी वहां जा पहुंचे। रूप सनातन ने कृष्णदास से कहा "क्यों रे! तू कौन है जो इन ब्राह्मणों को मारता है!" कृष्णदास बोले "मैं तो शूद्र हूं पर तुम भी तो अग्निहोत्री नहीं हो, कायस्थ हो।" रूप सनातन के पूछने पर कि 'पातसाह' के सुनने पर तुम क्या जवाब दोगे। कृष्णदास ने उत्तर दिया कि मैं तो जवाब दे लूंगा पर तुम न दे पाओगे। कायस्थ हो कर ब्राह्मणों से पैर पुजवाते हो। रूप सनातन बंगालियों से यह कह कर चुप हो गए कि तुम जानो ये जाने, वे बंगाली मथुरा के हाकिम के पास गए। कृष्णदास भी पहुंचे। हाकिम ने कहा, जो हुआ सो हुआ, अब इन्हें रख लो। कृष्णदास कहने लगे, "जो अब तौ इनका न राखेंगे। ये तो हमारे चाकर हुते सो हमने इनकों सेवा सोंपी हुती सो ये सेवा छोड़ कें क्यों आयैं। जो इनकी झोंपरी जर गई हुती तौ हम नई छवाय देते ताते अब हम तौ न राखेंगे।" बंगालियों ने गुसाईं जी केमथुरा आने पर उनसे भी कहा, पर वही उत्तर पाया।[1]

यह समस्त घटना 'चैतन्यचरितामृत' में तो नहीं है। इतना अवश्य दिया है कि रूप सनातन बहुत से लोगों को लेकर गोपाल के दर्शन करने मथुरा गए। विमानबिहारी मजुमदार का अनुमान है कि वे लम्बी चौड़ी भीड़ लेकर दर्शन करने तो नहीं, हाकिम से कृष्णदास के विरुद्ध फरियाद करने ही गए होंगे।[2] बंगालियों और अन्य भक्तों में कुछ मनो-मालिन्य था, इसकी झलक इस कथन में मिलती है कि रूप सनातन दर्शन के लिए गोवर्धन पर नहीं चढ़े।[3] म्लेच्छ के भय से गोपाल मथुरा विट्ठलेश्वर के घर थे, वहां जा कर रूप सनातन ने परिकर सहित एक मास तक दर्शन किया। हो सकता है, कि झगड़े के ही कारण रूप सनातन पर्वत पर नहीं चढ़े और विट्ठलेश्वर बंगालियों से बचाने के लिए गोपाल विग्रह मथुरा ले गए।

७. **रचनाओं के नाम**—चरित साहित्य में कुछ रचनाओं के नाम मिलते हैं। ये नाम प्रसंगवशात् ही आए हैं। कुछ बड़े आचार्यों अथवा भक्तों का विवरण देते देते लेखक ने उनकी कुछ रचनाओं के नाम भी परिचय के लिए दे दिए हैं। चैतन्यदेव दक्षिण भ्रमण

---

१. अष्टछाप, धी. व., पृ. २४-२५

२. चैतन्य चरितेर उपादान, पृ. २३८

३. पर्व्वते ना चड़े दुइ रूप सनातन। एइ रूपे ता सबारे दियाछे दर्शन ॥
वृद्धकाले रूप गोंसाञि ना पारे जाइते। बांछा हैल गोपालेर सौन्दर्य देखिते ॥
म्लेच्छ भये एला गोपाल मथुरा नगरे। एक मास रहिल विठलेश्वर घरे ॥
तवे रूप गोंसाञि सब निजगण लञा। एक मास दर्शन कैल मथुराय रञा।
संगे गोपाल भट्ट दास रघुनाय। रघुदास भट्ट गोंसाञि आर लोकनाय ॥
भूगर्भ गोंसाञि आर श्री जीव गोंसाञि। श्री जादव आचार्य आर गोविंद गोंसाञि ॥
श्री उद्धवदास आर माधव दुइ जन। श्री गोपाल दास आर दास नारायण ॥
गोविंद भक्त आर वाणी कृष्णदास। पुंडरीकाक्ष ईशान आर लघु हरिदास ॥
एइ सब मुख्य भक्त लञा निज संगे। श्री गोपाल दरशन कैल बहुरंगे ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २३९)

से दो पुस्तकें लाए थे। उनके नाम 'ब्रह्म संहिता' और 'कर्णानंद' कृष्णदास कविराज ने दिए हैं।[1] यहां पर तालिका के रूप में कुछ रचनाओं के नाम दिए जा रहे हैं।

लेखक	रचनायें
सनातन	हरिभक्ति विलास आर भागवतामत। दशम टिप्पणी आर दशम चरित॥ एइ सब ग्रंथ कैल गोंसाञि सनातन। (चै. च., मध्यलीला, परि. १, पृ. ९२)
रूप	रूप गोंसाञि कैल कत के करु गणन॥ .... रसामृतसिंधु आर विदग्धमाधव। उज्ज्वल नीलमणि ओ ललितमाधव॥ दानकेली कौमुदी ओ बहु स्तवावली। अष्टादश-लीला छंद आर पदावली॥ गोविंद-विरुदावली ताहार लक्षण। मथुरा-माहात्म्य आर नाटक वर्णन॥ लघुभागवतामृतादि के करु गणन। (चै. च., मध्यलीला, परि. १, पृ. ९२)
जीव	तांर भ्रातुष्पुत्र नाम श्री जीवगोंसाञि। जत भक्ति ग्रंथ कैल तार अंत नाञि॥ भागवत संदर्भ नाम ग्रंथ विस्तार। भक्ति ओ सिद्धान्त ताते लिखिछेन सार॥ श्री गोपाल चम्पू नामे ग्रंथ महाशूर। नित्यलीला स्थापन जाहे ब्रजरस पूर॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. १, पृ. ९२)
नरोत्तमदास	नरे नरोत्तम धन्य, ग्रंथकार अग्रगण्य, अगण्य पुण्येर एकाधार। .... चन्द्रिका पंचम सार, तिन मणि सारात्सार, गुरु शिष्य संवाद पटल॥ त्रिभुवने अनुपाम, "प्रार्थना" ग्रंथेर नाम, हाटपत्तन मधुर केवल॥ (गौ. प. त. ६।३।६७)

---

१. ब्रह्मसंहिता कर्णामृत दुइ पुंथि पाञा। दुइ पुस्तक लञा एल उत्तम जानिञा॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १, पृ. ९५)

वृन्दावनदास	वृंदावनदास कैल चैतन्यमंगल ।[1] . . . . ताहाते चैतन्य लीला वर्णिल सकल ॥ सूत्र करि सब लीला करिल ग्रंथन । पाछे विस्तारिया ताहा कैल विवरण ॥ (चै. च., आदिलीला, परि. ८, पृ. ५३)
कृष्णदास कविराज	चैतन्यचरितामृत, शास्त्र सिंधु मथि कत, लिखे कविराज कृष्णदास ॥ (उद्धवदास, गौ. प. त. ६।३।४६)
ईश्वरपुरी	गदाधर पंडितेर आपनार कृत । पुथि पड़ायेन नाम कृष्णलीलामृत ॥ (चै. भा., आदिखंड, अ. ९, पृ. ५९)
माधव आचार्य	माधव आचार्य बंदों कवित्वशीतल । जाहार रचित गीत श्रीकृष्ण मंगल ॥ वैष्णव वंदना (देवकी नंदन कृत)
तुलसीदास	जो जैसे तुलसीदास जी नें रामायण भाषा करी है सो हमहूं श्रीमद्‌भागवत भाषा करें । (अष्टछाप, धी. व., पृ. ९९)
बिल्व मंगल	कृष्ण कृपा को पर प्रगट 'बिल्व मंगल' मंगल स्वरूप । "करुणामय" सुकवित्त युक्ति. . . (भ. हिन्दी, पृ. ३७३)

८. आत्मीयों एवं गुरुओं के उल्लेख—इस प्रकार के उल्लेखों में व्यक्तियों के माता-पिता, भाई, पत्नी, पुत्र, गुरु इत्यादि के नाम लिखे जाते हैं। सर्वाधिक उल्लेख चैतन्य-देव से ही संबंधित हैं। उनके संबंधियों के उल्लेखों को छोड़ कर अन्य व्यक्तियों के जो उल्लेख मिलते हैं, वे कुछ नीचे दिए जा रहे हैं।

(१) माता-पिता (क) प्रकट भये तैलंग कुल दीप ।
श्री लक्ष्मण भट्ट अति आनंदित सुत मुख निरखत आय समीप ॥
मात इलम्मा कूख उदय भयो ज्यों उपजत मुक्ताफल सीप ।
सगुणदास मख कहत न आवे यश प्रसर्यो नवखंड सप्तद्वीप ॥
(सगुणदास, की. र., पृ. २७५)

(ख) पलने झुलत वल्लभराइ ।
प्रेम विवश गावत हूलरावत मुदित एलम्मा माई ॥
. .
श्री वल्लभ चरनारविंद पर दास रसिक बल जाई ॥
(रसिक, की. र., पृ. २८८)

---

१. यह ग्रंथ नाम बदल कर "चैतन्य-भागवत" कहलाया। लोचनदास और जयानंद दोनों के ग्रंथ इसी नाम के थे।

(ग) चिरंजीव-सेन सुत, "कविराज" नाम ख्यात
(गौ. प. त. ६।३।६८)

भाई रामचन्द्र कविराज, विख्यात धरणी माझ, ताहार कनिष्ठ
श्रीगोविंद ।

.. ..

कहे दीन नरहरि, ताइ धन्य धन्य करि, गाय गुण पंडित समाज ।।
(नरहरि, गौ. प. त. ६।३।६८)

नंददासजी तुलसीदास के छोटे भाई हते ।
(अष्टछाप, धी. व., पृ. ९४)

पत्नी नित्यानंद घरणी, जाह्नवा ठाकुरानी, त्रिभुवने पूजित चरण ।
जाहार कीर्त्तन काले, रुधिर पुलक मले, देखि कैल चैतन्य स्मरण ।।
(वल्लभ, गौ. प. त. ६।३।६४)

जयति रुक्मिनीनाथ, पद्मावतिपति, विप्र-कुल-छत्र, आनंदकारी ।
दीप-वल्लभ-बंस, जगत निस्तम करन, कोटि उड़राज सम तापहारी ।।
(नंददास, द्वितीय भाग, पृ. ३४२)

पुत्र प्रकट भये सदन दुख दवन विट्ठलेश के
सातमे सुवन घनश्याम अभिराम ।

.. ..

कहा कहों सुयश मुख एक रसना करी
रसिक को दास नित्य करत परणाम ।।
(की. सं., भाग बीजो, पृ. १७६)

चैतन्यदास, रामदास, आर कर्णपुर ।
तिन पुत्र शिवानंद प्रभुर भक्तशूर ।।
(चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ५८)

गुरु मोर ठाकुर महाशय, नरोत्तम दयामय, दंते तृण करों निवेदन ।।
वल्लभ छाड़िया पाके, आकुल हइया डाके, अहे नाथ लहनु शरण ।।
(वल्लभ, गौ. प. त. ६।३।६५)

रामचन्द्र कविराज, विख्यात धरणी माझ, ताहार कनिष्ठ श्री गोविन्द ।।
चिरंजीवसेन-सुत, "कविराज" नामे ख्यात, श्री निवास शिष्य कविचंद ।
(गौ. प. त. ६।३।६८)

९. **भ्रमण एवं गुरुओं के उल्लेख**—चरित साहित्य में इस बात के बहुत से प्रमाण पाए जाते हैं कि चैतन्यदेव के काल में प्रायः भक्तगण बहुत यात्रायें किया करते थे। ये यात्रायें केवल घूमने फिरने के लिए नहीं होती थीं। आचार्यगण तो प्रायः धर्म प्रचार के लिए अथवा तीर्थ यात्रा के लिए जाया करते थे। अन्य व्यक्ति या तो गुरु के दर्शन करने या तीर्थ करने जाते थे। चैतन्यदेव ने धर्म प्रचार करने और तीर्थ करने दोनों के ही लिए बड़ी लम्बी

लम्बी यात्रायें की थीं। वे पिता का श्राद्ध करने गया गए।[१] सन्यास ग्रहण करने के बाद उन्होंने गौड़ देश का भ्रमण किया।[२] तीर्थ यात्रा करने और धर्म प्रचार करने वे दक्षिण भारत गए।[३] यहां से वापिस आकर वे तीर्थ भ्रमण करने के लिए वृंदावन, प्रयाग और काशी गए।[४] इस यात्रा में भी उन्होंने अपनी संकीर्त्तन-भक्ति का प्रचार किया था। उनकी इन यात्राओं का विस्तृत विवरण चैतन्य-चरितामृत में मिलता है। प्रयाग में उन्होंने त्रिवेणी स्नान किया; उस समय माघ मास था।[५] वृंदावन में गोवर्धन स्थित गोपाल के दर्शन किए, और यमुना में स्नान किया।[६] काशी में गंगा में स्नान किया। दक्षिण में उन्होंने सेतुबंध और कुमारी अंतरीप तक यात्रा की।[७] इस सबका विवरण चैतन्यचरितामृत में मिलता है। वल्लभाचार्य ने भी भ्रमण किया था, इसका निर्देश मात्र मिलता है।[८] इसी

---

१. चै. च., आदिलीला, परि. १७

२. (क) चै. भा., शेषखंड, अ. ३, ४ ५.
(ख) चै. च., मध्यलीला, परि. १६

३. चै. च., मध्यलीला, परि. ७, ८, ९

४. चै. च., मध्यलीला, परि. १६-२५

५. एइमत चलि प्रभु प्रयाग आइला।
दश दिन त्रिवेणीते मकर स्नान कैला॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४४)

६. (क) आर दिन एला प्रभु देखिते वृंदावन।
कालीय ह्रदे स्नान कैल आर प्रस्कन्दन॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २३९)

(ख) गोवर्धन देखि कभु प्रेमामिष्ट हञा।
नाचिते नाचिते चलिला श्लोक पड़िया॥
एइ मत तिन दिन गोपाल देखिला।
चतुर्थ दिवसे गोपाल स्वमन्दिरे गेला॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २३८)

७. (क) सेतुबंध आसि कैल धनुतीर्थे स्नान।
रमेश्वर देखि तांहा करिल विश्राम॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६३)

(ख) मलय पर्व्वते कैल अगस्त्य वंदन।
कन्या-कुमारी तांहा कैल दरशन।
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६४)

८. (क) सो एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभू पृथिवी परिक्रमा करत झारखंड में पधारे॥
(अष्टछाप, धी. व., पृ. ७०)

(ख) आज श्री आचार्यजी महाप्रभ आय पधारे हैं जिनने दक्षिण में दिग्विजय कीयो है...
(अष्टछाप, धी. व., पृ. २)

प्रकार तुलसीदास के वृंदावन आने,[1] कृष्णदास के द्वारिका जाने,[2] और परमानंददास के प्रयाग जाने का उल्लेख मिलता है[3] परन्तु इनकी किसी भी यात्रा का विशद वर्णन प्राप्त नहीं है।

---

१. सो नंददासजी के बड़े भाई तुलसीदास हुते। सो काशीजी ते नंददासजी कूं मिलिये के लिये ब्रज में आये।

(अष्टछाप धी. व., पृ. १००)

२. सो वे कृष्णदास शुद्र एक बेर द्वारिका गये हुते।

(अष्टछाप, धी. व., पृ. १९)

३. सो भगवद इच्छा ते एक समय परमानंददासजी कन्नौज ते आय प्रयागकों आये सो प्रयाग में उतरे

(अष्टछाप, धी. व., पृ. ४५)

सप्तम अध्याय

भाषा

भाषा

प्रयुक्त भाषाएं—हिन्दी प्रदेश की पश्चिमांत सीमा से लेकर बंगीय प्रदेश की पूर्वांत सीमा तक भाषा और बोलियों की रूप-रेखा का एक सतत प्रवाह मिलता है। इनमें से जो भाषायें साहित्य का माध्यम बन सकीं, उनमें से प्रधान ब्रज भाषा, अवधी, मैथिल, बँगला और ब्रजबुलि हैं। गौड़ीय वैष्णव पदावली का एक बहुत बड़ा भाग जिस भाषा में रचा गया है, वह भाषा 'ब्रजबुलि' है।

पारस्परिक प्रभाव—सोलहवीं शती के प्राप्त वैष्णव साहित्य की भाषा में हिन्दी का स्पष्ट प्रभाव है। परन्तु ऐसा अकारण ही नहीं हुआ। उस समय मथुरा और वृन्दाबन वैष्णवों का सर्व-प्रधान केन्द्र था। उस समय के गौड़ीय वैष्णव-धर्म के व्यवस्थाकार, रूप और सनातन ब्रज मंडल में ही निवास करते थे। भक्तों और आचार्यों का आना जाना तीर्थ यात्रा के लिए और व्यवस्थाओं के लिए लगा ही रहता था। ब्रज क्षेत्र में प्रचलित पदों और गीतों को वे लोग सुनते रहे होंगे। विद्यापति के पद भी उन दिनों गौड़ में अत्यंत प्रिय थे। गौड़ीय धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए हिन्दी को अपनाने की चेष्टा की रही होगी क्योंकि उन दिनों में मुग़ल शासन में हिन्दी का सर्वत्र प्रचार था। इन सब कारणों से गौड़ीय वैष्णव साहित्य की भाषा हिन्दी की छाप से प्रभावित हो गई जान पड़ती है। सोलहवीं शती की बंगाली भाषा पर हिन्दी का प्रभाव निम्न प्रकार से दृष्टिगोचर होता है। यह प्रभाव पदावली साहित्य में अधिक स्पष्ट है।

१. गौड़ीय वैष्णव पदावली में हिन्दी शब्द।
२. गौड़ीय वैष्णव पदावली में हिन्दी वाक्य विन्यास।
३. गौड़ीय वैष्णव पद-संग्रहों में हिन्दी भाषा के पद।
४. मिश्रित भाषा ब्रजबुलि।

१—गौड़ीय वैष्णव पदावली में हिन्दी शब्द

यहां कुछ ऐसे हिन्दी शब्दों की सूची दी जा रही है जो गौड़ीय वैष्णव पदों में प्राप्त हैं। इन्हें पदकल्पतरु के संकलनकर्ता ने भी हिन्दी के शब्द कह कर स्वीकार किया है। हिन्दी के मूल रूप मे कहीं कहीं कुछ परिवर्तन आ गए हैं परन्तु ये परिवर्तन मुख्यतया हिन्दी और बंगाली भाषा के उच्चारण भेद के कारण ही हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी का 'ऐंसन' 'ऐछन' में, 'बारों' 'ओआरों' में, नवल 'नओल' में और 'नूतन' 'नौतुन' में परिवर्तित हो गए हैं। अर्थ-भेद प्रायः नहीं हैं। इसी प्रकार बनवारी (बनओआरि), खावत (खाओत), ज्यों (जेङ), सावन (शाङन), बांसुरी (बांशीर) आदि के बंगाली रूप उच्चारण-भेद के कारण हैं।

बंगाली पदों में हिन्दी शब्द

शब्द	अर्थ	प्रयोग और प्रकरण
अओध	औंधा	**अओध** आनन, हठ न मानये··· (भूपति, प. क. त., पद १६९८)

अचाहे	अनिच्छा से	बं. श्यामर-काय **अचाहे** हिलायत··· (कृष्णकांत, प. क. त., पद २८८६)
		हि. हरि पद बिमुख परम गति **चाहा**··· (तुलसी, रा. च. मा., बा. २६७, पृ. १३२)
अछु	अस	बं. को **अछु** वेदन सहइ.... (गोविंददास, प. क. त., पद १७४)
		हि. **अस** विचारि जिअँ जागहु ताता··· (तुलसी,रा.च.मा.,लं. ६१, पृ. ४३८)
अनत	अन्यत्र	बं. से तुमि अनत गिया··· (चैतन्यदास, प. क. त., पद १६६०)
		हि. मेरौ मन **अनत** कहां सुख पावै । (सूरदास, सू. सा., १।१६८)
अब	अब	बं. **अब** विहि सो सब,बेकत कयल सखि··· (ज्ञानदास, प. क. त., पद २३०)
		हि. **अब** कैसें ब्रज जात बस्यौ··· (सूरदास, सू. सा., १०।३८५०)
अहेरा	शिकार	बं. माधव मनमथ फिरत **अहेरा**... (गोविंददास, प. क. त., पद ३१८)
		हि. फिरत **अहेरें** परेउं भुलाई··· (तुलसी,रा.च.मा., बा. १५९,पृ.८१)
आये	आये	बं. निके बनि **आये** हो नंद-दुलाल... (गोविंददास, प. क. त., पद २४२५)
		हि. आनंद सहित सबै ब्रज **आये**··· (सूरदास, सू. सा., १।५०८)
आसू	आंसू	बं. जटिला शाशु **आसु** भरि रोयइ... (बलराम, प. क. त., पद २४८९)
		हि. मुख **आंसू** अरु माखन-कनुका निरखि नैन छबि देत ।। (सूरदास, सू. सा., १०।३४९)
उरझाई	उलझाकर	बं. चलइल राजपथे दुहुं **उरझाइ**··· (शेखर, प. क. त., पद २५५५)
		हि. छूट न अधिक अधिक **अरुझाई**··· (तुलसी,रा.च.मा.,उ. ११७,पृ. ५५७)
एतीन	एतना इतनी	बं. नाहि आओल **एतनि** भाखण··· (जगदानंद, प. क. त., पद १९७५)

		हि. नंदनंदन सौं **इतनी** कहियौ··· (सूरदास, सू. सा., १०।४०६६)
एह	यह	बं. ए सखि बिहरये को पुन **एह**··· (घनश्याम, प. क. त., पद १५०) हि. सुनु अजहुं सिखावन **एह**··· (तुलसी, वि. प., पद १९०)
ओयारों	वारों	बं. मदन कोटि **ओयारों**··· (सूर, प. क. त., पद १०८६) हि. **वारौं** हौं, वे कर जिन··· (सूरदास, सू. सा., १०।३६२)
कउन	कौन	बं. माधे निदाघ **कउन** पातियायब··· (गोविंददास, प.क. त., पद १८१४) हि. **कौन** सुनै यह बात हमारी ? (सूरदास, सू. सा., पद १।१६०) कहहु **कवन** बिधि भा संबादा... (तुलसी, रा.च.मा., उ. ५५,पृ. ५१८)
कछु	कछु	बं. **कछुइ** नाहि अवधाय··· (भूपति, प. क. त., पद ११४) हि. नाथ न **कछू** मोरि प्रभुताई··· (तुलसी, रा.च.मा.,सु. ३३,पृ. ३८८)
कतये	कितना	बं. तोहारि निदान हाम **कतये** शुनायलुं (परमानंद, प. क. त., पद १८३) हि. येह लघु जलधि तरत **कति** बारा... (तुलसी, रा.च.मा., लं. १, पृ. ४०३)
कतहुं	कहीं	बं. **कतहुं** प्रेम-धन हिय माहा सांचि... (गोविंददास, प. क. त., पद ३६२) हि. मूँदे आंखि **कतहुं** कोउ नाहीं... (तुलसी,रा.च.मा.,बा.२८०,पृ.१३८)
का	क्या	बं. **का** देइ कहइ सम्वाद... (गोविंददास, प. क. त., पद १७४) हि. **का** छति लाभु जून धनु तोरें.... (तुलसी,रा.च. मा.,बा. २७२,पृ.१३४)
काहां	कहां	बं. सो हेन रसिक पिया **काहां** रहु... (गोविंददास, प. क. त., पद ४५३) हि. कहु **कहं** तात कहां सब माता.... (तुलसी,रा.च.मा.,अ.१५९, पृ. २४६)

काहा	क्या	बं. से हेन रसिक पिया काहां रहुं **काहा** करु.... (गोविंददास, प. क. त., पद ४५३)
		हि. जाइ उतरु अब देइहौं **काहा**... (तुलसी, रा. च. मा., बा. ५४, पृ. ३२)
किये	करने से	बं. मिटत तलप जम कालकि । आरति **किये** मदन गोपालकि ॥ (रघुनाथदास, प. क. त., पद २८६९)
		हि. अंतर-दाह जु मिट्यौ ब्यास कौ, इक चित ह्वै भागवत **किये**...... (सूरदास, सू. सा., १।८९)
कीजे	करो	बं. ए दुहुँ मंगल आरति **कीजै**... (रामराय, प. क. त., पद २८४४)
		हि. अति व्याकुल अकुलाति, बिरहिनी सुरति हमारी **कीजै**... (सूरदास, सू. सा., १०।४०६४)
को	कौन	बं. रूप शिल गुण ताहे सुंदर **कोहे**... (गोपालदास, प. क. त., पद २९६६)
		हि. तुम्हहि अछत **को** बरनै पारा.... (तुलसी, रा. च. मा., बा.२७४, पृ.१३५)
कौन	कौन	बं. **कौन** बिहि मझु नाह ले गेओ... (गोविंददास, प. क. त., पद १८१०)
		हि. **कौन** बात यह कहत कन्हाई... (सूरदास, सू. सा., १०।१५३९)
खुनि	खान	बं. उथलिल आगुनेर **खुन**.... (ज्ञानदास, प. क. त., पन ९६०)
		हि. उघरि आए कान्ह कपट की **खानि**... (सूरदास, सू. सा., १०।३८५७)
घुंगुरओआलि-	घुंघराली	बं. **घुंगुरओआलि** अलके झलके... (कृष्णदास, प. क. त., पद २८६०)
		हि. **घुंघुराली** लटैं लटकैं मुख ऊपर... (तुलसी, क. व. बा. ५)
घोरि	घोल कर	बं. कुकुम **घोरि** चीत भेल आकुल.... (गोंविददास, प. क. त., पद २५७८)
		हि. देउ आपने हाथ चल मीनहिं माहुर **घोरि**.... (तुलसी, दो. ३१७)

चोङ्क	चौंक	बं. धरल कुल कामिनि, **चोङ्क** पड़ल जग भरिया... (रायशेखर, प. क. त., पद १०६४) हि. **चौंके** विरंचि संकर सहित.... (क. व., बा. ११) **चौंकि** परीं सब गोकुल नारी.... (सूरदास, सू.सा. १०।८१३)
चोलि	चोली स्त्रियों का वस्त्र	बं. खसत वसन रसन चोलि... (गोविंददास, प. क. त., पद १२५५) हि. नील लहंगा लाल **चोली** कसि... (सूरदास, सू. सा., १०।२८३२)
छबीले	सुंदर	बं. छयल **छबीले** रस बरसीले... (गोपालदास, प. क. त., पद २९६६) हि. **छबीले** मुरली नैंकु बजाउ.... (सूरदास, सू. सा., १०।१२१६)
छलिया	प्रवंचक	बं. कि पेखलुं सइ **छलिया** नागर कान... (गोविंददास, प. क. त., पद १४९) हि. **छली** मलीन हीन सब ही अंग... (तुलसी, वि. प., पद ९९)
छाति	छाती	बं. तुया मुख हेरि ज्वलत मझु **छाति**... (घनश्यामदास, प. क. त., पद ५५) हि. कुलिस कठोर निठुर सोई **छाती**... (तुलसी, रा. च. मा., बा. ११३, पृ. ६१)
छिरकत	छिड़कती हैं	बं. (कोइ) मसृण घुसृण सुगंधि **छिरकत**... (उद्धवदास, प. क. त., पद १५६१) हि. **छिरकति** जल अपनैं अपनैं रंग... (सूरदास, सू. सा., १०।१७५३)
छैल	छैल	बं. **छैल** कानु तुहुं सहजइ भोरि... (गोविंददास, प. क. त., पद १९११) हि. **छैल** छबीलौ मोहना... (सूरदास, सू. सा., १०।२८८०)
जनि, जनु	न	बं. चुम्बन बेरि **जनि** मुख मोड़वि... (गोविंददास, प. क. त., पद २३६) हि. **जनि** तेहि लागि विदूषहि केहू... (तुलसी, वि. प., पद १२६)
जेङ	जैसे	बं. मेहते **जेङ** बिजुरि गोप्यो... (गोपाल भट्ट, प. क. त., पद २८३३)

		हि. **ज्यों** करि कृपा पाउँ धारत हौं... (सूरदास, सू. सा., १०।४०५१)
झकोरे	झोंके	बं. दुइ दिगे दुइ सखि देइ **झकोरे**... (यदुनंदन दास, प. क. त., पद १५२९)
		हि. आवै सौंधे की **झकोरैं**... (सूरदास, सू. सा., १०।२८३९)
झगड़त	झगड़ा करता है	बं. **झगड़त** गोविन्ददास... (गोविंददास, प. क. त., पद १७४१)
		हि. बग उलूक **झगरत** गये... (तुलसी, रा. प्र., ६।६।२)
झाई	द्युति	बं. पहिर भूखण झलके **झाइरि** झलमलम्... (शिवराम, प. क. त., पद १५५७)
		हि. ससि महुं प्रगट भूमि कै **झाई**... (तुलसी, रा. च. मा.,लं. १२, पृ. ४०९)
झाकत	प्रलाप करना	बं. **झाकत** झीकये झर झर लोचने... (गोविंददास, प. क. त., पद १८८७)
		हि. एहि बिधि राउ मनहिं मन **झांखा** (तुलसी, रा. च. मा., अ. ३०, पृ. १९१)
टारल	विताया, टारा	बं. **टारल** है मन शिशिरक अंत... (गोविंददास, प. क. त., पद १७१८)
		हि. संभु सरासन काहुं न **टारा**.... (तुलसी, रा. च. मा.,बा. २९२, पृ. १४३)
ठाड़ई	खड़े होकर	बं. **ठाड़ई** थरहरि कांपि.... (उद्धवदास, प. क. त., पद २०३६)
		हि. सुनि सुर विनय **ठाढ़ि** पछताती (तुलसी,रा. च. मा., अ. १२, पृ.१८४)
ठाढ़ि	खड़ी	बं. दूरहि एकलि **ठाढ़ि**..... (भूपति, प. क. त., पद ४८३)
		हि. **ठाढ़ी** अजिर जसोदा अपनें.... (सूरदास, सू. सा., १०।१८८)
ठोर	स्थान	बं. तुलना दिवार नाहि **ठोर**.... (जगदानंद, प. क. त., पद १०३२)
		हि. बड़े ठेकाने **ठौर** को हौं.... (तुलसी, वि . प., पद २२९)
ढरकत	बहना	बं. **ढरकत** लोचन लोर.....

		(माधव घोष, प. क. त., पद ६६०) हि. ढीली पाग **ढरक** रही.... (नंददास, परिशिष्ट, पृ. ४०१)
ढारइ	ढालती है	बं. सुरधुनि वारि झारि भरि **ढारइ**... (गोविंददास, प. क. त., पद १५७९) हि. नारि चरित करि **ढारइ** आंसू (तुलसी, रा. च. मा., अ. १३, पृ. १८४)
ढीट	ढीठ	बं. **ढीट** कानाइ कतये भंगि जानत.... (गोविंददास, प. क. त., पद ५३६) हि. मैं जानति हौं **ढीठ** कन्हाई... (सूरदास, सू. सा., १०।१४२४)
ढेरि	ढेरि	बं. दास उद्धव, करत कुसुमक **ढेरि**.... (उद्धवदास, प. क. त., पद १५६१) हि. नेकु धका दैहैं ढैहैं ढेंलन की **ढेरी** सी... (तुलसी, कविता., लंका. १०)
तन	शरीर	बं. बाला धन **तन** बसन निभाइन... (गोपालदास, प. क. त., पद २९६६) हि. दुसह सांसति कीजै आगे दै या **तन** की... (तुलसी, वि. प., पद ७५)
तनि	अल्प, थोड़ा	बं. खेले **तनि** गदगद भाष...... (ज्ञानदास, प. क. त., पद १६९७) हि. तनक बदन बोलै **तनक** सौ बोल... (सूरदास, सू. सा., १०।१५२)
तलपइ	तड़पते हैं	बं. एछन दुहुं-मन **तलपइ** पुन पुन... (शेखर, प. क. त., पद २७२२) हि. **तलफत** विषम मोह मन माया। (तुलसी, रा. च. मा., अ. १५३, पृ. २४४)
ताहां	तहां	बं. जाहां नाहि ऐछन रस निरबहइ **ताहां** परिवाद.... (गोविंददास, प. क. त., पद २३५) हि. नाथ **तहां** कछु चारो..... (तुलसी, वि. प., पद ९४)
तु	तेरे	बं. **तु** बिनु सुखमय शेज तेजल... (गोविंददास, प. क. त., पद ५३१) हि. हो तो **तुव** निदेस तें न्यारो... (तुलसी, वि. प., पद ९४)

तुहुं	तुम भी	बं. सुन्दरि **तुहुं** बड़ि हृदय पाषाण... (वल्लभदास, प. क. त., पद ९७) हि. **तुहुं** सराहसि करसि सनेहू... (तुलसी, रा.च.मा., अ.३२, पृ.१९३)
तेरा	तेरा	बं. पंथ नेहारत **तेरा**... (गोविंददास, प. क. त., पद ३१८) हि. तुलसी पर **तेरी** कृपा.... (तुलसी, वि. प., पद ३४)
तो	तुम्हारे	बं. **तो** बिनु आकुल कानाई.... (ज्ञानदास, प. क. त., पद ९५) हि. मो समान आरत नहिं, आरतिहर **तोसों** (तुलसी, वि. प., पद ९७)
थारि	खड़ी, ठाढ़ी	बं. कानु द्वार माहा **थारि**... (शेखर, प. क. त., पद २४०) हि. **ठाढ़ी** अजिर जसोदा अपनें... (सूरदास, सू. सा., १०।१८८)
थिर	स्थिर	बं. सखिर बचने धनि **थिर** कर चीत.... (यदुनंदनदास, प. क. त., पद २२१) हि. लषन कह्यौ **थिर** होहु धरनि... (तुलसी, गी. ब., १।८८।४)
दीजै	दीजिये	बं. तनु मन धनहु निछायरि **दीजे**... (उद्धवदास, प. क. त., पद २८५८) हि. **दीजै** कान्ह कांधे कौ कंवर... (सूरदास, सू. सा., १०।१९९१)
दुहुं	दोनों	बं. दुहुं रूप निति निति **दुहुँ** हिये जाग (गोविंददास, प. क. त., पद २८७) हि. वेद बिहित कुलरीति कीन्हि **दुहुं** कुलगुर (तुलसी, जा. मं., छंद १४२)
दे	देह	बं. स्वपन देखिलुं जे, श्यामल वरण **दे**.... (ज्ञानदास, प. क. त., पद १४४) हि. सेव्य सहित सनेह **देह** भरि... (तुलसी, वि. प., पद २२)
न	बहु वचन की बिभक्ति	बं. तेज मन हरि-विमुखन के संग... (माधो, प. क. त., पद ३०३५) हि. तजो मन हरि बिमुखनि को संग

		(सूरदास, सू. सा., १।३३२)
नदहिं	नाद करते हैं	बं. **नदहि** विहग-पांतिया... (बलराम, प. क. त., पद २४९७)
		हि. बधाये ब्रज नित नए, **नादत** बाढ़त सब.... (तुलसी, कृ. गी., पद १६)
नयना	नैन, नैत्र	बं. अंजने रंजलुं ए दुइ **नयना**.... (गोविंददास, प. क. त., पद २७३८)
		हि. प्रभु सोभा सुख जानहिं **नयना**... (तुलसी, रा.च.मा., उ.८८, पृ.५३७)
नओल	नवल	बं. **नओल** नओल नओ रंगमे.... (शिवराम, प. क. त., पद १५५७)
		हि. **नवल नेह**-नव पिया नयो-नयो. . . . (सूरदास, सू. सा., १०।६९१)
नह्नि	नन्ही, छोटी	बं. बुंद सुंदर **नह्नि नह्नि**... (शिवराम, प. क. त., पद १५५७)
		हि. ठाढ़े हरि हंसत **नान्हि** दँतियनि छबि छाजै... (सूरदास, सू. सा., १०।१४६)
निचोरि	निचोड़ कर	बं. को रस नेल **निचोरि**... (रायशेखर, प. क. त., पद २५१५)
		हि. बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत **निचोरि**... (तुलसी, रा. च. मा., बा. १०९, पृ. ५९)
निपट	नितांत	बं. माधव **निपट** कठिन मन तोर (भूपति, प. क. त., पद ४७८)
		हि. बिबरन भएउ **निपट** नरपालू... (तुलसी, रा.च. मा., अ.२९, पृ. १९१)
नौतुन	नूतन	बं. नितुइ **नौतुन** रंग... (ज्ञानदास, प. क. त., पद ९१९)
		हि. जिमि **नूतन** पट पहिरइ नर... (तुलसी, रा.च.मा., उ. १०९, पृ. ५५१)
पियारि	प्रिया	बं. प्राण-**पियारि** पदवि परिपालइ... (गोविंददास, प. क. त., पद ५५३)
		हि. ससुरारि **पिआरि** लगी जबतें...

		(तुलसी, रा. च. मा., उ. १०१, पृ.५४४)
पेड़ा	मिठाई विशेष	बं. पुरि पुया खाजा, **पेड़ा** सरभाजा (शेखर, प. क. त., पद २५९५)
बनओआरि	बनवारी	बं. चीर हरण नागर **बनओआरि...** (गोपालदास, प. क. त., पद २९६६) हि. मथुरा जन्म लियो **बनवारी....** (गोविंद, की. र., भाग बीजो, पृ. ८९)
भरोसा (भरसा)	विश्वास	बं. दास मनोहर करत **भरोसा.....** (मनोहरदास, प. क. त., पद २८७०) हि. नाथ दैव कर कवन **भरोसा...** (तुलसी, रा. च. मा., सुं. ५१, पृ.३९६)
मनहि मन	मन ही मन	बं. भाविनि-भाव, **मनहिं मन** गणइते... (गौरसुन्दरदास, प. क. त., पद १८८) हि. **मनहि मन** अक्रूर सोच भारी... सूरदास, सू. सा., १०।३०१२)
मोतियन	मोती	बं. उरे **मोतियनकि** माल... (कृष्णदास, प. क. त., पद २८६०) हि. **मोतिनि** सहित नासिका.. (सूरदास, सू. सा. १०।१०५)
रंगीले	रसिक	बं. रंग **रंगिले** रंग बिहरे.. (राय बसंत, प. क. त., पद २९२१) हि. तिहूं काल तिनको भलों जे राम **रंगीले**.. (तुलसी, वि. प., पद ३२)
संत	सज्जन	बं. **संत** बसंत पुजायल घरे घरे.. (ज्ञानदास, प. क. त., पद १४९२) हि. **संत** समाज पयोधि रमासी.. (तुलसी, रा. च. मा., बा. ३१, पृ. २०)
हो	प्रत्यय विशेष	बं. निके बनि आये **हो** नंद-दुलाल (गोविंददास, प. क. त., पद २४२५) हि. प्यारे नंदलाल **हो** (सूरदास, सू. सा., १०।१८२४)

२. गौड़ीय वैष्णव पदावली में हिन्दी वाक्य विन्यास

ए घनि मानिनि मान निवारो.. द्विज हरिदास, प. क. त., पद १४६९

राधा प्यारि सह खेलत नंददुलाल.. उद्धव, प. क. त., पद १४७१

जय जय राधे जि शरण तोहारि..	मनोहरदास, प. क. त., पद २८७०
एछन आरति जाङ बलिहारि..	मनोहरदास, प. क. त., पद २८७०
खोजति फिरति जननि यशोमति..	बलरामदास, प. क. त., पद २४८७
जय जय मंगल आरति दुहुंकि..	बलदेवदास, प. क. त., पद २८४२
श्याम-गोरि छबि उठत झलकि..	बलदेवदास, प. क. त., पद २८४२
नागर नाचत नागरि संग..	राय वसंत, प. क. त., पद २९२९
देख सखि झुलत राधा श्याम..	उद्धव, प. क. त., पद १५६१
दुहुं लोचन भरि जो हरि हेरइ..	गोविन्ददास, प. क. त., पद २३४
माधव मनमथ फिरत अहेरा..	गोविन्ददास, प. क. त., पद ३१८
पंथ नेहारत तेरा..	गोविन्ददास, प. क. त., पद ३१८
खेलत नओल किशोरी..	शिवरामदास, प. क. त., पद १४४१

३. बंगाली पद संग्रहों में हिन्दी मिश्रित पद

(१)

धनि धनि गोवर्धन दास, धनि चांदपुर ग्राम ।
धनि गोवर्धन को पुरोहित आचार्य बलराम ॥
जछू गृह कयल धनि साधुत हरिदास ।
साधन भजन कयल बहु रघु जछुक पाश ॥
गोवर्धनक नंदन रघुनाथ अतहु महत् ।
हरिदास नियड़े पड़ल भागवत ॥
साधन भजनक भेद बताओये भवाम्बुधिक भेला ।
जेछा गुरु हरिदान जीउ तेछा रघुनाथ चेला ॥
धन दौलत कोठा एमारत सबहु सम्पद छोड़ि ।
भरा जौवन में रघुनाथ दास भेगेल भिखारी ॥
देश देशांतर घुमि घुमि वृंदावन चले शेष ।
कठोर साधन कयल कत अस्थिचर्म शेष ।
राधाकृष्ण भजि भजि देह कयल पात ।
राधावल्लभ सो पदपल्लव सदाइ धरत माथ ॥

(राधावल्लभदास, गौ. प. त., ६।३।३७)

(२)

देख देख प्रीतम प्यारिक सोहागे ।
स्वहस्ते बीड़ श्याम देत,
खंडित आध आप लेत .
पोंछत पट पीत पीक
अतिशय अनुरागे ॥
कांचन के गड़त काण
भांति भांति राखत मान
निरखत बदनारविंद
पलकन नाहिं लागे ॥
कुंज में रस-पुंज केलि
धाण पाओये चछकि झोलि
दुहुं श्रीमुख ताम्बुल पाइ
आगरओआली भागे ॥ (आगरओ आली प. क. त., पद २८३४)

(३)

जय राधे श्री राधे कृष्ण श्री राधे जय राधे ।
नंदनंदन वृष-भानु-दुलारि सकल-गुण-अगाधे ॥

नव-घन-सुंदर नओल किशोरि निज-गुण हीतम साधे।
चांचर केशे मउर शिखंडक कुंचित केशिनि जादे ।।
पीताम्बर-धर ओढ़ नील शाड़ि घन सौदामिनि राजे।
कानु-गले बनमाला विराजित राइ-गले मोति साजे ।।
अरुणित चरणे मंजिर रंजित खंजन-गंजन लाजे।
कृष्णदास भणे श्री वृंदावने युगल-किशोर विराजे ।।

(कृष्णदास, प. क. त., पद २८५९)

(४)

सोङरो नव गौरचन्द्र
नागर बनयारि।
नवद्वीप इन्दु करुणासिंधु
भक्त-वत्सलकारी ।।
वदन-चन्द अधर रंग
नयने गलत प्रेम तरंग
चन्द्र कोटि भानु कोटि
शोभा निछयारि ।
कुसुम-शोभित चांचर चिकुर
ललाटे तिलक नासिका उजोर
दशन मोतिम आमिया हास
दामिनी घरयारि ।।
मकर-कुंडल झलके गंड
मणि-कौस्तुभ दीप्त कंठ
अरुण वसन करुण वचन
शोभा अति भारि ।
माल्य-चन्दन-चर्चित अंग
लाजे लज्जित कोटि अनंग
अगंद वलया रतन नूपुर
यज्ञ सूत्रधारि ।।
छत्र धरत धरणि-धरेन्द्र
गाओत यश भकत वृंद
कमला सेवित पाद द्वन्द्व
बलिये बलिहारि ।
कहत दीन कृष्णदास
गौर-चरणे करत आश
पतित-पावन निताइ चांद
प्रेम दानकारी ।। (कृष्णदास, प. क. त., पद १०८५)

(५)

जय राधे कृष्ण गोविंद गोपाल ।
गिरिवर-धारी, कुंज बिहारी, ब्रज-जीवन नंदलाल ॥
सुरंग पाग शिरे टेढ़ि शोभे बांके नयन विशाल ।
ता पर मयूर-चन्द्रिका विराजे रतनकि पेच रसाल ॥
घुंगुरओआलि अलके झलके उरे मोतियनकि माल ।
मुरलि बाजाओये रीझ रिझाओये शुनि धनि रहत सांभाल ॥
नासाय मुकुता वेशर झलके मद-गज-मधुरिम चाल ।
कृष्णदास प्रभु एइ कृपा किजे भेट मोहे मदन गोपाल ॥ (कृष्णदास, प. क. त., पद २८६०)

(६)

जय राधा गिरिवर धारि ।
नंदनंदन वृषभानु-दुलारि ॥
मोर-मुकुट मुख मुरली जोरि ।
वेणि विराजे मुखे हासि थोरि ॥
उनकि शोहे गले वन-माला ।
इन कि मोतिम-माल उजाला ॥
पीताम्बर जग जन-मन-मोहे ।
नील उढ़नि बनि उनकि शोहे ॥
अरुण-चरणे मणिमंजिर बाओये ।
श्रीकृष्णदास ताँहि मन भाओये ॥ (कृष्णदास, प. क. त., पद २८६१)

(७)

श्री राधे कृष्ण गोविंद हरे ।
गोपीनाथ मदन-मोहन-वर
युगल-किशोर रसिक मुरलीधर
राधा-वल्लभ प्रेम-सुधाकर
छयल छबीले रस बरसीले
रूपे मदन-मन मोहे ।
श्री ब्रज-विनोद माधव गिरि-धारि
चीर-हरण नागर बनओआरि
ललित त्रिभंगी कुंज बिहारि
रूप उजागर रति-सुख-सागर
ललित विभूषण शोहे ॥
धोक-विलासी गोकुल-वासी
अभरण अंग-अंग परकाशी
त्रिभुवन-तिलक कला-मधुराशी
लाला लाड़लि रूप-रसायन
सब सखिगण-मन मोहे ।

बाला घन तन वसन निभाङन
भामा निजपति-मोद बाढ़ायन
चंपक-वरणी रिझाओन
विमल-जोति अपरश मन मोहे ।
ब्रजपति-बाल लाल मद-नायक
परम प्रवीण प्रेम-सुखदायक
पूरल मनकि भई विधायक
रूप शिल गुण ताहे सुंदर कोहे ।
राधा रमणी प्यारिक मोहन
श्यामा श्याम रहत निति गोहन
अलक लड़ा जब वेणी शोहन
श्रीगोपाल दास प्रभु जोहन जोहे ।।
(गोपालदास, प. क. त., पद २९६६)

(८)

देख रि सखि कङल नयन कुंज में विराज हें ?
वामेते किशोरि गोरि, अलस-अंग अति विभोरि
हेरि श्याम-वयन-चंद मंद, हास हें ।
अंगे अंगे वाहे भीड़, पुछत बात अति निवीड़
प्रेम-तरंगे ढरकि पड़त, कङल मधुप संग हें ।
शारि शुक, पिकु करत गान भमरा भमरि धरत तान
शुनि धनि धनि उठि बैठत, चोर चपल जात हें ।
श्रीगोपाल भटट आश, वृंदावन कुंजे वास
शयन सपन नयन हेरि, भूलल मन आप हें ।।
(गोपाल भटट, प. क. त., पद १०८८)

(९)

वृषभानु-नन्दिनिते, मन-मोहन, केमन लागि बसि ।
पाण खाओत पिक, गीमते ढरकत, झलक जेङ जावक-सिसि ।।
मधुरिम हास, वसनते झांपि शोहत, मेहते जेङ बिजुरि गोप्यो ।
कंठहि लोलत, मोतिम हार, कनक मुकुरे जेङ तारक रोप्यो ।।
शाङर-चीत, उनते नागिओ, पलकन नारे आंखि ।
यूथ यूथ, मनमथ झूलत, गोपालभट्ट इये साखि ।।
(गोपाल भट्ट, प. क. त., पद २८३३)

(१०)

आजु बनि नव अभिषेक गोविंद कि ।
परमानन्द प्रेम-सुख-कन्दकि ।।

झलकत नील-नलिनि मुख-शोहा ।
हेरइते अखिल भुवन-मन-मोहा ॥
गोरस दधि घृत हलदिक नीरे ।
गागरि भरि भरि ढारइ शिरे ॥
बाजत घंटा ताल मृदंग ।
जय देइ सुर नारीगण रंग ॥
बलि बलि जातहि चरणारविंद ।
परमानंदके पहु श्री गोविंद ॥

(परमानंद, प. क. त., पद १५८५)

(११)

आरति युगल किशोरि कि कीजे ।
तनु मन धनहुं निछायरि दीजे ॥
पहिला नील पिताम्बर शाहि ।
कुंज बिहारिनि कुंज बिहारि ॥
रवि शशि कोटि बदन अछु शोभा ।
जो निरखिते मन भेओ अति लोभा ॥
रतने जड़ित मणि माणिक मोति ।
डगमग दुहुं तनु झलकत जोति ॥
नंद नंदन वृषभानु किशोरि ।
परमानंद पहु जाउ बलिहारि ॥ (परमानंद, प. क. त., पद २८५८)

(१२)

आरति जय वृषभानु-कुमारि ।
झलकत मुख-शोभा उजियारि ॥
कपुरक बाती रतनके थारि ।
करे लइ ललिता प्राण-पियारि ॥
बदन कमल सजे करु निछयारि ।
सहचरिगण करु जय-जय-कारि ॥
मंगल गाओत देइ करतारि ।
बरिखे कुसुन सब नविन-कुमारि ॥
चरण-कमल नख-चांद नेहारि ।
परमानंद जिवन बलिहारि ॥

(परमानंद, प. क. त., पद २८७१)

(१३)

तेज मन हरि-विमुखन के संग ।
जाको संगहि कुमति उपजतहिं भजनहि पड़त विभंग ॥

सतत असत-पथ लेइ जो जायत उपजत कामिनि संग।
शमन-दूत परमायु परीखत दूरहिं नेहारत रंग ॥
अतये से हरि-नाम सार परम मधु पान करह छोड़ि ढंग ॥
कह माधो हरि-चरण-सरोरुहे माति रहु जनु भृंग ॥

(माधो, प. क. त., पद ३०३५)

(१४)

जय जय रूप महारस-सागर।
दरशन परशन वचन रसायन आनंदहुके गागर ॥
अति गंभीर धीर करुणामय प्रेम-भकतिक आगर।
उज्जल-प्रेम-महामणि प्रकटित देश गौड़ वैरागर ॥
शतगुण-मंडित पंडित-रंजन वृंदावन-निज-नागर।
किरिति बिमल यश शुनतहिं माधो सतत रहल हिये जागर ॥

(माधो, प. क. त., पद २३६५)

(१५)

जङ कलि रूप शरीर ना धारत।
तङ ब्रज-भूतल प्रेम-महानिधि कोङन कपाट उघाड़त ॥
निर खिर हंसन पान विधायन कोङन पृथक करि पारत।
को सब तेजि भजि वृंदावन को सब ग्रंथ विचारत ॥
जदपिओ बनफुल फलत नानाविध मन-राजी-अरविंद।
सो मधुकर विने पान को जानत विद्यमान मकरंद ॥
को जानत मथुरा वृंदावन को जानत ब्रज-नीत।
को जानत राधा-माधव-रति को जानत सोइ प्रीत ॥
जाक चरण परसादे सकल जन गाइ गाओयाइ सुख पाओत।
चरण कङले शरणागत माधो तब महिमा उर लागत ॥

(माधो, प. क. त., पद २३६४)

(१६)

धन्य गोकुल धन्य मथुरा धन्य यदुकुल-अवतरी।
धन्य यमुना-नीर शीतल गोयाल-बाल सखा बली ॥
मथुरामे केशो राय विराजे गोकुले बालमुकुंद जी।
श्री वृंदावनमे मदनमोहन गोपीनाथ गोविंद जी ॥
नंद-नंदन जगत-वंदन श्रीवृषभानु-नन्दिनी।
आगम जाको पार ना पाओये सुर-मुनि-गण वन्दिनी ॥
नओल युगल-किशोर मोहन दुलह दुलहिनि भाङनी।
भक्त-जन-मन-हारि लावणि तिन लोके यश गाओनि ॥
राम कृष्ण गोविंद माधव वासुदेव सुलोचनं।
भक्ति आपना देहि माधो लेहि ए भव-तारणं ॥

(माधो, प. क. त., पद २९६८)

(१७)

हरत सकल संताप जनम को, मिटत तलप यम कालकि ।
आरति किये मदनगोपालकि ॥
गोघृत रचित कपूरकि बाति झलकत कांचन थारकि ।
घंटा ताल मृदंग झांझरि बाजत वेणु विषाणकि ॥
चन्द्र-कोटि ज्योति भानु-कोटि-छवि मुख-शोभा नंदलालकि ।
मयुर-मकुट पिताम्बर शोहे उरे वैजयंति-मालकि ॥
चरण-कमल पर नपुर बाजे आज रि कुसुम गुलाबकि ।
सुन्दर लोल कपोलक छबिसों निरखत मदनगोपालकि ॥
सुर-नर-मुनिगण करतहि आरति भक्त-वत्सल-प्रतिपालकि ।
हुं बलि बलि रघुनाथ दास प्रभु मोहन गोकुल-बालकि ॥

(रघुनाथ दास, प. क. त., पद २८६९)

(१८)

जय जय श्री जयदेव दयामय पद्मावति-रति-कांत ।
राधा-माधव-प्रेम-भकति-रस उज्जल मुरति-नितांत ॥
श्रीगीतगोविंद ग्रंथ सुधामय विरचित मनहर छंद ।
राधा गोविंद-निगुढ़-लीला-गुण-पद्मावलि-पद-वृन्द ॥
केन्दुविल्व वर धाम मनोहर अनुखन करये विलास ।
रसिक-भकतगण जो सरवस-धन अहनिशि रहु तछु पाश ॥
युगल-विलास-गुण करु आस्वादन अविरत भावे विभोर ।
दास रघुनाथ इह तछु गुण वर्णन कीये करव लव ओर ॥

(रघुनाथ दास, प. क. त., पद २३८७)

(१९)

ए दुहुं मंगल-आरति कीजे । मंगल नयने निरखि सुख लीजे ॥
मंगल-आरति मंगल-थाल । मंगल राधा मदन गोपाल ॥
श्याम गोरि दुहुं मंगल-राशि । मंगल-जोति मंगल परकाशि ॥
मंगल-शंखहि मंगल-निसान । सहचरिगण करु मंगल-गान ॥
मंगल-चामर मंगल उदगार । मंगल-शबदे करये जयकार ॥
मंगल-सुखे केहु काहु बाखान । कह रामराय तहिं भगवान ॥

(रामराय, प. क. त., पद २८४४)

(२०)

नओल नओल नओ रंगमे
सुख शोहानि सव संगमे ॥
रस-माधुरि धरु अंग में ।
दउ नृत्यत प्रेम-तरंग में ॥
उह संगे भामिनि दमके दामिनि
मधुर यामिनि अति बनि

सुभग शाङन बरिखे भाङन
बुंद सुंदर नह्नि नह्नि
बदत मोर चकोर चातक
कीर कोयिल अनगणि ।
रटत दरदर तोये दादुर
अम्बुदाम्बरे गरजनि ॥
गाओये सखि रि जोरि जोरि ।
रस हेरि हासइ थोरि थोरि ॥
थोरि थोरि चंग उपांग आओज
बाजे पाखायज झि झि झिनां ।
झनन झन नन झाग्ना झागर् नन
नागर्धि नागर्धि दिमि दिनां ॥
उह दृष्टि ठेरण पहिर भूषण
झलके झाइरि झलमलं ।
उघट घट घट थो दिग् दिग्
थो दिग् दिग् दिग्
थुंग थुंग ति धि धि धि नं ॥
बाजे धूं धूं धीना ।
स्वर-मण्डल बांशरि वीणा ॥
बर वीण ताल प्रवीण पूरल
प्रेम-भरे हिया हरखनि ।
मणि-विन्दु शरद-इन्दु
करत अमृत बरखनि ॥
हंस सारस बदत पावस
चारु चातक रस-घनि ।
विहरे जे जन शिवराम के प्रभु
परम सुघड़ शिरोमणि ॥ (शिवराम, प. क.त., पद १५५७)

(२१)

गोविन्द मुखारविंद निरखि मन विचारों ।
चन्द्र कोटि भानु कोटि मदन कोटि ओयारों ॥
सुन्दर कपोल लोल पंकज दल-नयना ।
अधरबिम्बु मधुर हास कुंदकलिक-दशना ॥
मणि-कुंडल मकराकृत अलक-भृंगपुंजा ।
केशरको तिलक वैनो सोणे मड़ि गुंजा ॥
नव जलधर तड़िदम्बर गले बनमाला शोहे ॥
लीला-नट सूर के प्रभु रूपे जग-मन-मोहे ॥ (सूर, प. क. त., पद १०८६)

मिश्रित भाषा : ब्रजबुलि

ब्रजबुलि को बंगाल की एक साहित्यिक बोली मानना अधिक उचित होगा। यद्यपि यह गौड़ीय वैष्णव पदावली के एक बहुत बड़े भाग की प्रयुक्त भाषा है, फिर भी यह बंगाली भाषा नहीं है। यह सोलहवीं शती में प्रचलित एक कृत्रिम साहित्यिक भाषा है। इस भाषा का जन्म बंगाल में ही हुआ और गौड़ीय पदकर्त्ताओं ने उसे विकसित भी किया। इस भाषा का जन्म विद्यापति की भाषा के अनुकरण में हुआ, यह कहना अनुचित न होगा। बंगाली विद्वत् समाज में और प्रधानतया वैष्णव भक्तों में ये पद अत्यन्त लोकप्रिय थे। इन पदों में राधा-कृष्ण-लीला वर्णित थी अत: गौड़ीय भक्तों ने इन भावों के साथ-साथ भाषा को भी अपने ढंग से अपनाया। मैथिली इस ब्रजबुलि की आधारभूत भाषा है; हिन्दी और ब्रजभाषा का मिश्रण लिए हुए तत्कालीन बंगला भाषा ने उसका ऊपरी विन्यास प्रस्तुत किया।[1] ब्रजबुलि बंगला भाषा का हिन्दी से युक्त अथवा मिश्रित स्वरूप है।[2] फिर भी ब्रजबुलि को ब्रजभाषा से मिलाना उचित नहीं है। ब्रजबुलि के इस नामकरण का कारण साधारण रूप से यही है कि इस भाषा में रचित साहित्य प्राय: सब का सब राधा-कृष्ण लीला से सम्बन्धित है अत: इस भाषा को इसी ब्रजधाम से सम्बन्धित नाम दिया गया, जो कृष्ण की लीला-भूमि है।

ऐसा ज्ञात होता है कि ब्रजबुलि का प्रारम्भ पंद्रहवीं शती के उत्तरार्ध अथवा सोलहवीं शती में हुआ है। ब्रजबुलि का जो सर्वप्रथम पद प्राप्त है, वह यशोराज खान द्वारा रचित है और हुसेन शाह को समर्पित है। हुसेन शाह गौड़ के अधिपति थे और ईसवी सन् १४९३ से १५१९ तक शासक थे। यशोराज खान का पद इसी बीच में लिखा गया रहा होगा। प्रारम्भिक अवस्था में यह भाषा मैथिली और बंगाली का एक विचित्र सा मिश्रण रही परन्तु आगे चल कर इसका रूप स्थिर हुआ और यह अत्यन्त विकसित हुई और इसमें प्रचुर साहित्य रचा गया।

ब्रजबुलि का रूप अथवा संक्षिप्त व्याकरण

ब्रजबुलि का विस्तृत व्याकरण प्रस्तुत करना अप्रासंगिक है। केवल संक्षिप्त रूप-रेखा-मात्र यहां दी जा रही है। इससे इस पर का हिन्दी प्रभाव कुछ अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

उच्चारण

स्वरों का—दीर्घ स्वर जैसे आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ का सर्वदा दीर्घ उच्चारण नहीं होता। इसी प्रकार संयुक्ताक्षर के पूर्ववर्ती अक्षर का भी कभी-कभी दीर्घ उच्चारण नहीं होता। ऐसा हिन्दी में भी होता है।

उदाहरण—ब्र० बु० सहजे नुनिक पुतलि गोरि. जारल विरह-आनले तोरि. . .

(प. क. त., पद ४१)

---

1. "Maithil is the basic part, while Bengali, with oddments of Hindi and Brajabhaka forms the superstructure."
Sukumar Sen, A History of Brajbuli Literature, p. 1.
2. "Brajbuli which is a thoroughly Hindi-ized form of Bengali."
D. C. Sen, Bengali Language and Literature, p. 600.

अवधी—भारी भुजा भरी भारी सरीर...(तुलसी, क. व., लं. ३३)
ब्र. भा.—स्यामा स्याम खेलत दोउ होरी . . . (सूरदास, सू. सा., १०।२९१०)

वचन

द्विवचन— मैथिली, हिन्दी, बंगला इत्यादि अपभ्रंश से बनी भाषाओं के समान ही ब्रजबुलि में द्विवचन का कोई चिह्न विशेष नहीं है। दुहुं वा 'दोन' शब्द का प्रयोग करके द्विवचन का बोध कर लिया जाता है।

उदाहरण— ब्र. बु.— **दुहुं** लोचन भरि जो हरि हेरइ........
(गोविन्ददास, प. क. त., २३४.)
अवधी— दिन दूसरे भूप-भामिनि **दोउ** भईं सुमंगल-खानी......
(तुलसी, गी. व., बा., पद ४.)
ब्र० भा०— धर्म-अंकुर के पावन **द्वै** दल मुक्ति-वधू-ताटंक......
(सूरदास, सू. सा., १।९०)

बहुवचन— हिन्दी के समान ब्रजबुलि में भी बहुवचन का कोई चिह्न नहीं है। 'सब' या 'गण' आदि लगा कर बहुवचन का बोध कर लिया जाता है।

उदाहरण— ब्र. बु.— **सखीगण** तथि करिया जुगति......
(प. क. त., पद २८०१.)
अवधी— आरत लोगु राम **सब** जाना......
(तुलसी, रा. च. मा., अ. २४४, पृ० २८३.)
ब्र. भा.— नाचत बाबा नंदजू संग लिये **सब** ग्वाल......
(की. र., भाग १, पृ. ८३.)

कारक

कर्ता कारक— ब्रजबुलि में कर्ता कारक के एक वचन में प्रायः कोई कारक चिह्न प्रयोग नहीं किया जाता। कहीं कहीं 'ए' विभक्ति देखी जाती है। हिन्दी में भी ऐसा देखा जाता है।

उदाहरण— ब्र. बु.— निरमल गौर तनु, कषिल कांचन जनु,
हेरइते **मे गेलुं भोर**......
(प. क. त., पद २८)
ब्र. भा.— ऊँचौ गोकुल नगर, जहां **हरि खेलत** होरी......
(सूरदास, सू. सा., १०।२८७०)
अ०— बोली चतुर सखी मृदु बानी।......
(तुलसी, रा. च. मा., बा. २५६, पृ. १२६)

कर्मकारक— कर्मकारक के लिए भी ब्रजबुलि में प्रायः कोई विभक्ति चिह्न प्रयोग नहीं किया जाता है। बहुधा अर्थ द्वारा ही कर्ता से कर्म की पहिचान की जाती है। हिन्दी में भी ऐसा है।

उदाहरण— ब्र. बु.— शची बोले **विश्वम्भर आमि ना देखिलुं**......
(वासुदेव घोष, प. क. त., पद ११५१)
ब्र० भा०— देखि-देखि **राधा सी बाम**......
(सूरदास, सू. सा., १०।२१३५)
अ०— चले रामु **त्यागा बन सोऊ**।......
(तुलसी, रा. च. मा., अर. ३७, पृ. ३४६)

करणकारक— करण कारक में 'ए', 'हिं' 'हिं' विभक्ति चिह्नों का प्रयोग ब्रजबुलि में मिलता है। हिन्दी में प्रायः 'पै', 'तैं' इत्यादि विभक्ति चिह्न मिलते हैं। कहीं कहीं 'ही' भी आया है।

उदाहरण— ब्र. बु.— कँछे चरणे कर पल्लव ठेलालि।
(प. क. त., पद ४६८)
झर झर लोरहिं लोलित काजर......
(गोविन्ददास, प. क. त., पद ४०)
ब्र० भा०— राधा तैं उपकार भयौ यह दुर्लभ दरसन भयौ तुम्हारौ
(सूरदास, सू. सा., १०।२१६६)
अ०— तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी :
(तुलसी, रा. च. मा., अर. ३८, पृ. ३४७)
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न **बागहीं**।
(तुलसी, रा. च. मा., लं. ९०, पृ. ४६०)

अपादान कारक—अपादान कारक में 'से' और 'सजे' विभक्ति चिह्नों का प्रयोग ब्रजबुलि में मिलता है। हिन्दी में 'तैं' विभक्ति चिह्न मिलता है।

उदाहरण— ब्र. बु.— **बन सजे** आओत नन्ददुलाल।
(मोहनदास, प. क. त., पद १२०९)
ब्र. भा.— मुरली लई कर तैं छीनि......
(सूरदास, सू. सा., १०।२१४४.)
अ.— सुमन बृष्टि अकास तें होई।
(तुलसी, रा. च. मा., बा. १९४, पृ. ९८)

संबंध कारक— संबंध कारक के लिए ब्रजबुलि में प्रायः 'क' 'का' 'कि' 'को' अथवा 'के' विभक्ति-चिह्न प्रयोग किए जाते हैं। परन्तु इनका अकारांत अथवा इकरांत होना लिंग भेद पर निर्भर नहीं करता। हिन्दी में 'का' 'की' 'के' इत्यादि संबंध कारक के चिह्न आकारांत अथवा ईकारांत लिंग के अनुसार होते हैं। मैथिली में ब्रजबुलि का सा प्रयोग है।

उदाहरण— ब्र. बु.— दश दिन दुरजन एक दिन **सुजनक** :
(ज्ञानदास, प. क. त., पद २३०)
काहां गोवर्द्धन यमुना **को** कूल।
(शिवानन्द, भ. र., अ. १२)

जांके मंत्री अभिन्न कलेवर रामचन्द्र कविराज।
(गोविन्ददास, प. क. त., पद ११)

ब्र. भा.— लोचन नहिं ठहरात स्याम के कबहूं बनिता के इक अंग।
(सूरदास, सू. सा., १०।२१३६)

अ.— **जिन्ह कें** जस प्रताप के आगे।
(तुलसी, रा. च. मा., बा. २९२, पृ. १४३.)

अधिकरण कारक—ब्रजबुलि में 'ए' 'हि' 'हिं' प्राय: अधिकरण कारक के विभक्ति चिह्न रूप में प्रयोग किए जाते हैं। अनेक स्थलों पर 'मध्य' शब्द का तद्भव रूप 'माहा' 'माह' और 'माझे' चिह्न भी मिलते हैं।
कहीं कहीं विभक्ति चिह्न नहीं भी प्रयोग होता।[1] ऐसा हिन्दी में भी पाया जाता है।

उदाहरण— ब्र. बु.— भूमे पड़ि कहे काहां मुरली.
(भ. र., अ. १२)

मरमहि श्यामर, परिजन पामर।
(गोविन्ददास, प. क. त., पद ४०)

सो रस-जलधि **माझे** मणि-गेह।
(गोविन्ददास, प. क. त., पद २७)

अ.— ......पहुँचा ऐसि छन **माझ** निकेता।
(तुलसी, रा. च. मा., बा. १७१, पृ. ८६)

ब्र. भा.— समुझि मनहिं मुसुकाहीं।
(सूरदास, सू. सा., १०।२१३८)

सर्वनाम

समस्त भाषाओं के सर्वनामों के रूपों में उन भाषाओं की विशेषता व्यक्त होती है। सोलहवीं शती के ब्रजबुलि पद-साहित्य में प्रयुक्त सर्वनामों में और उसी शती के ब्रज और अवधी सर्वनामों में प्रचुर साम्य पाया जाता है। सतीशचंद्र राय ने इस संबंध में ठीक ही कहा है कि ब्रजबुलि सर्वनामों की विशेषता हिन्दी, मैथिल और बंगाली तीनों से प्रभावित है।[2] अपने अध्ययन के परिणाम-स्वरूप इन साम्यों के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ब्रजबुलि के सर्वनाम सोलहवीं शती के अनेक पद-कर्ताओं की रचनाओं से लिए गए हैं और उनका साम्य प्रतीक-रूप से सूरदास एवं तुलसीदास की रचनाओं से प्रदर्शित किया गया है। इन उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होगा कि सूर की ब्रजभाषा की अपेक्षा तुलसी की अवधी से इनमें अधिक साम्य है।

---

१. कविगण चमकये चीत······
सो धरि अधर सुनाऊं··· (सूरदास, सू. सा., पद १०।२१४१)

२. "एइ विशेषत्व किछु बांगला, किछु मैथिल ओ किछु ब्रजभाषाय प्रभाव जात"—प.क.त., परिशिष्ट पृ. २४०.

अस्मद् सर्वनाम

यद्यपि सोलहवीं शती के ब्रजबुलि साहित्य में ठेठ बंगाली सर्वनाम जैसे 'आमार' 'आमि' आदि का भी प्रयोग है, परन्तु यहां केवल वे ही अस्मद् सर्वनाम दिए जा रहे हैं, जिनका साम्य हिन्दी अस्मद् सर्वनामों से है।

ब्रजबुलि के सर्वनाम— हम, हाम, हम सब, हमें, हामैं, हमैं, हमसें, हमा सबे, हामक, मुझे, मोर, मझु, मो।

अवधी के सर्वनाम— हम, हमरे, हमार, हमरें, हमारा, हमारि, मोर, मैं मोहिं, मोहूं, मो, मोरा, मोरी।

ब्रजभाजा के सर्वनाम— हम, हमरौ, हमहि, हमारे, हमकौं, हमतें, हम सों, हमरि, हमरे, हमरैं, म, मैंने, मोहिं, मोय, मोकौं, मैरो, मोसौं, मोते, मोमैं, मोपै।

उदाहरण

हम

१. ब्र. बु. — अब तोहे चीनलुं **हाम**—प. क. त., ८५८.
अ. — बिनु पंखन्ह **हम** चहहिं उड़ाना—रा. च. मा., बा. ७८, पृ० ४३.
ब्र. भा.— **हम** तुम एकै ज्ञाति—सू. सा., १०।३६.
२. ब्र. बु. — हठ यदि करह **हामाय**—हि. ब्र. बु., पृ. २०९.
अ. — हम सन सत्य मरमु सब कहहू—रा. च. मा., बा. ७८, पृ. ४३
३. ब्र. बु. — **हामारि** ओरे नाहि चाह—प. क. त., पद ४६८.
अ. — **हमरि** बेर कस भयो कृपनितर—वि. प., पद ७.
ब्र. भा.— तुम्हें **हमारी** लाज-बड़ाई—सू. सा., १।१७०.
४. ब्र. बु. — आपन तन कांचलि **हामैं** देयइ—क्ष. गी. चि. ६.
अ. — अब तों दादुर बोलिहैं, **हमें** पूछिहै कौन—दो., ५६४.
ब्र. भा.— **हम** नन्दनन्दन मोल, लिये—सू. सा., १।१७१.

मैं

१. ब्र. बु. — **मो** बड़ अधम दुराचार—प. क. त., पद ३०३०.
अ. — **मो** पर कीबे तोहि जो—वि. प्र., पद ३३.
ब्र. भा.— **मो** अनाथ के नाथ हरी—सू. सा. १।२४९.
२. ब्र. बु. — **मुञि** तो अति अधम—गौ. प. त., १।२।२७.
अ. — तौ **मैं** जाउँ कृपायतन—रा. च. मा., बा. ६१, पृ. ३५.
ब्र. भा.— **मैं** ब्रजबासिनि की बलिहारी—सू. सा., १०।४०५३.
३. ब्र. बु. — चलब **मोहे** छोड़—प. क. त., पद १६०१.
अ. — जौं महेसु **मोहि** आयसु देहीं।—रा. च. मा., बा. ६१, पृ. ३५.
ब्र. भा.— करि दै **मोहि** बड़ोई—सू. सा. १०।५६.
४. ब्र. बु. — हिया **मोर** कांदे—प. क. त., पद ७८४.
अ. — तन मन बचन **मोर** पनु सांचा—रा. च. मा., बा. २५९, पृ. १२८.

ब्र. भा. — आसति कान्ह जु **मोर**—सू. सा., १०।३२०.

५. ब्र. बु. — **मझु** लागि करबि उपाय—प. क. त., पद २८.

अ. — बार बार **मोहि** लागि बोलावा—रा. च. मा., बा. २७५, पृ. १३५.

६. ब्र. बु. — सरबस लेयलि **मोरि**—प. क. त., पद १९९.

अ. — तिन्ह महँ प्रथम रेख जग **मोरी**—रा. च. मा., बा. १२, पृ. ९

ब्र. भा. — खेलन अब मेरी (मोरि) जाइ बलैया—सू. सा., १०।२१७

७. ब्र. बु. — कि जान बल **मोके**—प. क. त., पद ८४५.

अ. — **मोको** और ठौर न—वि. प., पद १८१.

ब्र. भा. — **मोसौं** कहत मोल को लीन्हौ—सू. सा., १०।२१५.

युष्मद् सर्वनाम

ब्रजबुलि साहित्य में 'तुमि' 'तोमार' जैसे बंगला के ठेठ युष्मद् सर्वनाम भी पाए जाते हैं। यहां पर वे युष्मद् सर्वनाम दिए जा रहे हैं जिनका हिन्दी युष्मद् सर्वनामों से साम्य है।

ब्रजबुलि के सर्वनाम— तुहुं, तोहे, तोसों, तो सबे, तुहुँ सबे, तुया, तोर, तोहर, तोहे, तोहारि।

अवधी के सर्वनाम— तुम, तुमहि, तुम्ह, तुम्हरे, तुम्हार, तुम्हरी, तुम्हरो, तुम्हारे, तुम्हारा, तुम्हारो, तो, तोकहँ, तोको, तोहिं, तोहि, तोंहीं, तो ही, तैं, तोर, तोहार, तोहारे, तोरा, तोरी, तोरैं, तोरे, तोरि, तोहारा, तुव।

ब्रजभाषा के सर्वनाम— तू, तें, तूने, तैंने, तोहि, तोय, तोकौं, तेरो, तिहारो, तुम्हारो, तोसों, तोतें, तोहि तें, तोहिमें, तोमें, तोपै, तोहि, तुव।

उदाहरण

१. ब्र. बु. — **तुहुँ** भेल दोती—हि. ब्र. बु., पृ. १.

अ. — **तुहूँ** सराहसि करसि सनेहू—रा. च. मा., पृ. १९३.

ब्र. भा. — **तुहीं** पिय भावति नाहिन आन—सू. सा. १०।२५७८.

२. ब्र. बु. — एकलि **तोहारि** नाम—प. क. त., पद २१७.

अ. — परसु सहित बड़ नाम **तोहारा** (तुम्हारा ?)—रा. च. मा., बा. २८२, पृ. १३९.

ब्र. भा. — कहा गुन बरनौं स्याम **तिहारे**—सू. सा., १।२५

३. ब्र. बु. — रहत **तोहारि** आशोयासे—प. क. त. पद ९७.

ब्र. भा. — समुझि न परत **तिहारी** ऊधौ—सू. सा., १०।३५२९

४. ब्र. बु. — फूल माला दिब **तब** गले—हि. ब्र. बु., पृ. ९९.

अ. — **तुव** निदेस तें न्यारो—वि. प., पद ९४.

ब्र. भा. — कैसैं **तुव** गुन गावै—सू. सा., १।४२.

५. ब्र. बु. — सुंदरि तैखने कहलम **तोय**—प. क. त., पद ४३५.

ब्र. भा. — क्यों कहि आवत **तोइ**—सू. सा., पद १४५७.

६. ब्र. बु. — पंथ नेहारत **तेरा**—प. क. त., पद ३१८.
अ. — तुलसी पर तेरी **कृपा**—वि. प., पद ३४.
ब्र. भा. — **तेरी** लीला गावै—सू. सा., १०।२५७९.
७. ब्र. बु. — श्रवणे निवारलुं **तोर**—प. क. त., पद ४३५.
अ. — प्रनतपाल प्रन **तोर**—वि. प., पद ११३.

तद् सर्वनाम

ब्रजबुलि साहित्य में तद् सर्वनाम का प्रथम एकवचन 'सो' ब्रजभाषा से प्रभावित है। 'ताहा' इत्यादि बंगला तद् सर्वनामों का भी प्रयोग मिलता है। 'ओ' का प्रयोग एकवचन में तुलसीदास ने किया है। साम्य प्रदर्शक ये सर्वनाम यहां दिए जा रहे हैं।

ब्रजबुलि के सर्वनाम— सो, ताहे, ता सत्रे, तघु, ताक, ताकर, ताहे, तापर।
अवधी के सर्वनाम— ऊ, वै, ओ, ओह, ओहि, ओकर, ओहि कर, सो, सोइ, सोऊ, ते, तापर, ताके,, ताकी।
ब्रजभाषा के सर्वनाम— वह, वो, वाने, वाहि, वाय, ताहि, ताय, ताकौं, वाको, ताको, तासु, वासों, तासों, वातें, तातें, तापै, वापैं, तापैं। वापैं

उदाहरण

१. ब्र. बु. — ओ अति विदगध—प. क. त., पद १००.
अ. — मोहि नहि पूर्जाहि ओऊ—वि. प., पद ९२.
२. ब्र. बु. — ना सो रमण ना हाम रमणी—प. क. त., पद ५७६.
अ. — सो तेहि मिलै न कछु संदेहू—रा. च. मा., बा. २५९, पृ. १२८.
ब्र. भा. — सूर ब्रजहिं **सो** जाइ—सू. सा., १०।६०.
३. ब्र. बु. — **सोइ** इह रस जान—हि. ब्र. बु., पृ. १.
अ. — **सोइ** करिहि कल्यान—रा. च. मा., बाल. ७१, पृ. ४०.
ब्र. भा. — दीजै मोहि कृपा करि सोई—सू. सा., १०।३५.
४. ब्र. बु. — **ताहा** बुझि जाय देखि—हि. ब्र. बु., पृ. २४०.
अ. — **ते** लजात होत ठाढ़—वि. प., पद ८३.
ब्र. भा. — **ते** पहिरे कंचन-मनि-भूषन—सू. सा., १०।३५.
५. ब्र. बु. — **ता पर** जलधर-माला—प. क. त., पद १९६.
अ. — **तापर** सानुकूल गिरिजा हर—वि. प., पद ३०.
ब्र. भा. — **तापर** कमल, कमल बिच विद्रुम—सू. सा., १०।२७७८.
६. ब्र. बु. — **तापर** बचने जीउ निरमचहुँ—हि. ब्र. बु., पृ. १६८.
अ. — **ताकर** नाम भरत अस होई—रा. च. मा., बा. १९७, पृ. १००
७. ब्र. बु. — तछु पद पंकज—प. क. त., पद २११५.
अ. — उदय तासु तिभुवन तम भागा—रा. च. मा., बा. २५६, पृ. १२७.

यद् सर्वनाम

ब्रजबुलि के सर्वनाम— जो, जे, जेह्, जा सञे, जछु, जाको, जाके, जाकर, जार।

अवधी के सर्वनाम— जो, जे, जौन, जहि, जेकर, जेहिकर, जिन, जिन कर, जाकर।

ब्रजभाषा के सर्वनाम— जो, जौन, जाने, जाहि, जाय, जाकौं, जाको, जासु, जासों, जातें, जामैं, जापै।

उदाहरण

१. ब्र. बु. — जो मञ्जु चरण परश-रस-लाल से—प. क. त., पद ४३४.
अ. — तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा—रा. च. मा., बा. २६१, पृ. १२९.
ब्र. भा.— जो यह बालकु नेकु उबारै—सू. सा., १०।१०.

२. ब्र. बु. — एत परिहार करये जे—प. क. त., पद ५९४.
अ. — **जे** कछु समाचार सुनि पावहिं—रा. च. मा., अ. १२२, पृ. २३०.
ब्र. भा.— **जे** हरि चरन भजे—सू. सा., १०।२४.

३. ब्र. बु. — **जाकर** चरण नखर रुचि—प. क. त., पद ४५३.
अ. — **जाकर** चित अहि गति सम भाई—रा. च. मा., बा. ७,

इदम् सर्वनाम

ब्रजबुलि के सर्वनाम—इह, ए, ऐइ, इहको, इह, सजे, इहके, अछु, इहक, इहकर, इह पर

अवधी के सर्वनाम—ई, ए, एह, एहि, एकर, एहिकर, इन, ए, इन, इनकर, इन केर, इहि, अस

ब्रज भाषा के सर्वनाम—यह, याने, याहि, याय, याकौं, याको, यासों.यातें, यामैं,यापै।

उदाहरण

१. ब्र. बु.—किये **इह** जीद् अपार . . . . प. क. त. , पद ४६८
अ.—कहा प्रीति **इहि** लेखे . . . . .गी. व., बा., पद ४
ब्र. भा.—**इहिं** पै दुसह जु इतनेहि अंतर . . . .सू. सा. १०।२७६८

२. ब्र. बु.—**ए** अति गोङारि . . . . . प. क. त., पद १००
अ.—एउ देखि हुँ पिनाकु नेकु . . . . . . गीतावली , बा. ६६
ब्र. भा.—तैसेइ **एऊ** री . . . . . सू. सा., १०।३५२६

३. ब्र. बु.—**अछु** ह आशिन . . . . . प. क. त., पद १७३६
अ.—कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गएऊ . . . . . रा. च. मा., बा. ७१, पृ.३९

४. ब्र. बु.—मोहन मुरली-ध्वनि **एह** . . . . . प. क. त., पद १४२
अ.—अब **येहु** मरनिहार भा सांचा . . . .रा. च. भा., बा. २७५, पृ. १३५
ब्र. भा.—एइ दोउ वसुदेव के ढोटा . . . . . सू. सा. , १०।३०४३

कौन

ब्र. बु.—**को** इह पुन पुन करत हुंकार ...... प. क. त., पद ३५०

को जाने कैछन बिरह् वियाधि ...... प. क. त., पद ५६

शरण **को** देयब ...... प. क. त., पद १०

अ.—जीवत हर्माहि कुंअरि **को** बरई .... रा. च. मा., बा. २६६, पृ. १३१

को नहिं जान बिदित संसारा ..... रा. च. मा., बा. २७६, पृ. १३६

ब्र. भा.—**को** जानै हरि कहा कियौ री ..... सू. सा., १०।१८६६

को पतियाइ तुम्हारी सौंहनि ...... सू. सा., परि. ९०, पृ. २८

कोई

ब्र. बु.—काननें कामिनि **कोई** न जाय ..... प. क. त., पद १७२८

कुंज कुटिर माहा कांदह **कोइ** ...... प. क. त., पद १७२८

अ.—येहु कुचालि कछु जान न **कोई** ..... रा. च. मा., अ. २३, पृ. १८८

ब्र. भा.—**कोउ** माई आवत हैं तनु स्याम .... सू. सा., १०।३४६६

क्रिया

सोलहवीं शती की ब्रजबुलि और हिन्दी भाषा में प्रयुक्त धातुओं में प्रचुर साम्य पाया जाता है। सतीशचन्द्र राय ने भी इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत किए हैं। उनका कहना है कि ब्रजबुलि के धातु के रूपों में प्राय: सब जगह ही मैथिल और बंगला का प्रभाव है। वे यह भी कहते हैं कि कुछ धातु रूपों में ब्रजभाषा का भी प्रभाव है। उन्होंने 'गए' क्रिया का उदाहरण दिया है कि ब्रजभाषा की यह क्रिया ब्रजबुलि में 'गेओ' हो जाती है[1] परन्तु यह साम्य केवल ब्रजभाषा तक ही सीमित ज्ञात नहीं होता। ब्रजबुलि के क्रिया रूपों से अवधी के क्रिया रूपों का अपेक्षाकृत अधिक साम्य ज्ञात होता है। हिन्दी और ब्रजबुलि क्रियाओं का साम्य विशेषतया दो प्रकार का है:—

१. धातु रूपों में लिंग के अनुसार परिवर्तन

२. धातु रूपों में एक ही प्रकार के प्रत्ययों का प्रयोग

१. लिंग के अनुसार परिवर्तन

क्रियाओं में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग का भेद हिन्दी की क्रियाओं की विशेषता है। मैथिली और बंगला दोनों भाषाओं में क्रियाओं में लिंग भेद नहीं पाया जाता। ब्रजबुलि

---

१. "ब्रजबुलीर धातु-रूपे प्राय: सर्वत्रइ मैथिल ओ बांगला-भाषाय प्रभाव देखा जाय, तबे "गेउ" इत्यादि कोन-कोन धातु रूपे ब्रजभाषाय प्रभाव सुस्पष्ट। ब्रजभाषार 'गए' ब्रजबुलीते "गेउ" हइयाछे; दृष्टांत यथा :

दूरे गेओ मुरलि आलापन गीत : प. क. त., पद ५५

(सतीशचन्द्र, राय, प. क. त., परिशिष्ट, पृ. २४१)

साहित्य में प्राप्त क्रियायें दोनों प्रकार की हैं। कुछ म लिंग भेद है, यह हिन्दी की अनुरूपता में है। कुछ में लिंग भेद नहीं है, यह बंगला एवं मैथिली की अनुरूपता में है। यहां लिंग भेद प्रदर्शित करने वाली ब्रजबुलि और हिन्दी क्रियाओं के उदाहरण दिए जा रहे हैं। यह सब 'इ' 'ई' से अंत होने वाली स्त्री-लिंग क्रियायें हैं।

उदाहरण

ब्रजबुलि

रतन मंदिर माहा **बैठलि** सुन्दरि
प. क. त., पद ५८

बांधलि कुच-गिरि माझ
प. क. त., पद ५८

बरत तुहुं **छोड़लि**
प. क. त., पद ६२

खोजति फिरति जननि यशोमति
प. क. त., पद २४८०

बैठलि सखिगण संग
प. क. त., पद २४९१

कानने **आनलि**
प. क. त., पद २९५

तुहुं **जानसि** जदि
प. क. त., पद २८

लहु लहु मुचकि हासि चलि **आओलि**
प. क. त., पद २३०

भेटलि कानुक साथ
प. क. त., पद २३०

तब तुहुं छापलि काय
प. क. त., पद २३०

कैछने **गोपवि** ताय
प. क. त., पद २३०

झांपसि **झांपल** अंग
प. क. त., २२७

हिन्दी

सादर भलेहि **मिली** एक माता
रा. च. मा., बा. ६३, पृ. ३६

चितवति चकित चहूं दिसि सीता
रा. च. मा., बा. २३२, पृ. ११५

सभय हृदयं बिनवति जेहि तेही
रा. च. मा., बा. २५७, पृ. १२७

हरि कौं टेरत **फिरति** गुवारि
सू. सा., १०।४६१

अति बिपति जैसे **सहति**
गी. व., सुं., पद १७

सोभा **राजति** उदय किये
सू. सा., १०।१८२१

आभा **झलकति** गंड
सू. सा., १०।१८२१

छाक लिए सिर स्याम **बुलावति**।
ढूढ़त फिरति ग्वारिनी हरि कौं,
कितहूँ भेद न **पावति**॥
टेर **सुनति** काहूं की स्रवननि
तहां तुरत उठि **धावति**।

पावति नहीं स्याम बलरामहिं
ब्याकुल ह्वै **पछतावति**॥
वृंदावन फिरि फिरि देखति है . . .
सू. सा., १०।४५९

बनी बात बेगरन **चहति** . . . .
रा. च. मा., अ. २१७, पृ. २७२

बिबिध बिलाप **करति** बैदेही
रा. च. मा., अ. २९, पृ. ३४१

२. समान प्रत्ययों का प्रयोग

वर्तमान-कालिक—क्रियाओं में 'अ' 'अइ' अये' 'असि' 'अत' 'अति' 'इ' 'इये' 'उ' 'ए' 'ओ' इत्यादि प्रत्यय व्रजबुलि क्रियाओं में पाए जाते हैं। ऐसे रूप हिन्दी में भी मिलते हैं। यहां कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

अइ-प्रत्यय

व्रजबुलि	हिन्दी
घन घन **डाकइ** प. क. त., पद ४	सत्यकेतु तहं **बसइ** (**बसै ?**) नरेसू रा. च. मा., बा. १५३, पृ. ७९
बने **धाओइ** रे प. क. त., पद १३२३	आपुन उठि **धावइ** रहै न **पावइ** रा. च. मा., बा. १८३, पृ. ९२
कतहुं अभरण **साजइ** प. क. त., पद २१	धरि धीरजु तब कहइ **निषादू** रा. च. मा., अ. १४३, पृ. २३९
एकलि गहन कुंज माहा **लुठइ** प. क. त., पद ३९	दास तुलसी गावई रा. च. मा., कि. ३०, पृ. ३७०
झांपइ झांपल देहा प. क. त., पद ५८	सीय सकुच बस पिय तन **हेरइ** तु. ग्रं., जा. मं., पृ. १२१
जीबने ना **बांधइ** थेहा . . . . प. क. त., पद ५८	
करे कर **वारइ** . . . . . प. क. त., पद ५३	
मंद मधुर बेनु **बाजइ** प. क. त., पद १२३३	
गोविंद दास **कहइ** तोहे प. क. त., पद १६८४	
दूरे **हेरइ** यदुनंदन दास प. क. त., पद २२१	

अ-प्रत्यय

व्रजबुलि	हिन्दी
गोविंद दास **कह** रस-मरियाद प. क. त., पद ५३	**कह** सीता धरि धीरजु गाढ़ा . . . रा. च. मा., अर. २८, पृ. ३४०
	देवहूति **कह** भक्ति सो कहियै सू. सा. ३।१३

अये-प्रत्यय

हंसइते **खसये** कत जे मणि मोतिम प. क. त., पद ५८	तिनके कपिल देव सुत भए

जाहां जाहां **निकसये** तनु तनु
प. क. त., पद ८६

परम सुभाग्य मानि तिन लए . . .
सू. सा., ३।१३

असि-प्रत्यय

भाव कि **गोपसि** गुपत न रहइ
प. क. त., पद ७०

मूढ़ परम सिख देउं न **मानसि** ।
उत्तर प्रतिउत्तर बहु **आनसि** ।।
रा. च. मा., उ. ११२, पृ. ५५३

जतने **निवारसि** नयनक लोर
प. क. त., पद ७०

गदगद शवदे **कहसि** आधबोल
प. क. त., पद ७०

प्रिया बचन कस कहसि कुभांती
रा. च. मा., अ. ३१, पृ. १९२

सघने गतागति **करसि** एकंत
प. क. त., पद ७०

अत, अति-प्रत्यय

बेगे **धाओत** युवति वृंद . .
प. क. त., पद १२५५

हरबर चक्र धरे हरि **धावत** . .
सू. सा., ८।४

निज-**रसे** नाचत . . .
प. क. त., पद ३

अलि गन गावत **नाचत** मोरा . . .
रा. च. मा., अ. २३६, पृ. २८०

गायत कत कत भकतहि मेलि . . . .
प. क. त., पद ३

नाचत त्रैलोकनाथ . . .
सू. सा., ११७६

गावत गुन सूरदास . . . .
सू. सा., १०।४६

रोयत करम गेयान . . .
प. क. त., पद ११

रोवत करहिं प्रताप बखाना . .
रा. च. मा., लं. १०४, पृ. ४७२

प्रेम नाम कहि **कहत** भागवते . . . .
प. क. त., पद १०

कहत कान्ह जननी समुझाइ . . .
सू. सा. १०।७१०

आनंदे हेरत गोविंददास . .
प. क. त., पद ५२

जिय की जरनि मनहुँ हँसि **हेरत** . .
रा. च. मा., अ. २३९, पृ. २८१

दोलत मदन-हिलोर . . .
प. क. त., पद ५८

डोलत धरनि सभासद खसे
रा. च. मा., लं. ३२, पृ. ४२१

नंद-धाम खेलत हरि **डोलत** . . .
सू. सा., १०।१११

जीउ **रहत** अब तुया रस-आशे ।
प. क. त., पद ९०

नयनन वारि न **रहत** एक छन
तुलसी, गी. व; सु. १७

नीर भरि **आओत**
प. क. त., पद १३६

रावन **आवत** सुनेउ सकोहा . .
रा. च. मा., बा. १८२, पृ. ९१

आजु हरि धेनु चराए **आवत**
सू. सा., १०।४९३

अनुदिन **करत** विचार ..
प. क. त., पद ११

करत जदुनाथ जलधि-जलकेलि . .
सू. सा., १०।२९११

कहत भागवते . . .
प. क. त., पद १०

कहति सखिनि सौं . . .
सू. सा., १०।२६५३

खोजति फिरति जननि . .
प. क. त., पद २४८७

हरि कौं **टेरत फिरति** गुवारि . . .
सू. सा., १०।४६१

इं, इ-प्रत्यय

तुया निज नाम गाम घन **गावइ**
प. क. त., पद ६२

गावहिं गीत मनोहर बानी . . .
रा. च. मा., बा. २२८ पृ. ११३

गोविंददास के काहे **उपेखि** . . .
प. क. त., पद ४

निवसइ गोकुल माह . .
प. क. त., पद ६४

करहिं आरती पुर नर नारी . . .
रा. च. मा., बा. २६५, पृ. १३१

मरम माहा **हानइ** . .
प. क. त., पद ७४

सूरदास बलि **जाइ** . . .
सू. सा., १०।२७

ए, ऐ, इये-प्रत्यय

ब्रजबुलि

कत मंदाकिनी नयन **झरे** . . .
प. क. त., पद ३

तोहारि चरणे **कहे** गोविंददास . .
प. क. त., पद ९०

सुंदरि अतये **करिये** अनुमान . . .
प. क. त., पद ६२

हिन्दी

कुंवरि मुदित मुख **मोरे** . .
सू. सा., १०।७३२

झरैं फल न रसाल . .
गी. , अ., पद ९

जापर दीनानाथ **ढरै** . . .
सू. सा., १।३५

कौन जतन न्निती **करिये** . . .
वि. प., पद १८६

माता ताकौं **कहियै** साध . . .
सू. सा., ३।१३

ङ, उ, ऊं-प्रत्यय

ना **हेरङ** निज नाह . .
प. क. त., पद १६८४

मूढ़ परम सिख **देउँ** न मानसि ।
रा. च. मा.,उ. ११२, पृ. ५५३

ओ, औं-प्रत्यय

तोहे **कहो** सुबल सांगाति . .

प. क. त., पद ५६

कहं लगि कहौं हीन अगनित . .

वि. प. , पद १६६

तोहे **कहों** गोपिनि आयानेर राणि

प. क. त., पद १३९३

भूतकाल की क्रियायें—ब्रजबुलि की भूत काल की क्रियाओं में 'अल' 'अलि' अथवा 'अलु' प्रत्यय पाए जाते हैं। यह प्रत्यय केवल बंगला और मैथिली के अपने प्रत्यय हैं। हिन्दी की भूतकाल की क्रियाओं में ये प्रत्यय नहीं हैं।

भविष्य काल की क्रियायें—ब्रजबुलि की क्रियाओं में 'अब' प्रत्यय लगाकर भविष्य काल सूचित किया जाता है। मैथिली में भी ऐसा होता है। बंगला में 'अब' के स्थान पर 'इब' प्रत्यय पाए जाते हैं। अवधी भाषा में भी भविष्य काल की क्रियाओं में 'अब' प्रत्यय पाए जाते हैं। यहां कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

उदाहरण

ब्रजबुलि

लीला **स्फुरब** कि मोय

प. क. त., पद १२

धरब सुधाकर ...

प. क. त., पद १२

दशदिश **खोंजब**

प. क. त., पद १२

मिलब कलपतरु-निकरे . .

प. क. त., पद १२

हाम कि ना **पायब** विंदु . .

प. क. त., पद १२

कतहुं **निवेदित** गोविंददास . .

प. क. त., पद ३९

गोविंददास कतहुं **आशोयासब** . . .

प. क. त., पद ४०

माधव इथे जनि **बोलबि** आन . .

प. क. त., पद २९४०

पुन कि पामरि **पाओबे** . . .

प. क. त., पद १८१३

अवधी

नृप तब तनय **होब** मैं आई . .

रा. च. मा., बा. १५०, पृ. ७७

पुनि **आउब** एहि बेरिआं काली . .

रा. च. मा., बा. २३४, पृ. ११६

हरि **आनब** मैं करि निज माया . .

रा. च. मा., बा. १६९, पृ. ८६

मैं **आउब** सोइ वेषु धरि . .

रा. च. मा., बा. १६९, पृ. ८६

अस बरु तुम्हहि **मिलउब** आनी . .

रा. च. मा., बा. ८०, पृ. ४४

कस न **करब** हित लागि . .

रा. च. मा., अ. २१, पृ. १८८

मौन मलिन मैं **बोलब** बाउर . .

रा. च. मा., अ. २९३, पृ. ३०४

हमहुं **कहबि** अब ठकुरसोहाती।

रा. च. मा., ५०१६, पृ. १८५

परिशिष्ट

छंद

जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में अनुष्टुप् छंद को प्रधानता दी गई है उसी प्रकार तुलसीदास के महाकाव्य 'रामचरितमानस' में चौपाई को मुख्य स्थान मिला। गौड़ीय वैष्णव साहित्य के महाकाव्य 'चैतन्यचरितामृत' में कृष्णदास ने 'पयार' नामक चौदह अक्षरों के छोटे से छंद का व्यवहार किया। जिस प्रकार तुलसीदास से पूर्व जायसी ने अपने पद्मावत में चौपाई छंद का बड़ी सफलता से प्रयोग किया, उसी प्रकार चैतन्यचरितामृत के रचयिता से पूर्व कृतिवास ने अपनी रामायण में पयार छंद में सफलता प्राप्त की। ऐसा प्रतीत होता है कि लम्बे आख्यानक काव्यों के लिए अनुष्टुप् की तरह 'चौपाई' और 'पयार' छंद बहुत उपयुक्त हैं। तुलसीदास ने अपने मानस में चौपाई के अतिरिक्त दोहा, गीतिका और प्रसंगानुसार त्रिभंगी, त्रोटक, तोमर आदि छंदों का भी प्रयोग किया है। कवितावली में उन्होंने कवित्तों और सवैयों में भी रचना की। चैतन्यचरितामृत में यत्र-तत्र कुछ त्रिपदियां पाई जाती हैं, जो कृष्णदास रचित गेय पद हैं।

बंगाली पदावली साहित्य में वार्णिक और मात्रिक एवं मिश्रित छंदों का प्रयोग किया गया है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मात्रिक छंदों में मात्राओं की गणना उच्चारण पद्धति पर बहुत कुछ निर्भर है। लिखित अक्षर को देख कर उसकी ह्रस्व या दीर्घ गणना नहीं हो सकती और न सर्वत्र प्रत्येक दीर्घ अक्षर के लिए दो मात्राएं ही गिनी जा सकती हैं। हिन्दी की अपेक्षा बंगाली में मात्राओं के गिनने के नियम अधिक दुरूह हैं। बंगाली पदावलियां छंद की दृष्टि से विद्यापति के पदों का स्मरण दिलाती है और इनमें भी छंद शास्त्र के नियमों की उतनी ही अवहेलना की गई है। गौड़ीय पदावली में प्रयुक्त कुछ मुख्य छंद ये हैं।

मात्रिक छंद

१. चतुष्पदी—आठ, सोलह, बारह और मिश्रित मात्राओं की
२. दीर्घ चतुष्पदी—सेंतालिस, और इक्यावन मात्राओं की
३. त्रिपदी—तेइस, पच्चीस और अट्ठाइस मात्राओं की

वार्णिक छंद (अक्षर वृत्त)

१. चौदह अक्षर का विशेष छन्द
२. एकावली—आठ अक्षर, दस अक्षर और ग्यारह अक्षर की
३. दीर्घ त्रिपदी—छब्बीस अक्षर की
४. लघु त्रिपदी—बीस अक्षर की

इनके अतिरिक्त वार्णिक छन्दों में धामाली, मिश्र पंचपदी, मिश्र पयार, और मिश्र त्रिपदियों का भी प्रयोग बहुधा किया गया है।

हिन्दी पदावली में छंदों के प्रयोग की शैली अधिक नियमित है। सूर, तुलसी और अन्य अष्टछापीय कवियों ने इन पदों में न केवल छंद, गति और यति पर ही ध्यान रक्खा है उन्होंने अधिकांश पदों में अंतराओं के साथ-साथ एक 'स्थायी' का प्रयोग करके संगीत-सौष्ठव का प्रदर्शन किया है। ये स्थायी हिन्दी पदावली की विशेषता हैं। बंगाली पदकर्ताओं ने भी अपने कुछ पदों में इसी प्रकार के 'स्थायी' को स्थान दे कर रागात्मिका प्रवृत्ति का अच्छा परिचय दिया है। पर वे 'स्थायी' बंगाली पदों में अपेक्षाकृत कम हैं। तुलसीदास ने गीतावली में कवित्त, सवैयों आदि छंदों के साथ भी स्थाइयों का प्रयोग करके पदों की रचना की है। परन्तु अधिकांशतः इस पद-साहित्य में मात्रिक छंदों का ही व्यवहार हुआ है जिनमें से मुख्य सरसी, सार, वीर और ताटंक हैं, अर्थात् सोलह-ग्यारह, सोलह-बारह, सोलह-चौदह और सोलह-पंद्रह वाले मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है।

सहायक ग्रंथों की सूची

अंग्रेज़ी ग्रंथ

Bengali Ramayanas	ले०	दीनेशचन्द्र सेन
	प्र०	यूनिर्वासिटी आव् कलकत्ता
	संस्क०	१९२० ई०
Bhakti Cult in Ancient India	ले०	भागवत कुमार
Chaitanya and his Companions	ले०	दीनेश चन्द्र सेन
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	संस्क०	१९१७ ई०
Chaitanya's Pilgrimage and Teachings	ले०	जे० एन० सरकार
	प्र०	एम० सी० सरकार एण्ड संस ७५, हैरीसन रोड, कलकत्ता
	संस्क०	१९१३ ई०
Early History of the Vishnava Faith and Movement in Bengal	ले०	सुशीलकुमार दे
	प्र०	जनरल प्रिंटर्स व पब्लिशर्स लि० कलकत्ता
	संस्क०	१९४२ ई०
Early History of Vaishnavism in South India	ले०	एस० कृष्ण स्वामी आयंगर
	प्र०	ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
	संस्क०	१९२९ ई०
Erotic Principles and Unalloyed Devotion.	ले०	निशिकांत सान्याल
	प्र०	गौड़ीय मठ, कलकत्ता
	संस्क०	१९४१ ई०
History of Bengali Language and Literature.	ले०	दीनेशचन्द्र सेन
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	संस्क०	१९११ ई०
History of Bengali Literature	ले०	के० एन० दास
	प्र०	दास ब्रदर्स, नवगांव राजशाही
	संस्क०	१९४६ ई०
History of Brajbuli Literature	ले०	सुकुमार सेन
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	संस्क०	१९३५ ई०
History of Indian Philosophy (Vol. III)	ले०	एस० एन० दासगुप्त

	प्र०	कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
	संस्क०	१९४० ई०
Materials for the study of Early History of Vaishnava Sects.	ले०	हेमेन्द्र राय चौधरी
	संस्क०	१२२० साल
Obscure Religious Cults as Background of Bengali Literature.	ले०	शशिभूषण दास गुप्त
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	संस्क०	१९४६ ई०
Outline of the Religious Literature of India.	ले०	जे० एन० फरकुहर
Theism in India	ले०	निकल मैकनिकल
	प्र०	आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
	संस्क०	१९१५ ई०
The Vaishnava Literature of Medieval Bengal	ले०	दीनेशचन्द्र सेन
	प्र०	यूनीवर्सिटी आफ कलकत्ता
	संस्क०	१९१७ ई०
Vaishnavism, Real and Apparent.	प्र०	विश्व वैष्णव राजसभा
	संस्क०	१९२६ ई०
Modern Vernacular Literature of Hindustan.	ले०	जी० ए० ग्रियर्सन
	प्र०	एशियाटिक सोसायटी ५७, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता
	संस्क०	१८८९ ई०

बंगाली ग्रंथ

कीर्त्तनपदावली	संक०	सुधीरचन्द्र राय और अपर्णा देवी
	प्र०	प्रबोध नान, शशि रंजन प्रेस, कलकत्ता
	संस्क०	१३४५ बंगाब्द
कृष्णकीर्तन	ले०	चंडीदास
	सं०	वसंतरंजन राय
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	संस्क०	१३२३ साल
क्षणदागीतचिन्तामणि	ले०	विश्वनाथ चक्रवर्ती, व्याख्याकार, राधिकानाथ गोस्वामी
	प्र०	काशीनाथ राय, वृन्दावन
	संस्क०	१३१५ साल

गौड़ीयवैष्णवसाहित्य	ले०	हरिदास
	प्र०	श्रीधाम, नवद्वीप, हरिबोल कुटीर
	संस्क०	प्रथम ४६२ चैतन्याब्द
गौरपदतरंगिणी	संक०	जगद्‌बंधु भद्र
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता
	संस्क०	१३१० साल
चैतन्यचरितामृत	ले०	कृष्णदास कविराज गोस्वामी
	सं०	क्षीरोद चंद्र गोस्वामी
	प्र०	पूर्णचंद्र शील, कलकत्ता
चैतन्यचरितेर उपादान	ले०	विमानविहारी मजुमदार
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	संस्क०	१३३९ ई०
चतन्यभागवत	ले०	वृन्दावनदास ठाकुर
	सं०, प्र०	मृत्युंजय दे, तारकचन्द्र चटर्जी लेन, कलकत्ता
	संस्क०	१३५४ साल
चैतन्यमंगल	ले०	जयानंद
	सं०	नगेन्द्रनाथ वसु, कालीदास नाग
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	संस्क०	१९०५ ई०
नरोत्तमविलास (वैष्णव ग्रंथावली, प्रथम भाग के अन्तर्गत)	ले०	नरहरि चक्रवर्ती
	सं०	उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
	प्र०	पूर्णचंद्र मुखोपाध्याय
	संस्क०	१३०५ साल
पदकल्पतरु	संक०	वैष्णवदास
	सं०	सतीशचन्द्र राय
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	संस्क०	१३३८ साल
प्राचीन वंग साहित्य	ले०	कालिदास राय
	प्र०	जयदेव राय
	संस्क०	द्वितीय संकरण, १३५४ साल
प्रेम विलास	ले०	नित्यानन्द दास
	प्र०	१. यशोदालाल तालुकदार २. राधारमण प्रेस, बरहमपुर
	संस्क०	१३२० साल
वांगला साहित्येर इतिहास (प्रथम खंड)	ले०	सुकुमार सेन

	प्र०	उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य, माडर्न बुक एजेंसी, कलकत्ता
	संस्क०	द्वितीय १९३८ ई०
भक्तमाल	ले०	श्री लाल दास बाबा जी
	सं०	अविनाशचंद्र मुखोपाध्याय
	प्र०	पूर्णचन्द्र शील, कलकत्ता
	संस्क०	१३५० साल
भक्तिरत्नाकर	ले०	नरहरि चक्रवर्ती
	सं०	राम नारायण विद्यारत्न
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, दो और संस्करण
		१. गौड़ीय वैष्णव मठ से १९४० ई०
		२. राधारमण प्रेस, बरहमपुर से चैतन्याब्द ४२६ में
वंगभाषा ओ साहित्य	ले०	दीनेशचन्द्र सेन
	प्र०	गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड संस कलकत्ता
वंग साहित्य परिचय (दो भाग)	संक०	दीनेशचंद्र सेन
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	संस्क०	१९१४ ई०
वैष्णव पदावली	सं०	दीनेशचन्द्र सेन, खगेन्द्रनाथ मित्र
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	संस्क०	तृतीय, १९४६ ई०
वैष्णव पदावली (वासुदेव घोष के पद)	सं०	मृणालकांति घोष
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	संस्क०	१३१२ साल
वैष्णव महाजन-पदावली	प्र०	श्री उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, वसुमती साहित्य मंदिर, कलकत्ता
वैष्णव रस साहित्य	ले०	खगेन्द्रनाथ मित्र
	प्र०	कमला बुक डिपो, कलकत्ता
	संस्क०	१३५३ साल
वैष्णव वंदना	ले०	देवकीनन्दन दास
	सं०	शिवचन्द्र शील
वैष्णव वन्दना	ले०	माधव दास
	सं०	शिवचन्द्र शील
	संस्क०	१३१७ बंगाब्द

वैष्णवाचार दर्पण : वैष्णव सर्वस्व	सं०	नवद्वीप चन्द्र गोस्वामी
	प्र०	शरच्चंद्र शील ऐंड संस, कलकत्ता
	संस्क०	१३३६ बंगाब्द
संकीर्तनामृत	संक०	दीनबन्धु दास
	सं०	अमूल्यचरण विद्याभूषण
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	संस्क०	१३३६ साल
स्मरण दर्पण	ले०	रामचन्द्र दास
	सं०	अच्युतचरण
	प्र०	भक्तिप्रभा प्रेस, हुगली

संस्कृत ग्रंथ

उज्ज्वलनीलमणि	ले०	रूप गोस्वामी
	टीका०	जीव गोस्वामी
	सं०	दुर्गा प्रसाद, वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर
	प्र०	पांडु रंग जावजी, निर्णय सागर, बंबई
	संस्क०	सन् १९३२ ई०, शक १८५४
पद्यावली	ले०	रूप गोस्वामी
	सं०	सुशीलकुमार दे
	प्र०	युनिवर्सिटी, ढाका
	संस्क०	१९२४ ई०
ब्रह्म संहिता	टीका०	जीव गोस्वामी
	अनु०	(अंग्रेजी में) भक्ति सिद्धांत सरस्वती
	प्र०	त्रिदंडी स्वामी भक्ति हृदय, गौड़ीय मठ, मद्रास
	संस्क०	१९३२ ई०
भक्तिरसामृत सिंधु	ले०	रूप गोस्वामी
	सं०	भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी
	प्र०	नदिया प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स, श्रीधाम, मायापुर, नदिया
	संस्क०	१३३८ साल
ललित माधव	ले०	रूप गोस्वामी
	प्र०	शरच्चंद्र शील एण्ड संस, कलकत्ता
श्रीमद् भागवत महापुराण, दो खंड	प्र०	गीताप्रेस, गोरखपुर
	संस्क०	हिन्दी व्याख्या सहित द्वितीय संस्करण, सं० २००८ वि०

हिन्दी ग्रंथ

अष्टछाप	संक०	धीरेन्द्र वर्मा
	प्र०	रामनरायन लाल, प्रयाग
	संस्क०	प्रथम १९२९ ई०
अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	ले०	दीनदयालु गुप्त
	प्र०	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
	संस्क०	२००४ ई०
कीर्तन रत्नाकर	संक०	त्रिभुवन दास पीताम्बर दास शाह नडियाद
	संस्क०	१९२० वि०
कीर्तन-संग्रह	संक०	लल्लु भाई छगन लाल देसाई
	प्र०	भक्ति ग्रंथ माला, रीची रोड, अहमदाबाद
	संस्क०	भाग १, २ (एक जिल्द में) १९९३ वि०, भाग ३, १९९६
गोस्वामी तुलसीदास	ले०	रामचन्द्र शुक्ल
	प्र०	इंडियन प्रेस, प्रयाग
	संस्क०	१९३३ ई०
गोस्वामी तुलसीदास	सं०	श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
	प्र०	इंडियन प्रेस, प्रयाग
तुलसी की समन्वय साधना	ले०	व्योहार राजेन्द्र सिंह
तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खंड	सं०	श्यामसुन्दर दास
	प्र०	काशी नागरी प्रचारणी सभा
	संस्क०	जयंती संस्करण, सं० १९८० वि०
तुलसी-दर्शन	ले०	बलदेव प्रसाद मिश्र
	प्र०	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
	संस्क०	१९९५ वि०
तुलसीदास	ले०	चन्द्रबली पांडेय
	प्र०	शक्ति कार्यालय, प्रयाग
	संस्क०	२००५ वि०
तुलसीदास	ले०	माताप्रसाद गुप्त
	प्र०	प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दी परिषद्, प्रयाग
	संस्क०	द्वितीय १९४६ ई०

तुलसीदास : एक अध्ययन	ले०	रामरत्न भटनागर
	प्र०	किताब महल, प्रयाग
	संस्क०	१९४६ ई०
तुलसी शब्द-सागर	संक०	हरगोविन्द तिवारी
	सं०	भोलानाथ तिवारी
	प्र०	हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग
	संस्क०	१९५४ ई०
नन्ददास : दो भाग	सं०	उमाशंकर शुक्ल
	प्र०	प्रयाग विश्वविद्यालय
	संस्क०	प्रथम १९४२ ई०
प्राचीन कवियों की काव्य साधना	ले०	राजेन्द्रसिंह गौड़
	प्र०	साधना-सदन, प्रयाग
	संस्क०	१९४७ ई०
भक्तमाल, प्रियादास की टीका तथा सीता-रामशरण भगवानप्रसाद "रूपकला" की टिप्पणियों सहित	ले०	नाभादास
	प्र०	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
	संस्क०	द्वितीय, सन् १९२६ ई०
मिश्रबन्धु विनोद (१)	ले०	मिश्र बन्धु
	प्र०	हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली
	संस्क०	प्रथम, संवत् १९७०
रामचरितमानस	ले०	तुलसीदास
	सं०	माताप्रसाद गुप्त
	प्र०	शालिग्राम गुप्त, साहित्य कुटीर, प्रयाग
	संस्क०	प्रथम १९४९
रामचरितमानस की भूमिका	ले०	रामचरण दास
	प्र०	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
	संस्क०	तृतीय १९२४ ई०
रामचरितमानस की भूमिका	ले०	रामदास गौड़
	प्र०	हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता
	संस्क०	१९८२ ई०
वसंत, धमार कीर्तन संग्रह	प्र०	लल्लु भाई छगन लाल देसाई अहमदाबाद
	संस्क०	१९८४ वि०
विनयपत्रिका, हरितोषणी टीका सहित	ले०	तुलसीदास
	टीकाकार	वियोगी हरि
	प्र०	साहित्य सेवा सदन, काशी
	संस्क०	द्वितीय, १९८७ वि०

संगीत राग कल्पद्रुम — संक० कृष्णानन्द व्यासदेव
सं० श्री नगेन्द्र नाथ वसु
प्र० बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता

सूरदास — ले० ब्रजेश्वर वर्मा
प्र० हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय
संस्क० द्वितीय १९५० ई०

सूरसागर — सं० नंददुलारे बाजपेयी
प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
संस्क० प्रथम खंड सं० २००५ वि०, द्वितीय खंड सं० २००७ वि०

हिन्दी भाषा — ले० श्यामसुन्दरदास
प्र० इंडियन प्रेस, प्रयाग
संस्क० १९५१ ई०

हिन्दी व्याकरण — ले० कामता प्रसाद गुरु
प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
(संशो०) संस्क० सं० २००९ वि०

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — ले० रामकुमार वर्मा
प्र० रामनरायन लाल, प्रयाग
संस्क० प्रथम १९३८ ई०

हिन्दी साहित्य का इतिहास — ले० रमा शंकर शुक्ल रसाल
प्र० राय साहब राम दयाल अग्रवाल, इलाहाबाद
संस्क० प्रथम १९३१

हिन्दी साहित्य का इतिहास — ले० रामचन्द्र शुक्ल
प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
संस्क० छठा, २००७

हिन्दी साहित्य की भूमिका — ले० हजारी प्रसाद द्विवेदी
प्र० हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई
संस्क० १९४० ई०

CATALOGUE

Central Archaeological Library,
NEW DELHI.

Call No. 891.43109/Rat - 29130

Author— Ratnakumari.

Title—Solhavīṅ śati ke Hindī aur Bengalī Vaiṣṇava kavi.

Borrower No.	Date of Issue	Date of Return

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book clean and moving.

S. B., 148. N. DELHI.